खण्ड १

श्रीगणेशाय नमः

श्रीकृष्णचरितमानस

रचयिता
रामेश्वर पाटीदार
आत्मज श्रीलखनलालजी पाटीदार
ग्राम रजूर, पोस्ट सिनगुन
तहसील व जिला खरगोन
पिन कोड 451 001
मध्य प्रदेश
मो. 08518099418

विषयसूची

प्रथम सोपान– बालकाण्ड

द्वितीय सोपान– गोवर्धन काण्ड

तृतीय सोपान– माधुर्य काण्ड

चतुर्थ सोपान– मथुरा काण्ड

पञ्चम सोपान– वियोग काण्ड

षष्ठम सोपान– द्वारिका काण्ड

२. जरासंध द्वारा कालयवन के साथ मथुरा पर आक्रमण (दोहा क्र. १०–११)

३. भगवान श्रीकृष्ण द्वारा विश्वकर्मा की सहायता से समुद्र के मध्य द्वारिका का निर्माण (दोहा क्र. १२)

४. राजा मुचुकुन्द के दृष्टिपात से कालयवन का भस्म होना (दोहा क्र. १३–१४)

५. श्रीकृष्ण–बलराम का जरासंध के सम्मुख युद्ध छोड़कर भागना (दोहा क्र. १५)

६. बलरामजी का रेवती से विवाह (दोहा क्र. १५)

७. पत्र द्वारा राजकुमारी रुक्मिनी का श्रीकृष्ण से प्रणय निवेदन (दोहा क्र. १६–१९)

८. भगवान श्रीकृष्ण का कुण्डिनपुर आगमन (दोहा क्र. २०–२३)

९. रुक्मिनी हरण (दोहा क्र. २४–२५)

१०. श्रीकृष्ण–बलराम का शिशुपालादि राजाओं से युद्ध (दोहा क्र. २६–२७)

११. युवराज रुक्मी की पराजय (दोहा क्र. २७–२८)

१२. श्रीकृष्ण रुक्मिनी विवाह और प्रद्युम्न का जन्म (दोहा क्र. २९)

१३. शम्बरासुर द्वारा सूतिकागार से प्रद्युम्न का हरण और रति द्वारा उसकी रक्षा (दोहा क्र. ३०)

१४. शम्बरासुर का वध करके रति के साथ प्रद्युम्न का द्वारिकागमन (दोहा क्र. ३१)

१५. सत्राजित् का मणि–सम्बंधी अभिमान (दोहा क्र. ३२–३३)

१६. भगवान श्रीकृष्ण पर मणि की चोरी का कलङ्क लगना (दोहा क्र. ३४)

१७. मणि की खोज में यादवों के साथ श्रीकृष्ण का वन को जाना (दोहा क्र. ३५)

१८. श्रीकृष्ण का ऋक्षराज जामवंत से युद्ध और मणि व जामवंती की प्राप्ति (दोहा क्र. ३६–३८)

सप्तम सोपान– दिग्विजय काण्ड

अष्टम सोपान– उत्तर काण्ड

बन्दउँ बिरति सिव भगति गिरजहि सम जे रबि अरु जोति से।

श्री गणेशाय नमः

श्रीकृष्णचरितमानस

प्रथम सोपान
बालकाण्ड
मंगलाचरण

छन्द- **जग अखिल हित रत कबितमय सारद बिघनहर बन्दऊँ।**
संतत बसत जे गुरु सुआतम गढ़हि बरु कबि पुंगऊ॥
बन्दउँ बिरति सिव भगति गिरजहि सम जे रबि अरु जोति से।
जिन्हँ पाइ हिय जिव सान्ति लहँ जस सींपि मुकुता सोति से॥

सम्पूर्ण संसार के हित में तत्पर, काव्यमय माता सरस्वती और विघ्नहर्ता श्रीगणेशजी की मैं वन्दना करता हूँ, जो गुरु की सुन्दर आत्मा में निरन्तर निवास करते हुए, उत्तम और उद्भट कवियों की सृष्टि करते हैं। फिर मैं वैराग्यरूपी शिवजी और भक्तिरूपी माता पार्वती की वन्दना करता हूँ, जो सूर्य तथा प्रकाश की भाँति (परस्पर अभिन्न) हैं और जिन्हें अपनी आत्मा में पाकर प्राणी वैसे ही शान्ति पा लेता है; जैसे स्वाति नक्षत्र का जल पाकर सींपि मोती पा लेती है।

छन्द- **जे नित्य गुन कल समउँ कारन सीवँ पर मायापती।**
पुनि जगत हित धरि चारि भुज संतत बसहिं जे कंपती॥
अज हर अमर नर नाग मुनि गंधर्ब जिन्हँ संबल फरै।
सो मोच्छप्रद हरि मम पितर देअन्हँ अखय मंगल करै॥

जो नित्य हैं, गुण, कला, समय व कारण की सीमाओं से परे माया के स्वामी हैं, संसार के हित के लिये चतुर्भुजरूप धारण किये, जो निरन्तर क्षीरसागर में निवास करते हैं। ब्रह्माजी, शिवजी, देवता, मनुष्य, नाग, सर्प, मुनि व गन्धर्वादि जिनके आश्रय से फलते-फूलते हैं, वे मोक्षदायक परमात्मा श्रीकृष्ण, मेरे पितृदेवताओं का अखण्ड कल्याण करे।

छन्द- **जे सिंधु तनुजा हरिप्रिया सब भाँति मंगलकारिनी।**
सो दीनहितु आधाररूपा द्रवहि भव भय हारिनी॥
मुनि ब्यास तुलसी सूर तैं सब अकथ कबितकला धनी।
हरिहर सुजसु पंकज मधुप करु मोर मति कलमय घनी॥

जो समुद्र की कन्या, श्रीहरि की प्रियतमा और प्राणी का सब प्रकार से मङ्गल करनेवाली हैं; दीनबन्धु की आधारशक्ति और भवरूपी भय का नाश करनेवाली वे भगवती महालक्ष्मी मुझ पर द्रवित हों। शुकदेवजी, व्यासजी, तुलसीदासजी और सूरदासजी! आप सब काव्य की अकथनीय कला के धनी हैं। हे हरिहर के सुयशरूपी कमल के मधुकरगण! आप सब मुझ पर द्रवित होकर मेरी बुद्धि को काव्य की महान कला से विभूषित कीजिये।

सो.- तुलसि सरिस गुरु पाइ पितर देऊँ अरु जगत हित।
बिबिध सुकृतिन्हँ जुड़ाइ बरनउँ हरिहि सुखद चरित॥ ॐ॥

तुलसीदासजी जैसे महागुरु का आश्रय पाकर, मैं अपने पितृदेवों व संसार के कल्याण के लिये, अनेक सुन्दर कृतियों के आधार पर; भगवान श्रीहरि के सुखद चरित्रों का वर्णन करता हूँ।

चौ.- बन्दउँ गुरु पद अंबुज छारा। त्रिपुर त्रिकाल जे मम आधारा॥
जिहि भेषज सुबास मृदुताई। मम कुभाग श्रमु देत नसाई॥

मैं गुरुदेव के चरणकमलों की उस रज की वन्दना करता हूँ, जो तीनों लोकों व तीनों कालों में मेरा आधार हैं और जिसकी औषधीय मृदुल सुगन्ध, दुर्भाग्य से उत्पन्न मेरी थकान को हर लेती है।

परिथिति तिमिर प्रबोधन जासू। करइ हृदय सद्ग्यान प्रकासू॥
जिन्हँ कर बटतरु कइ घन छाईं। मोह घाम दुख देत नसाईं॥

परिस्थितिरूपी अन्धकार में, जिनसे प्राप्त यथार्थ बोध, मेरे हृदय में सद्ज्ञान का प्रकाश करता है और जिनके हाथरूपी वट की सघन छाया अज्ञानरूपी धूप से उत्पन्न मेरी पीड़ा हर लेती है।

सुमिरन जासु सकल सुखमूला। ब्यापइ जहँ न त्रिताप त्रिसूला॥
सदन सिवहि सम जे कल्याना। पुनि पुनि नउँ अस गुरु भगवाना॥

जिनका स्मरणमात्र समस्त सुखों का मूल है, जहाँ त्रितापरूपी तीनों ही शूल नहीं व्यापते और जो साक्षात् शिव के समान कल्याण के धाम है, उन गुरु भगवान की मैं वन्दना करता हूँ।

उन्ह पद पंकज आश्रय पाई। दरिदन्हँ हित निज हेतु बनाई॥
पुनि तिन्ह पुरवन साधन जानी। कउँ हरि सुचरित कबित बखानी॥

उनके चरणकमलों पर आश्रित हुआ मैं, दरिद्रों के हित को अपना उद्देश्य बनाकर, फिर उसे पाने का साधन जानकर; भगवान के सुन्दर चरित्र का कविता के रूप में वर्णन करता हूँ।

बन्दउँ तदुप मात पितु चरना। सहित सुबंधु स्वजन सुखकरना॥

तत्पश्चात् मैं अपने माता-पिता सहित सुखद स्वजनों एवं भाईयों की चरणवन्दना करता हूँ,

दोहा- **सतत सहाय प्रसाद जिन्हँ जोतिहिं पुंज समान।**
एहिं लच्छ प्रति परिथितिहुँ मम हित उरजा खान॥१॥

मुझे निरन्तर मिलता हुआ, जिनका सहायतारूपी प्रसाद, किसी ज्योतिपुञ्ज के समान इस लक्ष्य की प्रत्येक परिस्थिति में मेरे लिये ऊर्जा की खान है।

चौ.- **जिन्हँ सिसु चरित मनोहर चारु। भगतन्हँ हृदय केर सिंगारु॥**
जननि जसोदहिं आँखिन्ह जोती। तात नंद हित आनँद मोती॥

जिनके मनोहारी सुन्दर बाल चरित्र, भक्तों के हृदय का शृङ्गार, मैय्या यशोदा के नेत्रों की ज्योति और बाबा नन्द के लिये आनन्द के मोती हैं।

भगत सम्भु हित सुख आगारा। ब्रजबासिन्हँ सौभाग अधारा॥
पूतनादि खल गन हित हेतू। भवबारिधि कर अति दृढ़सेतू॥

भक्तरूपी शिवजी के लिये सुखों के धाम, व्रजवासियों के सौभाग्य का आधार और पूतना आदि दुष्टों के कल्याण के निमित्त, भवरूपी सागर में अत्यन्त दृढ़ सेतु है।

अधर कमल दल हास सुबासा। उर मधुकरन्हि लहहिं हठि पासा॥
सींव अमित सुषमा सुखधामा। बन्दउँ दाउ सहित घनस्यामा॥

जिनके अधररूपी कमलदलों की हास्यरूपी सुगन्ध, हृदयरूपी भौरों को बलात् आकर्षित करती है। जो सुख के धाम और अपार सौंदर्य की सीमा है; दाऊ सहित मैं उन कृष्ण की वन्दना करता हूँ।

नंद अजिर बिचरत सो बालक। होइ मोर मति अरु कुलपालक॥
पुनि निज तोतरपनु मृदुताई। देहिं मोर प्रति भाउ बसाई॥

नन्दजी के आँगन में विचरण करते हुए वे दोनों बालक, मेरी बुद्धि व मेरे कुल के पालक होकर; अपनी तोतली वाणी की कोमलता, मेरे प्रत्येक भाव में बसा दें।

दोहा- **बहुरि साँच उर बन्दउँ नंद जसोदहि पाँउ।**
जे पालक जगपालकहि भवभंजन जिन्हँ नाउँ॥२॥

फिर मैं सच्चे हृदय से नन्दरायजी एवं यशोदाजी के चरणों की वन्दना करता हूँ, जो इस संसार को पालनेंवाले (श्रीहरि) के पालनकर्ता हैं और जिनका नाम भव के भय को मिटानेवाला है।

चौ.- जासु प्रीति कइ सुरसरि न्हाई। अमित चरित ब्रज कीन्ह कन्हाई॥
जासु नेह बंदित तिहुँलोका। हरहि सो सुकृत रासि मम सोका॥

जिनके प्रेम की गङ्गा में नहाकर, श्रीकृष्णजी ने व्रज में अनेक सुन्दर चरित्र किये और जिनका निर्मल प्रेम तीनों-लोकों में वन्दित है, वे पुण्यों की राशि (नंदजी व यशोदाजी), मेरे शोक का हरण करें।

सहनसक्ति प्रनबउँ पुनि तासू। षट पबिपात भए उर जासू॥
तद्यपि दृग धरि जगहित आसा। राखिसि संतत जिन्हँ निज स्वासा॥

फिर मैं उनकी सहनशक्ति को नमन करता हूँ, जिनके हृदय पर छः बार वज्रपात हुआ और तब भी नेत्रों में संसार के हित की आशा लिये, जिन्होंने अपनी श्वासों को बनाये रखा।

उन्ह बसुद्यौ देअकि रोहिनि पद। धरउँ सीस परिहरि अंतर मद॥
ते मोहि निज सुत सेवक जानी। देहिं प्रभाउँ जथोचित बानी॥

उन वसुदेवजी, देवकीजी और रोहिणीजी के चरणों को कपट त्यागकर अपने शीश पर धारण करता हूँ। वे मुझे अपने पुत्र का सेवक जानकर, मेरी वाणी में यथार्थ प्रभाव उत्पन्न करें।

अज हर हृदय सरोवर जासू। चरित कमल बन करइ सुबासू॥
खल बध निरत सकल गुन खाना। श्रुति पुरान जिन्हँ ब्रह्म बखाना॥

शिवजी और ब्रह्माजी के हृदयसरोवर में जिनका चरित्ररूपी कमलवन सुगन्ध (भक्ति) का सञ्चार किया करता है; जो दुष्टों के वध में तत्पर और समस्त गुणों की खान है तथा वेद पुराणों ने जिन्हें परब्रह्म कहा है;

कोटि काम छबि प्रति अँग जाके। अमर बरूथ जेन्हँ रुख ताके॥
जदुकुल तिलक राधिकहि कंता। दीन दुखिन्हँ एकौ भगवंता॥

जिनके श्रीअङ्गों में करोड़ों कामदेवों की शोभा है, देवताओं के समूह जिनका रुख देखते रहते हैं, जो यदुकुल के तिलक और रुक्मिणीजी के पति तथा दीन-दुखियों के एकमात्र स्वामी हैं;

दोहा- रनु कुभाग प्रति सोउ प्रभु जानि मोर हिय भाउ।
देहिं मोर कबितायुध निज सारंग प्रभाउ॥३॥

वे भगवान श्रीकृष्ण मेरे हृदय का भाव जानकर दुर्भाग्य के विरुद्ध युद्ध में मेरे कवितायुध में अपने, सार्ङ्ग-धनुष का प्रभाव प्रकट करें।

चौ.- दुखि मानउतहि होन सहाई। गै हरि जिन्हँ पहिं लेन बिदाई॥
तब उर पीर सविंटि निज अंचल। परहितु सहाय जिन्हँ रस निर्मल॥

दुःखी मानवता की सहायता के लिये तत्पर भगवान श्रीकृष्ण जिनके पास विदा लेने के लिये गये, तब हृदय की पीड़ा को अपने आँचल में समेटकर जिनका निर्मल प्रेम,

हरषि चिर तिमिर लहरन्हि माहीं। सदा सदा लगि गयउ समाहीं॥
काचित सो बृषभानुकुमारी। पुरवहि मोर मनोरथ भारी॥

प्रसन्नतापूर्वक सदा-सदा के लिये अनन्त विरह की लहरों में समा गया; भगवान श्रीकृष्ण के प्रेम को भली-भाँति समझनेवाली वे वृषभानुनन्दिनी, श्रीराधाजी मेरे महामनोरथ को पूर्ण करें।

पुनि पुनि बन्दउ सुचि पद तेऊ। राधहि प्रतिछबि हरि हित जेऊ॥
बन जिन्हँ जूठन गहि रुचिराई। सखाबछल आपन मुख गाई॥

मैं उन गोपियों के पवित्र चरणों की बार-बार वन्दना करता हूँ, जो श्रीकृष्ण के लिये राधाजी की ही प्रतिमूर्तियाँ हैं। वन में जिनकी जूठन खाकर उन सखावत्सल ने, उसके स्वाद का अपने श्रीमुख से बखान किया था,

उन्ह ग्वालन्हँ रस कहँ सिरु नाई। सादर बदौं मैं मनु लाई॥
सो निसिपतिन्हँ कन्हहिं अस लाहू। रस पूरन नित कपट न राहू॥

उन ग्वालबालों के प्रेम को सिर नवाकर, मन से सादर प्रणाम करता हूँ। मित्रता के उन चन्द्रमाओं का भगवान श्रीकृष्ण को यह लाभ है कि वे प्रेमरूपी सुधा से नित्य पूर्ण रहते हैं और उनके लिये कपटरूपी कोई राहु नहीं है।

प्रनवउँ ब्रज द्वारिका महाना। गोकुल मधुपुरि अरु बरसाना॥
बिबिध चरित करि जहँ घनस्यामा। भए जगत हित आनँदधामा॥

फिर मैं व्रजभूमि, गोकुल, मथुरा, बरसाना और महानगरी द्वारिका को प्रणाम करता हूँ, जहाँ अनेक चरित्र करते हुए, भगवान श्रीकृष्ण इस संसार के लिये आनन्द के धाम हुए हैं।

दोहा- रह आतुर हरि पद परस जासु तरंगन्हि माल।
सो कज्जलि मम भाउन्ह सुचिता देइ रसाल॥४॥

भगवान के चरण कमलों का स्पर्श करने के लिये जिसकी तरङ्गमालाएँ आतुर रहती हैं, वे श्यामवर्णवाली श्रीयमुनाजी मेरे भावों को रसयुक्त पवित्रता प्रदान करें।

चौ.- बन्दउँ तदुप करहि मम काजा। हरिहि तनय अरु नारि समाजा॥
सपितु नवउँ पद पंकज ताकें। हरिहि भगति नित करतल जाकें॥

तत्पश्चात् मैं भगवान श्रीहरि के पुत्रों और पत्नियों के समुदाय को प्रणाम करता हूँ, वे मेरे कार्य को सिद्ध करें। फिर मैं पिता श्रीव्यासजी सहित उन श्रीशुकदेवजी की वन्दना करता हूँ, श्रीहरि की भक्ति निरन्तर जिनके वश में रहती है।

देत जेहिं हरि सुजसु अपारा। परिछित कर दुख सकल निबारा॥
पुनि प्रनवउ परिछित पद छारा। जगहुँ आनि जेहिं हरि जसु धारा॥

जिन्होंने भगवान का चरित्र सुनाते हुए परीक्षितजी का समस्त दुःख दूर कर दिया। फिर मैं महाराज परीक्षित् की चरणरज की वन्दना करता हूँ, जो इस संसार में श्रीहरि की सुयशरूपी धारा लाए।

चर अरु अचर सहित सब कोऊ। आहत जन हित हितकर होऊ॥
जनक कहइ रिनु पाँच प्रकारा। बपुष रहत जिन्हँ करिअ निबारा॥

चर-अचर सहित सब कोई मुझ आहत व्यक्ति के हितैषी हों। मेरे पिता कहते हैं कि ऋण पाँच प्रकार के होते हैं, शरीर रहते जिनका निवारण किया जाना चाहिये।

पितृ देव गुर बिस्व समाजा। टारन इन्ह रिनु करु प्रति काजा॥
पर जग जतन कोटि कोउँ करही। सेवा बिनु एकौं जनि टरहीं॥

पितृ, देव, गुरु, समाज और विश्व ऋण; मनुष्य को प्रत्येक कर्म इन ऋणों से मुक्त होने के लिये ही करना चाहिये और संसार में कोई कितने भी यत्न कर ले, सेवा बिना एक भी ऋण नहीं उतरता।

दोहा- **अखिल जगत कल्यान हित करिअ जतन छल छारि।**
गुर कह इहइ उपाउ अस जे हरि सक रिनु भारि॥५॥

“समस्त संसार के कल्याण के लिये कपट त्यागकर प्रयत्न करना चाहिये ” गुरुदेव के अनुसार यही वह उपाय है, जो इन महान ऋणों को हर सकता है।

चौ.- **सो गुर पितु आयसु सिरु लाई। उन्ह त्रय प्रतिभन्ह लगेउँ जगाई॥**
जे मोहि दीन्हिसि गरभहि माता। होन हेतु कुल कर रिनु त्राता॥

अतः गुरु और पिता की आज्ञा सिरोधार्य करके, मैं अपनी उन तीन प्रतिभाओं को जगानें लगा, जो मेरी माता ने कुल का ऋण उतारनें के लिये, मुझे गर्भ में धारण करते हुए ही प्रदान की थी।

पर कुभाग अरि बारहि बारा। कुसमउ चाप करत टंकारा॥
दुखद परिथितिन्हँ सेन सजाई। मम आतमगढ़ पर कर घाई॥

किन्तु दुर्भाग्यरूपी शत्रु बार-बार प्रतिकूल समयरूपी धनुष की टङ्कार करते हुए, दुःखद परिस्थितियों की सेना सजाकर, मेरे आत्मारूपी किले पर आक्रमण करता रहता है।

हरिहि हाथ जे मम सिरु होई। पारि न सकउँ रिनु न अस कोई॥
अगनित अरि जीवन रनु माहीं। जिन्हँ तें भिरे मोहि श्रमु नाहीं॥

जो यदि श्रीहरि का हाथ मेरे सिर पर हो, तो ऐसा कोई ऋण नहीं है, जिसका मैं पार न पा सकूँ। जीवनरूपी इस युद्ध में परिस्थितिरूपी अनेक शत्रु हैं, जिनसे भिड़नें में मुझे कोई कष्ट नहीं।

पर मोहि दुसह स्वजन कर सोका। जदपि राखि रहे पति त्रैलोका॥
बूड़ ब्रह्ममुद मम जय हेरी। औटि रही गनिती उन्ह केरी॥

किन्तु मुझे स्वजनों का शोक असह्य है, यद्यपि त्रिलोकीनाथ मेरी रक्षा कर रहें हैं। मेरी सफलता देखकर जो ब्रह्मानन्द में डूब जाया करते हैं, मेरे उन पूज्यजनों की गिनती घट रही है।

मैं सुनेउ कबितायुध नाना। पर उन्ह बिषय अलपु मम ग्याना॥
प्रगट मर्मि अस एक न संगा। जे कर मम कबित्व कहँ चंगा॥

मैंने काव्यरूपी आयुध के अनेक अङ्गों के विषय में सुना है, किन्तु उनके विषय में मेरा ज्ञान अल्प ही है। प्रत्यक्ष में मेरे साथ ऐसा एक भी काव्यमर्मज्ञ नहीं है, जो मेरे कवित्व को निखार सके।

समय न प्रतिभ जगावन पासा। कर कुभाग रिपु सतत बिनासा॥
मोर बिजय जिन्हँ हरष अगाहूँ। गए ताहिं जे मिल जय लाहूँ॥

मेरे पास अपनी प्रतिभाओं को जगानें का समय भी नहीं है, क्योंकि दुर्भाग्यरूपी शत्रु निरन्तर मेरा अहित कर रहा है। मेरी सफलता पर जिन्हें अपार हर्ष प्राप्त होता है, उनके न रहनें पर यदि मुझे सफलतारूपी लाभ मिलता भी है,

तो अस जय गहि मैं का करऊँ। एहि त ठीक मर्मिन्हँ सर मरऊँ॥

तो ऐसी विजय को प्राप्त करके, मैं क्या करूँगा? इससे तो अच्छा यह है कि मैं काव्यमर्मियों के आक्षेपों से ही मारा जाऊँ।

दोहा- **जद्यपि छन्द सुदृढ़ पनच जुत धनु जग कल्यान।**
गिरा प्रदत मम कंध जिन्हँ मोहि भरोष महान॥६॥

यद्यपि छंदरूपी सुदृढ़ प्रत्यञ्चा से युक्त, जगत्कल्याण की कामना का धनुष, जो स्वयं माता सरस्वती ने मुझे दे रखा है, मेरे कन्धों पर है और जिसका मुझे बड़ा भरोषा है।

चौ.- **भूषन सरजुत रस तूनीरा। कबि लहँ जिन्हँ तें प्रभाउ गभीरा॥**
उन्ह मैं कबहुँ सुना जनि देखा। जे कौतुक प्रगटाउँ बिसेषा॥

अलङ्काररूपी बाणों से युक्त रसरूपी तूणीर, जिससे कविरूपी योद्धा महान प्रभाव प्राप्त करता है; उसके विषय में मैंने न तो कभी सुना है और न ही उसे देखा है; जो मैं कोई विशेष चमत्कार उत्पन्न करूँ।

सबदगुनन्हि अम्मोघ त्रिसूला। अह अनिबर्य कबितरनु मूला॥
पुनि जे करि सक अरुचिहि खंडा। सबद सकति सो हाथ न दंडा॥

शब्दगुणों का अमोघ त्रिशूल, जो काव्ययुद्ध (काव्यसृजन) का अनिवार्य आधार है और शब्दशक्तियों का वह दण्ड, जो (काव्य की) अरुचि को नष्ट कर सकता है; वह भी मेरे पास नहीं है।

है एक प्रतिभा रथ मम पाही। अभ्यासहुँ न छत्र तिन्ह माहीं॥
नहिं सबदारथ सारथि कोऊँ। उचित आस रथ हाँकहि जोऊ॥

हाँ! प्रतिभारूपी रथ अवश्य मेरे पास है, किन्तु उसमें अभ्यासरूपी छत्र नहीं है। उस रथ में शब्द व अर्थरूपी सारथी भी नहीं है, जो प्रतिभारूपी मेरे इस रथ को सहीं दिशा में आगे की ओर बढ़ा सके।

धुनि औचित मत जनि उरत्राना। जे सह मर्मिन्हँ बिसिख महाना॥
माय कल्पनहिं मोहि न ग्याना। जेहिं रचि कौतुक करु मनमाना॥

मेरी बुद्धिरूपी छाती पर ध्वनि व औचित्यरूपी कवच भी नहीं है, जो काव्यसमीक्षकों के आलोचनारूपी बाणों को रोक सके। न ही मुझे कल्पनारूपी काव्यमाया का ज्ञान है, जिसे प्रकट करके, मैं मनमानें चमत्कार उत्पन्न करता फिरूँ।

तरक समेत राजनय नाना। दरसन समाज बेद पुराना॥
लोकाचारादिक बर बीरा। एकउ संग न समर गभीरा॥

तर्कों के साथ-साथ राज्य-सञ्चालन सम्बन्धी अनेक प्रकार की नीतियाँ, दर्शन, समाज, वेद, पुराण और लोक-व्यवहार आदि का ज्ञानरूपी एक भी उत्तम योद्धा इस महायुद्ध में मेरे साथ नहीं है।

सो एहि समउ चढ़े रनु माहीं। कवन भाँति मोहि जसुप्रद नाहीं॥
तदपि मानि बल हरि गुर केरा। कहउँ सहज यह गरुअ न मेरा॥

अतः इस समय काव्ययुद्ध में उतरना, मेरे लिये किसी भी प्रकार यशदायक नहीं है। किन्तु फिर भी श्रीहरि और गुरुदेव के बल पर आश्रित हुआ मैं, स्वभाव से ही कहता हूँ, कोई इसे मेरा अहङ्कार न समझे,

मोहिं तें जूझि कुभाग कठोरा। कहहिं स्वमुख जझारुपनु मोरा॥

"यह कठोर दुर्भाग्य मुझसे भिड़कर, मेरी सङ्घर्षशीलता का बखान स्वयं अपने मुख से करेगा।"

दोहा- **पुनि जे दोष पराभऊ मम कौसल कर होइ।**
तदपि राखिहहि सुरति मुअ कबित मर्मि जग जोइ॥७॥ (क)

और यदि (काव्य-सृजनरूपी) इस युद्ध में मेरे कवित्वरूपी पुरुषार्थ की पराजय भी होती है, तब भी इस संसार के समस्त काव्यमर्मज्ञ मुझे सदैव याद रखेंगे।

माघ कृष्न नवमी तिथी सुक्रवार दिनु सोधि।
सबंत बिस सत षटदसहि उतरउँ कबित पयोधि॥७॥ (ख)

(आज) माघ महीनें के कृष्णपक्ष की नवमी तिथि को शुक्रवार का दिन निश्चित करके, विक्रम सम्वत् दो हजार साठ को मैं काव्य के इस सागर में उतरता हूँ।

बधे दुरंत कुभाग अरि रचना यह अजबान।
एहि तें निज कबितायुध करऊँ इन्ह संधान॥७॥ (ग)

दुर्भाग्यरूपी दुर्वध्य शत्रु का नाश करने के लिये, मेरी यह रचना ब्रह्मास्त्र के समान है, इसलिये अपने काव्यरूपी धनुष पर, मैं इसका सन्धान कर रहा हूँ।

मोर बिबसता समुझि उर मर्मि न देइहि दोष।
सिसु अवगुन नित छमहि गुर मोरे इहइ भरोष॥७॥ (घ)

मेरी विवशता को अपने हृदय में समझकर, समीक्षकगण मुझे दोष नहीं देंगे, क्योंकि बच्चों के अवगुणों को बड़े सदैव ही क्षमा कर दिया करते हैं और मुझे इसी बात का भरोषा है।

मनुज जाति हित कलपित हरिहि कथहि कछु भाग।
सो परहित आदरत बुध देहि मोहि अनुराग॥७॥ (ङ)

इस हरिकथा के कुछ भाग, मनुष्य-जाति के कल्याण के लिये, कल्पना पर भी आधारित है, अतः मेरी इस परोपकार की भावना का आदर करते हुए, प्रबुद्धजन मुझे अपना स्नेह प्रदान करें।

तदपि होइ कोउँ आहत तो जनि मान गलानि।
हिय न चेत एहि समउँ मम छमहि अग्य मोहि जानि॥७॥ (च)

इतनें पर भी यदि कोई मुझसे आहत हो, तो वे मन में ग्लानि न मानें; क्योंकि इस समय मेरे चित्त में चेतना नहीं है; अतः वे मुझे अज्ञानी समझकर क्षमा कर दें।

चौ.- **कलि जे मनुज महा अघखाना। तरिहिं तेपि सुनि एहि पुराना॥**
नारद कहँ श्रोता गनि उत्तम। पूरब कहा सनत एहि म्हातम॥

कलियुग में जो मनुष्य महापापों की खान है, वे भी इस पुराण को सुनकर तर जाते हैं। सनत्कुमारजी ने नारदजी को उत्तम श्रोता जानकर, पूर्व में इस पुराण का महात्म्य कहा था।

तातें प्रथम कहउँ मैं तासू। म्हातम परम सुखद दुखनासू॥
तुंगभद्र सरि तट एक गाँऊ। आतमदेव बिप्र कर ठाऊँ॥

अतः मैं भी सर्वप्रथम इस पुराण का महात्म्य ही कहूँगा, जो दुःखनाशक और सुख देने वाला है। तुङ्गभद्रा नदी के तट पर एक गाँव था, जहाँ आत्मदेव नाम का एक ब्राह्मण रहता था।

तेजवंत तें जस बिद्वाना। तस धुन्धुलि तिन्ह तिय तमखाना॥
कलहु करइ तें नित नव नाना। किन्तु बिप्र रह धीरजु ठाना॥

वह जैसा तेजस्वी विद्वान था, वैसी ही उसकी पत्नि धुन्धुली अज्ञानता की खान थी। वह नित्य नये और अनेक प्रकार से कलह किया करती थी; किन्तु विप्र सदैव धैर्य धरे रहता था।

जरठ भयउँ परन्तु घर ताहीं। कुलदीपक केउ जनमेउँ नाहीं॥
अकसर केउ मुनि अनुग्रह कीन्हा। सुत हित तेहिं एक फलु दीन्हा॥

वह ब्राह्मण बूढ़ा हो चुका था, किन्तु उसके कोई पुत्र नहीं उत्पन्न हो सका। तब एक दिन किसी मुनि ने उस पर कृपा की और पुत्र प्राप्ति के लिये (आशीर्वादस्वरूप) एक फल दिया।

दोहा- **पाछ कहा जे नारि तव गहहिं गरभु रह ताहिं।**
तब तेहिं फिरि घर घरिनि सन मरमु दीन्ह समुझाहिं॥८॥

तत्पश्चात् उन्होंने कहा कि यदि इसे तुम्हारी पत्नि ग्रहण करे, तो उसे गर्भ रह जाएगा। तब ब्राह्मण घर लौट आया और उसने अपनी पत्नि को सारी बात समझा दी।

चौ.- किंतु धरेहुँ फल तेहिं दुराई। जननि होन गनि झंझटु नाई॥
भगिनि तासु तेहिं दिनु तहँ आई। लच्छन निपट तिन्हहिं परिछाई॥

किन्तु उसकी पत्नि ने संतानोत्पत्ति को किसी झंझट के समान जानकर, उस फल को छिपाकर रख दिया। उसी दिन उसकी बहन वहाँ (उसके घर) आई जो स्वभाव से उसी की प्रतिमूर्ति थी।

तेहिं सन कहि फलु चरित बहोरी। पतिहिं काह कउँ कह कर जोरी॥
ते कह गरभु मास एक मोरे। जन्मत सिसु निज देउँब तोरे॥

धुन्धुली ने उसे फल (और मातृत्व सम्बन्धी अपनी अनिच्छा) के विषय में बताकर, हाथ जोड़ते हुए कहा- अब मैं पति को क्या कहूँ? तब उसकी बहन ने कहा कि मुझे एक मास का गर्भ है, अतः शिशु के जन्मते-ही उसे मैं तुम्हें दे दूँगी।

धुन्धुलि सुनि अस अति हरषाई। राखि भगिनि कहँ घरउ दुराई॥
पुनि निज धेनुहिं फलु सो खबावा। गरभु एहि तें तेपि धरावा॥

यह सुनते ही धुन्धुली अत्यन्त प्रसन्न हुई और अपनी बहन को उसने घर में ही छिपाकर रख लिया। फिर उसने वह फल अपनी गाय को खिला दिया, जिसके प्रभाव से वह गाय भी गर्भवती हो गई।

भगिनिहिं सुत भा जब सवँ पाई। तिन्हहिं पतिहिं तेहिं दीन्ह देखाई॥
पुनि कह अश्रु ढारि सढ़साती। पिय उतरहिं नहिं पय मम छाती॥

समय आने पर जब बहन को पुत्र हुआ, तब धुन्धुली ने उसे ले जाकर अपने पति को दिखा दिया और अश्रुपात करती हुई साढ़ेसातीरूपिणी वह कहने लगी- हे प्रियतम! मुझे दुग्ध नहीं उतरता।

गरभवंति मैं अस सुनि पाई। अजहिं बहिन मम इहँ चलि आई॥

मैं गर्भवती हूँ, जब ये बात मेरी बहन को पता चली, तो वह आज ही यहाँ आ पहुँची है।

दोहा- कछु दिनु पूरब जाएहुँ सिसु तेहिं बिरहित प्रान।
सो अब तेइ करावई मोर सुतहि पयपान॥९॥

कुछ दिन पूर्व उसने एक मरे हुए बालक को जन्म दिया था, अतः अब वही मेरे पुत्र को दुग्धपान कराएगी।

चौ.- बिप्र इहइ हरि इच्छा जानी। तियहि सराहेहुँ कहि मृदुबानी॥
धुन्धुकारि धरि पुनि सुत नामा। हृदयँ भयउँ तिन्ह पूरनकामा॥

ब्राह्मण ने इसी को हरि इच्छा जानकर, अपनी पत्नि की कोमल वाणी से प्रशंसा की। फिर वह अपने पुत्र का नाम धुन्धुकारी रखकर अपने हृदय में मानों पूर्णकाम हो गया।

इत गाइहि जाएहुँ बछु ऐसा। श्रुति गौ सम जिन्हँ तनु नर जैसा॥
बिप्र देखि तिन्ह बपुष बनाऊ। राखेहुँ तासु गोकरन नाऊँ॥

इधर गाय ने एक ऐसे बालक को जन्म दिया, जिसके कान गाय के कान के समान और शेष शरीर मनुष्य के जैसा था। ब्राह्मण ने उसके शरीर की ऐसी बनावट देखकर उसका नाम गोकर्ण रख दिया।

जुबा भए जब दुहुँ संघाता। गौसुत भयउँ प्रबुध बिख्याता॥
धुन्धुकारि पर भा अघखाना। द्युतब्यसनि अरु मूढ़ महाना॥

जब वे दोनों साथ-साथ बड़े हुए तब गोकर्ण तो प्रसिद्ध विद्वान बन गया; परन्तु धुन्धुकारी महापापी, जुआँ खेलनेवाला और महान मूर्ख हुआ।

तेहिं दिनुरात करत बिभिचारा। गनिका हित घर द्रब्य उजारा॥
तब गौसुत कइ सम्मति पाई। द्विज भजि लाग प्रभुहि बन जाई॥

उसने दिन-रात व्यभिचार करते हुए, एक वैश्या के लिये अपनी सम्पत्ति व घर उजाड़ दिया। तब गोकर्ण की सम्मति पाकर वह (दुःखी) ब्राह्मण वन में जाकर हरिभजन करने लगा।

धुन्धुलि तिन्ह भय कूप बुड़ानी। गऊज गए तीरथ दुखमानी॥
धुन्धुकारि तब करि करि चोरी। भरन लाग नित पुरबधु झोरी॥

धुन्धुली अपने उस कुपुत्र के भय से कुएँ में डूब मरी और गोकर्ण दुःखी होकर तीर्थ यात्रा पर चले गये। धुन्धुकारी तब चोरी कर-करके नित्य ही वैश्या की झोली भरने लगा।

दोहा– द्रब्य चोरि अकसर अमित बिभिचारिनि घर गेउँ।
पुनि सोएहुँ निसि तहहिं तब स्वजन तासु डरपेउँ॥१०॥

एक बार वह बहुत-सा द्रव्य चुराकर वैश्या के घर गया और रात को वहीं पर सो गया। यह देखकर वैश्या के साथी (उसकी इस संकट मोल लेनेवाली प्रवृत्ति का विचार करके) अत्यधिक डर गये।

चौ.– जे यह चोरत कतहुँ धरावहिं। हमहिं कुकृत कर हेत बतावहिं॥
तब एहि सँग जैइहिं हमु मारे। निसिहिं उठे एहिंभाँति बिचारे॥

यदि चोरी करते हुए यह कहीं पर पकड़ा गया, तो अपने इस अपराध का कारण हमें ही बतायेगा। उस दशा में इसके साथ हम भी मारे जाएंगे, ऐसा सोचकर वे रात ही में उठे;

पुनि सोवतहिं फंद गर डारा। मारि बहोरि तहहिं तेहिं गारा॥
सत्य बात प्रबुधन्हँ कइ आही। गनिका होति कवन कइ नाहीं॥

फिर धुन्धुकारी के सोते हुए ही, उसके गले में रस्सी का फंदा डालकर, उन्होंने उसे मार दिया और वहीं गाड़ दिया। प्रबुद्धजनों ने यह तो सत्य ही कहा है कि वैश्या किसी की नहीं होती।

मरनोत्तर बिमूढ़ धुँधुकारी। भयउँ प्रेत पीरा लह भारी॥
तहँ तेहिं हिम आतप उदरागी। प्यास आदि अति तावन लागी॥

मरणोपरान्त महामूर्ख धुन्धुकारी प्रेत होकर अत्यधिक दुःख भोगने लगा। उस प्रेतशरीर में उसे सर्दी, गर्मी, भूख और प्यास आदि भौतिक व्याधियाँ सताने लगी।

तब अस पाइ दुसह दुरभागा। होइ दीन सो भटकन लागा॥

असमय बंधु मरनु सुनि पाए। इत गोकरन सोक अति छाए॥

तब इस महादु:सह्य दुर्भाग्य की मार से आहत हुआ, वह दीन होकर भटकने लगा। इधर जब गोकर्ण ने अपने भाई का असमय मरण सुना, तो उन्हें अत्यधिक शोक हुआ।

प्रति तीरथ तिन्ह सदगति लागी। कीन्ह सराध भ्रातरसु पागी॥
बहुरि फिरे घर निसि एक बारा। प्रेत सो प्रगटि तेहिं सन ठारा॥

भ्रातृप्रेम के कारण गोकर्ण ने धुन्धुकारी की सद्गति के लिये, प्रत्येक तीर्थ में श्राद्ध किये। फिर वे घर को लौट आये; तब एक बार रात्रि में प्रेतरूप धुन्धुकारी उनके समक्ष प्रकट हुआ।

दुखि कुबेषुजुत तेहिं गोकरना। देखि न समुझे कह मृदु बचना॥
बंधु कौन तुअँ प्रेत पिसाचा। केइ अघ जरहि अधम तनु आँचा॥

उसे अत्यन्त दु:खी और बुरा वेष धरे देखकर गोकर्ण पहचान नहीं पाये और कोमल वाणी से बोले- हे भाई! तुम प्रेत, पिशाच आदि में कौन हो और किस पाप के कारण इस अधम शरीररूपी अग्नि में जल रहे हो?

सुनि अस प्रेत रुदन करि लागा। पुनि कह मैं तव बंधु अभागा॥

यह सुनकर वह प्रेत रोने लगा और बोला कि- मैं तुम्हारा अभागा भाई धुन्धुकारी हूँ।

दोहा- **चकित धेनुसुत सोच तब करिबै इन्हँ उद्धार।**
सारेउँ मैं प्रति तीरथ तब कस ए मझधार॥११॥

यह सुनकर गोकर्ण आश्चर्यचकित होकर सोचने लगे कि मैंने तो इसके उद्धार के लिये प्रत्येक तीर्थ में श्राद्ध किये हैं, फिर यह (इस प्रेतशरीररूपी) मझधार में कैसे रह गया?

चौ.- भ्रातहिं पुनि अति धीर बँधाई। पूछा गउज बुधन्हँ पहि जाई॥
तब तें कह करु रबि आराधन। तेइ जनावहि कवनेहुँ साधन॥

फिर भाई को बहुत प्रकार से धैर्य बँधाकर, गोकर्णजी ने विद्वज्जनों से जाकर पूछा। तब उन्होंने कहा कि आप सूर्य देव की अराधना कीजिये, वे ही कोई उपाय बतायेंगे।

करि तप बिषम साधि तब गाता। रबिहि प्रसन्न कीन्ह गोजाता॥
भानु प्रगटि कहि लाग बुझाई। तिन्ह सदगति कर एक उपाई॥

तब गोकर्णजी ने इन्द्रियों को साधकर अत्यन्त कठोर तपस्या करके, सूर्यदेव को प्रसन्न कर लिया। सूर्यदेव ने प्रकट होकर समझाते हुए कहा कि उसकी सद्गति का एक उपाय है;

जब हरि चरित परइ श्रव तासू। अवसि होइ तब तिन्ह अघनासू॥
तातें भगवत कथ सुखदाई। तेहिं केउ मुख देहुँ सुनाई॥

जब भगवान श्रीहरि के चरित्रों की कथा उसके कानों में पड़ेगी, तब अवश्य ही वह पापमुक्त हो जायेगा। इसलिये तुम किसी के मुख से उसे सुखदायिनी भागवत कथा का श्रवण करवा दो।

धेनुजात तब श्रोत हँकाई। हरिहि रुचिर कथ लाग सुनाई॥
तेहिं सवँ उन्हहिं सुप्रेरन पाई। धुन्धुकारि बैठा तहँ आई॥

तब श्रोताओं को आमन्त्रित करके, गोकर्णजी उन्हें भगवान श्रीहरि की सुन्दर कथा सुनाने लगे। उसी समय उनकी उत्तम प्रेरणा पाकर, धुन्धुकारी भी वहाँ आकर बैठ गया।

ते चित लाइ प्रफुल्लित गाता। सुनि लागा हरि गुन सुखदाता॥
छुधा पिआस आदि केउ तापा। कथ प्रभाउ तेहिं तनक न ब्यापा॥

पुलकित शरीर हुआ वह चित्त लगाकर भगवान के सुखदायक चरित्रों को सुनने लगा। उस समय कथा के प्रभाव से उसे भूख-प्यास आदि कोई पीड़ा तनिक भी अनुभव न हुई।

दोहा- एहिबिधि भयउँ समापन कथन बिगत दिनु सात।
उतरेउँ नभ तें जान तब श्रोतन्हँ उर अचरात॥१२॥

इस प्रकार जब सप्ताहभर पश्चात् कथा का समापन हुआ, तब श्रोताओं के हृदयों में आश्चर्य उत्पन्न करता हुआ एक विमान आकाश से वहाँ आ उतरा।

चौ.- अघ मिटेहुँ द्विजपुतहि गभीरा। तदुप लीन्ह तेहिं दिब्य सरीरा॥
हरिदूतन्हँ तब हाथ बढ़ाई। निज बिमान तेहिं लीन्ह चढ़ाई॥

(कथा के प्रताप से) उस ब्राह्मणपुत्र के सब पाप नष्ट हो गये और उसने दिव्य शरीर धारण कर लिया। तब भगवान श्रीहरि के पार्षदों ने हाथ बढ़ाकर उसे अपने विमान पर चढ़ा लिया।

एहिबिधि हरि गोकरनहिं कुंठा। हरषि गए हरिचर बैकुंठा॥
अब कउँ कलिहि कठिन कुटिलाई। देत जे धरमातमन्हँ भ्रमाई॥

इस प्रकार गोकर्ण के चित्त की कुण्ठा का हरण करके, हरिपार्षद प्रसन्नतापूर्वक बैकुण्ठ को चले गये। अब मैं कलि की कठोर कुटिलता को कहता हूँ, जो धर्मात्माओं को भी भ्रमित कर देती है।

एक बार परिछित नरराजा। दिसिजय हित करि सुभट समाजा॥
गै कुरुखेत तहाँ उन्ह देखा। कलि महि धरमहिं ताड़ कुबेषा॥

एक बार दिग्विजय के निमित्त उत्तम सैनिकों सहित हस्तिनापुर नरेश परीक्षित् कुरुक्षेत्र की ओर निकले और वहाँ उन्होंने देखा कि भयानक वेष बनाये कलियुग धर्म और पृथ्वी को दुःख दे रहा है।

तब परिछित कर खड़ग उठाए। अति रिस कलि कहँ मारन धाए॥
लखि कलि हहरि राउ पग लागा। पुनि निवास निज हित लग माँगा॥

तब महाराज परीक्षित् अत्यन्त क्रोधित हुए व खड्ग लेकर कलि को मारने के लिये दौड़े। यह देखकर कलि घबराता हुआ राजा के चरणों में गिर पड़ा और अपने रहनें के लिये उनसे निवास माँगने लगा।

तब परिछित कह ताहिं भयाई। रे खल मम सुराज बिसराई॥
द्युत मदिरा परतिय प्रति नेहा। हिंस पुरट जहँ करु तहँ गेहा॥

तब महाराज परीक्षित् ने उसे धमकाते हुए कहा रे दुष्ट! तू मेरे निर्मल राज्य को छोड़कर, वहाँ निवास कर जहाँ स्वर्ण हो, जुआँ खेला जाता हो, मदिरा व पराई स्त्री का सेवन और हिंसा की जाती हो।

लखि प्रतिकूल समउँ नरराई। गयऊ कलि निज जिवनु जुड़ाई॥
तदुप एक दिनु किए सिकारी। गै नृप मृगया हित बन भारी॥

समय प्रतिकूल देखकर कलि अपने प्राण बचाकर, वहाँ से चला गया। तदुपरान्त एक दिन शिकारियों को साथ लेकर, राजा परीक्षित् शिकार खेलने एक बड़े ही घने वन में गये।

तहँ उन्ह बनचर बिबिध सिकारे। तृषित भए जब आतप मारे॥
जल खोजत तब तें तहँ आए। रहे समीक जहँ ध्यान लगाए॥

वहाँ अनेक पशुओं का शिकार करने के उपरान्त, अधिक गर्मी के कारण जब उन्हें प्यास लगी, तब वे जल की खोज करते हुए वहाँ आये, जहाँ महर्षि शमीक ध्यान लगाकर बैठे हुए थे।

सबिनय नृप उन्ह तें जलु माँगा। पै मुनि आपन ध्यान न त्यागा॥

राजा ने बड़ी ही विनम्रता से उनसे जल माँगा, किन्तु उन मुनि ने अपना ध्यान नहीं छोड़ा।

दोहा- जानि सुअवसरु कठिन कलि बैठेउँ राउ सिखंड।
बहुरि बिबेक बिनासेउँ देन हेतु उन्ह दंड॥१३॥

अवसर अच्छा है, यह जानकर कलि राजा के मुकुट में आकर बैठ गया। फिर उसने उन्हें दण्ड देने के लिये अपने दुष्प्रभाव से उनके विवेक को नष्ट कर दिया।

चौ.- मुनि नृप अगवन तनक न जाना। पै तैं गनि एहि निज अपमाना॥
निकट नाग मृत एकौं पाई। मेलेहुँ मुनि गर तेहिं उठाई॥

ध्यानस्थता के कारण मुनि राजा का आना तनिक भी न जान सके, किन्तु कलि के दुष्प्रभाव में आये राजा ने इसे अपना अपमान समझा और फिर पास ही में मरा हुआ एक सर्प पाकर, उन्होंने उसे उठाकर, मुनि के गले में डाल दिया।

तदुप फिरे आपन पुर माहीं। गई खबरि यह रिषिसुत पाही॥
तमकि सकोप साप तेहिं दीन्हा। यह महान अघ जे कोउँ कीन्हा॥

तदनन्तर वे अपने नगर में लौट आए। जब यह समाचार उन मुनि के पुत्र ने सुना, तो क्रोध से तिलमिलाकर उस मुनिपुत्र ने श्राप दिया कि जिस किसी ने भी यह महान पाप किया है,

बिगत सात दिनु तच्छक ताहीं। दसिहहिं जिवनु रहे तिन्ह नाहीं॥
भा प्रबोध आपन अपराधा। भूपति दुख करि लाग अगाधा॥

आज से सात दिन के उपरान्त उसे तक्षक सर्प डँस ले और उसकी मृत्यु हो जाय। जब राजा को अपने इस अपराध का बोध हुआ, तो वे अत्यंत दुःख मनाने लगे।

तब उद्धार हेतु नृप केरे। गवने सुकद्यौ नारद प्रेरे॥

तब उन राजा के उद्धार के लिये नारदजी की प्रेरणा पाकर शुकदेवजी उनके पास गये।

परिछित मुकुति जुगुति उर लाई। मुनि समाज सुरसरि तट आई॥
करि रहेउ इत बिबिध बिचारा। तबहि अए तहँ ब्यासकुमारा॥

इधर गङ्गातट पर बैठा मुनियों का समुदाय महाराज परीक्षित् की मुक्ति के लिये अनेक प्रकार से विचार कर रहा था, उसी समय वहाँ पर महर्षि व्यासजी के पुत्र श्रीशुकदेवजी पधारे।

तासु बदनु दुति केर प्रभाऊ। निरखि ब्रह्ममुद बूड़ेउ राऊ॥
बृद्ध बृद्ध रिषि मुनिन्ह समाजा। रहे तरुन अति सुक मुनिराजा॥

उनके मुख के तेज के प्रभाव को देखकर महाराज परीक्षित् ब्रह्मानन्द में डूब गये। उस समाज में वृद्ध-वृद्ध ऋषि मुनियों के मध्य श्रीशुकदेवजी अत्यन्त ही तरुण जान पड़ रहे थे।

दोहा- बय उन्ह संबत पंचदस रुच अस मुनिन्हँ समाज।
अमित बलाहक मध्य जस सोहत सिसु ग्रहराज॥१४॥

उनकी आयु मात्र पन्द्रह वर्ष थी, जिसके कारण वे उस मुनि समाज में ऐसे शोभा दे रहे थे; जैसे सघन श्याम मेघों के मध्य बालसूर्य सुशोभित हो।

चौ.- सहित समाज भूप हरषाई। कीन्हि दंडवत मुनि पद जाई॥
कह परिछित मुनि दरसनु पाई। मन मानसहि मिटी घनि काई॥

राजा ने सब मुनियों के साथ निकट जाकर, शुकदेवजी के चरणों में दण्डवत प्रणाम किया और कहा- हे मुनिराज! आपके दर्शन पाकर मेरे मनरूपी सरोवर से निराशा की घनी काई मिट गई।

उमगेउँ बिमल ग्यान कर नीरा। अहोभाग यह मोर गभीरा॥
बहुरि पदाम्बुज मुनिहिं पखारी। पूजि दीन्ह आसन बैठारी॥

मनरूपी सरोवर में निर्मल ज्ञान का जल उमड़ पड़ा है, यह मेरा महान सौभाग्य है। फिर शुकदेवजी के चरण पखारकर उनकी पूजा करके, महाराज परीक्षित् ने उन्हें आसन पर बैठाया।

अकथ मोद भरि उर नरराऊ। पूछत भै लखि मुनिहिं पसाऊ॥
कहिअ मोहि मुनि सोइ उपाऊ। जेहिं करि तनुगत हरि पद पाऊँ॥

मुनि की यह कृपा देखकर, अपने हृदय में अकथनीय आनन्द से भरे महाराज परीक्षित् पूछने लगे- हे मुनिवर! मुझे वह उपाय बतलाईये, जिसे करके, शरीर छोड़ने के उपरान्त मैं भगवान श्रीहरि के चरणों को प्राप्त करूँ।

राजन प्रस्न तोर सुखखाना। जासु मूल अस जग कल्याना॥
जस बैसाख वात अति घोरा। धरे रहत पाबस कइ कोरा॥

हे राजन! तुम्हारा प्रश्न सुख की खान है, जिसके मूल में जगत्कल्याण वैसे ही निहित है, जैसे वैशाख महीने की प्रचण्ड वायु, अपने आगमन में वर्षा-ऋतु का सन्देश लिये रहती है।

दोहा- यह कलि काल कठिन परम सधहिं न ग्यान बिराग।
तातें तजि सब मोह धरु हरिपद दृढ़ अनुराग॥१५॥

यह कलियुग अत्यन्त ही कठोर है, जिसमें ज्ञान और वैराग्य की साधना नहीं हो पाती। इसी कारण तुम समस्त अज्ञान त्यागकर, श्रीहरि के चरण-कमलों में दृढ़ प्रीति धारण करो।

चौ.- कलिहुँ काम रिस मोह गुमाना। बलि रह कर आतम अवसाना॥
ग्यान बिराग अबल चहुँ ओरा। बपु प्रति द्वार बिराजहि चोरा॥

कलियुग में काम, क्रोध, मोह, अहङ्कार आदि विकार बलवान होकर, जीव का आत्मिक पतन कर देते हैं। ज्ञान और वैराग्य चारों ओर निर्बल हो जाते हैं और शरीर के प्रत्येक द्वार पर विकाररूपी चोर रहते हैं।

जातें साधन बिरति ग्यान कर। सबबिधि कठिन सिंधु सम दुस्तर॥
पै जे ठाढ़ मीचु मुख माहीं। भगति सुधा सम परगट ताहीं॥

जिससे ज्ञान और वैराग्य का साधन सब प्रकार से कठिन और समुद्र के समान दुस्तर हो जाता है। किन्तु जो मृत्यु के मुख पर खड़ा हो, उसके लिये भक्ति प्रत्यक्ष अमृत के समान ही है।

त्रिपुर प्रभाउ प्रगट जेहिं केरा। हरहि जे मन कर तिमिर घनेरा॥
श्रीमद्भगवत हरिहि चरित कर। भवनिधि सेतु सुदृढ़ सोउ सुन्दर॥

तीनों-लोकों में जिसका प्रभाव प्रत्यक्ष है और जो मन के अज्ञानरूपी महान अन्धकार को हरनेवाली है; भवरूपी सागर में 'श्रीमद्भागवत' भगवान श्रीहरि के चरित्रों का वही सुदृढ़ सेतु है।

नृप तुअँ पाइ तेन्ह आधारा। अवसि जाब भवबारिधि पारा॥
गगन सत्य दिनकर ससि जैसे। राउ अकाट बचन मम तैसे॥

हे राजन! उसका आधार पाकर तुम भी अवश्य ही भवसागर से पार हो जाओगे। आकाश में जिस प्रकार सूर्य और चन्द्रमा सत्य है, ठीक उसी प्रकार मेरा यह वचन भी अकाट्य है।

दोहा- पुनि सुकदेव महामुनि सुमिरि ब्यास सनकादि।
लाग सो अमल कथा कहन अंतहीन जे अनादि॥१६॥

फिर शुकदेवजी व्यास और सनक आदि मुनियों का ध्यान करके, उस पवित्र कथा का वर्णन करने लगे, जो आदि और अंत से रहित है।

चौ.- श्रीमद्भगवत कथा सुहावन। भई स्रवत सुरसरि तट पावन॥
करि मुनि बेषु तहाँ तेहिंकाला। जुरे अमर खग नर अरु ब्याला॥

फिर श्रीमद्भागवत की सुन्दर कथा गङ्गा के पावन तट पर बहने लगी। उस समय कथा सुनने के लिये वहाँ मुनिवेष धरे, अनेक देवता मनुष्य, पक्षि और सर्पादि उपस्थित हुए।

मुनि अध्यात्म बिरति तप ग्याना। नीति भगति दरसन कइ नाना॥
कहत कथा सुचि नृप समुहाई। झष अवतार प्रथम लग गाई॥

शुकदेवजी ने राजा परीक्षित् के सन्मुख अध्यात्म, वैराग्य तप, ज्ञान, नीति, भक्ति, दर्शन आदि की अनेक कथाएँ कहते हुए सर्वप्रथम मत्स्य अवतार की कथा कहना प्रारम्भ की।

अकसर प्रलय निसा नृप पाई। सोवत भै बिरंचि अलसाई॥
लखेहुँ जम्भाहि लेत उन्ह जसही। निबुकि नेर भा हयमुख तसही॥

हे राजन! एक बार प्रलयरात्रि के अवसर पर ब्रह्माजी आलस्य के वशीभूत हो शयन करने लगे, उस समय हयग्रीव नामक दैत्य ने जैसे ही उन्हें जम्हाई लेते देखा, वैसे ही छिपता हुआ वह उनके निकट आया।

पुनि उन्ह मुख तें बेद चुराए। खलहि जाइ पाताल दुराए॥
तब हरि मीन बपुष धरि भारी। बेद उबारे दनुज सँहारी॥

और उनके मुख से वेद चुराकर उस दुष्ट ने पाताल में जाकर छिपा दिये। तब श्रीहरि ने बड़े भारी मत्स्य का शरीर धारण करके, उस दैत्य का वध कर वेदों का उद्धार किया।

एक त श्रुति हित हयमुख मारा। हेतु आन सुनु झष अवतारा॥
भरतखंड भूपति सिरताजा। भए सत्यब्रत एक नरराजा॥

वेदों के उद्धार के लिये एक ओर तो हयग्रीव को मारा, अब आप मत्स्यावतार का दूसरा कारण सुनिये। भरतखण्ड में राजाओं के शिरोमणी सत्यव्रत नामक एक राजा हुए।

उन्ह प्रभु दरस महापनु लीन्हा। संबत दस सहस्त्र तपु कीन्हा॥
हृदय पटल बस हरि कर नाऊँ। कीन्ह जेहिं तिन्ह अखय प्रभाऊ॥

उन्होंने श्रीहरि के दर्शनों का महाप्रण लिया और दस हजार वर्षों तक तपस्या की। उनके हृदयपटल पर भगवान का नाम अङ्कित था; जिसके कारण उनका प्रभाव अक्षय हो गया था।

तैं नित सरिस भए भिनुसारा। कीरतिमाल सरित कइ धारा॥
अरघु देत रहे रबि कहँ जबहीं। निज अंजुलि लखि लघु झष तबहीं॥

एक बार वे नित्य की भाँति सवेरे कीर्तिमाला नदी की धारा के मध्य खड़े होकर, सूर्यदेव को अर्घ्य दे रहे थे। उसी समय उन्होंने अपनी अञ्जुली में एक छोटी-सी मछली देखी।

सो झष निज भय नृपहिं सुनाई। भई सरन माँगत अकुलाई॥
तब सगरुअ ताकहँ नरराऊ। दीन्ह कनक बासन बरु ठाऊँ॥

उस मछली ने राजा को अपने भय का कारण (लघुता) बताया और व्याकुल हो उनसे शरण माँगने लगी। तब राजा ने अत्यन्त गर्वपूर्वक उसे सोने के एक बर्तन में उत्तम स्थान दिया।

पै कछु छिनहिं बाढ़ि अस मीना। भयउँ सुपासु राउ कर दीना॥
निरखि सत्यब्रत अचरज मानी। भाजन बड़ेउ ताहिं उलटानी॥

किन्तु कुछ ही क्षण में वह मछली इस प्रकार बढ़ी की उनका उत्तम प्रबन्ध भी दीन प्रतीत होनें लगा। यह देखकर सत्यव्रत ने चकित होकर, उसे और अधिक बड़े जलपात्र में रखवा दिया।

झष पुनि बढ़ि करि बासन छोटा। कीन्ह तेन्ह उर अचरज मोटा॥

किन्तु मत्स्य ने पुनः बढ़कर बर्तन को छोटा सिद्ध करके, उनके मन में बड़ा आश्चर्य उत्पन्न कर दिया।

दोहा- **एहिबिधि जस जस बासन बड़ आनहिं महिराउ।**

बढ़ि तस तस सो मीन निज तेहिं लखात प्रभाउ॥१७॥

इस प्रकार राजा जैसे-जैसे बड़ा पात्र मँगवाते हैं, वैसे-ही वैसे वह मत्स्य बढ़कर उन्हें अपना प्रभाव दिखलाता था।

चौ.- सश्रम साचरज सिंधु पठाई। तिन्हँ पूछत भै नृप सिरु नाई॥
की तुअँ देव दनुज मुनि केऊ। सत्य सत्य परिचौ निज देऊ॥

तब चकित हुए राजा ने बड़े ही श्रम से उसे समुद्र में पहुँचाकर सिर नवाते हुए पूछा- आप देव, दानव, मुनि आदि में से कौन हैं! कृपया! मुझे अपना ठीक-ठीक परिचय दीजिये।

चर अरु अचर अखिल जग माहीं। एहिबिधि बढ़हिं जीव केउ नाहीं॥
आपु अलौकिक जलचर कोऊ। मम अनुकूल बेगि अब होऊ॥

इस सम्पूर्ण चराचर जगत में ऐसा कोई प्राणी नहीं; जो आकार में इस प्रकार बढ़ सके। आप तो कोई अलौकिक जलचर है; अतः अब शीघ्र ही मुझ पर प्रसन्न होईये।

तैं महिमा आपन प्रगटाई। दीन्ह मोर सब गरुअ गराई॥
अब निज सत्य रूप दरसाई। देहु दृगन्ह मम धन्य बनाई॥

आप ने अपनी महिमा के साक्षात्कार से मेरे समस्त अहङ्कार को नष्ट कर दिया है; अब आप अपने वास्तविक स्वरूप का दर्शन करवाकर, मेरे नेत्रों को धन्य कर दीजिये।

तब हरि लीन्हँ महाबपु ऐसा। अधो भाग जिन्हँ जलचर जैसा॥
उरध भाग संजुत भुज चारी। अकथ तेजमय छबि जिन्हँ भारी॥

तब श्रीहरि ने ऐसा विशाल शरीर धारण किया, जिसका निचला भाग मत्स्य के समान और ऊपरी भाग चार भुजाओं से युक्त व मनुष्य का-सा था, जिसकी महान शोभा अकथनीय तेज से सम्पन्न थी।

दोहा- परिछित उन्ह कर प्रलय सँव जीवन्हँ बीज जुड़ाइ।
प्रलय बिगत प्रभु उन्हहिं कर पुनि नव सृष्टि सृजाइ॥१८॥

हे परीक्षित! प्रलयकाल में उनके हाथों भगवान श्रीहरि ने जीवों के बीज इकट्ठे करवाकर, फिर प्रलय के उपरान्त पुनः उन्हीं के हाथों नवीन सृष्टि का निर्माण भी करवाया।

चौ.- प्रलय राति सब सृष्टि निपाती। सए सेष तोषक खलघाती॥
निकसेहुँ मेद तबहिं उन्हँ काना। जातें भै द्वै दनुज महाना॥

प्रलय की रात्रि में सम्पूर्ण सृष्टि का विनाश करके, दुष्टनिकन्दन भगवान श्रीहरि शेष शैय्या पर योगनिद्रा में लीन हो गए। तभी उनके कानों से मेद निकला; जिससे दो महान दैत्य उत्पन्न हुए।

बपु तिन्ह कज्जल भूधर नाईं। चख कराल घन लिए ललाई॥
कामरूप दुहु अति बलवंता। मधु कैटभ बूझहि जिन्हँ संता॥

उनका शरीर काजल के पहाड़ के समान (विशाल व काला) था, नेत्र विकट व अत्यधिक लाल थे। वे इच्छानुसार वेश धरनेवाले और अत्यन्त बलि थे; जिन्हें संत मधु व कैटभ के नाम से जानते हैं।

छीरसिंधु मथि निज पदचापा। गर्जि प्रचंड लाग करि दापा॥
तेहिं सवँ हरि आयसु द्विजराई। सुर मुनि सृष्टि रहे उपजाई॥

क्षीरसागर को अपनी पदचाप से मथकर, वे दोनों दर्पपूर्वक प्रचण्ड शब्द करके, गरजने लगे। उस समय श्रीहरि की आज्ञा से ब्रह्माजी, देवताओं और मनुष्यों की रचना कर रहे थे।

असुर उभय भुजबल अभिमाना। सरिस धाइ भै उन्ह समुहाना॥
पुनि कह रे तु कौन जे बैसा। कमल दलन्हि निसंक धनि जैसा॥

अपने बाहुबल से गर्वित हुए वे दोनों दैत्य, क्रोधपूर्वक दौड़कर उनके सन्मुख आ पहुँचे और बोले- रे! तू कौन है? जो इन कमलदलों के मध्य निर्भय-सा किसी साहूकार के समान बैठा है।

दोहा- **को तुअँ एहिबिधि मोह बस हमहिं जानि इमि धूरि।**
धरे चारिमुख कमलदल बैठा मद अति फूरि॥१९॥

रे तू कौन है! जो इस प्रकार अज्ञान के वशीभूत हो, हमें धूल के समान समझकर, चार मुख धारण किये, कमलों के मध्य अत्यन्त गर्व से फूलकर बैठा हुआ है।

चौ.- **कमलजात करु रनु हम संगा। न त हम करिहिं तोर सिरु भंगा॥**
एहिबिधि पुनि पुनि अजहिं पचारी। उभय लाग करि गर्जन भारी॥

रे! कमलोत्पन्न पुरुष! तुम हमसे युद्ध करो; अन्यथा हम तुम्हारा मस्तक तोड़ देंगे। इस प्रकार बार-बार ब्रह्माजी को ललकारते हुए, वे दोनों दैत्य वहाँ अत्यधिक गर्जना करने लगे।

सृजन बिघन अज चिंतहिं पागे। नृप सरबग्य बिष्नु तब जागे॥
देखि भिरे दुहुँ उन्ह तें धाई। हठि सक्रुद्ध बहु गाल बजाई॥

हे राजन! सृजन में उपस्थित इस विघ्न से ब्रह्माजी चिन्ता में डूब गए; तब सर्वज्ञ भगवान जाग गए। उन्हें देखते ही वे क्रुद्ध दैत्य बहुत प्रकार से गाल बजाते हुए, दौड़कर जबर्दस्ती उनसे भिड़ गये।

सम्बत पंच सहस दुहुँ बीरा। हरि सन जुद्ध कीन्ह गम्भीरा॥
प्रभु मथेउँ उन्ह भुजबल सागर। किंतु न मुए उभय रनु नागर॥

उन दोनों दैत्य योद्धाओं ने श्रीहरि से पाँच हजार वर्ष तक, बड़ा ही भयङ्कर युद्ध किया। भगवान ने उनकी भुजाओं के बलरूपी सागर को मथ डाला; किन्तु फिर भी उन युद्धकुशल दैत्यों की मृत्यु न हुई।

सोइ गरुअ फिरि कह बलवाना। माँगिअ बिष्नु कवन बरदाना॥
प्रभु कौतुकि तब कह मोहि भाई। बध रहस्य निज देहुँ बताई॥

इसी बात के अहङ्कार में वे दोनों दैत्य पलटकर भगवान श्रीहरि से बोले- हे विष्णु! कोई वरदान माँगो। तब कौतुकप्रिय भगवान बोले- हे भाई! तुम मुझे अपनी मृत्यु का रहस्य बता दो।

दोहा- **प्रभु हमार बध कवनि बिधि अनत त सम्भव नाहिं।**
हैं केवलु अस उरू तव जहँ हम अवसि बधाहिं॥२०॥

तब वे दोनों बोले- हे प्रभु! हमारा वध अन्यत्र तो किसी भी प्रकार सम्भव नहीं; किन्तु तुम्हारी जङ्घाएँ एकमात्र ऐसा स्थान है, जहाँ हम दोनों निश्चय ही मारे जा सकते हैं।

चौ.- सुनि अस मायापति मुसुकाई। लाग बपुष आपन उमगाई॥
पद धरि दुहुन्हँ फेरि असुरारी। निज बिसाल जंघ दीन्ह पछारी॥

यह सुनकर मायापति श्रीहरि मुस्कुराए और अपना शरीर बढ़ाने लगे। फिर असुरों के शत्रु भगवान ने उन दोनों दैत्यों को पैरों से पकड़कर, घुमाते हुए अपनी विशाल जङ्घा पर पटक दिया।

बमत रुधिर तब सो रनुधीरा। मुए करत गर्जन गम्भीरा॥
लखि अज भय सबभाँति बिसारी। पुनि लागे जीवनु बिस्तारी॥

तब वे रणधीर दैत्य रक्त की उल्टी करते हुए, गम्भीर गर्जन करके मृत्यु को प्राप्त हो गये। यह देखकर ब्रह्माजी सब प्रकार से भय त्यागकर, पुनः सृष्टि की रचना में संलग्न हो गये।

बालक ध्रुअ कर चरित सुहावन। सुनि अब करिअ राउ हिय पावन॥
हरिजन महुँ जिन्हँ परथम लीका। भा जिन्हँ नाउँ द्रढ़तउँ प्रतीका॥

शुकदेवजी कहते हैं- हे परीक्षित! अब आप उन बालक ध्रुव का सुन्दर चरित्र सुनकर, हृदय को पवित्र कीजिये; हरिभक्तों में जिनकी प्रथम गणना है और जिनका नाम दृढ़ता का प्रतीक हो गया है।

सिसुपन जिन्हँ तपु किए महाना। प्रगटानेहुँ हरि कहँ समुहाना॥
स्वायंभुअ मनु तनु जब त्यागा। तब उन्ह कीन्ह पुरउ दुइ भागा॥

जिन्होंने बालपने में ही महान तपस्या करके, भगवान श्रीहरि को अपने सन्मुख प्रकट कर लिया था। स्वायम्भुव मनु ने जब शरीर त्यागा, उस समय उन्होंने अपने राज्य के दो भाग कर दिये।

प्रियब्रत रहा तासु सुत जेठा। तातें सो पितु आसनु बैठा॥
लघु सुत उतनपाद जिन्हँ नाऊँ। भए सो अपर भाग कर राऊ॥

प्रियव्रत उनका ज्येष्ठ पुत्र था, अतः पिता की गद्दी पर वही बैठा। उनके छोटे पुत्र जिनका नाम उत्तानपाद था, वे नगर के दूसरे भाग के राजा हुए।

उतनपाद कइ रहि दुइ रानी। जेठि सुनीति सुलच्छनखानी॥
सुरुचि रही उन्ह कइ तिय छोटी। बपुष ललाम मनहिं कछु खोटी॥

उत्तानपाद की दो रानियाँ थी, बड़ी का नाम सुनीति था, जो शुभलक्षणों की खान थी। उनकी छोटी पत्नि का नाम सुरुचि था, जो शरीर से तो सुन्दर, किन्तु मन की कुछ खोटी थी।

दोहा- दुहुन्हँ भए एक एक तनय नृप तब अति हरषान।
ध्रुअ सुनीतिसुत अरु उतम सुरुचि तनय जग जान॥२१॥

उन दोनों रानियों को एक-एक पुत्र उत्पन्न हुआ, तब राजा अत्यन्त प्रसन्न हुए। उनमें सुनीति के पुत्र का नाम ध्रुव और सुरुचि के पुत्र का नाम उत्तम था; जिन्हें संसार जानता है।

चौ.- सुत समेत सुरुचिहि प्रति राऊ। जेठन्हि बिमुख अधिक कर चाऊ॥

अकसर सुरुचिहिं करि निज साथा। सिंघासनु बैठे नरनाथा॥

बड़ी रानी और उसके पुत्र की अपेक्षा, राजा पुत्र सहित छोटी रानी सुरुचि के प्रति अधिक प्रेम रखते थे। एक बार सुरुचि को साथ लिये, राजा उत्तानपाद अपने सिंहासन पर बैठे हुए थे।

उत्तम रहा तेहिं सवँ गोदा। रहे दुलारत नृपति बिनोदा॥
तबहीं ध्रुअ खेलत तहँ आवा। बयस पंच मुख तेज सुहावा॥

उस समय सुरुचिपुत्र उत्तम राजा की गोद में ही था, जिसे वे विनोदपूर्वक दुलार रहे थे। तभी ध्रुव भी वहाँ खेलता हुआ आ पहुँचा, जिसकी पाँच वर्ष की अवस्था और मुख पर तेज था।

पितु उछंग निज बंधुहि देखी। ललकेहुँ तेपि उमंग बिसेषी॥
तियलोलुप परन्तु हिय हेरी। दूरहि तें तिन्ह दीन्ह निबेरी॥

जब ध्रुव ने अपने भाई को पिता की गोद में बैठे देखा, तो वह भी बालसुलभ विशेष उतावली से पिता की गोद में चढ़ने लगा, किन्तु स्त्रीलोलुप पिता ने मन में (सुरुचि के कोप का) विचारकर, उन्हें दूर से ही रोक दिया।

ध्रुअहि सुरुचि तब अस कहि लागी। जीहहिं बरिषि सौतिपनु आगी॥
रहतेहु तुअँ जे बालकु मोरा। होतेहु अस न निरादर तोरा॥

तब सुरुचि अपनी जिह्वा से सौतेलेपन की अग्नि बरसाती हुई, ध्रुव को इस प्रकार कहने लगी- यदि तू मेरा पुत्र होता, तो आज तेरा इस प्रकार अनादर नहीं होता।

दोहा- पूरब जनम न कीन्ह तैं हरि कर तप अरु ध्यान।
अब सुनीतिसुत होइ तुअँ भा हतभागि महान॥२२॥

पूर्व जन्म में तुमनें भगवान श्रीहरि का तप और ध्यान नहीं किया; इसी कारण अब तू इस जन्म में सुनीति का पुत्र होकर, अत्यन्त भाग्यहीन हुआ है।

चौ.- करतेहुँ तप होतेहुँ मम होई। अब जे चह तब लहतेहु सोई॥
अब तोहि हरिहि बैठावहि गोदा। इहाँ न तव हित कवन प्रमोदा॥

यदि तू तप करता, तो मेरा पुत्र होकर जन्म लेता और इस समय जो तू चाहता है, उस स्थिति में वही पा लेता। अब तुझे श्रीहरि ही अपनी गोद में बैठायेंगे; यहाँ तुम्हारे लिये कोई सुख नहीं है।

एहि घटनि तातहिं चुप देखी। भई पीर ध्रुव हृदयँ बिसेषी॥
बिषम बचन सर सुरुचिहिं केरे। करि गै तिन्ह हिय घाउ गहेरे॥

इस घटना पर अपने पिता को चुप देखकर, ध्रुव के हृदय में अत्यधिक पीड़ा हुई। सुरुचि के तीक्ष्ण वचनरूपी बाण, उसके हृदय में गहरे घाव कर गये।

ते तब आँखिन्ह कइ लघु सीवाँ। दुख कर सागर सविंटि असीवाँ॥
रुदन करत जननिहिं सन गएऊ। हिचुकि हिचुकि दुख आपन कएऊ॥

तब वह अपनी आँखों की छोटी-सी परिधि में, दुःख का अपार सागर समेटे, रोता हुआ अपनी माता सुनीति के पास गया और हिचकियाँ ले-लेकर उन्हें अपनी पीड़ा कह सुनाई।

उमगि मातु सुत कहँ उर लाई। गहि उछंग लगि धीर बँधाई॥
जनि दुख लाउ लला प्रिय मोरे। मैं बताउँ एक मारग तोरे॥

तब माता ने करुणा से भरकर, अपने पुत्र को हृदय से लगा लिया और गोदी में बैठाकर, धैर्य बँधानें लगी। (वे बोलीं-) मेरे प्यारे लल्ला! शोक न करो! मैं तुम्हें एक उपाय बतलाती हूँ।

लौकिक पितु इहँ कीन्ह अनादर। तातें जगतपितहि भजु सादर॥
ते तुहि निज उछंग बैठाई। अवसि दुलारिहिं पितु के नाई॥

इस संसार में तुम्हारे लौकिक पिता ने तुम्हारा अनादर किया है; अतः तुम सम्पूर्ण जगत के पिता श्रीहरि का सादर भजन करो; वे अवश्य ही तुम्हें अपनी गोद में बैठाकर पितृवत स्नेह करेंगे।

अस सुनि ध्रुअ सब ममता त्यागी। कानन चलेउँ हरिहिं तप लागी॥
मैं अजान बालक दुख सोषा। किमि करि सकौं प्रभुहि परितोषा॥

यह सुनकर ध्रुवजी सब ममता त्यागकर, श्रीहरि के तप के लिये, वन को चल पड़े। (चलते समय वे मन में सोचने लगे कि) दुःख से आहत मैं अज्ञानी बालक, प्रभु को कैसे प्रसन्न करूँगा?

इहइ बिचार उतार चढ़ाऊ। चले जात तपु अलपु न चाऊ॥

इन्हीं विचारों के द्वंद्व में उलझे हुए वे चले जा रहे थे, (फिर भी) उनके मन में तप के प्रति रुचि कम न थी।

दोहा- **तब गै सुररिषि उन्ह निकट चारि भाँति परिखेहु।**
किंतु ध्रुअ त ध्रुअ देखि मुनि हृदयँ परम हरषेहु॥२३॥

तब नारदजी उनके निकट गये और चारों प्रकार से (साम, दाम, दण्ड, भेद) उनकी परीक्षा ली; किन्तु ध्रुव तो ध्रुव (अपने निश्चय पर अडिग) था; यह देखकर मुनि का हृदय अत्यन्त प्रसन्न हो उठा।

चौ.- **उन्ह पुनि ध्रुअहि दीन्ह गुररूपा। द्वादस अच्छर मंत्र अनूपा॥**
तब तें सिरु नवाइ गुर पादा। चला बिसरि सब चिंत बिषादा॥

फिर उन्होंने गुरू बनकर, ध्रुव को द्वादशाक्षर मन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) की दीक्षा दी। तब ध्रुवजी गुरु के चरणों में सिर नवाँकर, समस्त चिन्ता व विषाद का त्याग करके चले।

मथुरा माँझ जमुन तट जाई। तप करि लग कुस आसन छाई॥
दिवस तीनि महुँ एकौ बारा। प्रथम मास रहे लेत अहारा॥

फिर मथुरा में यमुना के तट पर जाकर उन्होंने कुश का आसन बिछाया और तपस्या करने लगे। तप के पहले महीने में वे तीन दिनों में एक बार भोजन ग्रहण करते रहे।

दूसर मास सात दिनु माहीं। एक बार जँवि दीन्ह बिताहीं॥
तरु कोपल उन्हँ तीसर मासा। खाइसि करत कठिन उपवासा॥

दूसरा महीना उन्होंने सात दिन में एक बार भोजन करके बिता दिया और तीसरे महीने में कठिन उपवास करते हुए, वे वृक्षों की कोमल कोंपलें खाते रहे।

चौथेउँ मास तेपि बिसराना। जल गहि हरिउँ लाग करि ध्याना॥
परिहरि नीरहि पंचम मासा। वात अधार रहे गहि स्वासा॥

चौथे महीने में उन्होंने उसे भी त्याग दिया और केवल जल ग्रहण करके ही भगवान का ध्यान करने लगे। फिर पाँचवे महीने में जल भी त्याग दिया और केवल श्वास से ग्रहण की हुई वायु पर निर्वाह करते रहे।

विषम दसा अस उन्हँ तनु केरी। चय अपचय कइ क्रिया घनेरी॥
तासुहि रुधिर मास बल लाई। भई संचलत जब नरराई॥

ऐसी कठोर परिस्थिति में उनके शरीर की चय-अपचय आदि गम्भीर क्रियाएँ, (भोजन के स्थान पर) उनके रक्त और माँस के बल पर सञ्चालित होने लगी।

जातें बपुष देखिअत ऐसे। अस्थि समूह चामजुत जैसे॥
परिहरि वात रोकि निज स्वासा। ठाढ़े एक पद छटऊ मासा॥

जिससे उनका शरीर ऐसा दिखाई पड़नें लगा, जैसे चमड़ी में लिपटा हुआ अस्थियों का कोई समूह हो। छठे महीने में उन्होंने वायु भी त्याग दी और श्वास रोककर, एक पैर पर खड़े हो गए।

तप प्रचंड एहिंबिधि सब त्यागे। बाल भगत ध्रुअ जब करि लागे॥

इस प्रकार जब सब कुछ त्यागकर, बालभक्त ध्रुव प्रचण्ड तपस्या करने लगे;

दोहा- **तब अवरुद्ध भई पवन सजिव जगत अकुलान।**
अस अवलोकि बिरंचि सुर गए हरिहि समुहान॥२४॥

तब संसार में वायु अवरुद्ध हो गई और सजीव जगत व्याकुल हो उठा। यह देखकर ब्रह्माजी देवों को साथ करके, भगवान श्रीहरि के पास गए।

चौ.- **पूछेउँ प्रभुहि तदुप चतुरानन। प्रभु अवरुद्ध वात केहि कारन॥**
अज ध्रुअ नाउँ भगत एक मोरा। मम तप करि रहेउ अति घोरा॥

तब ब्रह्माजी ने भगवान से पूछा- हे हरि! क्या कारण है कि संसार में वायु अवरुद्ध हो गई है? तब उन्होंने कहा- हे ब्रह्माजी! ध्रुव नामक मेरा एक भक्त मेरे निमित्त अत्यन्त कठोर तप कर रहा है।

ताकर तप अस अहहिं प्रभाऊ। भइ अवरूद्ध जगत महुँ बाऊ॥
अबहि जाइ करि दरसन तासू। करउँ जिवन हित पवन सुपासू॥

उसके तप का यह प्रभाव है कि, संसारभर में वायु रुक गई है। मैं अभी जाकर उसके दर्शन करके, समस्त प्राणियों के लिये वायु का प्रबन्ध करता हूँ।

पुनि चढ़ि गरुड़ पीठि भगवंता। भगत दरस हित चले तुरंता॥
परिछित ध्रुअ रहेउ बड़भागी। जगपति अए दरस जिन्हँ लागी॥

फिर भगवान श्रीहरि गरुड़ की पीठ पर चढ़कर अपने भक्त के दर्शनों के लिये तुरन्त ही चल पड़े। हे परीक्षित! ध्रुव बड़े भाग्यवान थे, जिनका दर्शन करने के लिये स्वयं नारायण पधारे।

किंतु ध्रुअ न उन्ह अगवन जाना। तब तेहिं टेरि लाग भगवाना॥

उठु सुत मोर बिलोचन तारे। देखु तात तव तोहिं पुकारे॥

किन्तु ध्रुवजी को उनके आने का बोध न हो सका, तब भगवान स्वयं उन्हें पुकारने लगे- हे पुत्र! मेरे नेत्रों के तारक! देखो तुम्हारा पिता तुम्हें पुकार रहा है।

सुनि प्रिय बच उन्ह नयन उघारे। देखा जगपितु सनमुख ठारे॥
पुलकि हरषबस तें उमगाई। तब भुवि परेउ दंड कइ नाई॥

ऐसे प्रिय वचन सुनकर ध्रुवजी ने नेत्र खोले और देखा कि जगत्पिता श्रीहरि उनके सन्मुख खड़े हैं; तब पुलकित हुए वे प्रसन्नतावश आतुर होकर दण्ड के समान पृथ्वी पर गिर पड़े।

अस बिलोकि हरि अति अनुरागे। धए पयादेहि बाहन त्यागे॥
भुज पसारि आपन हरि ताहीं। उमगि सवेंटेहुँ उछंग माहीं॥

यह देखकर भगवान प्रेम में अत्यन्त मग्न हो गए और वाहन गरुड़ को पीछे छोड़ पैदल ही दौड़े। फिर उन श्रीहरि ने अपनी भुजाएँ फैलाकर, उतावली से ध्रुवजी को गोदी में समेंट लिया।

कवित्त–

आँचल सविंटि भगवान प्रिय भगतहि, उछंग बैठारि पुनि पुनि उर लावत।

हाय तप करि अस दारुन आपन मृदु, सरीर तनय केहि कारन गरावत॥
पुनि पुनि पूछै प्रभु तदपि कहे न कछु, दृग तें अमल पेम सतत झरावत।
एहिबिधि ध्रुअहि नयन गंग न्हाइ न्हाइ, भगवान धन्य भए आपन सिहावत॥

भगवान ने अपने प्रिय भक्त को आँचल में समेट लिया और गोद में बैठाकर बार-बार हृदय से लगाने लगे। (वे बोले) हे पुत्र! तू ऐसा कठोर तप करके, अपने कोमल शरीर को क्यों नष्ट करता है? भगवान उनसे बार-बार पूछ रहे हैं, तब भी ध्रुवजी कुछ नहीं कहते। केवल अपने नेत्रों से प्रेमाश्रुओं का निर्मल जल बहा रहे हैं। इस प्रकार अपने भक्त ध्रुव के नेत्रों से निकली हुई अश्रुगङ्गा में नहाकर स्वयं को धन्य मानते हुए भगवान अपनी प्रशंसा आप कर रहे हैं।

दोहा- **तदुप गए हरि धाम निज देत निज भगति तेहिं।**
इत नारद नरपति समुख सुखद कहि खबरि ऐहि॥२५॥

तत्पश्चात् ध्रुवजी को अपनी भक्ति का वर देकर, भगवान अपने धाम को चले गए। इधर यह सुखद समाचार नारदजी ने राजा उत्तानपाद के सन्मुख कह सुनाया।

मासपारायण पहला विश्राम

चौ.- **उतनपाद सुनि अति हरषाए। छमा माँगि सुत कहँ घर लाए॥**
तदुप दुराउ सबनि बिधि त्यागे। राउर सुत परिपालन लागे॥

यह (समाचार) सुनकर, उत्तानपाद अत्यन्त प्रसन्न हुए और पुत्र से क्षमा माँगकर, उसे आदरपूर्वक घर ले आए। तत्पश्चात् सब प्रकार से भेदभाव त्यागकर, वे राजन अपने पुत्र का भली प्रकार पालन करने लगे।

नरपति तरुन ध्रुअहिं जब चीन्हा। तिलक तासु तब पितु करि दीन्हा॥

हे परीक्षित! जब ध्रुव को तरुण हुआ देखा, तब उत्तानपाद ने उसका राजतिलक कर दिया।

पाइ राजपदु ध्रुअ करि नीती। पालत भयउँ प्रजहि अति प्रीती॥
अकसर उत्तम करन सिकारा। गयउ बिपिन करि कछु हयचारा॥

राजा होते ही ध्रुव नीति के अनुसार, बड़े प्रेम से प्रजा का पालन करने लगे। एक बार (उनका बड़ा भाई) राजकुमार उत्तम कुछ अश्वारोहियों के साथ, शिकार के लिये वन में गया।

धनद अनुचरन्ह तहँ तेहिं मारा। करि कछु अनुचित बात अधारा॥
तब ध्रुअ अनि बिकराल बटोरी। चढ़े जच्छपुर पर बरजोरी॥

वहाँ उसके किसी अपराध को कारण बनाकर, कुबेर के सेवकों ने उसे मार डाला। तब ध्रुवजी ने अत्यन्त विकट सेना जोड़कर, कुबेर की अलकापुरी पर बलपूर्वक चढ़ाई कर दी।

धनद ध्रुअहिं रनु भयउँ गभीरा। किंतु न लटे उभय रनधीरा॥
देखि बिनास देवरिषि जाई। उभय सुभट बिच संधि कराई॥

कुबेर और ध्रुवजी में भयङ्कर युद्ध हुआ किन्तु दोनों रणधीर योद्धाओं ने हार नहीं मानी। यह भयङ्कर मार-काट देखकर नारदजी ने मध्यस्थता करके, उन दोनों के मध्य सन्धि करा दी।

एहिबिधि बरिस सहस छत्तीसा। राज कीन्ह उन्ह होइ महीसा॥

इस प्रकार छत्तीस हजार वर्ष तक, ध्रुवजी ने पृथ्वीपति होकर एकछत्र राज्य किया।

दोहा- **पुनि तजि तनु मातन्हँ सहित गै हरिकृत ध्रुअलोक।**
भ्रमित पंथि लहँ अजहुँ नृप उन्ह द्रढ़तहिं आलोक॥२६॥

फिर शरीर त्यागकर माताओं सहित वे भगवान के द्वारा बसाए गए ध्रुवलोक को चले गए। हे परीक्षित! आज भी अज्ञानता से भ्रमित पथिक, ध्रुवजी की दृढ़ता से प्रेरणा प्राप्त किया करते हैं।

चौ.- **ध्रुअहिं बंस भै नृप बहुतेरे। गुननिधि अरु धर्मग्य घनेरे॥**
नृप बिख्यात अंग उन्ह माहीं। भए रहा जिन्हँ केउ सुत नाहीं॥

ध्रुवजी के वंश में अनेक गुणवान और धर्मात्मा राजा हुए। उनमें अङ्ग नाम के एक प्रसिद्ध राजा हुए, जिनके कोई पुत्र नहीं था।

तब उन्ह पुत्रकाम मख कीन्हा। पतिनिहिं जग्यभूत चरु दीन्हा॥
तिन्हँ प्रताप सुनिथहि सुत भयऊँ। द्विजगन नाउँ बेनु जिन्हँ ठयऊँ॥

तब उन्होंने पुत्रेष्ठि यज्ञ करके, यज्ञ से उत्पन्न हविष्यान्न अपनी स्त्री को दिया। जिसके प्रताप से उनकी स्त्री सुनीथा को पुत्र उत्पन्न हुआ; ब्राह्मणों ने जिसका नाम वेन रखा।

मीचुसुता रहि सुनिथा राऊ। तातें सुत भा अधम सुभाऊ॥
महाचाघ सो नित बन जाई। बधहि सरन्हँ तें मृग समुदाई॥

सुनीथा मृत्यु की पुत्री थी, इसी कारण उसका पुत्र वेन अधम स्वभाववाला हुआ। वह महाक्रूर राजकुमार नित्य वन में जाकर, अपने बाणों से पशु-समूहों को मार डालता था।

नगर बालकन्हँ करि सरि जाई। न्हावन मिस उन्ह देत बुड़ाई॥
अंग भाँति बहुँ खलहिं बुझावा। बोध परन्तु बिमूढ़ न पावा॥

वह स्नान करने के बहाने से नगर के बालकों को नदीतट पर ले जाकर, उन्हें जल में डूबो देता था। अङ्ग ने उस दुष्ट को बहुत प्रकार से समझाया; किन्तु उस महामूर्ख को बोध नहीं हुआ।

दोहा- **सुतहि कुकृत लखि अकसर जरत बिषम दुख आगि।**
रातउ उठि चुपचाप नृप बिपिन गए तप लागि॥२७॥

अपने पुत्र के ऐसे कुकर्मों को देखकर, दुःख से अत्यन्त दग्ध हो एक बार राजा अङ्ग रात्रि में चुपचाप उठे और तपस्या के लिये वन को चले गए।

चौ.- **भृगु बसिष्ठ नृप बिनु पुर पावा। बिबस बेनु कर तिलक करावा॥**
तासु कठिनपनु हृदय बिचारी। जहँ तहँ दुरि गै चोर जुआरी॥

भृगु, वशिष्ठ आदि मुनियों ने जब नगर को बिना राजा के देखा, तो विवश होकर उन्होंने वेन का तिलक करा दिया। उसकी कठोरता को मन में विचारकर, चोर-जुआरी जहाँ-तहाँ छुप गए।

बेनु पाइ पद उन्मत भयऊ। फिरत तेहिं सब दिसि अस कयऊ॥
सुर श्रुति कथित अहहिं जोइ जोई। महिपति हृदयँ बसइ सब सोई॥

राजपद पाकर वेन गर्वित हो उठा और नगर में सब ओर घूम-घूम कर इस प्रकार कहने लगा- वेदों के कहे अनुसार जो-जो भी देवता है, वे सभी राजा के हृदय में निवास करते हैं।

मैं नृप मोहिं जानि भगवाना। मम हित करु मख पूजन दाना॥
परिछित रहा अधम बलि चाघी। तातें कोउँ न आयसु नाघी॥

अतः मैं राजा हूँ, इसलिये मुझे ही भगवान मानकर मेरे लिये यज्ञ, पूजन और दान किया करो। हे राजन! अधम वेन क्रूर और बलवान था, जिससे किसी ने भी उसके कहे का उल्लङ्घन नहीं किया।

जब लखेहु अनुचित अधिकावा। भृगु आदिक तिन्ह बहुत बुझावा॥
पै खल फिरि उन्हँ डपटन लागा। अस लखि कोप मुनिन्हँ उर जागा॥

जब भृगु आदि ऋषियों ने देखा कि वेन का अनाचार बहुत बढ़ गया है, तब उन्होंने उसे बहुत समझाया; किन्तु वह उल्टा उन्हीं को धमकाने लगा, यह देखकर मुनियों के मन में क्रोध उत्पन्न हो गया।

दोहा- **तब उन्ह साप भयंकर देत दीन्ह तेहिं जारि।**
मरतहि तेहिं पुनि होत भै तप मख सुर सुखकारि॥२८॥

तब उन्होंने भयङ्कर श्राप देकर दुष्ट वेन को भस्म कर दिया। उसके मरते ही देवताओं के लिये सुख के मूल यज्ञ, तप आदि पुनः होने लगे।

चौ.- **जननि कीन्ह नहिं बेनुअ दाहा। राखा मृत तनु तेल कड़ाहा॥**
बेनु मरनु सुनि चोर जुआरे। नगरु माँझ जब पुनि पइसारे॥

वेन की माता सुनीथा ने वेन का दाहसंस्कार न करके, उसके मृत शरीर को तेल के एक कढ़ाह में रखवा दिया। इधर जब वेन का मरण सुनकर चोर-जुआरी पुनः नगर में आ घुसे;

मुनिन्हँ परसपर कीन्ह बिचारा। धरमु रह न बिनु महिप अधारा॥
सक जिआइ जद्यपि पुनि बैनहि। अघ परन्तु परिहरहि तें नही॥

तब मुनियों ने परस्पर विचार किया कि राजा के बिना धर्म स्थिर नहीं रह सकता। यद्यपि वेन को पुनर्जीवित किया जा सकता है, किन्तु वह अपना अधम स्वभाव नहीं छोड़ेगा।

भयउँ दुरातम ध्रुअ बर बंसा। अवसि होब तेहिं तनु सुभ अंसा॥
सो तनु तिन्ह मथि कोउ बालक। उपजावहि करिबै नर पालक॥

ध्रुव के उत्तम वंश में वह दुरात्मा जन्मा है, इस कारण उसके शरीर में शुभत्व का कुछ अंश तो अवश्य होगा। अतः हम उसके शरीर को मथकर कोई बालक उत्पन्न करेंगे, जिसे राजा बनाया जा सके।

अस बिचारि मुनिगन हरषाहीं। करि समूह गै सुनिथा पाहीं॥
हेतु बुझाइ बहुरि तनु माँगा। आनिसि जननि बूझि रुख भागा॥

इस प्रकार विचार करके, हर्षित हुए मुनिगण समूह बनाकर सुनीथा के सम्मुख गए। फिर सब बात समझाकर उन्होंने उससे वेन का मृत शरीर माँगा; सुनीथा भाग्य की इस करवट को समझकर पुत्र का मृत शरीर ले आई।

दोहा- भृगु बसिष्ठ आदिक सबिधि रइहुँ तपोबल बाइ।
मंत्र पढ़त पुनि जंघ तिन्ह मथन लाग दधि नाइ॥२९॥

तब भृगु, वशिष्ठ आदि मुनिगणों ने विधिपूर्वक एक मथानी में अपने तपोबल को स्थापित किया और फिर मन्त्र पढ़ते हुए वे मृत वेन की जङ्घा को दहीं के समान मथने लगे।

चौ.- मंथन सो उपजा नर ऐसा। तनु देखिअत किरातन्हि जैसा॥
तब निषादपति करि मुनि ताहीं। पठवा सादर कानन माहीं॥

उस मन्थन से एक ऐसा बालक उत्पन्न हुआ, जो शरीर से भीलों के समान दिखाई पड़ता था। तब मुनियों ने उसे निषादों का राजा बनाकर, आदरपूर्वक वन में भेज दिया।

तदुप लहन गुननिधि नरनाहूँ। पुनि मुनि मथि लग दाहिन बाहूँ॥
तब भुज तें तिय अरु नर एका। उए सुलच्छन धरे अनेका॥

तदुपरान्त एक गुणवान राजा प्राप्त करने के लिये पुनः मुनि वेन की दाहिनी भुजा को मथने लगे। तब उस भुजा से अनेक शुभ लक्षणों से सम्पन्न एक स्त्री व एक पुरुष उत्पन्न हुए।

मुनिगन पुरुष नाउँ पृथु राखा। नरपति सुजसु जासु बुध भाषा॥
तियहि अरिचि कहि पृथुहि बिआहीं। तेहिं नृप करि मुनि गै बन माहीं॥

हे परीक्षित! तब मुनियों ने उस पुरुष का नाम 'पृथु' रखा, विद्वानों ने जिनका सुयश गाया है। फिर स्त्री का नाम 'अरिचि' रखकर, पृथु से उसका विवाह करके, उसे राजा बनाकर मुनिगण वन को चले गए।

उभय रमा हरि कर अवतारा। त्रिपुर माँझ जिन्हँ राजु पसारा॥
प्रतिनिधि प्रजउँ केर एक बारा। एहिबिधि पृथु सन जाइ पुकारा॥

वे (अरिचि-पृथु) दोनों लक्ष्मी और नारायण के अवतार थे, जिन्होंने तीनों-लोकों में अपना राज्य स्थापित किया। एक बार कुछ वरिष्ठ प्रजाजनों ने पृथु के समक्ष जाकर इस प्रकार कहा-

दोहा- नाथ बेनु अघ कारन धरनि भई अनहीन।
अस कुसमउ हम प्रजाजन अन बिनु भै अति दीन॥३०॥

हे स्वामी! वेन के पाप के कारण पृथ्वी अन्नहीन हो गई है, ऐसे विपरीत समय में हम प्रजाजन, अन्न के बिना अत्यन्त व्याकुल हो रहे हैं।

चौ.- तरु भेषज फल कुसुम बटोरी। हृदयँ दुराए महि बरजोरी॥
जदपि मरेहुँ बेनु अघखाना। तदपि उग न खेतहुँ एक दाना॥

पृथ्वी ने वृक्षों से औषधियाँ, फल और पुष्प बटोरकर अपने हृदय में छिपा लिये है। यद्यपि पाप की खान वेन मारा जा चुका है, तथापि (बोने पर) खेतों में अन्न का एक दाना नहीं उगता।

छुधा प्रतारित प्रज समुदाई। आए सरन तोर महिराई॥

महि हठ सुनि उन्ह दीन बिचारी। पृथु भै कुपित धरनि पर भारी॥

हे राजन! भूख से व्याकुल प्रजाजन आपकी शरण में आए है। पृथ्वी का हठ सुनकर और प्रजाजनों को दुःखी जानकर, महाराज पृथु पृथ्वी पर अत्यन्त क्रोधित हुए।

तब उन्ह कर उठाइ कोदंडा। संधानेउँ एक बिसिख प्रचंडा॥
पुनि कह अबहि ऐकउ बाना। खंड खंड करु मेदिनि माना॥

तब उन्होंने अपने हाथों में धनुष लेकर, उस पर एक प्रचण्ड बाण चढ़ाया और बोले! मैं अभी एक ही बाण से पृथ्वी के अहङ्कार को खण्ड-खण्ड कर दूँगा।

निस्चय अटल तेन्ह अनुमानी। चर अरु अचर सृष्टि अकुलानी॥
इत बसुधा धरि धेनु सरीरा। प्रगटि नृपति सन भए अधीरा॥

उनके निश्चय को अटल जानकर, चर व अचर जीवों से युक्त सृष्टि अकुला उठी। इधर गाय का शरीर धारण किये भयभीत हुई पृथ्वी, महाराज पृथु के सन्मुख प्रकट हुई।

दोहा- **सबिनय अस्तुति कीन्हि भुवि पुनि कह उन्ह समुझाइ।**
मैं बैनउ अघ कारन श्री निज लीन्हि दुराइ॥३१॥

फिर विनम्रतापूर्वक महाराज पृथु की स्तुति करके, पृथ्वी उन्हें समझाकर इस प्रकार बोली- हे राजन! मैंने वेन के पापों के कारण अपनी समस्त सम्पदा छिपा ली थी।

चौ.- **अब परिहरि रिस धरि धनु भाथा। गौ इव दुहिअ मोहि नरनाथा॥**
गोए पूरब गुन मैं जोइ जोइ। पय सम प्रगटि आव सोइ सोई॥

हे नरेश! अब क्रोध का त्याग करके, धनुष तरकश रखकर, आप मुझे गौ के समान दुहिये; इससे पूर्वकाल में मैंने जो-जो निधियाँ छिपा ली थी; वे सब दूध के समान प्रकट हो जाऐंगी।

पृथु प्रसन्न भै सुनि बच नीके। टरे सकल भय गौ जगती के॥
स्वयँभुव मनु कहँ बत्स बनाई। पृथु तब गौ कहँ लाग पेन्हाई॥

पृथ्वी के ऐसे प्रिय वचन सुनकर, महाराज पृथु प्रसन्न हो गए; जिससे गौरूपी पृथ्वी का समस्त भय दूर हो गया। स्वायम्भु मनु को बछड़ा बनाकर, महाराज पृथु गौरूपी पृथ्वी को पेन्हाने लगे।

बहुरि किए भाजन निज हाथा। अन अरु धान दुहे नरनाथा॥
तदुप नाग मुनि सुर गिरि आई। निज निज रुचिन्हँ दुही हरषाई॥

फिर अपने हाथों को ही पात्र बनाकर, उन राजा ने समस्त अन्न और धान्य दुह लिये। तदुपरान्त देवताओं, नागों, मुनियों, पर्वतों और मनुष्यों ने आकर, अपनी-अपनी अभीष्ट वस्तुएँ प्रसन्नतापूर्वक दुह ली।

उन्ह प्रताप पय अरु घृत केरी। नृप घर घर फिरि बाढ़ घनेरी॥
सस्य बसन भुवि बहुबिधि छाई। सरित अमल जल लाग लुटाई॥

हे परीक्षित! महाराज पृथु के प्रताप से घर-घर पुनः दूध और घी की बाढ़ हो आई। पृथ्वी पर नवीन कृषिरूपी वस्त्र छा गया और नदियाँ निर्मल जल बहाने लगी।

जिवगत तरु फल कुसुमन्हँ छाए। भेषज बिबिध जाति प्रगटाए॥
रतन रुप्य अरु हाटक केरी। प्रगटि गिरिन्हँ महुँ खानि घनेरी॥

सूखे वृक्ष पुनः अनेक प्रकार की औषधियों, पुष्पों एवं फलों से लद गये। पर्वतों में सोने-चाँदी और रत्नों की बहुत-सी खाने प्रकट हो गई।

कीन्ह प्रजउँ सुख पृथु एहिंभाँती। भै महिपाल रहित आराती॥
नृप उन्ह अस्वमेध सत कीन्हें। अज सुरादि बरु उन्ह बहु दीन्हें॥

इस प्रकार प्रजा को सुखी करके, महाराज पृथु शत्रुओं से रहित एकछत्र सम्राट हुए। हे परीक्षित! उन्होंने सौ अश्वमेध यज्ञ किये व ब्रह्मा आदि देवों ने उन्हें बहुत से उत्तम वर दिए।

दोहा- **जदपि सक्र उन्ह होम हय सछल हरेहुँ बहुबार।**
तदपि फिरानेहुँ तुरग उन्ह भुजबल प्रगटि अपार॥३२॥

यद्यपि इन्द्र ने अनेक बार कपटपूर्वक उनके यज्ञाश्व को चुराया था; फिर भी महाराज पृथु ने अपनी भुजाओं का अपार पराक्रम प्रकट करके, (प्रत्येक बार) अश्व को पुनः प्राप्त कर लिया था।

चौ.- **सुकृत भाँति एहि बहु उन्ह कीन्हें। तप हित गै सुत कहँ पद दीन्हें॥**
भए बंस उन्ह नरपति नाना। सुक परिछित सन जाहिं बखाना॥

इस प्रकार उन्होंने अनेक सत्कर्म किये और पुत्र को राज्य देकर तप के लिये वन को चले गए। आगे उनके वंश में अनेक राजा उत्पन्न हुए, शुकदेवजी ने राजा परीक्षित् से जिनका वर्णन किया।

पुनि बरनत प्रियब्रत कथ सुन्दर। कहा चरित अगनिध नाभी कर॥
रिषभ रूप पुनि जस भगवाना। भए नाभिसुत कथ सो बखाना॥

फिर महाराज प्रियव्रत की सुन्दर कथा कहते हुए, उन्होंने अग्निध्र और नाभी का चरित्र कहा। फिर ऋषभदेवजी के रूप में भगवान श्रीहरि जिस प्रकार राजा नाभी के घर में उत्पन्न हुए, वह चरित्र कहा।

रिषभ कथा पुनि बहुबिधि गाई। भरत चरित कहि लग मुनिराई॥
राजन जेठ सुतहि लखि लायक। रिषभ कीन्ह निज पाछे नायक॥

फिर ऋषभदेवजी की अनेक प्रकार की कथाएँ कहकर; वे महाराज भरत का चरित्र कहने लगे। हे परीक्षित! अपने ज्येष्ठ पुत्र को योग्य देखकर, ऋषभदेवजी ने उसे अपने पश्चात् राजा बनाया।

रहा नाउँ उन्ह भरत उदारा। धरमातम बर गुन आगारा॥
प्रजहि पालि सन्तान समाना। कीन्ह श्रुति कथित मख उन्ह नाना॥

उन उदारचित्त राजा का नाम भरत था; वे धर्मात्मा व सद्गुणों के धाम थे। प्रजा का अपनी सन्तान के समान पालन करते हुए; उन्होंने अनेक वेदोक्त यज्ञ किये।

दोहा- **एहिंबिच बिस्वरूपहिं सुता पंचजनी जिन्हँ नाउ।**

ब्याहि पाँच सुत पाएहु जिन्हँ उन्ह सरिस प्रभाउ॥३३॥

इसी बीच विश्वरूप की पुत्री, जिसका नाम पञ्चजनी था, से विवाह करके; उससे उन्होंने पाँच पुत्र पाए, जिनका प्रभाव उन (पिता) के ही समान था।

चौ.- बरिस दस सहस करि उन्ह राजा। कीन्हें बिपुल प्रजाहित काजा॥
पुनि जब उपजेहुँ हृदय बिरागा। सुतन्हँ तिलक करि उन्ह गृह त्यागा॥

उन्होंने दस हजार वर्ष तक राज्य करके, प्रजाहित के बहुत-से कार्य किये। जब उनके हृदय में वैराग्य उत्पन्न हुआ तब उन्होंने अपने पुत्रों को राज्य देकर घर का त्याग कर दिया।

बहुरि बसे पुलहाश्रम माहीं। भजि लग हरिहिं हृदय मल नाहीं॥
गंडकि तीर बैठि एक बारा। ध्यान करत रहे भरतु उदारा॥

वे पुलहाश्रम में जाकर रहने लगे और भगवान श्रीहरि का भजन करने लगे। उनका हृदय विकारों से मुक्त था। एक बार उदार महाराज भरत गण्डकी नदी के तट पर ध्यान कर रहे थे।

तहँ मृगि एक तेहिं सवँ आई। राय पिआसउँ अति अकुलाई॥
बहुरि लाग करि तें जलपाना। भरतु देखि तेहिं आनँदु माना॥

हे परीक्षित! उसी समय प्यास से अत्यन्त व्याकुल हुई एक हिरणी उस स्थान पर आई और जल पीने लगी; यह देखकर भरतजी को अत्यन्त आनन्द हुआ।

अबहि पिएहुँ तिहि अलपहि नीरा। मृगपति निकट गर्जेउँ गभीरा॥
गर्जन चंड बिदारक काना। जसहि हरिनि निज श्रवन जुड़ाना॥

अभी हिरणी ने थोड़ा ही जल पिया था कि, निकट ही एक सिंह गम्भीर ध्वनि से गर्जा। सिंह के उस भयङ्कर और कर्णविदारक गर्जन को जैसे ही हिरणी ने अपने कानों में गूँजता हुआ पाया;

तसहि सभय जलपान बिहाई। तरकि लागि दुहुँ कान चढ़ाई॥
कंपहि गात नयन कतराने। अब त प्रान पर बनि अस माने॥

वैसे ही जल पीना छोड़कर, वह कान उठाकर इधर-उधर अनुमान करने लगी। उसका शरीर काँप उठा और नेत्र भय से कातर हो गए। फिर "अब तो प्राणों पर आ बनी है", ऐसा समझकर

सरित धार सो मृगी छराँगी। प्रानन्ह हित प्रानन्ह रुचि त्यागी॥

वह हिरणी अपने प्राण बचाने के लिये, प्राणों ही का मोह त्यागकर, नदी की धारा में कूद पड़ी।

दोहा- गरभु रहा पूरन उदर तिन्ह सो सवँ नरनाह।
खसि परेउँ जे उछरतहि बाहिनि केर प्रबाह॥३४॥

हे राजन! उस समय हिरणी उदर में पूर्ण विकसित गर्भ था; जो उसके उछलते ही नदी की प्रबल धारा में गिर पड़ा।

चौ.- दलउँ बिलगि हरिनी भय मारी। मुई होइ गतगरभ दुखारी॥
बहत सावकउँ इत सरि धारा। देखि द्रवित भै भरत उदारा॥

झुण्ड से अलग होने के कारण भयभीत हो चुकी हिरणी अपने गर्भ के गिरने से दुःखी होकर, मृत्यु को प्राप्त हो गई। इधर मृगशावक को नदी की धारा में बहते हुए देखकर, उदारमना भरतजी द्रवित हो उठे।

तब उन्ह काढ़ेहु सरि तें ताहीं। आने हरषि निजाश्रम माहीं॥
पुनि कराइ तिन्ह गौपय पाना। पालत भै पितुमातु समाना॥

तब वे उस मृगशावक को नदी से निकालकर, प्रसन्नतापूर्वक अपने आश्रम पर ले आये। फिर उसे गाय का दूध पिलाकर, वे उसका माता-पिता के समान उसका पालन करने लगे।

छौनु भोरपनु सरित बुड़ाहीं। मोह बढ़न लग उन्ह उर माहीं॥
उदर सुपासु तासु निज हाथा। करि राखइ निसि दिनु निज साथा॥

मृगशावक की सुकुमारतारूपी नदी में डूबकर, उनके हृदय में अज्ञान बढ़ने लगा। उसके भोजन का प्रबन्ध अपने हाथों से करके, वे दिन-रात उसे अपने साथ ही लगाए रखते थे।

आश्रम अजिर तासु सिसु केली। सींचत भइ उन्ह ममतउँ बेली॥
जात जबहि बन समिहा लागी। करइ संग हिंसक भय पागी॥

आश्रम के आँगन में उसकी बालक्रीड़ाएँ, उनकी ममतारूपी लता को सींचने लगी। जब वे वन में समिधा के लिये जाते थे; तब हिंसक पशुओं के भय से वे उसे (आश्रम पर न छोड़कर) अपने साथ ही लगा लेते थे।

दोहा- सावक उन्ह अनुसरत पथ उरझहिं जब केउ झारि।
तब तिन्हँ काँध चढ़ावहि भरतु नेह बस भारि॥३५॥

उनका अनुशरण करता हुआ वह कृष्णसार शावक जब कभी किसी झाड़ी में उलझ जाता, तब स्नेहवश भरतजी उसे अपने कन्धों पर चढ़ा लेते।

चौ.- जागत सयन भोज असनाना। रहन लाग छौनहि उन्ह ध्याना॥
तातें गा जप नियम घनेरा। कीन्ह बिमोह हृदय उन्ह डेरा॥

इस प्रकार जागते-सोते, भोजन व नहाते समय, केवल वह मृगशावक ही उनके ध्यान में रहने लगा। इस कारण उनका सघन जप व नियम छूट गया और उनके मन में महान अज्ञान बस गया।

सावक सो अकसर नरराई। छुटि सहसा बन गयउ पराई॥
भरतु तेहिं जब अजिर न पावा। तब उन्ह हृदय परम अकुलावा॥

हे परीक्षित! एक बार वह मृगछौना अचानक छूटकर, वन में भाग गया। इधर जब भरतजी ने उसे (आश्रम के) आँगन में नहीं पाया, तब उनका हृदय अत्यन्त व्याकुल हो उठा।

खोजत छौनु मिलेउ न जबही। कठिन सोक अस कहेउ तबही॥
मैं यह भूल कीन्हि अति भारी। जे तिन्हँ दीन्ह अकेल बिसारी॥

फिर जब खोजने पर भी वह शावक उन्हें नहीं मिला; तब शोकाकुल होकर, उन्होंने इस प्रकार कहा- मैंने यह बड़ी भारी भूल कर दी; जो उसे (यहाँ आश्रम में) अकेला छोड़ दिया।

ते अति दारुन बिपिन भुलावा। तहाँ न तिहि केउ हिंसक खावा॥
हे हरि संकट मेटनिहारे। रच्छिअ नाथ दीन मम बारे॥

वह अत्यन्त भयानक वन में खो गया है; कहीं वहाँ उसे किसी हिंसक पशु ने तो नहीं खा लिया? हे सङ्कटहर्ता भगवान श्रीहरि! हे नाथ! मेरे उस दीन बालक की रक्षा कीजिये।

दोहा- मृगिनि धरोहर बत्स प्रिय कृष्नसारहि किसोर।
फिरेहुँ न अब लौ ढरकेहुँ तरनि छितिज कइ ओर॥३६॥

हे हिरणी की धरोहर! हे प्रिय वत्स! हे कृष्णमृग के किशोरवय वत्स! सूर्य क्षितिज की ओर बढ़ चला है और तुम अभी तक नहीं लौटे?

चौ.- की पुनि पेखि सकउँ मैं ताही। दूब चरत एहि आश्रम माहीं॥
की पुनि सो मृग राजकुमारा। फिरि निज करिहि सुकेलि प्रसारा॥

क्या मैं इस आश्रम में उसे घास चरते हुए फिर कभी देख पाऊँगा? क्या वह मृग राजकुमार लौटकर, मेरे सम्मुख पुनः कभी अपनी सुन्दर क्रीड़ाओं का प्रसार करेगा?

हा मम दृग तारक अनमोला। तव बिनु हिय मम दुख तें डोला॥

हा सुखेल रिस करि मैं बैठी। लेतेउँ कबहुँ समाधी झूठी॥

हा मेरे नेत्रों के अनमोल तारक! तुम्हारे बिना मेरा हृदय दुःख से डोल उठा है। हा! जब कभी खेल-ही खेल में मैं रूठकर बैठ जाता था और झूठी समाधी ले लेता था;

तब तें निज मृदु सींग चलाई। लेतौ तनु मम रोचि मनाई॥
पूजन समिहा दसनन्हि खींची। देतेउँ तें जब धरनि उलीची॥

तब वह अपने कोमल सींगों को चलाकर, मेरे अङ्गों को खुजलाते हुए मुझे मना लेता था। पूजन की समग्री को जब वह अपने दाँतों से खींचकर पृथ्वी पर गिरा देता था;

हा तब जानि मोर रिस भारी। तें निज चंचल प्रकृति बिसारी॥
मुनिकुमार सम संजम साधी। ठढ़तो सभय जथा अपराधी॥

हा! उस समय मुझे अत्यधिक रुष्ट हुआ जानकर, वह अपनी चञ्चल प्रकृति छोड़कर, मुनिकुमारों के समान संयमपूर्वक; किसी अपराधी की भाँति भयभीत हुआ-सा खड़ा हो जाता था।

दोहा- एहिंबिधि सोकातुर भरतु भुविहि पूछि पुनि लाग।
माधवि तैं कि दुरानेहुँ मम जीवन अनुराग॥३७॥

इस प्रकार शोक से आतुर हो, भरतजी फिर पृथ्वी से पूछने लगे- हे माधवी! मेरे जीवन के अनुरागस्वरूप उस छौने को क्या तुमने छिपा लिया?

चौ.- खोजत निसि ससि मेचकताई। निरखि कहा तिन्हँ हाथ उठाई॥
हे राकापति सावक मोरा। किउँ तुअ मम आश्रम तें चोरा॥

रात्रि के समय खोजते हुए चन्द्रमा में स्थित श्यामता को देखकर, भरतजी (को उस श्यामता में शावक का भ्रम हो गया और वे) दोनों हाथ उठाकर चंद्र को कहने लगे- हे राकेश! तुमने मेरे आश्रम से मेरा मृग शावक क्यों चुराया?

देहुँ मोहि तिहि पाछ फिराई। न त उद्यत जिव बिहग उड़ाई॥
तिन्हँ बिनु मोहि कत न बिश्रामा। प्रान मोर हित तें सुखधामा॥

तुम मुझे उसे वापस लौटा दो, अन्यथा मेरा प्राणरूपी पक्षि उड़ने ही वाला है। उसके बिना मुझे कहीं पर भी विश्राम नहीं है; मेरे प्राणों के लिये वह सुख का (एकमात्र) धाम है।

जोग भ्रष्ट एहिबिधि सब त्यागी। भरतु लाग जरि मृग बिरहागी॥
अति तें अति मृगबालव केरा। बिरहु तेन्हँ हिय भयउँ घनेरा॥

इस प्रकार योग से भ्रष्ट हुए भरतजी सब कुछ त्यागकर, उस मृगशावक की विरह अग्नि में जलने लगे। उनके हृदय में जब मृगशावक का अति से भी अधिक विरह गहरा गया;

तब चित धरि सोउ सावक ध्याना। भरतु परिहरे आपन प्राना॥
एहिं कारन तें मृग तनु पाई। पुनि जनमे महि पर नरराई॥

तब अपने चित्त में उसी शावक का ध्यान रखकर, उन भरतजी ने अपने प्राण त्याग दिए। हे परीक्षित! इसी कारण मृग का शरीर पाकर, उन्होंने पृथ्वी पर पुनः जन्म लिया।

दोहा- किंतु भजन गुन तेपि तनु बिगत सुरति रहि ताहिं।

तातें बिसरि बिमोह सब हरिहि भजहि मन माहिं॥३८॥

किन्तु भजन के प्रताप से उस शरीर में भी उन्हें बीते जन्म की स्मृति बनी हुई थी; इसी कारण समस्त अज्ञान का त्याग करके, वे मन-ही मन भगवान का भजन किया करते थे।

चौ.- तदुप तेपि तनु परिहरि तेहीं। पुनि भुवि जनमि पाइ द्विज देही॥
तहँपि रहा उन्ह पाछिल ध्याना। निसिदिनु करइ हरिहि गुनगाना॥

तत्पश्चात् उन्होंने वह शरीर भी त्यागकर, पुनः पृथ्वी पर जन्म लेकर, ब्राह्मण का शरीर पाया। वहाँ भी उन्हें पिछले जन्म का ध्यान था और वे दिन-रात भगवान का भजन करते रहते थे।

स्वजन नाउ भरतहि अस सोधा। चित्त काम मद अरु गत क्रोधा॥

परिजनों ने उनका नाम (संयोगवश) भरत ही रक्खा; उनका चित्त काम, अहङ्कार और क्रोध से मुक्त था।

पिता तेहिं बहुभाँति पढ़ावा। किंतु भरतु हिय तनकु न लावा॥
भूलि न कबहुँ करइ असनाना। पहिरहि अति मलीन परिधाना॥

पिता ने बहुत प्रकार से पढ़ाया; किन्तु भरतजी ने उसे तनिक भी हृदय में धारण नहीं किया। वे भूलकर भी कभी स्नान नहीं करते थे और अत्यन्त मैले कपड़े पहने रहते थे।

सुख दुख सहित मान अपमानू। भै उन्ह हित नरराज समानू॥
असि गति लखि परिहासहुँ पागे। लोग जड़ भरतु उन्ह कहि लागे॥

हे परीक्षित! सुख-दुःख के साथ ही मान और अपमान भी उनके लिये एक समान ही थे। उनकी ऐसी दशा देखकर, विनोद से भरे हुए लोग उन्हें जड़भरत कहने लगे।

काचउ पाक मिलइ जब जोई। हरषि लेत गहि तें तब सोई॥
किंतु न भरतु हृदय बिलगाना। संतत करइ हृदय हरि ध्याना॥

कच्चा-पक्का, जब जो भी मिल जाता था, वे प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण कर लेते थे; किन्तु उन भरतजी ने इस बात पर कभी अपना मन मैला नहीं किया और वे निरन्तर श्रीहरि का ही ध्यान करते थे।

दोहा- पितहि मरन पर बंधुन्हँ हाथ देत एक बेंत।
किए हेतु रखवारि उन्ह पठएहुँ आपन खेत॥३९॥

पिता के मरण के उपरान्त भाईयों ने उनके हाथ में एक डण्डा देकर; उन्हें रखवाली करने के लिये अपने खेत पर भेज दिया।

चौ.- तहँपि भरतु ममता सब त्यागे। रहन लाग ब्रह्मानँदु पागे॥
अकसर खग मबेसि कछु आई। लगे सस्य चहुँ फेरहि खाई॥

भरतजी वहाँ पर भी समस्त ममता का त्याग किये; ब्रह्मानन्द में लीन रहने लगे। एक बार कुछ पशु-पक्षि आकर, चारों ओर से उनकी फसल को खाने लगे।

निरखि जड़भरतु अस कहि लागे। जगपति खेत खाहुँ भय त्यागे॥
एहिबिधि जग प्रति ममता त्यागी। भए भरतु सबभाँति बिरागी॥

यह देखकर जड़भरत कहने लगे कि, यह खेत जगतपति श्रीहरि का है; निर्भय होकर खाओ। इस प्रकार संसार के प्रति मोह का त्याग करके, भरतजी सब प्रकार से वैरागी हो गए।

अकसर एक दस्यु सरदारा। भद्रकालि सन पनु अस धारा॥
होइहि तनय मातु जे मारे। नरबलि देउँ जग्य करि तोरे॥

एक बार दस्युओं के एक सरदार ने भद्रकाली के सन्मुख यह प्रण किया कि, हे माता! यदि मेरे यहाँ पुत्र उत्पन्न हुआ, तो मैं यज्ञ करके, तुम्हें मनुष्य की बलि दूँगा।

नृप संजोग बस भा सुत ताहीं। गनि एहि मातु कृपा मन माहीं॥
सठ बलि खोजन स्वचर पठाए। जे निसि चरत भरत पहिं आए॥

हे राजन! संयोगवश उसके यहाँ पुत्र उत्पन्न हो गया; तो इस घटना को मन-ही मन माता की कृपा मानकर; उस मूर्ख ने अपने अनुचरों को बलि की खोज में भेजा; जो रात्रि में विचरते हुए भरतजी के पास आए।

बहुरि बाँधि उन्ह लै गै तहवाँ। पति बिमूढ़ उन्ह रहेउ जहवाँ॥
दस्युप बलिहि देखि हरषाना। स्वकर न्हवाइ सुपट पहिराना॥

फिर वे उन्हें बाँधकर वहाँ ले गए, जहाँ उनका महामूर्ख स्वामी था। दस्युओं का वह सरदार बलि (के रूप में भरतजी) को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और फिर उसने उन्हें अपने हाथों से नहलाकर सुन्दर वस्त्र पहनाए।

पुनि उत्तम उन्हँ भोज कराई। पुष्प मालिका कंठ धराई॥
तदुप ताहिं लै मंदिर गयऊ। सठ पुनि देबिहिं पूजत भयऊ॥

फिर उत्तम भोजन कराकर, उसने उनके कण्ठ में पुष्पों की माला पहना दी। तत्पश्चात् वह मूर्ख उन्हें लेकर, मंदिर में गया और वहाँ भद्रकाली की पूजा करने लगा।

दोहा- **करि कुलकृत आपन सकल कर कराल खँग लीन्ह।**
भरतु बूझि सब भेद पुनि अस बिचार मनु कीन्ह॥४०॥

फिर अपने कुल की समस्त परम्परा का निर्वाह करके, उसनें हाथ में कराल खड्ग उठा लिया; यह देखकर भरतजी सब बात समझ गए और मन-ही मन इस प्रकार विचार करने लगे-

चौ.- **मैं इन्ह बिंजन बिबिध मिठाई। कछुकहि घरि पूरब डटि खाई॥**
सिरु फेरे अब अनुचित होई। इहइ सोधि कर बाँधे दोई॥

मैंने कुछ ही समय पूर्व इनके दिये हुए अनेक प्रकार के व्यञ्जन और मिठाईयाँ डटकर खाई थी; अतः अब सिर पीछे करना अनुचित होगा; ऐसा निश्चय करके, उन्होंने दोनों हाथ बाँध लिये।

पुनि मूरति सन सिरु निज ढारे। ठाढ़े जीअनि पृहा बिसारे॥
देखि मानि अचरज अघधामा। बलि हित उन्ह पर खड़ग उगामा॥

फिर जीने की इच्छा त्यागकर, वे देवी की मूर्ति के सम्मुख शीश झुकाकर, खड़े हो गए। यह देखकर पाप की खान उस दस्यु को आश्चर्य हुआ; फिर उसने (उनकी) बलि देनें के लिये उन पर खड्ग उठाया।

होत निरखि अस अनुचित घोरा। भयउँ चंडि हिय कोप कठोरा॥
तब तें प्रगटि मुजस्सम फोरी। खप्पर हाथ गहे बरजोरी॥

ऐसे घोर अनौचित्य को होते देखकर, चण्डिका के हृदय में भयङ्कर क्रोध हुआ। तब वे देवी अपने हाथ में खप्पर लिये; बलपूर्वक मूर्ति को फोड़कर वहाँ प्रकट हो गई।

भृकुटि बिकट बरिषत अंगारे। चख उन्ह सघन भए अरुनारे॥
लपलपाति उन्ह जीहँ अपारा। मुख बिकरालु न जाइ निहारा॥

उनकी विकट भृकुटी क्रोधरूपी अङ्गारे बरसा रही थी; जिससे उनके नेत्र अत्यधिक लाल हो गये थे। उनकी विशाल जीभ लपलपा रही थी और उनका मुख ऐसा विकराल था कि, जिसे देखा भी नहीं जा सकता था।

दोहा- **झपटि हपकि उन्ह खड़ग पुनि कीन्ह भयद अटहास।**
मरमु न बूझे दस्युगन कम्पित थित उन्ह पास॥४१॥

उन्होंने भयानक अट्टहास करते हुए दस्यु सरदार के हाथ से खड्ग छीन लिया। दस्युगण इस बात का कुछ भी मर्म न जान सके और काँपते हुए उनके निकट खड़े रह गये।

चौ.- **एतनहुँ चंडि दस्युगन सीसा। काटि धरनि पारे अवनीसा॥**
पुनि उन्ह रुधिरासव करि पाना। नर्ति बिषम करि लागिसि गाना॥

हे पृथ्वीपति परीक्षित्! इतने में ही चण्डिका ने दस्युगणों के मस्तक काटकर, पृथ्वी पर गिरा दिये। फिर वे देवी उनकी रक्तरूपी मदिरा पीकर, भयङ्कर नृत्य करते हुए, गान करने लगी।

मख महुँ बलि अनुचित नरराई। करइ स्वाद हित खल अधमाई॥
किंतु होति दुरगति तिन्ह केरी। दस्युन्हँ सम दुखदाइ घनेरी॥

हे परीक्षित! यज्ञ में किसी की बलि चढ़ाना अनुचित है और दुर्जन मात्र अपनी जिह्वालोलुपता के कारण यह कुकृत्य करते हैं; किन्तु अंततः उनकी दस्युओं के समान घोर दुःखदायक दुर्गति होती है।

भरतु तदुप रहुगन तें भेंटी। उपदेसउँ तिन्ह अहमिति मेटी॥
रहुगन सो मृगसावक रहेऊ। भरतु जेन्ह हित अति दुख दहेऊ॥

तदुपरान्त भरतजी ने राजा रहुगण से भेंट करके, उन्हें उपदेश देकर, उनका अहङ्कार मिटाया। यह रहुगण वहीं मृग शावक था; जिसके लिये भरतजी ने अत्यन्त दुःख माना था।

अब मैं राउ सकल सुखधामा। कहउँ तोहि महिमा हरि नामा॥
कान्यकुबुज पुर बस द्विज एकू। नाउँ अजामिल रहित बिबेकू॥

हे राजन! अब मैं तुम्हें समस्त सुखों की धाम 'हरि नाम' की महिमा कहूँगा। कान्यकुब्ज नगर में अजामिल नाम का एक ब्राह्मण रहता था; जो विवेक से रहित था।

खेलइ द्युत करइ नित चोरी। हरइ देखि पर धन बरजोरी॥
निंदनीय अस बृत्ति अधारा। बिभव बिसाल तेहिं बिस्तारा॥

वह नित्य जुआँ खेलता और चोरियाँ करता था और दूसरों के पास सम्पत्ती देखकर, उसे वह उनसे बलपूर्वक छीन लेता था। ऐसी निन्दनीय वृत्ति के आधार पर उसने बहुत-सी सम्पदा जोड़ ली थी।

सठ बँधाइ मन्मथ कइ फाँसी। ब्याहि कुजाति केरि एक दासी॥

उस मूर्ख ने काम के वशीभूत होकर, एक निंदितकर्मा दासी को ब्याहा था;

दोहा- **जेहिं तें भए दस तनय तिन्ह समय पाइ नरनाह।**
जिन्हँ महुँ लघुतम तनय प्रति तिन्ह हिय प्रीति अगाह॥४२॥

जिससे समय आने पर उसे दस पुत्र प्राप्त हुए, जिनमें सबसे छोटे पुत्र के प्रति उसके मन में अपार प्रेम था।

चौ.- **तेहिं सँजोग बस्य तिन्हँ नाऊ। राखा नारायन अति चाऊ॥**
प्रेम बिबस पुनि तिहि दिनुराता। सुमिरत राखि लाग संघाता॥

उसने बड़े चाव से संयोगवश ही उसका नाम 'नारायण' रख दिया और प्रेम के वशीभूत हुआ वह उसका स्मरण करता हुआ, दिन-रात उसे अपने साथ ही रखने लगा।

एहिबिधि भयउँ अजामिल बूढ़ा। किन्तु न अघ परिहरेहुँ मूढ़ा॥
तब जमदूत लेन तिन्ह आए। आपन पति कइ आयसु पाए॥

इस प्रकार अजामिल बूढ़ा हो गया; किन्तु फिर भी उस मूर्ख ने अपनी पापवृत्ति नहीं छोड़ी; तब एक दिन अपने स्वामी की आज्ञा पाकर, यमदूत उसे लेने आए।

वदनु बिकट पुनि बपुष भयंकर। धरे हाथ ते पासउ मुद्गर॥
नरपति डारि तासु गर फाँसी। जसहिं खींचि लग जमपुरबासी॥

उनके मुख विकट व शरीर भयानक था और वे अपने हाथ में पाश और मुद्गर लिये हुए थे। हे राजन्! यमपुर के वे निवासी उसके गले में फंदा डालकर, जैसे ही (उसके प्राण) खींचने लगे,

तसहि अजामिल सभय चिकारी। नारायन अस लाग पुकारी॥
जद्यपि सठ निज सुतहि पुकारा। नाउँ महिम पे अकथ अपारा॥

वैसे ही अजामिल भय से चिल्लाता हुआ 'नारायण' इस प्रकार पुकारने लगा। यद्यपि उस मूर्ख ने अपने पुत्र को पुकारा था; किन्तु नाम की महिमा अकथनीय और अपार है।

नारायन जब अस सुनि पाए। हरि पारषद तुरत तहँ आए॥
रहे चार पुनि भुज उन्ह चारी। हरि समान सुषमाजुत भारी॥

भगवान के पार्षदों ने जैसे ही 'नारायण' यह नाम सुना; वे तुरन्त ही वहाँ आ गए। वे चार थे, जो सभी चार-चार भुजाओं से युक्त और श्रीहरि के ही समान महान सुन्दरता धारण किये थे।
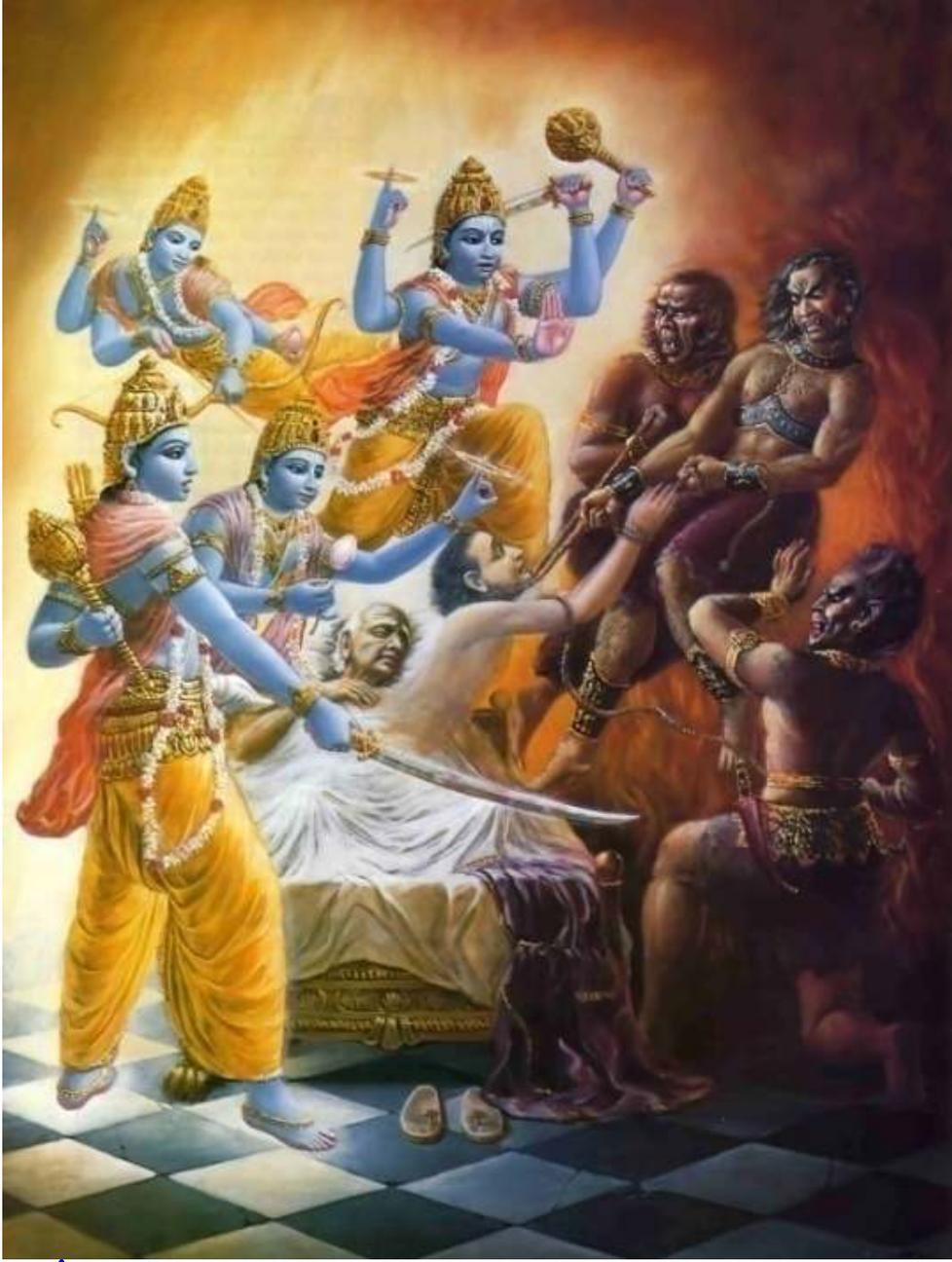
जमदूतन्हँ हठि बरजि बहोरी। उन्ह अजामिलहि ग्रंथी छोरी॥
बल बिलोकि अस उन्ह अचराई। पूछत भै जमदूत रिसाई॥

उन्होंने यमदूतों को हठपूर्वक रोककर, फिर अजामिल का बन्धन खोल दिया। उनका ऐसा महान बल देखकर चकित हुए यमदूत क्रोध करके, उनसे पूछने लगे।

तुम को जे एहिबिधि बरिआई। चह कालहि आयसु उलँघाई॥
ऐहिं सठहु महि लहि द्विज देही। तदपि बिबिध अघ कीन्हें ऐहीं॥

अरे! तुम कौन हो! जो इस प्रकार बलपूर्वक यम की आज्ञा का उल्लङ्घन करवाना चाहते हो? यद्यपि इस मूर्ख ने पृथ्वी पर ब्राह्मण का शरीर पाया है, तथापि इसनें अनेक प्रकार के पाप किये।

दोहा- एहि पितु मातु धरम सहित परिहरि पतिनि सुसील।
यह त निपट एहि लायक मारिअ एहि सिरु कील॥४३॥

इसनें अपने माता-पिता और धर्म के साथ ही अपनी उत्तम आचरणवाली पत्नि को भी त्याग दिया है। यह तो इसी योग्य है कि इसके सिर पर कील ठोक दी जाय।

चौ.- यह सठ जम आयसु अनुहारा। नरक माँझ अब जाइहि जारा॥
सुनि अस हरिचर तेन्ह बिहँसि कह। जगतपतिहि कर सेवक हम अह॥

यम की आज्ञानुसार अब यह मूर्ख नर्क की अग्नि में जलाया जाएगा। यह सुनकर भगवान के पार्षदों ने हँसकर उनसे कहा- हे भाई! हम जगत्पति भगवान श्रीहरि के सेवक हैं।

दूत होइ तुम धरमराज कर। अस अनुचित कस करत भयंकर॥
तोहि कि बिदित बात नहिं ऐहीं। तारिअ केहिं तारिअ पुनि केही॥

(किन्तु) तुम साक्षात् धर्मराज के दूत होकर भी, ऐसा भयङ्कर अनौचित्य कैसे कर रहे हो? क्या तुम्हें यह ज्ञात नहीं कि, किसे दण्डित किया जाना चाहिये और किसे मुक्त?

सत्य अहहि अनुचित यह भारी। सुजनन्ह गहि जम करत दुखारी॥
सुनि जमचर पूछा अचराई। यह नारकी सुजन कस भाई॥

सचमुच! यह तो बड़ा ही अन्याय है कि, यमदेव सत्पुरुषों को भी पकड़कर दुःख देते हैं। ऐसा सुनते-ही चकित हुए यमदूतों ने पूछा- हे भाई! यह नारकी मनुष्य, सत्पुरुष किस प्रकार हुआ?

तब हरिदूत पूछ फिरि ताहीं। तैं हरि नाउँ महिम सुनि नाहीं॥
हरि तें अधिक नाउँ बलवाना। हरहि जापकन्हँ पाप महाना॥

तब पार्षदों ने उन्हीं से पूछा कि, क्या तुमनें कभी श्रीहरि के नाम की महिमा नहीं सुनी? भगवान का नाम स्वयं उनसे भी अधिक बलवान है, जो जापक के महान पापों को भी हर लेता है।

बूझि आथवा भूलि सुमिर जेई। छूटइ आपु महाअघ तेई॥
अह अनंत नारायन नाऊँ। एक एक कर इहइ प्रभाऊ॥

जानकर अथवा भूल से भी कोई भगवान का नाम ले लेता है, तो वह भी महापातक से स्वतः छूट जाता है। भगवान नारायण के नाम अनन्त हैं और (उनमें से) एक-एक का यही प्रभाव है।

नाम सम न केउ साधन दूजा। हरि नामहि जप तप मख पूजा॥
नाम अखय निधि प्रतिजुग माहीं। कृपन समान सँभारिअ जाही॥

नामजप के समान दूसरा कोई साधन नहीं है; हरिनाम ही जप, तप, यज्ञ और पूजा है। प्रत्येक युग में नाम ही एकमात्र अक्षय धन है; जिसे कञ्जूस मनुष्य के समान पकड़े रहना चाहिये।

हरिहि नाउँ संजीबनि सोऊ। महा महा अघ रुज हर जोऊ॥
नारायन जे कह एक बारा। मिटहि तासु अघ जनमु अपारा॥

हरिनाम ही वह सञ्जीवनी है, जो पापरूपी बड़े-बड़े रोगों को हर लेती है। जो प्राणी एक बार ही 'नारायण' इस प्रकार कह लेता है; तो उसके भी अनेक जन्मों के पाप मिट जाते हैं।

दोहा- एहि बिप्रहि निज अंत सवँ हरि अस लीन्ह पुकारि।
तातें अघ इन्ह सब बिनसे भा हरिपुर अधिकारि॥४४॥

इस ब्राह्मण ने भी अपने अंत समय में 'नारायण' यह नाम पुकारा है; इस कारण इसके सारे पाप नष्ट हो गए और यह वैकुण्ठ लोक का अधिकारी हो गया है।

चौ.- सुनहु बंधु हरि नाउँ समाना। जग परासचित अहहि न आना॥
पुनि एहि हरि कर नाउँ पुकारा। जाइहि नहिं अब यह जमद्वारा॥

हे भाई! सुनों! इस संसार में भगवान के नाम के समान अन्य कोई प्रायश्चित नहीं है और इसनें भगवान का वही नाम पुकारा है; अतः अब यह यम के द्वार पर नहीं जायेगा।

तप ब्रत नियम होम अरु दाना। कबहुँ होइ जे चूक महाना॥
तेपि जपत दुइ आखर नाऊँ। देति अमिअ सम अखय प्रभाऊ॥

तप, व्रत, नियम, होम और दान आदि के सम्पादन में यदि कभी कोई भारी भूल भी हो जाय, तो मात्र इस दो अक्षर के 'नाम' का जप कर लेने पर ही, वह भूल भी अमृत के समान अक्षय फलदायिनी हो जाती है।

हरिहि नाउँ सो नाहरु गर्जन। सुनि जेहिं अघ मृग लागहि भागन॥
एहिं अपि जब हरि नाउँ पुकारा। तबहि मिटे एहि पाप अपारा॥

भगवान का नाम सिंह का वह गर्जन है, जिसे सुनकर पापरूपी पशु भयभीत हुए-से भागने लगते हैं। इसलिये इसनें भी जब हरिनाम पुकारा; तभी इसके भी समस्त पाप नष्ट हो गए।

बूझि बात यह तुम एहि बाँधा। प्रभु प्रति कीन्ह महाअपराधा॥
करत प्रासचित फिरु अब पाछे। नरक जाइ नहिं द्विज भै आछे॥

इस बात को जानते हुए भी तुमने इन्हें बाँधकर, उन प्रभु के प्रति महान अपराध किया है। अब प्रायश्चित करतु हुए तुम अपने लोक को लौटो; क्योंकि शुद्ध हो चुके, ये विप्र नर्क में नहीं जाऐंगे।

नाउ महिम एहि भाँति बुझाई। जमदूतन्ह उन्ह दीन्ह फिराई॥
नृप सुसंग हरिदूतन्ह पाई। बिरति अजामिल उर उमगाई॥

इस प्रकार 'नाम' का महात्म्य समझाकर, उन्होंने यमदूतों को वापस लौटा दिया। हे राजन! इधर उन हरिपार्षदों की उत्तम संगति पाकर, अजामिल के मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया।

तब निज कृत पछितात महाना। तेहिं कीन्ह हरिद्वार पयाना॥
किए बिषयगत चित तहँ तेहीं। संजम बलु साधे मनु देही॥

तब अपने कर्मों पर अत्यधिक पश्चाताप करते हुए, उसने हरिद्वार के लिये प्रस्थान किया और वहाँ रहते हुए, चित्त को विषयों से हटाकर, संयमपूर्वक अपने मन व शरीर को साध लिया।

भई ब्रह्ममय बुधि जब ताहीं। सो हरिचर आए तिन्हँ पाहीं॥

जब अजामिल की बुद्धि ब्रह्ममय हो गई, तब भगवान के वही पार्षद पुनः उसके पास आए।

दोहा- पुनि बिमान बैठाइ तिन्ह लै गवने हरि धाम।
पतिततहि कर नृप पावन महिम इहइ प्रभु नाम॥४५॥

फिर अपने विमान में बैठाकर, वे उसे वैकुण्ठलोक ले गए। हे परीक्षित्! पतित को भी पावन कर देनेवाले भगवान के नामों की यही महिमा है।

चौ.- दधिचि त्याग अरु बृत बिधवंसा। सुनिअ लाइ चित धुज ससिबंसा॥
बारक परम मुदित सुरराजा। सचि समेत सभ रहेउ बिराजा॥

हे चन्द्रवंश के ध्वजस्वरूप परीक्षित! अब आप महर्षि दधीचि के त्याग व वृत्तासुर के वध की कथा ध्यानपूर्वक सुनिये। एकबार इन्द्र अत्यन्त आनन्दपूर्वक पत्नि शचि के साथ सभा में विराजमान थे।

बसु सब रुद्र मरुत उनचासा। नागादित्य उभय रुजनासा॥
रिभुगन बिद्याधर गंधरबा। मुनि समेत बैठे तहँ सरबा॥

(उस समय) वहाँ समस्त वसु, रूद्रगण, उनचासों मरुत, सर्प, आदित्य, दोनों अश्विनीकुमार, ऋभुगण, विद्याधर, गन्धर्व आदि ये सब मुनिगणों के साथ बैठे हुए थे।

किन्नर रहे सुजसु तिन्ह गाई। रही अपछरा नृत्य देखाई॥
सुरगुर तेहिं समय तहँ आए। उन्ह बिलोकि सबन्हीं सिरु नाए॥

किन्नर देवराज इन्द्र का सुयश गा रहे थे और अप्सराएँ उन्हें नृत्य दिखला रही थी। उसी समय सभा में देवगुरु बृहस्पति पधारे, उन्हें (आया) देखकर सभी ने उन्हें सिर नवाया।

किंतु मोहबस बूझि सुरेसा। आपन गुर दिसि तनक न देखा॥
त्रिकालग्य लखि सिष अभिमाना। फिरे भवन निज अति दुख माना॥

किन्तु जानकर भी अज्ञानवश इन्द्र ने अपने गुरु की ओर देखा तक नहीं। त्रिकालदर्शी बृहस्पति शिष्य के इस अभिमान को देखकर, अत्यन्त दुःखी हो वहाँ से अपने घर लौट आए।

सुरपति हृदय चेत जब भयऊँ। तब पछितात सभहि उन्ह कयऊँ॥

जब देवराज को बोध (ज्ञान) हुआ, तब पछताते हुए उन्होंने सभा में ही इस प्रकार कहा-

दोहा- अहो खेद कइ बात बड़ जे मैं बिभव गुमान।
गुरहि पाइ निज सनमुख किएउँ न उन्ह सनमान॥४६॥

अहो! यह बड़े दुःख की बात है; जो मैंने वैभव के घमण्ड में, अपने गुरु को सम्मुख आया देखकर भी, उनका आदर नहीं किया।

चौ.- जदपि बिभव मम उन्हहिं प्रतापा। तदपि दीन्ह मैं उन्ह कहँ तापा॥
अबहि न मागुँ छमा उन्ह पाही। मो सम मूढ़ कौन जग माहीं॥

यद्यपि मेरी यह सम्पदा उन्हीं का प्रताप है, फिर भी मैंने उन्हें तिरस्कार का दुःख दिया। यदि अब भी जाकर मैं उनसे क्षमा नहीं माँगता, तो इस संसार में मेरे समान मूर्ख और कौन होगा?

अदिति तनय सिरु धुनि एहिंभाती। गुरहि भवन गै कलि आराती॥

गुर उन्ह कहँ जब आवत जाना। तुरत तहँ तें भै अंतरध्याना॥

हे परीक्षित! इस प्रकार सिर धुनते हुए अदितिनन्दन इन्द्र, अपने गुरू के घर गए। जब बृहस्पति ने उन्हें आते हुए देखा, तो वे वहाँ से तुरन्त ही अंतरध्यान हो गए।

उन्ह न पाइ सुरपति अकुलाए। यह सउचार सुक्र सुनि पाए॥
तब उन्ह असुरन्हि सेन पठाई। बिबुधन्ह कीन्हें बिकल जुझाई॥

उन्हें वहाँ न पाकर देवराज इन्द्र व्याकुल हो गए; जब यह समाचार दैत्यगुरु शुक्राचार्य ने सुना, तब उन्होंने दैत्यों की सेना भेजकर, युद्ध में देवताओं को व्याकुल कर दिया।

गयउ नाकपति तब अज पाहीं। गुर अपमान कथा समुझाहीं॥
सुनतहिं प्रथम त तेहिं फटकारा। पुनि बुझान अज देत सहारा॥

तब सुरेश ब्रह्माजी के पास गए और अपने द्वारा हुए गुरु के अपमान की कथा उन्हें कही; जिसे सुनते-ही पहले तो ब्रह्माजी ने उन्हें फटकारा; फिर धैर्य बँधाकर समझाया कि,

दोहा- **तुषटा नावँउ बिप्र एक बिस्वरूप सुत तासु।**
सो संजमि तपनिधि करिहि अवसि सुरन्हँ दुख नासु॥४७॥

त्वष्टा नाम का एक ब्राह्मण है; जिसके पुत्र का नाम विश्वरूप है; परम संयमी और तपनिधान वह ब्राह्मण, अवश्य ही देवताओं के दुःखों को हर लेगा।

चौ.- **तुषटउँ पास हरषि तब जाई। कह सुजान सुरपति सिरु नाई॥**
होइ सुरन्हँ उपरोहित नाथा। अमरावति कहँ करिअ सनाथा॥

तब सुजान इन्द्र हर्षित होकर, त्वष्टा के पास गए और उन्हें सिर नवाकर बोले- हे नाथ! आप हम देवताओं के पुरोहित होकर; हमारी अमरावती को अपना संरक्षण दीजिये।

सुनि द्विज कह उन्ह बिनु कछु गोई। तप बलु घटइ पुरोहित होई॥
किंतु कीन्ह तुम आग्रह भारी। तातें संसय देहुँ बिसारी॥

उनकी बात सुनकर त्वष्टा ने कुछ भी छिपाए बिना, उनसे (स्पष्ट) कहा कि, पुरोहिताई करने पर (ब्राह्मण के) तप का बल घट जाता है; किन्तु तुमने बड़ा आग्रह किया है, इसलिये सन्देह का त्याग कर दो।

बिस्वरूप लायक सुत मोरा। करउँ तेहिं उपरोहित तोरा॥
परिछित प्रोहित पद उन्ह देखी। सेव कीन्ह सुरनाथ बिसेषी॥

विश्वरूप नाम का मेरा एक योग्य पुत्र है;जिसे मैं तुम्हारा पुरोहित बना दूँगा। हे परीक्षित! आगे पुरोहित पद पर विश्वरूप को पाकर, इन्द्र ने उनकी बड़ी सेवा की।

बिस्वरूप तब तेहिं हरषाई। दीन्ह अकट हरि कवच सिखाई॥
जेहिं प्रताप रनु माँझ पुरंदर। जीते असुर प्रचंड भयंकर॥

तब विश्वरूप ने प्रसन्न होकर, उन्हें अमोघ नारायण की शिक्षा दी; जिसके प्रताप से इन्द्र ने युद्ध में अनेक प्रचण्ड और भयानक राक्षसों को जीत लिया।

दोहा- **बिस्वरूप रहेउ त्रिमुख रहा असुरि संतान।**

पृथक पृथक मुख पुनि तें गह सोम सुरा अरु आन॥४८॥

हे परीक्षित! विश्वरूप एक असुरकन्या का पुत्र था और उसके तीन मुख थे। वह अपने भिन्न-भिन्न मुखों से सोमरस, मदिरा और अन्न आदि ग्रहण करता था।

चौ.- तिहि अकसर जननिहिं अनुरागा। दुरि असुरन्हँ दइ आहुति जागा॥
बूझि बज्रधर रिस करि भारी। तिन्ह सिरु छेदि दीन्ह भुवि पारी॥

उसने एक बार मातृप्रेम के वश होकर, इन्द्र के यज्ञ में छिपाकर असुरों को भी आहुति दे दी। जब इन्द्र को यह ज्ञात हुआ; तब अत्यन्त क्रोध करके, उन्होंने उसके सिर काटकर भूमि पर गिरा दिए।

ब्रह्मघात तब ब्यापा तेहीं। द्विजपति कीन्ह निबारनु जेहीं॥
इत सुत बध तुषटा जस सुनेऊ। निज दयपनु पर सिरु अति धुनेऊँ॥

तब उन्हें ब्रह्महत्या का दोष लगा, ब्रह्माजी ने जिसका निवारण किया। इधर त्वष्टा ने जैसे ही अपने पुत्र का वध हुआ सुना; तब उन्होंने अपनी दयालुता पर बार-बार सिर पीटा।

पुनि उपजान तेहिं करि जागा। दनुज एक सुर हित दुरभागा॥
बपु जिन्हँ बलनिधि परम बिसाला। उपजा मनहुँ समन बिकराला॥

फिर उन्होंने यज्ञ करके, देवताओं के लिये दुर्भाग्य स्वरूप एक दैत्य उत्पन्न किया; जिसका शरीर बल का समुद्र और अत्यन्त विशाल था; मानों स्वयं विकराल काल ही उसके रूप में प्रकट हुआ हो।

बपुष त प्रथमहि रहा प्रघोरा। पुनि सर भर बढ़ नित चहुँ ओरा॥
एहिं बिसेषतउँ कारन राऊ। बृत्तासुर भयऊ तिन्ह नाऊँ॥

उसका शरीर तो पहले से ही अत्यन्त भयानक था; उस पर भी उसका आकार प्रतिदिन बाणभर चारों ओर बढ़ता था। हे परीक्षित! उसकी इसी विशेषता के कारण, उसका नाम वृत्तासुर हुआ।

तुषटा तिन्हँ बहुभाँति सिखावा। पुनि सुतघातिहि बधन पठावा॥

त्वष्टा ने उसे बहुत प्रकार से उकसाकर; फिर अपने पुत्र के हन्ता इन्द्र का वध करने के लिये भेजा।

दोहा- देअँद्रोहि तब कोप करि अमरावति पइसारि।
सुरन्हँ सहित पुनि इन्द्र कहँ रनु हित लाग पचारि॥४९॥

तब वह देवद्रोही दैत्य क्रोध करके; अमरावती में प्रवेश कर गया और देवताओं सहित इन्द्र को युद्ध के लिये ललकारने लगा।

चौ.- सुनत देव तिन्ह भीषन नादा। करै लाग हिय परम बिषादा॥
तदुप धीर धरि तिन्हँ समुहाए। आयुध बिबिध लाग बरिषाए॥

उसकी भयङ्कर गर्जना सुनते ही, देवता अपने हृदय में अत्यधिक विषाद करने लगे; तदुपरान्त धैर्यपूर्वक उसके सामने आये और उस पर अनेक शस्त्र बरसाने लगे।

किंतु महोदर मुख बिस्तारी। गयउ निगरि बिबुधायुध भारी॥
पुनि फिरि इंद्रहि खावन धावा। अस बिलोकि सुरपति भय पावा॥

किन्तु वह महोदर दैत्य अपना मुख फैलाकर, देवताओं के समस्त महान अस्त्रों को निगल गया; फिर पलटकर वह इन्द्र को खाने दौड़ा; यह देखकर इन्द्र भयभीत हो उठे।

सुरन्हँ सहित पुनि तहँ तें भागी। कही सक्र सब हरिपद लागी॥
सक्र दला तुअँ द्विज तपधामा। दुरगति तोरि तिन्हहि परिनामा॥

फिर वे भागकर देवताओं सहित श्रीहरि के सन्मुख जाकर, उनके चरणों में गिर पड़े और उन्हें सब वृतान्त कह सुनाया। (तब भगवान बोले- हे इन्द्र!) तुमने एक तपस्वी ब्राह्मण का वध किया है; तुम्हारी यह दुर्गति उसी का परिणाम है।

जग्यभूत दुर्दम तनु ताहीं। जेहिं कोउ अस्त्र बिनसि सक नाहीं॥
है दधिचि महतप करि जेहीं। पबि तें कठिन कीन्हि निज देही॥

वह दैत्य यज्ञ से उत्पन्न हुआ है और उसका शरीर दुर्दमनीय है; जिसे कोई भी अस्त्र नष्ट नहीं कर सकता। किन्तु दधिचि ऋषि है, जिन्होंने महान तप करके, अपने शरीर को वज्र से भी अधिक दृढ़ बना लिया।

दोहा- **सो तुम माँगहु हाड़ उन्ह पबि पुनि तासु कढ़ाहुँ।**
अवसि तेहिं तें बधाइहि सो रनधीर अगाहु॥५०॥

अतः तुम जाकर उनसे उनकी अस्थियाँ माँगो और उन्हीं अस्थियों से एक वज्र बनवाओ; वह महारणधीर योद्धा उस वज्र से अवश्य ही मारा जायेगा।

चौ.- **सबन्हँ संग अस आयसु पाई। गै दधीचि आश्रम सुरराई॥**
समुख जाइ सब नाएहुँ सीसा। देखि हरषि मुनि दीन्हि असीसा॥

ऐसी आज्ञा पाकर सभी को साथ करके, इन्द्र महर्षि दधीचि के आश्रम पर गए। सामने जाते ही सभी ने मुनि को सिर नवाया; यह देखकर मुनि प्रसन्न हुए और उन्हें आशीर्वाद दिया।

पुनि दधीचि अस पूछत भयऊ। सुरगन केहिं कारन इहँ अयऊ॥
सुर दिसि कह सुरपति कर जोरी। अस्थि दान महुँ चह हम तोरी॥

फिर दधीचि उनसे पूछने लगे- हे देवगण! आप किस कारण यहाँ पधारे हैं? तब देवों की ओर से इन्द्र ने हाथ जोड़कर कहा- हे मुनिराज! हम दान में आपसे आपकी अस्थियाँ पाना चाहते हैं।

पुनि पबि एक निरवाँवहि तासू। खलहिं होइ सक जातें नासू॥
माँगे प्रान तुम त सुर मोरे। अब मैं अधिक काह कउँ तोरे॥

फिर उनसे हम एक वज्र बनवायेंगे; ताकि उससे वृत्तासुर का वध हो सके। (महर्षि बोले-) हे देवताओं! तुमने तो मेरे प्राण ही माँग लिये; अब मैं तुम्हें अधिक क्या कहूँ?

पै तुम तनक न कीन्ह बिचारा। पीर होति तनु तजत अपारा॥
किए हेतु निज तन कहँ मोटा। जीवहि जतन करहिं अति छोटा॥

किन्तु तुमने जरा भी विचार नहीं किया कि शरीर त्यागते समय अपार पीड़ा होती है। अपने शरीर को मोटा करने के लिये, छोटे से छोटा जीव भी यत्न किया करता है।

दोहा- पुनि मैं नर सो जान जे महिम हरिहि उपहार।
प्रगट तेइ जे माँगइ उन्ह अपि देब नकार॥५१॥

फिर मैं तो वह मनुष्य हूँ, जो भगवान श्रीहरि के द्वारा दिये शरीररूपी इस उपहार का महत्व जानता है। यदि वे नारायण स्वयं भी मुझसे मेरा शरीर माँग लें, तो मैं उन्हें भी मना कर दूँ।

चौ.- तब मैं सुरगन तोहि केहिं कारन। देउँ बपुष निज अस भवतारन॥
सुनि मुनि बचन कहा सुरराजा। एहि उपाय बिनु बनइ न काजा॥

तब हे देवगण ! फिर मैं भवसागर से छुड़ानेवाले साधनरूप इस शरीर को तुम्हें किस कारण से दूँ? उनके ऐसे वचन सुनकर इन्द्र ने कहा कि, हे मुनिराज! ऐसा किये बिना काम नहीं बनेगा।

पुनि मैं हरि आयसु सिरु लाई। आएउँ सुरन्हँ संग मुनिराई॥
परम पुरुष तैं दयानिधाना। समरथ तव जानइ भगवाना॥

और मैं उन भगवान श्रीहरि की आज्ञा पाकर ही देवताओं के साथ आपके पास आया हूँ। आप परम पुरुष व दया के धाम हैं और भगवान स्वयं आपकी सामर्थ्य जानते हैं।

उन्ह कृत जड़ चेतन जग माहीं। मुनि अदेय तव हित कछु नाहीं॥
पुनि एहि महुँ संदेह न कोई। स्वारथि होत माँग जग जोई॥

उनके द्वारा बनाए हुए इस जड़-चेतन जगत में, आपके लिये कुछ भी ऐसा नहीं है, जिसे आप न दे सकें। इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि इस संसार में जो माँगनेवाले हैं, वे स्वार्थी होते हैं

ताते जग तिन्हँ बिसर तुरंता। दानि मुए पर रह जीवंता॥
सक्र एहिबिधि जब समुझावा। तब मुनि कह उन्ह धीर बँधावा॥

इसी कारण संसार उन्हें शीघ्र भूल जाता है और दानी मनुष्य मरकर भी जीवित रह जाते हैं। जब इन्द्र ने इस प्रकार से समझाया तब महर्षि दधीचि ने उन्हें धैर्य बँधाकर कहा-

दोहा- मिटइ एक दिनु अवसि तनु परहित पै हिय लाइ।
मैं हरि भगति सुसाधन देउँ तोहि सुरराइ॥५२॥

हे इन्द्र! यह शरीर अवश्य ही एक दिन मिट जाएगा; किन्तु परोपकार को हृदय में धरकर, मैं भगवान श्रीहरि की भक्ति के साधन रूप अपने इस शरीर को तुम्हें अर्पित करता हूँ।

चौ.- मुनि दधीचि नृप दयानिधाना। हरषि कीन्ह जे निज तनु दाना॥
उन्ह समान अब लौ जग माहीं। भयउँ न दानि होइहि नाहीं॥

हे परीक्षित! महर्षि दधीचि दया के धाम थे, जिन्होंने प्रसन्नतापूर्वक अपना शरीर दान कर दिया। इस संसार में उनके समान दानी, न तो अब तक हुआ है और न आगे ही होगा।

पाएहुँ दुराधरष उन्ह हाड़ा। देअँ थपति पबि ताकर काढ़ा॥
रहे परब सत आयुध केरे। अतिहि भयद अरु तीछ घनेरे॥

उनकी दुराधर्ष अस्थियों को पाकर, देवशिल्पी विश्वकर्मा ने उससे एक वज्र बना दिया। उस अस्त्र के सौ पर्व थे, जो अत्यन्त ही भयानक और तीखे थे।

मघवा असनि पाइ बिकरारा। तुरत बृत्त कहँ जाइ पचारा॥
चकित बिचार बृत्त करि लागा। प्रथम जुद्ध जे मोहि सन भागा॥

देवराज इन्द्र ने उस विकराल वज्र को पाते ही, तुरन्त जाकर वृत्तासुर को ललकारा। तब चकित हुआ वृत्तासुर विचार करने लगा कि, जो पहले युद्ध में मुझे सन्मुख पाकर भाग गया था;

तेइ कादर अब किन्ह बलु पाए। उझकहिं मोर समुख गरुआए॥
अस कहि सरिस बोलि तेहिं धारी। परम कराल भटन्ह जुत भारी॥

वही कायर इन्द्र, अब किसके बल पर मेरे सन्मुख इस प्रकार घमण्ड में भरा उछल रहा है। ऐसा कहते हुए क्रोध में आकर उसने सेना बुलवाई, जो अत्यन्त उद्भट योद्धाओं से भरी थी।

दोहा- हेति प्रहेति द्विमूरध संकुसिरा हयग्रीव।
बृत्त हाँक सुनि उमगि परे पुलोमादि बलसींव॥५३॥

हेति, प्रहेति, द्विमूर्धा, शङ्कुशिरा, हयग्रीव और पुलोम आदि महान बल की सीमारूप योद्धा वृत्तासुर की पुकार सुनते-ही दौड़ पड़े।

चौ.- जातुधान ए गरजि सक्रुद्धा। लगे जुद्ध सुर सेन बिरुद्धा॥
सूल परिघ सर गदा कुठारा। सतहंतिनि भुसुंडि तरवारा॥

ये सभी दैत्य योद्धा क्रोध से गरजते हुए देवसेना के विरुद्ध युद्ध में जा डटे। शूल, परिघ, गदा, फरसा, शतघ्नि, तलवार, बाण,

मुद्गरादि बहु आयुध डारी। असुरन्हँ तुरत ढाँपि सुर धारी॥
तब रिभु रुद्र मरुद्गन कोपी। सिलिमुखाँधि दारुन धनुरोपी॥

मुद्गर आदि बहुत प्रकार के शस्त्रों से दैत्यों ने देवसेना को शीघ्र-ही ढँक दिया। तब ऋभुओं, रुद्रों और मरुद्णों ने अपने-अपने धनुषों पर क्रोधपूर्वक बाणरूपी भयङ्कर आँधी का सन्धान किया।

रहा तासु अस बेग प्रचंडा। उड़े होइ खल सस्त्र बिखंडा॥
असुर निरखि अधरन्हँ रद काटी। ढारेसि प्रस्तर बिटप उपाटी॥

जिसका वेग इतना प्रचण्ड था कि, दुष्ट दैत्यों के समस्त शस्त्र टूटकर उड़ गए। यह देखकर दैत्यों ने दाँतों से होठों को काटते हुए, देवताओं पर अनेक शिलाएँ और वृक्ष उखाड़कर डाले।

पवन प्रचंड बेग उपजाई। दीन्ह ताहि दिसि बिदिसि उड़ाई॥
बल बिलोकि उन्ह अस अचराए। निसिचर सिखर महीधर ढाए॥

तब वायुदेव ने अपने प्रचण्ड वेग से, उन्हें दिशाओं-विदिशाओं में उड़ा दिया। उनका ऐसा बल देखकर, चकित हुए दैत्यों ने उन पर पर्वतों के शिखर डाले।

दोहा- किन्तु बिबुध तुरतहि जतन निफल कीन्ह सब ताहिं।
मनहुँ जरठपनु ब्यापेहुँ बपुष कोसिकन्हि माहिं॥५४॥

किन्तु देवताओं ने शीघ्र ही उनके सारे यत्न निष्फल कर दिये; मानों शरीर की कोशिकाओं को बुढ़ापा मार गया हो।

चौ.- तदुप सरासनु आपन रोपी। खलन्हँ लाग सुर बिसिखन्हँ तोपी॥
आवत लखि सर निज दिसि तीछे। भजे निसाचर समर निरीछे॥

तदुपरान्त देवता अपने-अपने धनुष चढ़ाकर, दुष्ट दैत्यों पर बाणों की वर्षा करने लगे। उन कठिन बाणों को अपनी ओर आते हुए देखकर, राक्षसयोद्धा युद्ध की इच्छा त्यागकर भाग छूटे।

सुरन्हँ प्रताप देखि अस भारी। बृत्त फिरात कहा निज धारी॥
सठहु जात कत बपुहिं बचाई। ए त अवसि एक दिनु मिटि जाई॥

देवताओं का ऐसा महान पराक्रम देखकर, वृत्तासुर अपनी सेना को युद्ध में लौटाते हुए बोला- अरे मूर्खो! अपने शरीर को बचाकर तुम कहाँ भाग रहे हो; यह तो निश्चय ही एक दिन मिट जाएगा।

अरि सन समर मुए भट सोभा। तातें फिरु बिहाहिं जिअँ लोभा॥
परिछित तदपि न फिरि जब धारी। होमभूत तमकेहु रिस भारी॥

युद्ध में शत्रु के सन्मुख मरने में ही वीर की शोभा है; अतः जीने का लोभ त्यागकर लौटो। हे परीक्षित्! जब दैत्ययोद्धा इस पर भी न लौटे; तब यज्ञसम्भव वह दैत्य भयङ्कर क्रोध से तमक उठा।

बरजि सुरन्हँ पुनि कह एहिंभाँती। रे खल बिमुख निरखि आराती॥
करइ पाछ तें केहिं हित धावा। मम मिस निरखु काल तव आवा॥

फिर देवताओं को ललकार कर इस प्रकार कहने लगा- अरे दुष्टों! शत्रु को भागता हुआ देखकर, पीछे से क्यों आक्रमण कर रहे हो? देखो! मेरे रूप में तुम्हारा काल आया है।

जे न जिअनि ईछा मनु माहीं। तो लखु होइ मोर समुहाही॥

यदि तुम्हारे मन में जीने की इच्छा न हो; तो मेरे सामने होकर देख लो।

दोहा- प्रथम भए तुम रनु बिमुख अज मम सेन पराहिं।
तदपि अकेल बधउँ सबन्हँ पटकि पटकि रनु माहिं॥५५॥

पहले तुम युद्ध से भाग गए थे, आज मेरी सेना भाग गई है; किन्तु फिर भी मैं अकेला ही तुम सबको युद्ध में पटक-पटककर मारूँगा।

चौ.- परिछित बृत्त रहा बलवाना। बहुरि भयंकर बपुष महाना॥
जब तें समर लाग हुंकारी। अमर खसे महि चेत बिसारी॥

हे परीक्षित! वृत्तासुर बलवान तो था ही, उस पर भी उसका शरीर बहुत ही भयानक था। जब वह युद्ध में गरजने लगा; तब देवता मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

हाथ त्रिमुख गहि करि अटहासा। गयऊ तुरत अचेतन्हि पासा॥
पदाघात भीषन करि छाती। पटकि पटकि उन्ह लाग निपाती॥

तब हाथों में त्रिशूल लिये अट्टहास करता हुआ वृत्तासुर, तुरन्त ही अचेत पड़े देवों के पास गया और उनकी छाती पर लातों से भीषण प्रहार करके, उन्हें पटक-पटककर मारने लगा।

तासु भार डोलन छिति लागी। उठि उठि सभय लगे भट भागी॥
खल भुज उभय प्रलंब पसारी। गहि गहि बिमुखन्हँ लग महि पारी॥

उसके भार से पृथ्वी डोलने लगी और घायल क्लान्त देवता उठ-उठकर भागने लगे। तब वह दुष्ट अपनी दोनों विशाल भुजाएँ फैलाकर, भागते हुए उन योद्धाओं को पकड़-पकड़कर, पृथ्वी पर पटकने लगा।

एहिबिधि बिबुधन्ह हति चहुँओरा। गरजि लाग मखभूत प्रघोरा॥
दसा सुरन्हँ अस इंद्र निहारी। उन्ह हिय भयउँ क्रोध अति भारी॥

इस प्रकार चारों ओर देवताओं को मारकर, त्वष्टा का वह यज्ञपुत्र प्रचण्ड गर्जन करने लगा। जब इन्द्र ने देवताओं की यह दशा देखी, तो उनके मन में बड़ा भारी क्रोध हुआ।

दोहा– बृत्त समुख तब जाइ उन्ह गदा प्रघोर चलाइ।
खल परन्तु गहि ताहिं फिरि गज सिरु मारि भँवाइ॥५६॥

तब इन्द्र ने वृत्तासुर के निकट जाकर, अपनी प्रचण्ड गदा चलाई; किन्तु उस दुष्ट ने वह गदा पकड़ ली और पलटकर घुमाते हुए ऐरावत के सिर पर दे मारी।

चौ.– महानाग सो तब नरनाथा। लटा पाछ अट्ठाइस हाथा॥
फूटेहुँ सिरु लहु लाग पनारा। बिकल भयउँ लहि पीर अपारा॥

हे परीक्षित! तब वह महान गजराज अट्ठाईस हाथ पीछे की ओर लौट गया। उसका सिर फूट गया, जिससे रक्त की धारा बह चली और अत्यधिक पीड़ा के कारण वह व्याकुल हो उठा।

गज कहँ जब एहि दसा बिलोका। भयऊ बासव हिय अति सोका॥
समरनीतिमर्मग्य निहारा। ठाढ़ा सचुप न कीन्ह प्रहारा॥

जब इन्द्र ने अपने वाहन को इस दशा में देखा; तो उन्हें अत्यन्त दुःख हुआ। यह देखकर युद्धनीति का मर्मज्ञ वृत्तासुर प्रहार न करके; चुपचाप खड़ा रहा।

इंद्र सुधामय कर परसाई। तब लौ दीन्हा घाउ रुझाई॥
तदुप डटे पुनि रनु महि माहीं। बृत्तहि खोजि लाग अतुराही॥

इसी बीच इन्द्र ने अपने अमृतमय हाथ के स्पर्श से, ऐरावत का घाव भर दिया। तत्पश्चात् वे पुनः युद्ध में आ डटे और उतावली से वृत्तासुर को खोजने लगे।

बृत्त लखा तिहि पुनि आवत जब। सुमिरि बंधु बध कहा तेहिं तब॥
रे बिमूढ़ आपन गुरघाती। बधि तहि आज जुड़ाउँब छाती॥

जब वृत्तासुर ने इन्द्र को पुनः आते हुए देखा; तब भाई के वध का स्मरण करके, वह उनसे बोला- रे महामूर्ख! अपने गुरु के घातक! तुझे मारकर आज मैं अपनी छाती ठण्डी करूँगा।

रे आँधर सुर कानउ राजा। कहिअत सुर न आव तुहि लाजा॥

रे अन्धे देवताओं के काने राजा! देवता कहलाते हुए तुझे लज्जा नहीं आती?

दोहा- **बिस्वरूप मम बंधु द्विज पुनि गुर प्रोहित तोर।**
तदपि अकारन बधा तिन्हँ छमउँ न मैं तव खोर॥५७॥

मेरा भाई विश्वरूप एक ब्राह्मण था, उस पर भी वह तुम्हारा गुरु और पुरोहित था। तब भी बिना किसी कारण के, तूने उसकी हत्या कर दी; मैं तुम्हारे इस अपराध को क्षमा नहीं करूँगा।

चौ.- **अब निज तरल त्रिसूल प्रहारी। कठिन हृदय तव देउँ बिदारी॥**
होइ बंधु रिनुगत एहिंभाँती। कच्कहिं हरुँ असुरन्हँ दिनुराती॥

अब मैं अपने तीक्ष्ण त्रिशूल से तुम्हारे कठिन हृदय को विदीर्ण कर दूँगा। इस प्रकार अपने भाई से उऋण होकर, मैं दैत्यों की इस चिरविपत्ति को जड़ से ही मिटा दूँगा।

तुहि बधि किंतु मोहि जसु नाहीं। आपु बिचारि देखु मन माहीं॥
कीरति बल बैभव अरु लाजा। प्रथमहि तजि गइ तोर कुकाजा॥

किन्तु तुम्हें मारकर, मुझे तनिक भी यश नहीं मिलेगा; इस बात को तुम स्वयं विचारकर देख लो। तुम्हारे कुकर्मों के कारण, कीर्ति, बल, लज्जा और लक्ष्मी तो पहले ही तुम्हें त्याग चुकी है।

पुनि तैं असि असि कीन्हि निचाई। असुर न मनुज रहे जेहिं गाई॥
बूझि भाँति भलि सुर समुदाई। मोर बिमुख भै तव अनुआई॥

उस पर भी तुमने ऐसी-ऐसी नीचताएँ की है कि; जिसकी चर्चा असुर ही नहीं, मनुष्य कर रहे हैं और यह सब भली-प्रकार जानने के उपरान्त भी यह देवसमूह, मेरे विरुद्ध तुम्हारा अनुचर हो गया है।

तुहि समेत सिरु सबन्हँ उतारी। भूतनाथ मख करऊ भारी॥
है सम्भव यह बज्र कठोरा। काटि लेहिं रनु महुँ सिरु मोरा॥

अतः तुम्हारे साथ ही इन सबके सिर काटकर, मैं भूतनाथ भगवान शिव का महायज्ञ करूँगा। यह भी सम्भव है कि, तुम्हारा यह कठोर वज्र, युद्ध में मेरा शीश काट ले;

तदपि नाउँ मम रह जीवंता। भवनिधि पारि लहउँ भगवंता॥
किंतु बिमुख रनु तोर समाना। होइ अजसु जनि लहउँ महाना॥

तब भी मेरा नाम जीवित रहेगा और मैं भवसागर से पार होकर, भगवान श्रीहरि को प्राप्त कर लूँगा। किन्तु तुम्हारे समान युद्ध से विमुख होकर, मैं घोर अपयश नहीं लूँगा।

अस कहि तरल त्रिसूल उठावा। परम क्रुद्ध सुरपति दिसि धावा॥
तब उन्ह बज्र प्रचंड प्रहारी। त्रिमुख सहित सो भुज भुवि पारी॥

ऐसा कहकर उसने तीक्ष्ण त्रिशूल उठाया और अत्यन्त क्रुद्ध होकर इन्द्र की ओर दौड़ा। तब इन्द्र ने प्रचण्ड वज्र के प्रहार से, त्रिशूल सहित उसकी वह भुजा काटकर पृथ्वी पर गिरा दी।

दोहा- **भुजभंजन लखि कुपित तिहि कीन्ह परिघ आघात।**
कर ते बज्र खसेहुँ तब रहि गै इंद्र खिसात॥५८॥

अपनी भुजा का कट जाना देखकर, वृत्तासुर ने क्रुद्ध होकर परिघ से आघात किया; जिससे इन्द्र के हाथों से वज्र गिर पड़ा और वे लज्जित होकर (देखते ही) रह गए।

मासपारायण दूसरा विश्राम

चौ.- देखि पराक्रम तिन्ह अचराई। लगे सुरासुर तेहिं सिहाई॥
बिहँसि बृत्त तब कह रे पोचा। पबि उठाहु तजि भय संकोचा॥

उसका यह पराक्रम देखकर, चकित हुए देवता और दैत्य उसकी प्रशंसा करने लगे। तब वृत्तासुर हँसकर बोला- रे नीच इन्द्र! भय और लज्जा का त्याग करके, अपना वज्र उठा और

दृढ़ भरोष अस धरु मन माहीं। तव सम महाकपटि मैं नाहीं॥
तब सुरेस निज बज्र उठाई। सादर लागेसि तेहिं सिहाई॥

अपने जी में ऐसा दृढ़ विश्वास रख कि, मैं तेरे जैसा घोर कपटी नहीं हूँ। तब इन्द्र ने अपना वज्र उठाया और आदरपूर्वक उसकी प्रशंसा करने लगे।

सत्य असुरपति तुम बलवाना। धीर बिलच्छन तोर महाना॥
अवसि हरिहि जगमोहिनि माया। पारि सिद्धपनु तुअहि जुड़ाया॥

हे दैत्यराज! तुम सचमुच बलवान हो और तुम्हारा महान धैर्य अत्यन्त विलक्षण है। तुमने निश्चय ही भगवान श्रीहरि की जगत्मोहिनी माया का पार पाकर, सिद्धत्व प्राप्त किया है।

तबहि त तुअ असुरत्व बिसारी। धरमोचित बच रहा उचारी॥
हरि पद प्रीती तोर अस भारी। देत मोहि अचरज अमरारी॥

तभी तो तुम असुरत्व को त्यागकर, इस प्रकार धर्मानुसार वचन कह रहे हो। हे देवशत्रु! भगवान श्रीहरि के चरणों में तुम्हारा ऐसा अगाध प्रेम मुझे चकित कर रहा है।

धरम चरचि एहिबिधि दुहुँ जोधा। भिरे परसपर पुनि करि क्रोधा॥
जग्यभूत पुनि परिघ चलावा। नभ जे भवँत काल सम धावा॥

इस प्रकार धर्मचर्चा करते हुए वे दोनों योद्धा पुनः क्रोध करके, भिड़ गए। वृत्तासुर ने पुनः अपना परिघ चलाया; जो घूमता हुआ आकाश में काल के समान दौड़ा।

आवत निरखि परिघ सो घोरा। पबिधर पंथ बीच तिहि तोरा॥
पुनि प्रहारि सतपरब प्रचंडा। भंजिसि तासु अपर भुजदंडा॥

उस भयानक परिघ को आता देखकर, वज्रपाणि इन्द्र ने उसे मार्ग में ही तोड़ डाला। फिर शत पर्वयुक्त प्रचण्ड वज्र से आघात करके; उन्होंने उसकी दूसरी भुजा भी काट दी।

तब तिन्ह बाहु बिगत दुहुँ काँधा। रुधिरपात करि लाग अबाधा॥
देखिअत जनु गिरि सिखर गभीरा। उमग तटिनि दुइ लोहित नीरा॥

तब भुजाओं से रहित उसके दोनों कन्धे, निरन्तर रक्तपात करने लगे; जो देखने पर ऐसे प्रतीत होते थे, जैसे किसी पर्वत के उन्नत शिखरों से लाल रङ्ग के जल की दो नदियाँ उमड़ रही हो।

तब बिकराल बपुष रिस भारी। अरि प्रति धाएहु बदनु पसारी॥

तब विकराल शरीरवाला वह दैत्य क्रोधपूर्वक मुँह फैलाए, इन्द्र की ओर दौड़ा।

दोहा- पदन्हँ रौंधि पथ गिरि कठिन धावत बेग प्रचंड।
निगरि सबाहन सक्र कहँ गरजि लाग बरिबंड॥५९॥

प्रचण्ड वेग से दौड़ते हुए उसने अपने पैरों से मार्ग में पड़नेवाले कठोर पर्वतों को रौंध दिया; फिर ऐरावत सहित इन्द्र को निगलकर, वह बलवान योद्धा गरजने लगा।

चौ.- अस लखि इंद्र मरनु उर लाई। हँहरि परा नृप सुर समुदाई॥
पै नारायन कवच प्रतापा। तनक न लहेहु पुरंदर तापा॥

हे परीक्षित! यह देखकर, अपने मन में इन्द्र की मृत्यु हुई समझकर, देवतागण घबरा उठे। किन्तु नारायण कवच के प्रताप से, इन्द्र को तनिक भी कष्ट नहीं हुआ।

जब उन्ह सुर गति हृदय बिचारी। निकसे बहिर उदर तिन्ह फारी॥
पुनि करि बज्रहि एक प्रहारा। गिरि समुनत सिरु तासु उतारा॥

जब उन्होंने मन में देवों की घबराहट का अनुमान किया; तब वे उस राक्षस का उदर फाड़कर, बाहर आ गए। फिर वज्र के एक ही प्रहार से, उन्होंने उसका पर्वत शिखर के समान उन्नत सिर काट लिया।

राजन मरनु दनुज कर जाना। सुर दुंदुभि रव नभ गहराना॥
पुष्प बरषि मुनिगन हरषाई। लागे पबिधर कीरति गाई॥

हे राजन! वृत्तासुर को मारा गया जानकर, सम्पूर्ण आकाश देवताओं की दुन्दुभियों के शब्द से भर गया। हर्षित हुए मुनिगण पुष्पवर्षा करके, वज्रपाणि इन्द्र का यश गाने लगे।

बृत्त तेज नृप तनु तिन्ह त्यागी। भा हरि पद सरोज अनुरागी॥
लोकप दिसिप सहित तिहुँलोका। बृत्त मरनु लखि भयउँ असोका॥

हे राजन! वृत्तासुर का तेज उसके शरीर से निकलकर, श्रीहरि के चरणकमलों में समा गया। वृत्तासुर का वध हुआ देखकर, लोकपालों व दिग्पालों समेत तीनों लोक शोकरहित हो गए।

पै बढ़ि सुरप सोच कइ साखा। ब्रह्मदलन फलु उन्ह भल चाखा॥
बृत्त बहुरि बिप्रहि सुत रहेउ। तरकि सोउ दिनु उर उन्हँ दहेउ॥

किन्तु इधर इन्द्र की चिन्तारूपी लता (पुनः) बढ़ने लगी; क्योंकि वे ब्रह्महत्या का फल भलीभाँति भोग चुके थे और वृत्तासुर विप्र त्वष्टा का ही पुत्र था; इसी कारण उन बीते दिनों का (पुनरागमन) अनुमान कर, उनका हृदय अकुला उठा।

दोहा- नृप द्विजहत्या तेहिं समय बपु धरि बृद्ध चँडालि।
प्रगटि सक्रुद्ध सुरप समुख देखिअत जे बिकरालि॥६०॥

हे राजन! उसी समय ब्रह्महत्या, जो देखने में अत्यन्त विकराल जान पड़ती थी, वृद्ध चाण्डाली का शरीर धारण करके; क्रोधपूर्वक देवराज इन्द्र के सन्मुख प्रकट हुई।

चौ.- घूसर असित रक्तजुत गाता। धरे लौह भूषन भयदाता॥
नत काँधन्ह कच स्वेत सूल सम। टेढ़ बदनु जनु भवनिधि दुरगम॥

उसने अपने रक्तरञ्जित अत्यन्त काले अङ्गों में लोहे के भयानक आभूषण धारण किये हुए थे। उसके झुके हुए कन्धों पर शूल सदृशः श्वेत केश बिखरे थे और उसका टेढ़ा मुख ऐसा था; जैसे दुर्गम भवसागर हो।

द्विजहंतहिं चितवत परचारी। धाइ उताइल बदनु पसारी॥
मुइहुँ मीन कइ दुसह कुबासा। पथ पसारि तिहि आपन स्वासा॥

ब्रह्मघाती इन्द्र को देखते-ही, उस ब्रह्महत्या ने उन्हें ललकारा और मुँह फैलाकर, उतावली से उनकी ओर दौड़ी। उसने अपनी श्वासों से मार्ग में सड़ी हुई मछली की-सी असहनीय दुर्गन्ध उत्पन्न कर दी।

आवत देखि तेहिं भय पागे। आकुल सद्य सक्र उठि भागे॥
खलहुँ ठाढ़ कत भागहिं ऐसा। खाउँ आज तुहि मूलक जैसा॥

उसे आती हुई देखकर भयभीत हुए इन्द्र घबड़ाकर वहाँ से शीघ्र ही उठ भागे। (तब ब्रह्महत्या बोली-) रे दुष्ट! खड़ा रह! इस प्रकार कहाँ भाग रहा है? आज मैं तुझे मूली की तरह (कच्चा) खा जाऊँगी।

भागत तिहि तें त्रिपुर ढँढोरा। किंतु न मिलि द्विज बधिकहुँ ठौरा॥
सक्र सभय तब उत्तर आसा। आए मानसरोवर पासा॥

उससे भागते हुए देवराज इन्द्र तीनों-लोकों में भटकते फिरे, किन्तु उन ब्रह्मघाती को कहीं पर भी शरण नहीं मिली। तब भयभीत हुए इन्द्र उत्तर दिशा में मानसरोवर के निकट आए।

बहुरि जोगबल तनु लघु लाई। प्रबिसे कमल नाल एक धाई॥

फिर योगबल से सूक्ष्म शरीर धारण करके; वे दौड़े और एक कमल-पुष्प की डण्डी में जा छिपे।

दोहा- **द्विजहत्या तब भ्रमरि तनु तहहिं लागि भनराइ।**
गतउपाय ते देखि अस बसे तहँहि नरराइ॥६१॥

हे नरेश! तब ब्रह्महत्या एक भ्रमरी का शरीर धारण करके, उस पुष्प के आस-पास ही मँडराने लगी। यह देखकर देवेन्द्र के पास (उससे बचने का) कोई उपाय न रहा और वे वहीं पर रहने लगे।

चौ.- **छुधा प्यास जब दुख अति दीन्हा। कमला तब उन्ह पालनु कीन्हा॥**
अस थिति लखि इंद्रासनु रीता। भए सकल सुर परम सभीता॥

जब उन्हें वहाँ भूख-प्यास ने अत्यंत अधीर कर दिया; तब पद्मासना भगवती लक्ष्मी ने उनका पालन किया। इस परिस्थिति में इन्द्रासन को रिक्त देखकर, समस्त देवता अत्यन्त भयभीत हो उठे।

मुनि तब मंत्र परसपर कीन्हा। नघुषहि बोलि इंद्रपदु दीन्हा॥
पै सुरपति पद नृप सो पाई। मनहि माँझ गा अति गरुआई॥

तब (सप्त) ऋषियों ने परस्पर मंत्रणा की और राजा नहुष को बुलाकर इन्द्रपद दे दिया। किन्तु मनुष्यों का वह राजा 'देवाधिपति का पद' पाकर; मन-ही मन अत्यन्त गर्वित हो उठा।

सचिहि देखि एक बार बिमोही। सठ कह रानि करन चहुँ तोही॥
पति अनुचरि सुनि हिय दुखमानी। कहन लागि समयोचित बानी॥

एक बार इन्द्रपत्नि शची को देखकर, अत्यन्त आसक्त हुआ वह मूर्ख उनसे कहने लगा कि, मैं तुम्हें अपनी रानी बनाना चाहता हूँ। यह सुनकर मन-ही मन दुःखी हुई पतिव्रता शची समयानुरूप वचन बोली।

बिप्र काँध सुखपाल धराई। चढ़ि नृप प्रथम मिलहु मुहि आई॥
तदुप मनोरथ पुरवउँ तोरा। कहत बिदुषि फिरि निज घर ओरा॥

हे राजन्! पहले तुम ब्राह्मणों के कन्धों पर पालकी रखवाकर, उस पर सवार होओ और मुझसे आकर मिलो; तत्पश्चात् मैं तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूँगी; ऐसा कहकर विदुषी शची अपने भवन की ओर लौट चली।

सुनत कामबस त्यागि बिबेका। नघुषु सजानिहुँ सिबिका ऐका॥

यह सुनते ही काम के वशीभूत हुए नहुष ने विवेक का त्याग करके; एक पालकी सजवा ली।

सो.- हठि द्विज काँध चढ़ाइ आपु चढ़ा पुनि तापर।
चला नीच अतुराइ ऐहिभाँति परनारि हित॥६२॥

फिर जबरदस्ती उसे ब्राह्मणों के कन्धों पर रखवाकर, स्वयं उसमें चढ़ गया; इस प्रकार पराई स्त्री को पाने की लालसा में वह नीच नहुष उतावला होकर चला।

चौ.- द्विज कबहुँ न अस भार उठावा। कछुकहि चलत तेन्हँ श्रमु पावा॥
लखि उन्ह मारेसि लात अभागा। सरप सरप पुनि अस कहि लागा॥

ब्राह्मणों ने पहले कभी इस प्रकार भार से नहीं उठाया था; अतः कुछ दूर चलकर ही, वे थक गए। यह देखकर उस अभागे ने उन्हें लात मारी और 'सर्प-सर्प' इस प्रकार कहने लगा।

तब सबिमान तेहिं महि ढाए। तमकि बिप्र कहि लाग रिसाए॥
सठहुँ रहा अहि भय देखराई। अब तुअ सरपहिं होउँब जाई॥

तब उसे विमान सहित पृथ्वी पर पटककर, क्रोध से तमतमाए हुए ब्राह्मण कहने लगे कि, रे मूर्ख! तू हमें सर्प का (झूठा) भय दिखा रहा है; जा, अब तू सर्प ही हो जा।

नघुषु खसान तेहि छिनु धरनी। अहि तनु भोगत भयउँ कुकरनी॥
इहाँ बृहषपति चितवत दुरगति। सुरपति कर भै द्रबित हृदय अति॥

उसी क्षण नहुष स्वर्ग से भूतल पर आ गिरा और सर्प का शरीर पाकर, अपने कुकर्म का फल भोगने लगा। इधर इन्द्र की दुर्गति हुई देखकर, बृहष्पति अपने हृदय में अत्यंत द्रवित हो उठे और

बिसरि जाग हयमेध कराई। उन्ह आपन सिष पीर मेटाई॥

इन्द्र को क्षमा करके, उनके हाथ से अश्वमेध यज्ञ कराकर, उन्होंने अपने शिष्य की समस्त पीड़ा हर ली।

परिछित पूरब भा एक राऊ। चित्रकेतु रहेउ जिन्हँ नाऊँ॥
धरमातम सो सुभ गुनखाना। हरि पद रति पुनि तासु महाना॥

हे परीक्षित! पूर्वकाल में एक राजा हुआ था; जिसका नाम चित्रकेतू था। वह धर्मात्मा और शुभ गुणों से सम्पन्न तो था ही; भगवान श्रीहरि के चरणों में उसका प्रेम भी अगाध था।

चढ़ि बिमान तिय सँग एक बारा। परा सिवहि सन करत बिहारा॥
सो सवँ उमहि गोद बैठाई। सिव भृगु आदिन्ह रहे सिखाई॥

एक बार वह अपनी स्त्री सहित विमान पर चढ़कर, विहार करता हुआ शिवजी के सन्मुख आ निकला। उस समय पार्वतीजी को गोद में बैठाकर, शिवजी भृगु आदि मुनियों को उपदेश दे रहे थे।

देखि मोहबस बिहँसि अभागा। सिवहि सुनावत अस कहि लागा॥
जगगुर महादेव इन्ह होई। देखिअ कसि बिधि लज्जा खोई॥

यह देखकर अज्ञान के वशीभूत हुआ वह अभागा हँसा और शिवजी को सुनाकर इस प्रकार बोला- देखो तो! देवों के देव और सम्पूर्ण जगत के गुरु होकर भी, इन्होंने किस प्रकार लज्जा त्याग दी है!

पूर सभा बिषयी नर नाई। राजहि तिय कहँ जाँघ बैठाई॥

भरी सभा में किसी विषयी पुरुष के समान, अपनी स्त्री को जङ्घा पर बैठाए विराजमान हैं।

दोहा- **बक्र उकुति सुनि निपट हँसे ससिसेखर न रिसान।**
पै दहेउँ हिय खलघनिहि सुनि पति निंद महान॥६३॥

चित्रकेतु की वक्रोक्ति पर भी चन्द्रशेखर शिवजी क्रोधित न होकर, केवल मुस्कुरा दिए। किन्तु पति की ऐसी घोर निन्दा सुनते ही, दुष्टों का नाश करनेवाली पार्वतीजी का हृदय जल उठा।

चौ.- **हम सम निलजन्हँ पंथ फिरावा। प्रभु कि दंडपति पदु एहि पावा॥**
हरि अरु अज निज सुतन्ह समेता। जानि परइ अह मोह निकेता॥

(तब उन्होंने कहा-) हे प्रभु! हम जैसे निर्लज्जों को सन्मार्ग पर लाने के लिये; क्या इस मूर्ख ने धर्मराज का पद पाया है? लगता है! पुत्रों सहित ब्रह्माजी व श्रीविष्णु अज्ञान के घर हैं;

तबहि त होत बुझावनिहारे। रह करबद्ध सिवहि सन ठारे॥
मंगल कर जे मंगल करई। हरि बिरंचि जिन्हँ पद उर धरई॥

तभी तो समझानेवाले होकर भी, वे सब हाथ जोड़े शिवजी के सन्मुख खड़े रहते हैं। जो मङ्गल का भी मङ्गल करनेवाले है तथा ब्रह्मा और विष्णु भी जिनके चरणों में अपना मन लगाए रखते हैं,

रे बिमूढ़ उन्ह जगपितु केरी। तैं कस करि असि निंद घनेरी॥
गरुअ बसइ तव उर जनु रोगा। तुअँ न हरिहिं पद बसिबे जोगा॥

रे महामूर्ख! तूने उन्हीं जगत्पिता महादेव की ऐसी घोर निन्दा कैसे की? अहङ्कार तेरे हृदय में किसी रोग के समान बसा हुआ है; अतः तू भगवान श्रीहरि के चरणों में बसे रहनें योग्य नहीं है।

तातें होहु निसाचर जाई। उचित दंड एहि तव अधमाई॥
चित्रकेतु सोइ गिरिजहि सापा। भयउँ बृत्त सुर हित संतापा॥

इसलिये तू जाकर असुर हो जा; तेरी अधमता के लिये, यही दण्ड उचित है। वही चित्रकेतु पार्वतीजी के श्राप से, देवताओं को सन्ताप देनेवाला वृत्तासुर हुआ।

जय अरु बिजय केर उद्धारा। भयउँ भाँति जस हरि अवतारा॥
श्रुति पुरान कह जेहिं सचाऊ। सुनु सो कथा बिमल अब राऊ॥

हे परीक्षित! जय-विजय के उद्धार के लिये, जिस प्रकार श्रीहरि का अवतार हुआ था और वेद व पुरान, जिसे बड़े चाव से गाते हैं, अब तुम (भगवान की) वह निर्मल कथा सुनो।

अकसर रमा उमगि अनुरागा। रहि प्रभु भुजन्हि देत अँगरागा॥
तब लखि पतिहि गात मृदुताई। मनहि तरकि लगि ते अचराई॥

प्रेम के वशीभूत हुई भगवती लक्ष्मी एक बार श्रीहरि की भुजाओं पर अङ्गराग लगा रही थी। उस समय अपने पति के अङ्गों की कोमलता का अवलोकन करके, चकित हुई वे मन-ही मन सोचने लगी;

जस पदचाप नबीन बिहाना। धरे रहहि मृदु खगकुल गाना॥
ममताजुत जस परस जननि कर। ढारहि मृदु प्रमोद सिसु अंतर॥

जिस प्रकार नवीन सवेरे के आगमन की आहट, अपने साथ पक्षियों का मृदुल कलरव लिये रहती है; जिस प्रकार माता का ममत्वयुक्त स्पर्श, शिशु के हृदय में कोमल आनन्द उत्पन्न करता है;

सोउ मृदुताजुत इन्ह भुज माहीं। अलपाधिक बल अहहि कि नाहीं॥
जद्यपि बल इन्ह बेद बखाना। तदपि होति मुअँ संक महाना॥

वैसी ही कोमलता से युक्त, श्रीहरि की इन भुजाओं में, थोड़ा-बहुत बल है भी या नहीं? यद्यपि वेदों ने इनके बल का बखान किया है, तथापि मुझे बड़ा सन्देह होता है।

दोहा- उन्ह मानस अस संसय रेख उमगि जेहिं काल।
भेद सकल जाना तबहि हिय सरबग्य भुआल॥६४॥

हे परीक्षित! जिस समय भगवती महालक्ष्मी के मन में संशय की यह रेखा उत्पन्न हुई; उसी समय सर्वज्ञ भगवान श्रीहरि सारा भेद जान गए।

चौ.- तेन्हँ हृदय लखि संसय भारी। मेटन हरि अस लाग बिचारी॥
सुभट अखिल जग अस केउ नाहीं। एकौ छिनु जे रह मम पाहीं॥

उनके हृदय के इस महान अज्ञान को देखकर, श्रीहरि उसके निवारण के लिये इस प्रकार विचार करने लगे कि, समस्त संसार में ऐसा कोई योद्धा नहीं है, जो युद्ध में क्षणभर भी मेरे सम्मुख टिक सके।

है केवल अस मम पटपाला। सहि सक मोर बेग बिकराला॥
तिन्हहि असुर करि पुनि रनु मारी। रमहिं देखाउब भुज बल भारी॥

केवल मेरे द्वारपाल (जय-विजय) ही ऐसे समर्थ हैं, जो मेरे प्रचण्ड वेग को सह सकते हैं। अतः उन्हें ही दैत्य बनाकर और फिर युद्ध में मारकर, मैं लक्ष्मी को अपना महान बाहुबल दिखलाऊँगा।

नक्खि किए अस मुख धरि हासा। भए जोग बस रमानिवासा॥
होनिहार जनु लच्छ बिचारी। अवसर तकहिं धीर हिय धारी॥

ऐसा निश्चय करने के उपरान्त अपने अधरों पर मुस्कान लिये, भगवान रमानिवास योगनिद्रा में लीन हो गए; जैसे अपने लक्ष्य का विचार करके, होनी (भावि घटना) हृदय में धैर्य धरे उचित अवसर की प्रतीक्षा कर रही हो।

इहाँ लच्छि संसय के छाहा। करत भई तियधरम निबाहा॥
एहिबिधि राउ बिगत कछु काला। हरि दरसन पृह धरे बिसाला॥

इधर भगवती महालक्ष्मी भी अपने सन्देह की छाया में पत्नि-धर्म का निर्वाह करने लगी। हे परीक्षित! इस प्रकार कुछ काल बीतने के उपरान्त, श्रीहरि के दर्शनों की अपार इच्छा लिये हुए,

दोहा- सनक सनन्दन सनातन अरु मुनि सनतकुमार।
पाइ सुप्रेरन हरिहि कर आए बैकुँठ द्वार॥६५॥

सनक, सनन्दन, सनातन व सनत्कुमार, श्रीहरि की-ही सत्प्रेरणा से वैकुण्ठ के द्वार पर पधारे।

चौ.- गति सर्बत्र निषेध न ताहीं। पै हरि आनहिं रचि उर माहीं॥
जब मुनि हरिपुर प्रबिसन लागे। भए बिजय जय जामिक आगे॥

वे त्रिलोक में सब जगह आ-जा सकते थे; उन्हें कहीं भी निषेध न था; किन्तु श्रीहरि ने मन में कुछ और ही ठान रक्खा था। जब वे मुनि वैकुण्ठ में प्रविष्ठ होने लगे; तभी भगवान के द्वार पालक जय-विजय उनके सामने हो गए।

प्रस्नदृष्टि मुनि तरकन लागे। बोले दुहुँ हरि मायहि पागे॥
इहाँ बिनहि जगदीस रजाई। तव प्रबेस अनुचित मुनिराई॥

(उनके इस व्यवहार पर) वे मुनि प्रश्नयुक्त दृष्टि से, उन्हें देखने लगे; तब भगवान की माया के वशीभूत हुए वे दोनों द्वारपाल बोले- हे मुनियों! जगदीश्वर श्रीहरि की इच्छा के बिना, आपका यहाँ (वैकुण्ठ में) प्रवेश अनुचित है।

सुनि अस मुनि अपि माय भुलाने। कहा तेन्हँ एहिभाँति रिसाने॥

यह सुनते-ही वे मुनि भी भगवान की माया के वशीभूत हो गये और क्रुद्ध होकर, उन्होंने उनसे इस प्रकार कहा-

रे खल तैं दुहुँ गुर पद पाई। गुरता कइ मरजाद बिहाई॥
श्रीपति आपु न कबहुँ हमारा। सरिस तुम्हार कीन्ह प्रतिकारा॥

रे दुष्टों! बड़ा पद पाकर, तुम दोनों बड़ेपन की मर्यादा भुला चुके हो। तुम्हारे जैसा तो स्वयं लक्ष्मीपति ने भी कभी हमारा प्रतिकार नहीं किया है।

ते त द्विजन्हँ निज सनमुख पाई। करहिं प्रनाम सदा सिरु नाई॥
पै तुम दास होत अपि तासू। चढ़े बिप्र सन दम्भ अकासू॥

वे तो ब्राह्मणों को अपने सामने पाते ही, सदैव सिर नवाकर उन्हें प्रणाम करते हैं। किन्तु तुम उनके दास होकर भी, हम ब्राह्मणों के सन्मुख अहङ्कार के आकाश पर चढ़े हुए हो।

दोहा- **अब खसि तहँ ते जनम त्रय असुर होहु महि जाइ।**
अघ तुम्हार बर दंड एहि बरजहु पुनि मुनि पाइ॥६६॥

अब अपने उस दम्भ के आकाश से गिरकर, तुम दोनों तीन जन्म तक पृथ्वी पर असुर होओ; तुम्हारे अपराध का यही दण्ड उचित है; अब पुनः किसी मुनि को पाकर रोकना।

चौ.- **सुनि अस बिषम साप मुनि केरा। बिनसा उन्ह अभिमान घनेरा॥**
उभय परे पद पुनि मुनि केरे। बिनवत भै अघ प्रबोध प्रेरे॥

मुनियों का ऐसा कठोर श्राप सुनते ही, उनका महान अहङ्कार नष्ट हो गया। तब अपराधबोध से प्रेरित हुए वे दोनों, उन मुनियों के चरणों पर गिर पड़े और (इस प्रकार) प्रार्थना करने लगे-

मुनि यह साप न अपितु कुभागा। जे हमार जड़पनु तें जागा॥
न त इहँ बसहिं गुनधि भगवाना। इहाँ उपजि सक कस अभिमाना॥

हे मुनिराज! यह श्राप नहीं; अपितु हमारा दुर्भाग्य है, जो हमारी ही मूर्खता से उत्पन्न हुआ है। अन्यथा यहाँ गुणों के धाम भगवान स्वयं विराजते हैं; भला! यहाँ अभिमान कैसे उत्पन्न हो सकता है?

बत्स सत्य सबबिधि तव बचना। यह कौतुक भगवंतहि रचना॥
न त अंतर सबभाँति हमारा। सदय जहँ न रिस केर अँधारा॥

(तब मुनियों ने कहा-) हे वत्स! तुम्हारा वचन सब प्रकार से सत्य है; यह कौतुक भगवान ही का रचाया है। अन्यथा हमारा अंतःकरण भी सदैव ममतायुक्त रहता है, जहाँ क्रोधरूपी अन्धकार है ही नहीं।

पै अब टरहिं न साप कठोरा। सुनि परिताप भयउँ तिन्ह घोरा॥
तीनि बार निसिचर तनु पाई। होउब जग हित तैं दुखदाई॥

किन्तु अब यह कठोर श्राप टल नहीं सकता; यह सुनकर उन्हें घोर सन्ताप हुआ। (मुनियों ने पुनः कहा-) अब तुम तीन जन्म तक दैत्य का शरीर पाकर, संसार को दुःख दोगे।

दोहा- **तब सुर नर मुनि धरनि हित अवतरिहहिं भगवान।**
मर्दि तोहि पुनि प्रति जनम करिहिं तोर कल्यान॥६७॥

तब देवताओं, मनुष्यों, मुनियों और पृथ्वी के हित के लिये, भगवान श्रीहरि अवतार लेंगे और फिर वे ही प्रत्येक जन्म में तुम्हें मारकर, तुम्हारा कल्याण करेंगे।

चौ.- **मुनि आगवन जानि तेहिं काला। अए पयादेहि द्विज प्रतिपाला॥**

सादर पुनि उन्ह पद सिरु नाई। कहत भए अस खेद जताई॥

उस समय मुनियों को आया हुआ जानकर, ब्राह्मणों का पालन करनेवाले भगवान श्रीहरि पैदल ही (द्वार पर) आए और उन्हें आदरपूर्वक सिर नवाकर, खेद व्यक्त करते हुए इस प्रकार कहने लगे-

मोर माय कइ दारुन धारा। इन्ह कर सरान तव प्रतिकारा॥
तातें इन्हहिं न कछु अपराधा। छमहुँ एहि करि कृपा अगाधा॥

हे मुनिराज! मेरी ही माया की कठिन धारा ने, इनके हाथों आपका प्रतिकार करवाया है। इसलिये इनका कुछ भी अपराध नहीं है; आप अपनी विशेष अनुकम्पा से, इन्हें क्षमा कर दीजिये।

सापित तब निसिचर तनु पाई। कस्यप दिति सुत भै नरराई॥
समर तेहिं इंद्रादिक जीते। जग अघटित अघ सब करि बीते॥

हे परीक्षित! तब वे श्रापित जय-विजय, दैत्यशरीर पाकर, कश्यप व दिति के पुत्र हुए। उन्होंने युद्ध में इन्द्रादि देवताओं को जीत लिया और वे सब पाप भी कर डाले, जो संसार में पहले कभी न हुए थे।

सुनि परिछित अति अचरज मानी। पूछा मुनि सन अस मृदु बानी॥
मुनि कस्यप त तपस्वि महाना। अहहि बिरंचि केर संताना॥

यह सुनकर महाराज परीक्षित् ने अत्यन्त चकित होकर, शुकदेवजी से कोमल वाणी में इस प्रकार पूछा- हे मुनिराज! महर्षि कश्यप तो महान तपस्वी हैं और ब्रह्माजी की सन्तान भी हैं;

तो अस असुरन्हँ तात होन कर। उन्ह किउँ पावा दंड भयंकर॥
परिछित कस्यप कइ दुइ नारी। दिति अरु अदिति पातिब्रतधारी॥

तो फिर ऐसे दैत्यों के पिता होने का भयङ्कर दण्ड, उन्होंने किस कारण पाया? हे परीक्षित! कश्यपजी की दिति और अदिति नाम की दो पतिव्रता स्त्रियाँ थी;

मुनि अदितिहिं तें सुर उपजाए। दिति तें देवद्रोहि बहु पाए॥

जिनमें आदिति से मुनि ने देवताओं को उत्पन्न किया और दिति से (सन्तान के रूप में) कई दैत्य पाए।

दोहा- **सौति सुतहि लखि इंद्रपद दिति हिय लोटहि साँप।**
तातें एक दिनु पति समुख कहि लगि हिय संताप॥६८॥

अपनी सौत के पुत्र को इन्द्रपद पर देखकर, दिति के हृदय पर साँप लोटते थे। इसी कारण वह एक दिन अपने पति मुनि कश्यप के सम्मुख अपने मन की पीड़ा कहने लगी-

चौ.- **पिय मैं चहुँ अस सुत उपजाई। बल जे बिबुधन्हँ तें अधिकाई॥**
दिति बच भाबि कलह अनुमानी। चिंतातुर कंपे मुनि ग्यानी॥

हे स्वामी! मैं ऐसा पुत्र उत्पन्न करना चाहती हूँ, जो बल में देवताओं से भी बढ़कर हो। दिति के वचनों में (छिपे हुए) भावी कलह का अनुमान करके, वे ज्ञानी मुनि चिन्ता से काँप उठे।

ते धरमातम रहे उदारा। उन्ह अभीष्ट न कलह परिवारा॥
पै दिति सेव सुमिरि मन माहीं। दीन्हा बच पृह पुरवन ताहीं॥

वे स्वभाव से ही धर्मात्मा और उदार थे; इसलिये वे अपने परिवार में कलह नहीं चाहते थे; किन्तु मन में दिति की पतिसेवा का विचार करके, उन्होंने उसे उसकी इच्छा पूर्ण करने का वचन दे दिया।

तब बारक करि रितु असनाना। संध्यउँ गइ दिति पति समुहाना॥
पुनि कह सौंत तनय सुख जोरे। भोगत सरग खटक दृग मोरे॥

तब एक दिन ऋतु स्नान करके, दिति संध्या के समय पति के पास गई और बोली कि, "सौत के पुत्र समस्त सुखों से युक्त होकर, स्वर्ग राज्य भोग रहे हैं"; यह बात मेरे नेत्रों को खटकती है।

पिय प्रभाउ बढ़ि उन्ह दिनु राता। होत सौंति हित जब सुखदाता॥
तब तिहि सन लखि निज लघुताई। जरहि मोर आतम सकुचाई॥

हे प्रियतम! दिन-रात बढ़ता हुआ उनका प्रभाव, जब मेरी सौत को सुख पहुँचाता है; तब उनके सन्मुख अपनी लघुता का स्मरण करके, लज्जा से मेरी आत्मा जल उठती है।

सो पृह बेगि नाथ मम सारी। अंतरदाह हरहुँ मम भारी॥
सुनि प्रबुद्ध तिहि लाग बुझाई। साँझ उचित जनि गरभु धराई॥

अत: हे नाथ! आप शीघ्र ही मेरी इच्छा पूर्ण करके, मेरे हृदय का महान दाह हर लीजिये। यह सुनकर महामनस्वी कश्यप उसे समझाने लगे- हे प्रिये! संध्या का समय गर्भधारण के लिये उचित नहीं होता।

दोहा- **प्रात तें पूरब चारि घरि साँझउ निसि घरि चार।**
होत समउ प्रभु भजन कर बरजित बंस प्रसार॥६९॥

प्रातःकाल से पूर्व चार घड़ी और संध्या काल के पश्चात् चार घड़ी (रात्रि तक) का समय, भगवान के भजन के लिये होता है; उस समय वंशवृद्धि का प्रयत्न वर्जित है।

चौ.- **तातें धीर धरहुँ हिय थोरा। पुरवहुँ अवसि मनोरथ तोरा॥**
पै डाहातुर गहि मुनि चीरा। दिति हठ करन लागि गम्भीरा॥

इसलिये अपने तुम हृदय में थोड़ा धैर्य धारण करो; मैं तुम्हारा मनोरथ अवश्य ही पूर्ण करूँगा। किन्तु सौतियाडाह से अधीर हुई दिति, अपने पति के वस्त्र पकड़कर अत्यधिक हठ करने लगी।

तब निज तेज बिबस मुनिराई। दीन्ह दितिहि कर गरभु बसाई॥
दिति अधरम कीन्हा तैं जोई। तुहि जुग असुर होइ फलु सोई॥

तब विवश हुए उन मुनि ने अपना तेज, दिति के गर्भ में स्थापित कर दिया और बोले- हे दिति! तुमने जो अधर्म किया है, उसके परिणामस्वरूप तुम दो दैत्यों को उत्पन्न करोगी।

दुरदम उभय जगत दुखदायक। होइहि क्रम क्रम निसिचरनायक॥
बहुरि भरिहि अघ घट जब तासू। हरि तब करिहहि तेन्हँ बिनासू॥

सम्पूर्ण जगत को दुःख देनेवाले वे दोनों दुर्दान्त योद्धा; बारी-बारी से दैत्यों के सम्राट् होंगे। फिर जब उनके पापों का घड़ा भर जाएगा; तब भगवान श्रीहरि उनका वध करेंगे।

दिति सुनि सिरु धुनि लगि पछिताई। तब प्रबोधि मुनि धीर बँधाई॥
अब सुनु चरित तासु बिस्तारा। सहित बराह नृसिंह अवतारा॥

यह सुनकर दिति सिर पीटकर पछताने लगी; तब मुनि ने उसे उत्तम रीति से समझाकर धैर्य बँधाया। हे राजन! अब आप वाराह और नृसिंह अवतार सहित इस सम्पूर्ण कथा को विस्तारपूर्वक सुनिए।

सत सम्बत करि गरभु निवासा। उपजे दुहुँ जनु उपज निरासा॥
उन्ह जन्मतहि जगत चहुँ ओरा। लाग होन असगुन अति घोरा॥

सौ वर्ष तक दिति के गर्भ में निवास करके, वे दोनों (जय-विजय) ऐसे उत्पन्न हुए; जैसे निराशा उत्पन्न होती है। उनके जन्म लेते-ही संसारभर में चारों ओर महाभयङ्कर अपशकुन होने लगे।

मेदिनि उपजि अराजकताई। दया हिंस कर गरत समाई॥
परइ उबउ दिनु चोर घनेरे। उपजे लच्छन सब कलि केरे॥

पृथ्वी पर सब ओर अराजकता छा गई और दया का भाव हिंसा के गर्त में समा गया। भयङ्कर चोर दिन दहाड़े ही चोरियाँ करनें लगे; इस प्रकार कलियुग के समस्त लक्षण उत्पन्न हो गए।

दोहा- पितु कस्यप कइ बिनय पर लखि दुहुँ प्रकृति प्रभाउँ।
पुरटकसिपु अरु पुरटदृग अज उन्ह दीन्हें नाउँ॥७०॥

पिता कश्यप की विनती पर ब्रह्माजी ने उन दोनों की प्रकृति व प्रभाव देखा और उन्हें 'हिरण्याक्ष' व 'हिरण्यकश्यप' यह नाम दिए।

चौ.- जब उभयन्हँ पाई तरुनाई। लागे सुर नर मुनिन्हँ सताई॥
दुर्गम महामहीधर नाई। हाटकाच्छ बपु बरनि न जाई॥

जब उन दोनों ने युवावस्था प्राप्त की, तब वे देवताओं, मनुष्यों और मुनियों को सताने लगे। हिरण्याक्ष का शरीर किसी महाकाय पर्वत के समान दुर्गम था; जिसका वर्णन नहीं हो सकता था।

जन्मजात दुहुँ अरि हरि केरे। खोजत फिर उन्ह जतन घनेरे॥
परिछित सपच्छ परबत भारे। रहे जे मघवायसु महि धारे॥

वे दोनों जन्म से ही भगवान श्रीहरि के द्रोही थे और अनेक यत्न करते हुए, वे उन्हें खोजते फिरते थे। हे परीक्षित! पङ्खयुक्त महान पर्वत, जो इन्द्र के आदेश पर पृथ्वि को धारण किये रहते थे;

भुवि तजि तें नभ पच्छिम आसा। गवने अकसर बारि बिलासा॥
कनकदृगहुँ तहँ सम्मुख पाई। गिरि कहि लग अस तिन्ह उकसाई॥

वे एक बार पृथ्वी को आकाश में ही छोड़कर, जलविहार करने के लिये पश्चिम दिशा की ओर गए। वहाँ हिरण्याक्ष को अपने सम्मुख पाकर, वे पर्वत उसे भड़काकर इस प्रकार कहने लगे।

सुर समाज जे बंधु तिहारा। उन्ह तिहुँपुर निज राज पसारा॥
महितल होत होम जे नाना। उन्हँ ते मिल बल तेन्हँ महाना॥

देवगण, जो तुम्हारे सहोदर हैं, उन्होंने तीनों-लोकों में अपना राज्य स्थापित कर रक्खा है और भूतल पर जो अनेक प्रकार के यज्ञ किये जाते हैं, उनसे उन्हें महान बल प्राप्त होता है।

सुनि खल नभ ते महिहि चुराई। सचुप जाइ पाताल दुराई॥
अस लखि सुर अज भए दुखारी। हरिहि कहा निज संकट भारी॥

यह सुनकर, उस दुष्ट ने सौरमण्डल से पृथ्वी ही चुरा ली और चुपचाप जाकर उसे पाताल में छिपा दिया। यह देखकर दुःखी हुए ब्रह्माजी व देवताओं ने भगवान श्रीहरि से अपनी घोर विपत्ति कह सुनाई।

किए हेतु तब भुवि उद्धारा। अजहि नाक कर दाहिन द्वारा॥
मसक सरिस धरि बपुष बराहूँ। उपजे नारायन नरनाहू॥

हे परीक्षित! तब पृथ्वी का उद्धार करने के लिये, ब्रह्माजी की नाक के दाहिने छिद्र से, मच्छर के समान छोटे से वाराह का शरीर धारण करके, भगवान श्रीमन्नारायण प्रकट हुए।

छिन महुँ बढ़ि सो सूकर आला। दिगसिंधुर सम भा बिकराला॥

वह विचित्र शूकर क्षणभर में ही बढ़कर, किसी महागजराज के समान विकराल हो गया।

दोहा- उन्नत अगनित जोजन जलद बपुष भुज चारि।
गर्जहि नाद प्रचंड जनु प्रलय जलद भयकारि॥७१॥

चार भुजाओं से युक्त उनका वह शरीर, जलयुक्त मेघ के समान श्यामवर्ण और कई योजन ऊँचा था। वे प्रचण्ड ध्वनि से गरज रहे थे, मानो प्रलयकाल के भयानक मेघ हों।

चौ.- स्वेत तीछ उन्ह दसन कठोरा। अरध इन्दु सम मुख दुहुँ ओरा॥
भुज प्रलंब अति बिस्तृत छाती। देखिअत कालरूप आराती॥

उनके दाँत श्वेत, तीखे व कठोर थे, जो अर्द्धचन्द्राकार हुए-से मुख के दोनों ओर फैले थे। उनकी भुजाएँ विशाल व छाती अत्यन्त चौड़ी थी; वे देखने में शत्रु के लिये कालरूप प्रतीत हो रहे थे।

बिग्रह बिषम बिष्नु अस लाई। गर्जत दारुन भय उपजाई॥
गै पाताल धरनि उद्धारा। सुर बिरंचि करि लग जयकारा॥

ऐसा कठिन विग्रह धारण करके, अपनी गर्जना से कठोर भय उत्पन्न करते हुए भगवान श्रीविष्णु, पृथ्वी के उद्धार के निमित्त पाताल लोक को गये; यह ब्रह्मादि देवगण उनकी जय-जयकार करने लगे।

हेमदृगहि उत नारद प्रेरा। तेपि चला करि कोप घनेरा॥

पातालहि इत जग्यबराहू। महिहि निरखि दुख कीन्ह अगाहू॥

उधर नारदजी ने जाकर हिरण्याक्ष को उकसाया; जिससे अत्यन्त क्रुद्ध हुआ वह भी पाताल को चला। इधर पाताल में पहुँचे भगवान यज्ञवाराह ने पृथ्वि को देखा; तो उन्हें महान दुःख हुआ।

पुनि बखानि निज पनु गम्भीरा। उन्हँ बँधानि माधवि कहँ धीरा॥
तदुप रदोपर ताहिं उठाई। फिरे महाबल कछु गरुआई॥

फिर (पृथ्वि की रक्षा सम्बंधी) अपनी महान प्रतिज्ञा का बखान करके; उन्होंने पृथ्वी को धैर्य बँधाया। तदुपरान्त उसे अपने अर्द्धचंद्राकार दाँतों पर धारण करके; कुछ गर्वित हुए से, वे महाबली वाराह (पाताल से आकाश की ओर) लौट पड़े।

धरनि धरनि बिचरनि रव करनी। मेहबरनि तनु कर रिस जरनी॥
देखिअत लाग मत्त गज भारी। बिचरि रहा बन कंज उखारी॥

उनका पृथ्वी को धारण करना, चलना, गर्जन करना और उनके मेघतुल्य श्यामवर्ण शरीर का क्रोध से जलना इत्यादि (लक्षणों से युक्त वे) देखने पर ऐसे प्रतीत होते हैं; जैसे कोई मतवाला गजराज कमल का पुष्प उखाड़कर, वन में विचरण कर रहा हो।

दोहा- **धरनि धरे हिरन्याछ उन्ह जल पर आवत पाइ।**
पंथ रोधि भा उन्ह समुख पुनि कह परम रिसाइ॥७२॥

जब हिरण्याक्ष ने उन्हें पृथ्वी को धारण किये, (समुद्र के) जल से बाहर की ओर आते हुए देखा, तो वह मार्ग रोककर, उनके सम्मुख खड़ा हो गया और अत्यन्त क्रुद्ध होकर बोला-

चौ.- **रे सठ जे मम पितुमह थाती। तिहिं हरि तें कस चोरन्हँ भाँती॥**
तोहि कि धौं न बिदित बलु मोरा। गदाघात कहि कीन्ह कठोरा॥

अरे मूर्ख! जो मेरे पितामह की धरोहर है, उसी पृथ्वी का तूने चोरों की भाँति हरण कैसे किया? क्या तुझे मेरा पराक्रम विदित नहीं; ऐसा कहकर उस दुष्ट ने उन पर गदा से कठोर प्रहार किया।

तब निज माय धरनि नभ थापी। फिरे समुख तिन्ह खल परितापी॥
संखनाद करि बहुरि महाना। छिनु महुँ उन्ह त्रिलोक कंपाना॥

तब अपनी माया से पृथ्वी को आकाश पर स्थापित करके, दुष्टहन्ता वाराह उसके सामने लौट आए। फिर महान ध्वनि से शङ्खनाद करके, क्षणभर में ही उन्होंने तीनों लोकों को कम्पायमान कर दिया।

खल कीन्हा तब सक्ति प्रहारा। हरि हरि जिहिं करि लघु हुंकारा॥
निरखि महाभट गदा उठाई। भिरा परम रिस उन्ह तें धाई॥

तब उस दुष्ट ने शक्ति का प्रहार किया; जिसे साधारण-सी हुंकार से ही श्रीहरि ने निष्फल कर दिया। यह देखकर उस महायोद्धा ने गदा उठाई और दौड़कर अत्यन्त क्रोधपूर्वक उनसे जा भिड़ा।

गदा जुद्ध जब उन्ह गहराना। गै बिरंचि तब प्रभु समुहाना॥

पुनि कह बधिअ तुरत एहि नाथा। सुर मुनि जातें होहि सनाथा॥

जब उन दोनों में भीषण गदा युद्ध होने लगा; तब ब्रह्माजी भगवान वाराह के पास गए और बोले- हे नाथ! आप शीघ्र-ही इसका वध कर दीजिये; ताकि देवता व मुनि निर्भय हो जायँ।

दोहा- **तब प्रभु खल हिय लच्छ करि भीषन गदा प्रहारि।**
ढनमनेउ जिवगत दितिज मुख लगि सोनित धारि॥७३॥

तब प्रभु ने उस दुष्ट के हृदय को लक्ष्य करके, अपनी भीषण गदा से प्रहार किया; जिससे वह दुष्ट दैत्य प्राणहीन होकर गिर पड़ा और उसके मुख से रक्त की धारा बह निकली।

चौ.- **जातुधान कर लखि संघारा। बरषि लाग सुर सुमन अपारा॥**
महि बिरंचि हिय अति हरषाए। लागे हरिहि बिमल जसु गाए॥

दैत्य का विनाश हो गया देखकर देवता भगवान यज्ञवाराह पर अपार पुष्पवृष्टि करने लगे और पृथ्वी व ब्रह्माजी मन-ही मन हर्षित होकर, भगवान श्रीहरि का निर्मल यश गाने लगे।

इत भूधरन्हँ सुमिरि अपराधा। सुरपति हिय भइ खीझ अगाधा॥
तब उन्ह आपन बज्र उठाई। गिरिन्हँ पंख छेदे महि लाई॥

इधर पर्वतों का अपराध स्मरण करके, देवराज इन्द्र के हृदय में अत्यन्त खीझ हुई। तब उन्होंने पर्वतों को पृथ्वी पर स्थापित करके, अपना वज्र उठाया और उनके पङ्ख काट दिए।

रहा एक अस गिरि मैनाका। ब्यापा जाहि न कुलिसहि साका॥
नृप भ्रातहि बध सुनि बलवाना। हेमकसिपु हिय परम रिसाना॥

केवल मैनाक पर्वत ही ऐसा शेष बच गया था; जिस पर वज्ररूपी विपत्ति नहीं पड़ी। हे परीक्षित! अपने भाई की मृत्यु हुई सुनकर, महाबली हिरण्यकश्यप मन में अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा।

पुनि बिलपत परिजन सन जाई। कहन लाग अस धीर बँधाई॥
प्रिय परिजन परिहरि सब पीरा। एहि छिनु हिय धरु धीर गभीरा॥

फिर अपने बिलखते हुए परिजनों के पास जाकर, वह उन्हें धैर्य बँधाकर इस प्रकार बोला- हे प्रिय परिजनों! तुम समस्त शोक का त्याग करके, इस समय हृदय में गहन धैर्य धारण करो।

अरि सन समर बीरगति पाई। सुभट गयउ कुल जसुहि बढ़ाई॥
अब करि सोक मरनु पर ताहीं। बीरगतिहि अपमानहुँ नाहीं॥

शत्रु के सन्मुख युद्ध में वीरगति पाकर, वह उत्तम योद्धा कुल की कीर्ति बढ़ा गया है। अब उसकी मृत्यु पर शोक करके, उसकी वीरगति का अपमान न करो।

दोहा- **तनु अनित्य आतम अमर सत्य अमिट यह मानि।**
करिअ पारथिव दाहकृत करि कुल बिधि सनमानि॥७४॥

"शरीर नश्वर और आत्मा अमर है", इस सत्य को अचल मानकर, सम्मानपूर्वक कुल की रीति का निर्वाह करके; उसके पार्थिव शरीर का दाह संस्कार कर दो।

चौ.- **ऐहिभाँति तिहि बरनत ग्याना। तनु प्रति उन्ह घन मोह छराना॥**
तब सब मिलि धरि धीर अगाहा। कीन्ह कनकलोचन कर दाहा॥

इस प्रकार ज्ञान का बखान करते हुए उसने मृत शरीर के प्रति अपने स्वजनों का मोह छुड़ा दिया। तब अत्यन्त धैर्य धारण करके, सबने मिलकर हिरण्याक्ष का दाह संस्कार किया और

आपु लिए हरि बध संकलपा। चला राजभोगन्ह गनि अलपा॥
बहुरि आइ मंदराचल ऊपर। अज तें लहिबे मन इच्छित बर॥

स्वयं वह (हिरण्यकश्यप) राजभोगों को तुच्छ समझकर, अपने शत्रु श्रीहरि के वध का सङ्कल्प लिये चला और मन्दराचल पर्वत पर आकर, ब्रह्माजी से मनोवाञ्छित वर पाने के लिये-

संजम साधि बिकार बिसारी। निसि दिनु तप करि लग अति भारी॥
इहाँ देवपति अवसरु पाई। जातुधान पुर कीन्हि चढ़ाई॥

विकारों से मुक्त हुआ वह संयम साधकर, दिन-रात घोर तपस्या करने लगा। इधर देवेन्द्र ने अवसर पाते ही, हिरण्यकश्यप की राजधानी पर आक्रमण कर दिया।

तदुप जीति उन्ह अलपहि रारी। अरिहि भवन पैठे दनुजारी॥
तेन्हँ तहाँ अरितिय बरिआई। हरि पुनि चले बिमान चढ़ाई॥

तदुपरान्त एक सामान्य-सा सङ्घर्ष करके, उन्हें जीतकर, असुरशत्रु इन्द्र उसके भवन में जा घुसे। वहाँ उन्होंने हिरण्यकश्यप की स्त्री को बलपूर्वक हर लिया और उसे अपने विमान में बैठाकर चले।

रहि कयाधु सो पतिब्रत धारी। हेमकसिपु कइ अति प्रिय नारी॥
पंथ जात नारद तिन्हँ भेंटे। कह किहु खात काल कर खेटे॥

कयाधु नाम की वह स्त्री पतिव्रता और हिरण्यकश्यप की अत्यन्त प्रिय पटरानी थी। तभी मार्ग में जाते हुए इन्द्र को नारदजी मिले और बोले- हे इन्द्र! तुम काल को क्यों ललकार रहे हो?

तिय अपमान किए एहिंभाँती। तुम किहु होत निजहि आराती॥

एक नारी का इस प्रकार अनादर करके, तुम स्वयं ही अपने शत्रु क्यों हो रहे हो?

दोहा- नारि आदरै जोग नित निज अथवा पर होइ।
भए तासु दुख कारन फरहि अस न जग कोइ॥७५॥

स्त्री सदैव आदरणीय होती है; फिर वह स्वयं अपनी पत्नि हो या किसी और की; उसके दुःख का कारण होकर भी समृद्धि पा ले; ऐसा इस संसार में ऐसा कोई नहीं।

चौ.- तिय ए पति अनुचरि बलवाना। बसइ प्रलय जिन्हँ भृकुटि महाना॥
बिसरु न तव सुभाग सिसु देहा। अहहि ऐहि छिनु इन्ह कुख गेहा॥

हे इन्द्र! यह वह बलवती पतिव्रता नारी है; जिसकी महान भृकुटि में प्रलय का निवास है। फिर तुम इस बात को भी न भूलो कि, शिशु का शरीर धरे स्वयं तुम्हारा सौभाग्य, इसके गर्भरूपी भवन में बैठा हुआ है।

सो सुर गरुअइ राखु बनाई। फिरु गृह इन्ह तें छमा जुड़ाई॥
अघ प्रबोध भा तब सुरराजहिं। गै अरितियहि सौंपि मुनिराजहिं॥

अतः अपनी देवमर्यादा की रक्षा करते हुए, इनसे क्षमा मागों और घर लौट जाओ। तब देवराज को अपने पाप का बोध हुआ और वे कयाधु को नारदजी के हाथ सौंपकर चले गए।

भूप गरभु सुमिरत हरि नाऊँ। सिसु प्रभाउँ बूझे मुनिराऊ॥
तब कयाधु कहँ करि निज संगा। चले तपस्थलि सहित उमंगा॥

हे परीक्षित! माता के गर्भ में श्रीहरि का स्मरण करते हुए उस बालक का प्रभाव, नारदजी समझ गए। तब कयाधु को अपने साथ किये, वे उत्साहपूर्वक तपोवन की ओर चले।

तहाँ एक मुनि आश्रम चाखी। नारद तिहि तहँ मुनि कर राखी॥
कही बात पुनि उन्हँ समुझाई। फिरे हरिहि सुमिरत हरुआई॥

वहाँ एक मुनि का आश्रम देखकर, नारदजी ने कयाधु को वहाँ रहनेवाले मुनि के संरक्षण में दे दिया और फिर उन्हें सब वृत्तान्त समझाकर, कर्तव्यमुक्त हुए वे भगवान का स्मरण करते हुए लौट आए।

हेमकसिपु तिय रहि जे आना। उन्ह जाए बिबुधारि महाना॥
इत मुनिगन सतसंगति पाई। नृपति कयाधु सुसंतति जाई॥

हिरण्यकश्यप की जो अन्य पत्नियाँ थी; उन्होंने घोर दैत्यों को जन्म दिया; किन्तु हे परीक्षित! इधर तपोवन में मुनियों का सुसङ्ग पाकर, कयाधु ने उत्तम सन्तान को जन्म दिया।

सिसुहि जाइ जननिहि अनुरागा। घनहि जथा सिसु सो बढ़ि लागा॥

जिस प्रकार शिशु के जन्म के उपरान्त माता का अनुराग उस पर बढ़ता-ही जाता है; उसी प्रकार वह शिशु भी बढ़ने लगा।

दोहा- बिधि प्रेरित सो बालकहि भा प्रलाद अस नाउ।
हरि पद रति तिन्हँ रहि अमल जाकर मुखहि प्रभाउ॥७६॥

ब्रह्माजी की प्रेरणा से उस बालक का नाम प्रह्लाद हुआ। भगवान श्रीहरि के चरणों में उसका निर्मल प्रेम था; जिसका प्रभाव उसके मुखमण्डल पर प्रत्यक्ष था।

चौ.- भूतमात्र गनि हरिहि प्रकासा। काहुहि देत नाहि तें त्रासा॥
रहा दिनाधिप कर तनु ओजा। सम अंतर रह हरिकथ खोजा॥

जीवमात्र में श्रीहरि का ही प्रकाश मानकर, वह बालक किसी को भी कष्ट नहीं देता था। उसके शरीर में सूर्य का तेज था और (सुख-दुःख में सदैव) सम रहनेवाला उसका अंतःकरण भगवान की कथाओं की खोज में लगा रहता था।

संजम अचपलता उल्लासू। सहज सुभाय आदि गुन जासू॥
लघुन्ह गनहिं तें मित्र समाना। गुरन्हँ करइ पितु सम सनमाना॥

संयम, एकाग्रता, उत्साह और सरल स्वभाव आदि, जिसके गुण थे। वह अपने से छोटों को मित्र समझता था और बड़ों को पिता के तुल्य आदर देता था।

प्राकृत सिसु सम खेलहि तें ना। करहि संत संगति दिनु रैना॥
एहि कारन सुर मुनि समुदाई। बार बार तिन्ह करइ बड़ाई॥

वह साधारण बालकों के समान खेलने में रुचि नहीं रखता था; अपितु दिन-रात संतों की सङ्गति में रहता था। इसी कारण देवता और मुनियों के समुदाय, बार-बार उसकी बड़ाई किया करते थे।

जल अरु अन्न बिसरि बहुभाँती। इत तप करइ अमर आराती॥
एकौ चरन अँगूठ अधारा। उरध बाहु तप कीन्ह अपारा॥

इधर अन्न-जल त्यागकर, देवशत्रु हिरण्यकश्यप, बहुत प्रकार से तपस्या कर रहा था। एक पैर के अगूँठे पर खड़े रहकर, दोनों हाथ उठाए उसने ब्रह्माजी की अपार तपस्या की।

तेहिं समउँ तिन्हँ तन चहुँओरा। भा मृतिकहि कर उन्नत औरा॥
कृमि कारन अहि बीछुन्हँ केरा। सहज भयउँ सो अवरु बसेरा॥

उस समय उसके शरीर के चारों ओर मिट्टी का एक ऊँचा औला बन गया; जिसमें रहनेवाली दीमक के कारण, वह औला सर्पों और बिच्छुओं का भी सहज निवास हो गया था।

तासु चतुरदिग उइ घनि घाँसा। खाएहुँ कीट तासु बपु माँसा॥
करत महातपु जब बिबुधारी। खरचे सत सम्बत दुख भारी॥

उसके चारों ओर अत्यन्त घनी घाँस उग आई थी और औले के भीतर कीड़ों ने उसके शरीर के माँस को खा लिया। इस प्रकार उस देवशत्रु ने तपस्या करते हुए, अत्यन्त कष्टपूर्वक सौ वर्ष बिता दिये।

दोहा- **बिषम भयउँ तब तेज तिन्हँ तासु कठिन तप पाइ।**
जरन लगे गिरि जलधि बन सरि भुवि सुर समुदाइ॥७७॥

तब उसकी कठोर तपस्या के कारण, उसका तेज बढ़कर इतना कठोर हो गया कि जिससे पर्वत, समुद्र, नदियाँ, वन, पृथ्वी और देवतादि जलने लगे।

चौ.- **अज तब सब कहँ धीर बँधाई। हेमकसिपु सन गै अतुराई॥**
पुनि करि कृपादृष्टि निज मुदकर। कीन्ह जथावत तासु कलेवर॥

तब ब्रह्माजी सबको धैर्य बँधाकर, शीघ्र ही हिरण्यकश्यप के सम्मुख गए और अपनी आनन्ददायिनी कृपादृष्टि से उसे देखकर, उन्होंने उसके शरीर को यथावत कर दिया।

माँगु माँगु बरु टेर लगाई। अज लागे पुनि ताहिं जगाई॥
बचन अमियमय परतहि काना। तुरत बिषम तप तेहिं बिसराना॥

फिर 'वर माँगो', 'वर माँगो' इस प्रकार पुकारकर, ब्रह्माजी उसे जगाने लगे। उनके अमृत तुल्य वचन अपने कानों से सुनते-ही हिरण्यकश्यप ने अपनी कठोर तपस्या त्याग दी।

परमपितहि पुनि सनमुख पाई। करि दंडवत तेहि हरषाई॥
तब बिधि कह सत सम्बत केरा। सुफल भयउँ तप तोर घनेरा॥

फिर ब्रह्माजी को अपने सम्मुख आया जानकर, उसने हर्षित होकर दण्डवत प्रणाम किया। तब ब्रह्माजी बोले- हे वत्स! तुम्हारा सौ वर्ष का महान तप सफल हुआ।

माँगु बत्स अब सो बरदाना। जिन्हँ लहिबे तुअँ तपेउँ महाना॥

तब सो हृदयँ न फूर समाना। कह करु मोहि अमर भगवाना॥

हे वत्स! अब तुम अपना इच्छित वर माँगो; जिसे पाने के लिये तुमने यह महान तप किया है। तब वह अपने हृदय में फूला नहीं समाया और बोला- हे भगवन्! मुझे अमर कर दीजिये।

सुनि अस बचन ब्रह्म कह ताहीं। यह त कवनि बिधि सम्भव नाहीं॥
तब मोहि तात देहुँ बरु ऐहू। जिन्हँ फरिबे न रहइ संदेहू॥

उसका यह वचन सुनकर, ब्रह्माजी ने उससे कहा- यह तो किसी भी प्रकार सम्भव नहीं। (हिरण्यकश्यप बोला-) हे तात! तब आप ऐसा वर दीजिये कि, जिसके फलित होने में कोई सन्देह न रहे।

तव कृत नाग जच्छ गंधर्बा। निसिचर किन्नर नर सुर सर्बा॥
सहित जीव केउ बध मोहि नाहीं। जड़ चेतन तव सृष्टिउँ माहीं॥

इस जड़-चेतन जगत में आपके द्वारा उत्पन्न मनुष्य, नाग, यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, असुर और समस्त देवताओं सहित कोई भी प्राणी मेरा वध न कर सके।

घर भीतर अरु बाहेर ताता। होइ असम्भव मम जिअँ घाता॥
मरउँ न बासर जनि मरुँ राती। नभ महितल मुअँ बध न अराती॥

हे तात! घर के भीतर और बाहर दोनों स्थानों पर, मेरा वध असम्भव हो। मैं न दिन में मारा जाऊँ और न रात में; शत्रु मुझे न पृथ्वी तल पर मार सके और न आकाश में ही।

दोहा- अस्त्र सस्त्र कोउ न बधहि अरि रनु जीत न मोहिं।
होउँ एक नृप मैं त्रिपुर छय न मोर बलु होहिं॥७८॥

कोई भी अस्त्र व शस्त्र मुझे मार न सके और न ही शत्रु मुझे युद्ध में जीत सके और तीनों लोकों का मैं एकछत्र राजा होऊँ और मेरा बल कभी भी क्षीण न हो सके।

चौ.- तात देहुँ तुअँ इहि बरदाना। कवनि पृहा मोरे जनि आना॥
हरिहि सुमिरि पुनि एवमस्तु कहि। गवने ब्रह्म धाम निज तबही॥

हे तात! आप तो यही वरदान दीजिये; मुझे अन्य कोई इच्छा नहीं है। तब भगवान श्रीहरि का स्मरण करके और एवमस्तु कहकर, ब्रह्माजी अपने लोक को चले गए।

मद रज तन धरि महिष समाना। फिरा मातु पहि तपि बलवाना॥
बहुरि ब्रह्मवर कथ सुखदाई। तेहिं जननि सन बहुबिधि गाई॥

तदुपरान्त भैंसे के समान मदरूपी धूल को अपने शरीर पर लिये, वह महातपस्वी दैत्य अपनी माता के पास लौट आया और ब्रह्मा से मिले वर की सुखदायक कथा, उसने उसके सम्मुख अनेक प्रकार से कही।

दिति सुनि जेहिं परम हरषानी। लगि बिबरन पृहबिपिन सिंचानी॥
हेमकसिपु पुनि कह महतारी। बिबुध दीन्ह दुख हम कहँ भारी॥

जिसे सुनकर दिति अत्यन्त प्रसन्न हुई और अपनी इच्छाओं के उजड़े हुए वन को (आशारूपी जल से) सींचने लगी। हिरण्यकश्यप ने आगे कहा- हे माता! देवताओं ने हमें घोर दुःख दिये हैं।

अब मैं जीति समर उन्हँ बाँधी। देउँ बेगि कारागृह साँधी॥
अस कहि निसिचर सेन सजाई। खल अमरन्ह पर कीन्हि चढ़ाई॥

अब मैं उन्हें युद्ध में जीतकर, बंदी बना लूँगा और शीघ्र ही कारागृह में डाल दूँगा; ऐसा कहकर उस दुष्ट ने दानवों की सेना तैय्यार की और देवताओं पर आक्रमण कर दिया।

सुरन्हँ बिदित तिन्हँ भुजन्हि प्रतापा। तातें भय उन्ह दारुन ब्यापा॥
सवँ प्रतिकूल जानि जिअँ मोहा। दुरे धाइ सब गिरिन्हँ प्रखोहा॥

देवता उसकी भुजाओं का प्रताप जानते थे; इसलिये वे अत्यन्त भयभीत हो उठे। फिर समय की प्रतिकूलता को समझकर, प्राणों का मोह किये वे दौड़कर पर्वतों की विशाल कन्दाराओं में जा छिपे।

दोहा- **जच्छ नाग गंधरब सब नृप लोकप दिसिपाल।**
हठि खल बाँधे समर नृप भुजबल जीतेहुँ काल॥७९॥

हे परीक्षित! दुष्ट हिरण्यकश्यप ने युद्ध में समस्त यक्षों, नागों, गन्धर्वों, प्रेतों, नरेशों, दिक्पालों और लोकपालों को बलपूर्वक बाँधकर; अपने पराक्रम से काल को भी जीत लिया।

चौ.- **तिन्हँ भय इंद्र गए अज पासा। बहुरि कही खल दइ जसि त्रासा॥**
अज कह भाग तासु बलवाना। सो तुम सचुप करहु हरि ध्याना॥

उसके भय से इन्द्रादि देवता ब्रह्माजी के पास गए, और उस दुष्ट ने उन्हें जिस प्रकार से कष्ट दिया था, वह सब कह सुनाया। तब ब्रह्माजी बोले- हिरण्यकश्यप का भाग्य इस समय बली है; अतः तुम शान्त रहकर श्रीहरि का ध्यान करो।

जब प्रलाद हरि केर पिआरा। जाइहि अति खल हाथ प्रतारा॥
धरि अवतार तबहि भगवाना। मर्दिहि तिन्ह मोरत अभिमाना॥

भगवान श्रीहरि का प्रिय भक्त प्रह्लाद, उस दुष्ट के हाथों जब अत्यधिक प्रताड़ित किया जायेगा, तभी वे भगवान अवतरित होकर, उस दुष्ट के अभिमान को नष्ट करते हुए, उसका वध करेंगे।

सुनि सुरेस नव आस जुड़ाई। गए गुपुत थल सीस नवाई॥
इत इंद्रासन पाइ सुरारी। भोग बिलास लाग करि भारी॥

यह सुनकर पुनः आशान्वित हुए देवराज इन्द्र, ब्रह्माजी को सिर नवाकर, (किसी) गुप्त-स्थान पर चले गए। इधर इन्द्रासन पाकर, वह देवशत्रु दिन-रात अत्यधिक भोगविलास करने लगा।

सरग अपछरा तिन्हँ दिनुराती। सुरा पिबावहि नाच देखाती॥
भुवि भुविधर रतनाकर तेहीं। सनमुख होइ भेंट बहु देहीं॥

स्वर्ग की अप्सराएँ उसे दिन-रात मदिरा पिलाकर, अपना नृत्य दिखलाया करती थी। पृथ्वी, पर्वत और समुद्र, उसके सम्मुख आकर रत्नादि से युक्त बहुत प्रकार की भेंट दिया करते थे।

सरि बिटपादिक तिन्ह भय पाई। सब रितु रह जल फल पुषपाई॥
बर प्रभाउ अनुभवि तें भारी। गउ मुनि मनुजन्ह लाग प्रतारी॥

नदियाँ और वृक्षादि उसके भय से समस्त ऋतुओं में जल, फल और पुष्पों से लदे रहते थे। वर के महाप्रभाव का अनुभव करके निरङ्कुश हुआ वह गौ, मुनियों और मनुष्यों को कष्ट देने लगा।

दोहा- **मद्यपान करि कामबस आपन माय पसारि।**
दिसिपन्ह तनु अपछरन्हि सँग नित बिलासहि सुरारि॥८०॥ (क)

काम के वश हो मदिरा पीकर, वह देवद्रोही हिरण्यकश्यप अपनी माया के बल से दिक्पालों का शरीर धारण करके अप्सराओं के साथ भोगविलास किया करता था।

एहिबिच नारद पाइ सवँ गए खलहि समुहान।
बहुरि ससुत तिय तासु तिन्हँ सौंपि मरमु करि गान॥८०॥ (ख)

इसी बीच समय पाकर नारदजी उस दुष्ट के सम्मुख गए और कयाधु के हरण का सारा भेद समझाकर, पुत्र सहित उसकी पत्नि उसे सौंप दी।

बिगत समउ कछु नरपति पंच बरिस बय पाइ।
हेमकसिपु निज सुत कहँ गुरकुल दीन्ह पठाई॥८०॥ (ग)

हे परीक्षित! कुछ समय पश्चात् हिरण्यकश्यप ने पुत्र प्रह्लाद को पाँच वर्ष का हुआ देखकर गुरुकुल भेज दिया।

चौ.- **संड अमर्क सुक्र सुत दोई। भै गुरुबर प्रहलादहि सोई॥**
आश्रम रहेउ मंदिर आला। हेमकसिपु कर परम बिसाला॥

शुक्राचार्य के सण्ड और अमर्क नाम के दो पुत्र थे, वे ही प्रह्लाद के गुरु हुए। उस आश्रम में हिरण्यकश्यप का एक अत्यन्त विशाल और विचित्र मंदिर था।

गुरगन करि प्रहलादहि संगा। हरषि गए तहँ प्रथम प्रसंगा॥
हरिथल तहँ पितु मूरति देखी। चकित भयउँ हरिभगत बिसेषी॥

गुरुजन प्रह्लाद को साथ करके, प्रसन्न हो सबसे पहले उसी मंदिर में गए। वहाँ भगवान श्रीहरि के स्थान पर अपने पिता की मूर्ति स्थापित देखकर, हरिभक्त प्रह्लादजी को विशेष आश्चर्य हुआ।

ते कह ईस जघहुँ यह काहा। मोहि निरखि पर निसिचरनाहा॥
कहिअ आपु किहु जग परितापी। मूरति एहि मंदिर महुँ थापी॥

तब वे बोले- यह क्या है? ईश्वर के स्थान पर, मुझे तो दैत्यराज की मूर्ति दिखाई पड़ रही है। हे गुरुदेव! कहिये! आपने संसार को दुःख देनेवाले मेरे पिता की मूर्ति को इस मंदिर में क्यों स्थापित किया है?

तब गुर उन्ह कुतुहल पहिचानी। कछु मुसुकाइ कहा मृदु बानी॥

बत्स एहि तिहुँ पुर प्रतिपालक। भगवन जग कर्ता अरु घालक॥

तब गुरुजनों ने उनके कौतुहल को पहचानकर, थोड़ा मुस्कुराते हुए कोमल वाणी में कहा- हे वत्स! ये ही तो तीनों-लोकों का पालन, सृजन और संहार करनेवाले भगवान हैं।

इन्ह समान बलवंत महाना। अहहि न त्रिपुर माँझ कोउ आना॥
तातें तुअँपि जानि भगवाना। इन्ह पद पंकज लावहुँ ध्याना॥

इनके समान महान बलसम्पन्न तीनों लोकों में अन्य कोई नहीं; इसलिये तुम भी इन्हें भगवान जानकर इनके चरणकमलों में अपना चित्त लगाओ।

सुनि हरिदास परम अचराने। छमा माँगि उन्ह लाग बुझाने॥

यह सुनकर हरिभक्त प्रह्लाद अत्यन्त चकित हुए और क्षमा माँगकर, उन्हें समझाने लगे।

दोहा- **सत्य निरूपा उन्ह अचल बहुबिधि गुर समुहान।**
पै गुर उन्ह गनि बालक तनक न आनेहु कान॥८१॥

उन्होंने गुरुजनों के सन्मुख अचल सत्य का निरूपण किया; किन्तु उन्हें बालक समझकर उन्होंने उनकी बात पर तनिक भी विचार नहीं किया।

चौ.- **कछु दिनु बिगत सुतहि महतारी। ममता बस गृह लीन्ह हँकारी॥**
हेमकसिपु पूतहि हिय लाई। पूछन लाग गोद बैठाई॥

कुछ दिन बीतने के उपरान्त माता ने ममतावश, पुत्र प्रह्लाद को गुरूकुल से घर बुलवा लिया। उस समय हिरण्यकश्यप ने अपने पुत्र को हृदय से लगाकर, गोद में बैठा लिया और उससे पूछने लगा कि,

तनय परम कौतुक हिय मोरे। काह सिखाएहु गुरगन तोरे॥
तब प्रहलाद सहज सिरु नाई। पितहि ग्यान निज लाग सुनाई॥

हे पुत्र! मेरे हृदय में (यह जानने के लिये) बड़ा कौतुहल हो रहा है कि तुम्हारे गुरुओं ने तुम्हें क्या सिखाया है? तब प्रह्लादजी सिर नवाकर अपने पिता को अपना ज्ञान सुनाने लगे।

तात प्रेम दय पर उपकारा। सहज सुभाय जोइ करतारा॥
सुमिरन जोग सोइ हरि नाऊँ। मैं अपि भजउँ आन नहिं काऊ॥

हे तात! प्रेम, दया व परोपकार, जिन परमात्मा का सहज स्वभाव है, वे श्रीहरि ही भजन किये जाने के योग्य है और मैं स्वयं भी किसी अन्य का भजन नहीं करता।

मम मत मुनि अरु संजमि केरा। संग भाँति सब सुखद घनेरा॥
नवधा महुँ तें एकौ लाई। प्रभुहि भजहिं तें सहज तराई॥

मेरे विचार में मुनियों व संयमियों की सङ्गति सब प्रकार से बड़ी सुखद होती है। यदि नवधाभक्ति में से किसी एक के भी आश्रय से कोई भगवान को भजता है, तो वह सहज तर जाता है।

हरिहि माय यह सृष्टि गभीरा। तातें भजिअ उन्हहिं धरि धीरा॥
बिष्नुरूप तेइ अह जगपालक। अज हर बपु सिरजक संघारक॥

यह विशाल सृष्टि उन नारायण की ही माया है, अतः धैर्यपूर्वक उनका भजन करना चाहिये। विष्णुरूप से वे ही संसार के पालक, ब्रह्मा के रूप से सृजनहार और शिवजी के रूप से संहारकर्ता है।

यह जग अह सुख दुख आगारा। हरिहि भाँति सब तारनहारा॥
परहित करत तात बहुभाँती। भजिअ हरिहि पदरज दिनुराती॥

यह संसार सुख-दुःख का घर है और श्रीहरि ही सब प्रकार से तारणहार हैं। हे तात! अनेक प्रकार से परोपकार करते हुए, दिन-रात उन्हीं की चरणरज का भजन किया जाना चाहिये।

दोहा- **अस सुनतहि खल सुत कहँ गोद तें परम रिसाइ।**
झिटकि पबारा धरनि जनु तर हिय तजि मृदुताइ॥८२॥

यह सुनते-ही उस दुष्ट ने अत्यन्त क्रोधित होकर, पुत्र को झटके से भूमि पर फेंक दिया; मानों वात्सल्य से भरे हृदय ने कोमलता का त्याग कर दिया हो।

चौ.- **रे सठ जे बराह तनु लाई। बधा अकारन मम प्रिय भाई॥**
बहुरि बढ़ति लखि अगनित बारा। असुरन्हँ छति जिहि कीन्हि अपारा॥

रे मूर्ख! जिसने वाराह का शरीर धारण करके, अकारण ही मेरे प्रिय बन्धु को मार डाला और समृद्ध होते देखकर, जिसने असुरों को अनेक बार घोर क्षति पहुँचाई,

तिन्हहि असुर कुल पाइ सरीरा। मोहि भजन कह हरषि सधीरा॥
सठ तहि को असि पट्टि पढ़ाई। रहा मोर सन अरि गुन गाई॥

दैत्यकुल में जन्म लेकर भी तू, मुझे उस नारायण का हर्ष व धैर्यपूर्वक भजन करने के लिये कहता है। रे मूर्ख! तूझे ऐसी उल्टी पट्टी किसने पढ़ाई, जो तू मेरे सन्मुख ही शत्रु के गुण गा रहा है।

बालक होइ तैं न सुन मोरी। बढ़त बयस गति होब कि तोरी॥
अस कहि खल उन्ह कछु धमकावा। पुनि सधीर अस लाग बुझावा॥

बालक होकर ही तू मेरी सुन नहीं रहा है; तो बड़ा होने पर तेरी क्या दशा होगी? ऐसा कहकर उस दुष्ट ने प्रह्लाद को थोड़ा धमकाया; फिर धैर्यपूर्वक इस प्रकार समझाने लगा-

सिसुन्ह हेतु मुनि साधुन्ह केरी। संगति सबबिधि दुखद घनेरी॥
तातें तजि तुम मुनिन्ह उचारा। पढ़हु असुर पद्धति अनुहारा॥

बालकों के लिये मुनियों व साधुओं का संग, सब प्रकार से घोर दुःख देनेवाला है; इसलिये तुम मुनियों का कहा त्यागकर, दैत्य पद्धति के अनुसार पढ़ो।

संडामरकहिं बोलि बहोरी। पठवा सुतहि पढ़न बरजोरी॥
आश्रम लरिकन्हँ लखि एक बारा। हृदय कीन्ह प्रहलाद बिचारा॥

फिर उसने सण्ड व अमर्क को बुलवाकर, पुत्र को जबरदस्ती पढ़ने भेज दिया। एक बार आश्रम के बालकों को देखकर, प्रह्लादजी ने मन-ही मन विचार किया कि,

दोहा- **अबहि अहहि सिसु बयस इन्ह अति मृदु रहित बिकार।**

अबहि सीख जस जिवन भरि करिहहि तस आचार॥८३॥

अभी इन सबकी बाल्यावस्था है, जो अत्यन्त कोमल और विकारों से रहित है। ये इस समय जो भी सीखेंगे; जीवनभर वैसा ही आचरण करेंगे।

चौ.- **एहिबिधि उन्ह बिचारि कल्याना। बोलि बालकन्ह कहि लग ग्याना॥**
बाल भगत उन्ह ग्यान कहा जस। करै लाग आचरन सबहि तस॥

इस प्रकार उनके कल्याण का विचार करके, उन्होंने उन बालकों को बुलाया और उनसे ज्ञानचर्चा करने लगे। बालभक्त प्रह्लादजी ने उनसे जैसी बात कही थी; वे सब वैसा ही आचरण करने लगे।

हरि हरि नारायन नारायन। भए सबहि एहि नाउँ परायन॥
गुरजन भेद सकल जब जाना। तरकि खलहि रिस अति भय माना॥

वे सभी 'हरि-हरि', 'नारायण-नारायण' इन्हीं नामों के प्रति समर्पित हो गए। जब गुरुजनों को यह सब बात ज्ञात हुई, तो हिरण्यकश्यप के क्रोध का अनुमान करके, वे अत्यंत भयभीत हो उठे।

पुनि करि क्रोध सबन्ह फटकारे। तब लरिकन्ह अस बचन उचारे॥
तैं गुर होत अबहि लौ साईं। रहे अधमता हमहि सिखाई॥

फिर उन्होंने क्रोध करके, सबको फटकारा; तब उन बालकों ने इस प्रकार वचन कहे- हे नाथ! आप हमारे गुरु होकर भी, अब तक हमें अधमता ही सिखा रहे थे।

पै कुमार दृग हमहि उघारे। सो चलिहहि नहिं कुमत तिहारे॥
गुरगन सबन्हँ बहुत समुझावा। किन्तु उन्ह न निज पनु बिहरावा॥

किन्तु राजकुमार प्रह्लाद ने हमारी आँखे खोल दी; अतः अब हम आपके बताये कुमार्ग पर नहीं चलेंगे। यह सुनकर गुरुजनों ने सबको बहुत समझाया; किन्तु उन्होंने अपना संकल्प नहीं त्यागा।

दोहा- **गुर बूझे तब मनहि मन यह प्रलाद करतूति।**
लाग स्वकर सठ जननिहिं करन चाहहि निपूति॥८४॥

तब दोनों गुरुजन मन-ही मन यह समझ गये कि यह सब प्रह्लाद की ही करतूत है। लगता है वह मूर्ख अपने ही हाथों अपनी माता को निपूती बनाना चाहता है।

चौ.- **तब गुरजन सिष्यन्हँ करि संगा। जाइ लाग कहि खलहि प्रसंगा॥**
प्रभु तव सुत श्रुति ग्यान बखानी। हरिमय करि सब लरिकन्हि बानी॥

तब गुरुओं ने सब बालकों को साथ लिया और जाकर हिरण्यकश्यप से सारा वृतान्त कहने लगे- हे प्रभु! आपके पुत्र ने वेदों के ज्ञान का बखान करके; समस्त बालकों की वाणी विष्णुमय कर दी है।

अब सब बालक इहि संघाता। तव अरि नाउँ जपहि दिनुराता॥
केउ न अचरहि बात हमारी। बरजे कुतरक करि लग भारी॥

अब इसके साथ सभी बालक, दिन-रात आपके शत्रु का नाम जपते रहते हैं; हमारा कहा कोई नहीं मानता और रोकने पर सब अत्यधिक कुतर्क करने लगते हैं।

तब सुरारि कह सुतहि रिसाई। सठ तव मृत्यु परम निअराई॥
स्वेंद्रि होत जस नर आराती। तुअँपि भयउँ मम अरि तिहिं भाँती॥

तब उस देवशत्रु ने क्रुद्ध होकर पुत्र प्रह्लाद से कहा- रे मूर्ख! (लगता है) तेरी मृत्यु अत्यन्त निकट है। जिस प्रकार मनुष्य की अपनी ही इन्द्रियाँ उसकी शत्रु हो जाती है; उसी प्रकार तू भी मेरा शत्रु हो गया है।

होत बपुष अरि जब केउँ अंगा। बिनु संकोच करिअ तिन्हँ भंगा॥
अस करि सेष गात सुख लहहीं। संसय मूल एक जनि रहहीं॥

जब कोई अङ्ग शरीर का शत्रु हो जाता है, तब बिना झिझक उसे काट देना चाहिये; ऐसा करने पर शरीर के शेष अङ्ग सुख पाते हैं और सन्देह का एक भी कारण शेष नहीं रहता।

पुनि कह खल निसिचरन्ह बोलाई। यह सठ निसिचर कुल दुखदाई॥
अह हरि सम अरि मोर महाना। तातें हरहु तुरत एहि प्राना॥

फिर दैत्यों को बुलाकर वह दुष्ट इस प्रकार बोला- यह मूर्ख बालक दैत्यकुल को दुःख देनेवाला और विष्णु के समान मेरा घोर शत्रु है; इसलिये तुरन्त इसके प्राण हर लो।

दोहा- **जातुधान सुनि खल बचन मत्त स्वान सम धाइ।**
धरि बालव कच धरनितल ढरकानेहुँ रिसाइ॥८५॥

दुष्ट हिरण्यकश्यप के वचन सुनकर, राक्षसों ने उन्मत्त कुत्तों के समान दौड़कर, बालक प्रह्लाद के बाल पकड़ लिये और क्रोधपूर्वक धक्का देकर उन्हें भूतल पर गिरा दिया।

चौ.- **पुनि उर करहि अदयपनु लाई। खंग दीन्ह सिरु तासु चलाई॥**
पै गरेउँ अघनिधिन्हँ गुमाना। प्रहलादहि अवलोकि सप्राना॥

फिर अपने हाथों व हृदय में निर्दयता धारण करके, उन्होंने प्रह्लाद के सिर पर खड्ग से प्रहार कर दिया। किन्तु प्रह्लाद को जीवित देखकर, उन पापराशि दैत्यों का अभिमान नष्ट हो गया।

उत सुभोर इत देखि दुधारी। होन लाग उन्हँ अचरज भारी॥
पुनि सब मिलि करि लाग प्रहारा। परिघ त्रिसूल खंग बिकरारा॥

उस ओर सुकुमार प्रह्लाद और इस ओर दुधारी तलवार; (फिर भी परिणाम विपरीत,) यह देखकर उन्हें बड़ा अचरज होने लगा। फिर सब मिलकर पुनः परिघ, त्रिशूल और विकराल खड्ग से प्रहार करने लगे।

खल अति जतन कीन्ह एहिंभाँती। तद्यपि अरिहि न सके निपाती॥
बाँधि पलक कर अति अहलादा। जपत रहे हरि हरि प्रहलादा॥

हे परीक्षित! इस प्रकार उन दुष्टों ने अनेक यत्न किये, किन्तु फिर भी वे अपने शत्रु का वध नहीं कर सके। इस बीच प्रह्लादजी अपनी पलकें बन्द किये, हाथ जोड़कर अत्यंत आनन्दपूर्वक 'हरि-हरि' इस प्रकार (भगवन्नाम) जपते रहे।

जब प्रभाउँ जनि सस्त्रन्हँ भयऊँ। खल तब उन्ह गिरि सिरु लै गयऊ॥
पुनि तहँ तें तेहिं महितल पारा। किंतु बाँक जनि भा तिन्ह बारा॥

जब शस्त्रों का कोई प्रभाव नहीं हुआ, तब वे दुष्ट उन्हें पर्वत की चोटी पर ले गए और उन्हें वहाँ से भूमि पर फेंक दिया; किन्तु फिर भी प्रह्लादजी का बाल भी बाँका न हुआ।

तब हिय खलन्हँ पराभउ माना। जाइ भेद पति समुख बखाना॥

तब उन दुष्टों ने मन-ही मन हार मान ली और सारा मर्म जाकर अपने स्वामी को कह सुनाया।

दोहा- **सो सवँ हेमकसिपु भगिनि जासु होरिका नाउ।**
आइ तहाँ सिरु नाइ कह मैं इहि अबहि नसाउँ॥८६॥

उसी समय हिरण्यकश्यप की बहिन, जिसका नाम होलिका था; वहाँ आई और सिर नवाँकर उससे कहने लगी कि मैं अभी इसे मार डालूँगी।

चौ.- **मोहिं ब्रह्म कर बरु अस भाई। पावक मोहि न सकहिं जराई॥**
तातें मैं एहि गोद उठाई। प्रबिसौं अगिनि माँझ जब जाई॥

हे भाई! मुझे ब्रह्माजी का यह वरदान है कि अग्नि मुझे जला नहीं सकती। इसलिये इसे अपनी गोद में लिये, जब मैं जाकर अग्नि में प्रविष्ट हो जाऊँगी,

जरिहि तुरत तब अरि यह तोरा। बरु प्रभाउँ कछु मुरिहि न मोरा॥
कनककसिपु अस सुनि हरषावा। काठ ढेर पुनि तेहिं धरावा॥

तब तुम्हारा यह शत्रु शीघ्र ही जल मरेगा और वर के प्रभाव से मेरा कुछ अहित भी न होगा। यह सुनकर हिरण्यकश्यप अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसने लकड़ियों का एक बड़ा ढेर लगवा लिया।

तदुप सभागृह बैठेहुँ जाई। अरि बध खबरि जोह अतुराई॥
इत प्रलाद कहँ गोद उठाई। चढ़ी काठ दुष्टा गरुआई॥

तदुपरान्त वह अपनी सभा में जा बैठा और आतुरता से शत्रुवध के समाचार की प्रतिक्षा करने लगा। इधर प्रह्लाद को गोद में उठाकर गर्वित हुई-सी वह दुष्टा, लकड़ियों के समूह पर जा चढ़ी।

नृप प्रहलाद बैठि तिन्ह गोदा। सहज सुमिरि लग प्रभुहिं प्रमोदा॥
पाइ सैन खल निसिचरि केरा। लाहि लगानि काठ कर ढेरा॥

हे परीक्षित! प्रह्लादजी उसकी गोद में बैठे हुए सहज ही आनन्दपूर्वक श्रीहरि का स्मरण करने लगे। तभी राक्षसी होलिका का सङ्केत पाकर, दुष्ट दैत्यों ने लकड़ियों के ढेर में आग लगा दी।

धूँ धूँ करि जरि लागिसि दारू। बिबुध लाग करि हाहाकारू॥
अमित अगिनिसिख उठि लगि ऐसे। अमित दमित पृह उठ सँग जैसे॥

जिससे लकड़ियाँ धूँ-धूँ करके, जलने लगी; यह देखते ही देवता हाहाकार करने लगे। उस ढेर से अग्नि की अगणित लपटें ऐसे उठने लगी; जैसे हृदय में दबी अनेक (अपूर्ण) इच्छाएँ एक साथ उठ पड़ती है।

दोहा- इहि बिच पापिनि जरत भइ किलकि चिक्कि अति दाह।
खलन्हँ सुना तिन्ह करुन रव अचरज कीन्ह अगाह॥८७॥

इसी बीच अत्यन्त दाह के कारण चीखती चिल्लाती हुई पापिनी होलिका जलने लगी; जब वहाँ उपस्थित दैत्यों ने उसका करुण शब्द सुना, तो वे अत्यधिक आश्चर्य करने लगे।

चौ.- ताकर अघजुत मत तिहिं संगा। जारि गयउ अज बचन अभंगा॥
भई काठ सब जब जरि छारा। भगति सकुसल बहिज पगु धारा॥

उस होलिका का पापयुक्त दुराग्रह, उसके साथ भी ब्रह्माजी के अचल वरदान को भी जला गया। जब सारी लकड़ियाँ जलकर भस्म हो गई, तब भगवद्भक्ति के प्रतीक प्रह्लाद उस राख के ढेर से बाहर आये।

जिअत देखि कच धरि उन्हँ केरे। खल सन फिरे सकल भय प्रेरे॥
आगिल करि अरि जिअत लखाएहुँ। बहुरि होरिकहि मरनु सुनाएहुँ॥

उन्हें जीवित देखकर दैत्यों ने उनके बाल पकड़ लिये और उन्हें लेकर भयभीत हुए-से वे दुष्ट हिरण्यकश्यप के पास लौट आए। फिर प्रह्लाद को आगे करके, उसे जीवित दिखाते हुए, उन्होंने होलिका का मरण कह सुनाया।

तब बिप्लव अचरज अरु रिस कर। हेमकसिपु हिय उठा भयंकर॥
मनहुँ बिषम पवमान जुड़ाई। महितल छूटि बृष्टि दुखदाई॥

तब हिरण्यकश्यप के हृदय में आश्चर्य व क्रोध का दारुण विप्लव उत्पन्न हो गया, मानो प्रचण्ड वायु को साथ किये, दुःखदायक वर्षा भूमि की ओर छूटी हो।

रे खल तैं कि माय केउ जाना। जिन्हँ प्रभाउँ लसि बिसर न प्राना॥
किंतु मायपति मैं भगवाना। तव छल चलिहि न मम समुहाना॥

रे दुष्ट! क्या तू कोई माया जानता है; जिसके प्रभाव से सम्पन्न हुआ तू अपने प्राण नहीं त्यागता? किन्तु मैं भी मायापति भगवान हूँ और मेरे सम्मुख तुम्हारा कपट नहीं चलेगा।

दोहा- दीन्ह मोहि दुख तैं बहुत स्वकर बधउँ मैं तोहिं।
देखौं को हरि राख तहिं बधत हाथ गहि मोहिं।८८॥

तूने मुझे बहुत दुःख दिया है, मैं तुझे अपने हाथों से मारूँगा। देखता हूँ! कौन नारायण है, जो तुम्हारा वध करते समय मेरा हाथ पकड़कर मुझे रोकता है।

चौ.- अस सुनि पितु चरनन्हँ सिरु नाई। तब प्रहलाद कहहिं मुसुकाई॥
पय घृत दारु अनल जस बसही। जतन किए पुनि उपजहिं जसही॥

यह सुनते ही प्रह्लाद पिता के चरणों में सिर नवाकर मुस्कुराते हुए कहने लगे- जैसे दुग्ध में घृत व काष्ठ में अग्नि निवास करती है और प्रयत्न करने पर जिस प्रकार प्रकट हो जाती है;

तसहि तात जग कन कन माहीं। नाथ उपस्थित लखि पर नाहीं॥
जदपि जतन उन्हँ सनमुख करई। मोरे अपि अह भरोष इहई॥

हे तात! उसी प्रकार संसार के कण-कण में भगवान श्रीहरि उपस्थित हैं; केवल दिखाई नहीं पड़ते। तथापि (जीव द्वारा) किया गया प्रयत्न उन्हें (जीव के) सन्मुख ले ही आता है; मुझे भी इसी बात विश्वास है।

तुम हठि बल मद चह मुहि मारी। किन्तु चह न जे जग हितकारी॥
तब त एक जनि चलिहिं तिहारी। सो हरि करिहिं मोरि रखवारी॥

आप अपने बल के अहङ्कार में हठपूर्वक मुझे मारना चाहते हैं, किन्तु जो यदि संसार का हित करनेवाले प्रभु ऐसा न चाहते होंगे, तब तो आपकी भी एक न चलेगी और वही नारायण मेरी रक्षा करेंगे।

तब सठ कह मोतें बलवाना। अह न तुम्हार बिष्नु भगवाना॥
तद्यपि निज रच्छा हित ताहीं। बेगि लेहुँ सठ सद्य बोलाहीं॥

तब उस शठ ने कहा कि, तुम्हारा भगवान विष्णु मुझसे अधिक बलवान नहीं है; फिर भी रे मूर्ख! तू अपनी रक्षा करने के लिये उसे शीघ्र ही बुला ले।

तात मोहि लखि पर तें कन कन। किए हेतु निज भगतन्ह रच्छन॥
मम तुअ माँझ जिनिस प्रति माहीं। मुअ त जानि पर आभा ताहीं॥

हे तात! मुझे वे अपने भक्तों की रक्षा करने के लिये, कण-कण में विद्यमान दिखाई देते हैं। मुझमें, आपमें और यहाँ उपस्थित प्रत्येक वस्तु में; मुझे तो उन्हीं का तेज दिखाई पड़ता है।

सुनि सरोष खल गदा उठाई। सैन कहा एक खंब देखाई॥
एइहि महुँ हरि अहहिं तिहारा। निस्चयही प्रहलाद उचारा॥

यह सुनते ही उस दुष्ट ने क्रुद्ध होकर गदा उठा ली और एक खम्भे की ओर सङ्केत करके, प्रह्लाद से कहा- क्या इसमें भी तुम्हारा भगवान है? तब प्रह्लाद ने कहा- निश्चय ही है।

दोहा- **तब त खंडि मैं खंब एहि अबहिं देउँ तिहि मारि।**
अस कहि गदा भवाँइ सठ तापर दीन्ह प्रहारि॥८९॥

हिरण्यकश्यप ने कहा- तब तो इस खम्भे को खण्ड-खण्ड करके, मैं अभी उसे समाप्त कर दूँगा; ऐसा कहकर उस मूर्ख ने अपनी गदा घुमाकर उस खम्भे पर दे मारी।

चौ.- **तब पाषान खंब ढहि गयऊ। अचरज संसृति नव निरमयऊ॥**
भगत बचन नृप देन प्रमाना। खँब तें उए नृसिंह भगवाना॥

तब पत्थर का वह खम्भा ढह गया और आश्चर्य की नवीन ही सृष्टि निर्मित हुई। हे परीक्षित! इस प्रकार भक्त के वचनों को प्रमाण देने के लिये, उस टूटे हुए खम्भे से भगवान नृसिंह प्रकट हुए।

दस जोजन तनु मुख केहरि कर। कर अंगुरि नख सस्त्र भयंकर॥
सेष बपुष उन्ह मनुज समाना। दुराधरष अरु अति बलवाना॥

उनका शरीर दस योजन जितना विशाल व मुख सिंह सदृश था। उनके हाथ की अँगुलियों के नख ही उनके भयानक शस्त्र थे और शेष शरीर मनुष्य के समान; किन्तु दुराधर्ष व अत्यन्त बलवान था।

निरखि तेन्हँ रिस प्रलयंकारी। भजि छूटे निसिचर अति भारी॥
त्रिपुर पूर उन्ह नाद प्रचंडा। भयउँ कादरन्हँ कर हिय खंडा॥

उनके प्रलयङ्कारी क्रोध को देखते ही, वहाँ उपस्थित बड़े-बड़े दैत्य भाग छूटे। उन नृसिंह की गर्जना का प्रचण्ड नाद तीनों लोकों को छू रहा था; जिससे कायरों के हृदयों के टुकड़े हो गये।

इहिबिच फेरि नखन्हि भयकारी। नरहरि खलहिं लाग परचारी॥
अरि प्रभाउँ लखि तें बिचलावा। पुनि कारजा कंठ लौ आवा॥

इतने में ही अपने भयङ्कर नखों को फिराकर, भगवान नृसिंह उस दुष्ट को ललकारने लगे। अपने शत्रु का ऐसा प्रभाव देखकर, हिरण्यकश्यप विचलित हो उठा और उसका कलेजा मुँह को आ गया।

दोहा– **धरे धाइ नरहरि तबहि बाम हाथ खल केस।**
हसिंटि तेहिं पुनि देहरि बैठे जाइ नृपेस॥९०॥

हे परीक्षित! इतने में ही नृसिंह भगवान ने दौड़कर बायें हाथ से उस दुष्ट के केश पकड़ लिये और उसे घसीटते हुए ले जाकर, द्वार की देहरी पर बैठ गए।

मासपारायण तीसरा विश्राम

चौ.– **तदुप तेहि निज जँघ पौढ़ाई। गर्जि लाग प्रभु परम रिसाई॥**
सो छिनु होन लागि नभबानी। सचत लाग सुनि जिन्हँ अभिमानी॥

फिर उसे अपनी जाँघों पर लेटाकर भगवान नृसिंह अत्यन्त क्रोधित होकर गरजने लगे। उसी क्षण आकाशवाणी होने लगी, जिसे वह अभिमानी ध्यानपूर्वक सुनने लगा।

रे खल मूढ़ निसाचर बाँगा। तैं बिरंचि सन अस बरु माँगा॥
सुर नर असुर पसु न तहि बधहीं। पै नरहरि नर जनि हरि अहहीं॥

रे दुष्ट! मूर्ख! उत्पाती राक्षस! तुमने ब्रह्मा से यह वर माँगा था कि देवता, मनुष्य, असुर और पशु आदि, कोई भी तुम्हें न मार सके; किन्तु ये भगवान नृसिंह न नर है और न ही सिंह।

इन्ह समान अज सृष्टिहुँ माहीं। एकौं जीव कतहि अह नाहीं॥
सो नर रुंड सिंघमुख ग्रीवाँ। सबबिधि बाहेर अज जग सीवाँ॥

ब्रह्माजी की सृष्टि में कहीं पर भी, इनके जैसा एक भी जीव नहीं है। अतः मनुष्य के-से धड़ व सिंह के समान मुख व कण्ठवाले ये नृसिंह, सब प्रकार से ब्रह्मसृष्टि की सीमाओं से परे हैं।

मरनु तव न निसि अरु दिनु माँझा। किंतु अहहि यह अवसर साँझा॥
एहि सवँ तुअँ भीतर जनि बाहेर। गहि तहि प्रभु बैठे देअरि पर॥

तुम्हारी मृत्यु न दिन में हो सकती है और न ही रात में; किन्तु यह समय संध्या का है। इस समय तू न तो भीतर है और न ही बाहर; भगवान नृसिंह तुम्हें लेकर द्वार की देहरी पर बैठे हुए हैं।

महि नभ तव बध सम्भव नाहीं। अस्त्र सस्त्र पुनि तहिं न नसाहीं॥
तातें लहिबे निज अघ दंडा। तैं थित हरि कर जंघ अखंडा॥

भूमि व आकाश में तुम्हारा वध सम्भव नहीं हैं और कोई शस्त्र या अस्त्र तुम्हें नहीं मार सकता; अतः अपने पापों का दण्ड पाने के लिये, अभी तुम श्रीहरि की अखण्ड जङ्घाओं पर स्थित हो।

नरहरि अब नख आपन लाई। रखिहिं अजउ बच टेक बनाई॥
सुनि जब अस खरि खरि नभबानी। बूझा निज जड़पनु अभिमानी॥

अब भगवान नृसिंह अपने नखों से तुम्हारा वध करके, ब्रह्म-वचन का मान रखेंगे। जब उस अहङ्कारी राक्षस ने ऐसी खरी-खरी आकाशवाणी सुनी, तब उसे अपनी मूर्खता का ज्ञान हो गया।

पुनि प्रचंड हरि गर्जनि माहीं। महाकाल पद धमकनि पाहीं॥
नरपति कर पग फूरे ताकर। सिरु पुनि खाइ लाग तिन्ह चक्कर॥

हे परीक्षित! फिर नृसिंहजी की भयङ्कर गर्जना में महाकाल की पदध्वनि सुनकर, भय से उसके हाथ पैर फूल गए और उसका मस्तक अत्यधिक चकराने लगा।

दोहा- **पाछ नृसिंह गर्जत सरिस निज कठोर नख बाढ़ि।**
उदर फारि अघनिधिहि कइ अंतरि लीन्हिसि काढ़ि॥९१॥

फिर भगवान नृसिंह ने क्रोधपूर्वक गरजते हुए, अपने कठोर नखों को बढ़ाकर, उस पापी हिरण्यकश्यप का उदर फाड़कर उसकी अतड़ियाँ निकाल ली।

चौ.- भूप हेमकस्यप जबहि मरा। तासु पीरजुत रव नभहि भरा॥
रही अँतावरि तिन्ह करि माला। पहिरि गर्जि लागे खलकाला॥

हे परीक्षित! जब हिरण्यकश्यप की मृत्यु हुई, तो उसके चीत्कार से आकाश गूँज उठा। उसकी जो अतड़ियाँ थी; उन्हें माला के समान अपने कण्ठ में पहने, दुष्टनिकन्दन भगवान नृसिंह गर्जना करने लगे।

नरहरि निदरि बपुष मृत ताकर। बैठे जाइ सिंहासन ऊपर॥
महि सुर महिसुर महिसुरनाथा। सम्भु संग जोरे दुहुँ हाथा॥

फिर उसके मृत शरीर का तिरस्कार करके, वे उसके सिंहासन पर जा बैठे। उस समय भगवान शिवजी के साथ पृथ्वी, देवता, ब्राह्मण और ब्रह्माजी आदि सबने अपने दोनों हाथ जोड़े और

बहु प्रकार उन्ह अस्तुति सारी। तदपि न सीता प्रभु रिस भारी॥
तब अज सैन पाइ प्रहलादा। परिहरि पितु दुरगतिउँ बिषादा॥

अनेक प्रकार से उनकी स्तुति की; किन्तु फिर भी उन भगवान का क्रोध शान्त नहीं हुआ। तब ब्रह्माजी के सङ्केत पर, प्रह्लादजी अपने पिता की दुर्गति का विषाद छोड़कर,

डरपत गै प्रभु पहि सिरु नाई। करत प्रदच्छिन अस्तुति गाई॥
तब प्रिय सुतहि गोद बैठारी। अभय दीन्ह हरि तजि रिस भारी॥

डरते हुए उन प्रभु के निकट गए और सिर नवाँकर, प्रदक्षिणा करते हुए उनकी स्तुति की। तब अपार क्रोध त्यागकर, भगवान नृसिंह ने अपने प्रिय भक्त को गोद में बैठाया और अभय कर दिया।

दोहा- भूप भाँति एहि मनुजहरि राखि ब्रह्मबच मान।
रच्छा करि निज भगतहि मोरि खलहुँ अभिमान॥९२॥

हे राजन! इस प्रकार भगवान नृसिंह ने ब्रह्माजी के वचन का मान रखते हुए, हिरण्यकश्यप के अभिमान को नष्ट करके अपने भक्त की रक्षा की।

चौ.- हरि अवतार ग्राह जस मारा। पुनि तिन्हँ मुख जस गज उद्धारा॥
अब मैं चरित कहउँ नृप सोई। सुनिअ सचाउ सकल भय खोई॥

हे परीक्षित! हरि का अवतार लेकर भगवान ने जिस प्रकार ग्राह को मारकर, उसके मुख से गज का उद्धार किया था; अब मैं वही चरित्र कहूँगा; आप समस्त भय त्यागकर, रुचिपूर्वक सुनिये।

आदिपुरुष निरगुन अबिनासी। भगतन्हँ हित सबबिधि सुखरासी॥
सोउँ भगत जब जब लहँ त्रासा। तब तब कर तें दयहिं प्रकासा॥

आदिपुरुष भगवान श्रीहरि निर्गुण, अविनाशी और भक्तों के लिये सब प्रकार से सुखों की राशि है। उनके वही भक्त जब जब भी सताए जाते हैं, तब-तब वे अपनी दया का प्रकाश करते हैं।

नृपति कथा यह उन्ह खलघातिहि। दयहि प्रकासन अह सब भाँतिहि॥
छीरसिंधु एक सैल महाना। गिरि त्रिकूट जिन्हँ कहा पुराना॥

हे राजन! यह कथा भी सब प्रकार से उन दुष्टशत्रु भगवान श्रीहरि की दया का ही प्रकाशन है। क्षीरसागर के मध्य में एक बड़ा भारी पर्वत है, पुराण जिसे त्रिकूट पर्वत कहते हैं।

त्रिसिखरजुत सो अगम अपारा। जोजन दस सहस्त्र बिस्तारा॥
सुर गंधरब सतिय ता ऊपर। करहि बिहार प्रबसहिं निरंतर॥

तीन शिखरों से युक्त और दस हजार योजन तक विस्तृत वह पर्वत बड़ा ही दुर्गम है। देवता व गन्धर्व अपनी स्त्रियों सहित वहाँ आकर, निरन्तर प्रवास व विहार किया करते हैं।

महिधर केर तराइ बिसाला। अहहि पुहुप बन अगनित ताला॥
कूरम मकर मच्छ बहु जाती। ताँमहँ बसहि न महिम कहाती॥

उस पर्वत की विशाल तराई में कमलवनों से आच्छादित अनेक सरोवर हैं; जिनके जल में कछुए, ग्राह और कईं जातियों के मत्स्य रहते हैं; जिनकी विविधता कही नहीं जाती।

दोहा- **बसत रहा सैलहि सजन कुंजर एक बिसाल।**
एक दिनु अति आतप बिकल पैठा तें एक ताल॥९३॥

उसी पर्वत पर अपने परिवारजनों सहित एक विशाल हाथी भी रहता था; एक दिन गर्मी से व्याकुल हुआ वह एक तालाब में उतरा।

चौ.- **सीत चारु सो ताल अगाहा। रहा बास बलि एकौं ग्राहा॥**
तहँ जलपान सहित परिवारा। करि करि करि लग बारि बिहारा॥

शीतल जलयुक्त वह सुन्दर तालाब बहुत गहरा था, जिसमें एक बलवान ग्राह (मगरमच्छ) निवास करता था। उसी तालाब पर परिवार सहित जलपान करके, वह हाथी वहीं जल-विहार करने लगा।

सोउ ग्राह तब आतुर धाई। करिहि पाछपद धरा दुराई॥
अवचट अस बिपदा कहँ पाई। जाइ परा जल करि हँहराई॥

तभी उसी ग्राह ने जल में छिपते हुए दौड़कर उतावली से उस हाथी का पिछला पैर पकड़ लिया। अचानक ही आए ऐसे संकट से वह हाथी घबरा गया और सरोवर के जल में जा गिरा।

बल दस सहस करिन्हँ तन ताकर। परतहि उठि सर लहर भयंकर॥
गज प्रति किन्तु रहा बलि ग्राहा। खींचि लाग तिन्हँ नीर अगाहा॥

उसके शरीर में दस हजार हाथियों का बल था; उसके गिरते ही सरोवर में भयङ्कर लहरें उठनें लगी। किन्तु ग्राह हाथी से अधिक बली था, इसलिये वह उसे गहरे जल में खींचने लगा।

किन्तु मरत जे कछु करि बीतहि। बुध तिन्हँ गनइ न बुद्धि अतीतहि॥

तातें करि करि नखसिख जोरा। आवा तिन्ह समेत तट ओरा॥

किन्तु मरता हुआ प्राणी, जो कुछ भी कर डाले, प्रबुद्धजन उसे बुद्धि से परे नहीं मानते। इसलिये हाथी भी एड़ी-चोटी का जोर लगाकर, उस ग्राह को साथ लिये तट की ओर आ गया।

किन्तु फूरि अतिश्रम गज स्वासा। एहि तें भयउँ तासु बल हासा॥
दाव सहज तब मकरहि लागा। तुरत अहार सहित तल भागा॥

किन्तु श्रम की अधिकता से हाथी की श्वास फूल गई, जिससे उसका बल क्षीण हो गया। तब ग्राह का दाव सहज ही में लग गया और वह अपने आहार सहित तुरन्त सरोवर के तल की ओर भागा।

एहिबिधि ग्राह गजाधिप केरा। सर गहरानेहुँ दुंद घनेरा॥
कबहुँ गयन्दु फिरहि तट ओरा। कबहुँ जात फरि मकरउँ जोरा॥

इस प्रकार तालाब ही में ग्राह और गजेन्द्र का घोर द्वंद्व होने लगा। कभी तो ग्राह सहित गजेन्द्र तट की ओर लौट आता; तो कभी ग्राह का बल सफल हो जाता।

दोहा- **एहिबिधि जूझत उभयन्हँ बीते बरिस हजार।**
किन्तु ग्राह जनि थाकेहुँ नाग मानि लग हार॥९४॥

इस प्रकार युद्ध करते हुए उन्हें एक हजार वर्ष बीत गए। किन्तु इतने पर भी वह ग्राह नहीं थका, जबकि गजेन्द्र हार मानने लगा।

चौ.- **करिनी ससुत जतन करि नाना। मकर तें करि न पाइ पति त्राना॥**
तब अधीर उन्ह हृदयँ बिचारा। अब न होइ सक इन्हँ उद्धारा॥

हथिनी पुत्रों सहित अनेक प्रकार के यत्न करके भी ग्राह से अपने पति का उद्धार नहीं करा पाई। तब उन सबने अधीर होकर मन-ही मन विचार किया कि अब इनका उद्धार नहीं हो सकता।

एहि कारन ते अति दुख पाई। फिरे बिपिन निज प्रान बचाई॥
जात देखि उन्ह सबबिधि हारी। उर गजेन्द्र अस लाग बिचारी॥

इसी कारण वे मन में अत्यन्त दुःखी हो, अपने प्राण बचाकर वन की ओर लौट गए। उन्हें जाते हुए देखकर और सब प्रकार से हारकर गजेन्द्र मन-ही मन यह विचार करने लगा कि,

अस कुसमउँ मम सुत अरु नारी। भजे मीचु मुख मोहि बिसारी॥
बिदित परहि मम बिगत जनम कर। उए ग्राह तनु पाप भयंकर॥

ऐसे विपरीत समय में मुझे मृत्यु के मुख में छोड़कर, मेरे पुत्र व मेरी स्त्री भी भाग गए। जान पड़ता है! मेरे पिछले जन्म के भयङ्कर पाप ही, ग्राह के रूप में प्रकट हुए हैं।

नभहुँ गंधरब बिबुध बिमाना। रहे देखि संघरष महाना॥
तद्यपि कोउँ न दया देखाई। अस कुसमउँ मम होत सहाई॥

आकाश पर स्थित देवता व गन्धर्व अपने-अपने विमानों में बैठकर, मेरे इस घोर सङ्घर्ष को देख रहे हैं; किन्तु फिर भी दया दिखाते हुए, इस कुसमय में कोई मेरी सहायता नहीं कर रहा है।

सो अब उचित सरन मम ताहीं। प्रनतपाल अह जे जग माहीं॥
अब सो हरिहि अहहिं आधारा। अवसि करिहिं तें मम उद्धारा॥

अतः अब मेरे लिये उचित है कि मैं उनकी शरण में जाऊँ; जो इस संसार में शरणागत के (एकमात्र) रक्षक है। अब वे भगवान श्रीहरि ही मेरा आश्रय है, वे निश्चय-ही मेरा उद्धार करेंगे।

एहिबिधि गज नव आस जुड़ाई। अति आरत लग हरिहिं मनाई॥
मैं उन्ह त्रिभुवनपति कइ सरना। अह जे प्रनतन्हँ कर दुख हरना॥

इस प्रकार गजेन्द्र अपने हृदय में नवीन आशा धारण करके, अत्यन्त आर्त्तभाव से भगवान श्रीहरि को मनाने लगा। मैं उन त्रिलोकपति भगवान श्रीहरि की शरण में हूँ, जो शरणागतों के दुःखों को हरनेवाले हैं।

छन्द- **दुखहरन प्रनतन्हँ भगत सुख कारन कृपालु रमापती।**
मैं जीव जड़ मम बुद्धि अपि जड़ करउँ कस तव अस्तुति॥
सब भाँति उन्ह मोहि परिहरेहुँ परतीति रहि मम हिय जिही।
अब प्रान पर प्रभु मोर संकट बेगि आइ हरिअ इहीं॥

हे शरणागत के दुःखों को हरनेवाले! हे भक्तों के निमित्त सुखों के मूल! हे कृपालु कमलापति! मैं एक जड़ जीव हूँ और मेरी बुद्धि भी जड़ ही है, मैं आपकी स्तुति किस प्रकार करूँ? मेरे हृदय में जिनके प्रति अत्यन्त विश्वास था, वे मुझे सब प्रकार से त्याग चुके हैं। हे प्रभु! अब तो मेरे प्राणों पर सङ्कट आ बना है; अतः आप शीघ्र ही आकर इसे हर लीजिये।

दोहा- **जब करीन्द्र अस आरत हरि कइ अस्तुति सारि।**
सद्य चक्रधर गरुड़ पर चले बेग अति भारि॥९५॥

जब गजेन्द्र ने इस प्रकार आर्त्तभाव से भगवान श्रीहरि की स्तुति की, तब चक्रपाणि भगवान श्रीहरि शीघ्र ही गरुड़ पर बैठकर बड़े भारी वेग से चले।

चौ.- **जब चितवा गज दयानिधाना। खग चढ़ि कर गहि चक्र महाना॥**
तिन्ह रच्छन हित आवत धाई। गगन पंथ तें अति अतुराई॥

जब गजेन्द्र ने देखा कि दयानिधान प्रभु अपना महान चक्र धारण किये, गरुड़ पर सवार हो, उसकी रक्षा करने के लिये, आकाश मार्ग से अत्यन्त आतुरतापूर्वक दौड़े आ रहे हैं;

तब तिहिं प्रमुदित पुलकित गाता। लीन्ह उखारि एक जलजाता॥
बहुरि तेहिं हरि दिसि झहराई। गदगद रव कह हे सुरराई॥

तब उसने अत्यन्त आनन्दित हो पुलकित शरीर से कमल का एक पुष्प उखाड़ लिया। फिर उसे भगवान श्रीहरि की ओर लहराकर, गद्गद् वाणी से कहने लगा- हे देवताओं के स्वामी!
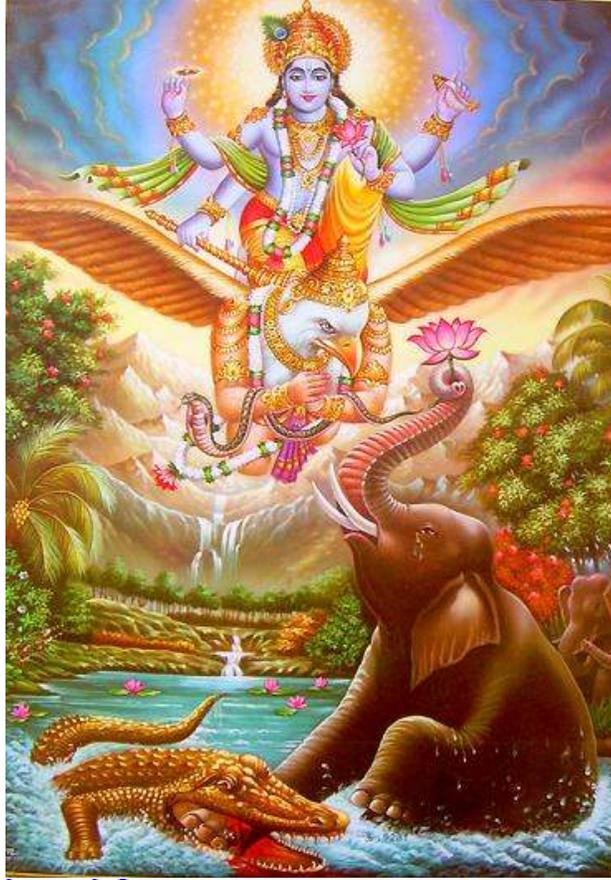
हे जग गुर हे जोति सरूपा। प्रनतपाल दयधाम अनूपा॥
मैं तव सरन नाथ सुखदाई। दीनबंधु मोहि लेहु छराई॥

हे जगतगुरु! हे ज्योतिस्वरूप! हे शरणागत की रक्षा करनेवाले और दया के अनुपम धाम! हे सुखदायक प्रभु! मैं आपकी शरण में हूँ। हे दीनजनों के बन्धु! मेरी रक्षा कीजिये।

प्रनतपाल प्रभु सम नहि आहीं। दीन एहि सवँ मो सम नाहीं॥
सुनि अस दीन बचन तिन्हँ केरे। कूदे खग तें हरि परे पनु प्रेरे॥

प्रभु (आप) के समान शरणागत का रक्षक अन्य कोई नही और न ही कोई और इस समय मुझ जैसा दीन होगा। उसके ऐसे आर्त्त वचन सुनकर और शरणागत की रक्षा के अपने प्रण का स्मरण करके, श्रीहरि गरुड़ (के कन्धों पर) से कूद पड़े।

दोहा- पुनि आतुर हति चक्र निज दीन्ह मकर मुख चीरि।
हरषेहु छूटि गयन्दु तब उमगि दृगन्हँ रस झीरि॥९६॥

फिर उतावली से उन्होंने अपने चक्र के प्रहार से ग्राह का मुख चीर दिया। तब सङ्कट से मुक्त हुआ गजेन्द्र अत्यन्त हर्षित हो उठा और उसके नेत्रों से प्रेमाश्रुओं की धारा उमड़ पड़ी।

चौ.- बहुरि पैठि सो ताल बिसाला। गजहिं उबारेहुँ दीनदयाला॥
अमर निरखि दुंदुभी बजाई। सुमन बरिषि रिषि अस्तुति गाई॥

फिर उस विशाल सरोवर में उतरकर दीनदयालु भगवान श्रीहरि ने गजेन्द्र को बाहर निकाल लिया। यह देखकर देवों ने दुन्दुभियाँ बजाई और ऋषियों ने पुष्प बरसाकर श्रीहरि की स्तुति की।

लहि सो ग्राह परस भगवाना। लीन्हँ बपुष गंधरब महाना॥
धाइ बहोरि परा हरि चरना। कहत भयउँ बिनीत अस बचना॥

उस ग्राह ने भगवान का स्पर्श पाते ही, एक महान गन्धर्व का शरीर धारण कर लिया। फिर वह दौड़कर श्रीहरि के चरणों में गिर पड़ा और इस प्रकार विनययुक्त वचन कहने लगा-

रहा बिगत तनु मैं सुखधामा। एक गंधरब हूहू नामा॥
सो तनु तियन्हँ सँग एक बारा। गयउ एक सर बारि बिहारा॥

हे सुखधाम! मैं पूर्व जन्म में 'हूहू' नाम का एक गन्धर्व था। उस जन्म में एक बार मैं अपनी स्त्रियों को साथ लेकर, जल विहार करने के लिये एक सरोवर पर गया।

देवल नाउँ एक मुनिराई। रहे तहाँ अगहुँअ तें न्हाई॥
तब तिय प्रेरित मैं मुनि पाँऊ। जाइ धरा जल दुरि तिन्ह ठाऊँ॥

वहाँ देवल नाम के एक मुनि पहले से ही स्नान कर रहे थे; तब अपनी स्त्रियों के कहने पर मैंने जल के भीतर ही भीतर छिपते हुए, मुनि के निकट जाकर, उनका पैर पकड़ लिया।

सर तल पुनि खींचेहुँ मैं ताहीं। सभय परे मुनि जब जल माहीं॥
तब उन्ह पद तजि मैं सुरराई। फिरा तियन्हँ पहि अति अतुराई॥

फिर मैंने उन्हें सरोवर के तल की ओर खींचा और जब वे मुनि भयभीत होकर जल में गिर पड़े; तब हे देवताओं के स्वामी! मैं उनका पैर छोड़कर बड़ी उतावली से, अपनी स्त्रियों के पास लौट आया।

पाछ तेन्हँ सँग बिहँसन लागा। निरखि मुनीस केर रिस जागा॥

फिर पीछे मैं उनके साथ खड़ा हुआ मुस्कुराने लगा; यह देखकर उन मुनि का क्रोध भड़क उठा।

दोहा- ग्राह सरिस मम चरन धरि मूढ़ हँसा तैं मोहिं।
तातें मकरहि होउ अब मोर साप अस तोहिं॥९७॥

रे मूढ़! ग्राह के समान मेरा पैर पकड़कर, तू मुझ पर हँसा है; इसलिये अब तुझे मेरा यह श्राप है कि तू ग्राह ही हो जा।

चौ.- मुनिहिं कृपा लहि दरस तिहारा। भयउँ नाथ अज मम उद्धारा॥
हे गंधरब आदरै जोगा। तपि जति जोगि सहित मुनि लोगा॥

हे नाथ! उन मुनि की कृपा से आपका दर्शन पाकर; आज मेरा उद्धार हो गया। (तब भगवान श्रीहरि ने कहा-) हे गन्धर्व! तपस्वी, यति और योगियों सहित मुनिजन आदरणीय होते हैं।

तुम उन्ह अपमानेहु अग्याना। बहुरि दंड तिन्ह लीन्हँ महाना॥
पुनि न करेसु अब अस जड़ताई। गयउ हूहु तब उन्ह सिरु नाई॥

तुमने अपनी अज्ञानता में उनका अपमान किया था, फिर उसका कठोर दण्ड भी पाया। अतः अब ऐसी जड़ता पुनः कभी न करना। तब 'हूहू' नाम का वह गन्धर्व उन्हें सिर नवाँकर चला गया।

सिंधुर तदुप हरिहि आयसु गहि। गजतनु तजि प्रगटेउ नृप तन लहि॥
इन्द्रदमन ताकर अस नामा। कह सरबग्य परम सुखधामा॥

तत्पश्चात् गजेन्द्र ने भी श्रीहरि की आज्ञा से अपना शरीर त्यागकर राजा का शरीर धारण कर लिया। पूर्वजन्म में उसका नाम 'इन्द्रदमन' था, वह बोला- हे सर्वज्ञ! हे परमसुखधाम!

बिगत जनम प्रभु मैं एक बारा। करि रहेउ जब ध्यान तुम्हारा॥
मुनि अगस्ति तब मम सन आए। पै मैं बैठि रहा गरुआए॥

हे प्रभु! पिछले जन्म में एक बार मैं जब आपका ध्यान कर रहा था, तभी महर्षि अगस्त्य मेरे सन्मुख पधारे; किन्तु मैं अहङ्कारपूर्वक बैठा रहा।

देखि कहा मुनि परम रिसाई। मोहि निदरि सठ थित गज नाई॥
तातें अबहिं होहु तुअ नागा। सुनत साप मैं मुनि पद लागा॥

यह देखकर उन्होंने अत्यन्त क्रुद्ध होकर कहा- रे शठ! तू मेरा निरादर करके हाथी के समान बैठा है; अतः तू इसी समय हाथी हो जा। मुनि का यह श्राप सुनते ही मैं उनके चरणों में गिर पड़ा।

अज उन्ह साप भयउँ बरदाना। मिले आजु मो कहँ भगवाना॥

आज उनका श्राप मेरे लिये वरदान हो गया है, क्योंकि आज मुझे प्रभु की प्राप्ति हुई है।

दोहा- **तब प्रभु कह हे राजन जे नर कपट बिहाइ।**
सुनिहिं कहिहि यह कथ सुखद उन्ह मैं उबारौं आइ॥९८॥

तब भगवान ने कहा- हे राजन! जो मनुष्य कपट त्यागकर इस सुखदायक चरित्र को कहेंगे और सुनेंगे, उन्हें मैं स्वयं आकर सङ्कटों से छुड़ा लूँगा।

चौ.- **एतनि कथा सुनि कह नरराई। सिंधु मथन अब कहु मुनिराई॥**
कच्छप अरु मोहिनि अवतारा। बामन सहित कहिअ बिस्तारा॥

इतनी कथा सुनकर महाराज परीक्षित् ने कहा- हे मुनिराज! अब मुझे समुद्र मन्थन की कथा कहिये। साथ ही कूर्म व मोहिनी अवतार सहित सविस्तार वामन अवतार की कथा भी कहिये।

कहु पुनि धनवंतरि अवतारा। सहित सुरासुर समर अपारा॥
मुनि जस जस हरिचरित सुनावहि। तस तस हृदयँ अधिक ललचावहि॥

फिर धनवन्तरि-अवतार सहित महान देवासुर संग्राम की कथा कहिये। आप जैसे-जैसे श्रीहरि की कथा सुनाते जाते हैं, वैसे-ही वैसे उन्हें सुनने के लिये मेरा मन और अधिक ललचाता है।

अस सुनि मुनि कह आनँदु प्रेरे। तनय सुरासुर कस्यप केरे॥
कबहुँ इंद्र कर तिहुँपुर राजा। समर जीति सब असुर समाजा॥

यह सुनकर शुकदेवजी आनन्दित होकर बोले- हे परीक्षित! देवता और दैत्य दोनों समुदाय कश्यप की सन्तान हैं। युद्ध में असुरों को जीतकर कभी तो इन्द्र त्रिलोक पर राज्य करते हैं और

कबहुँ सुरन्हँ कहँ समर पछारी। सोउ राज लहँ सहज सुरारी॥
पाछ नरायन धरि अवतारा। करहि खलन्हँ दलि सुर उद्धारा॥

कभी देवताओं को युद्ध में जीतकर उसी राज्य को सहज ही में दैत्य पा जाते हैं। तत्पश्चात् भगवान श्रीहरि अवतार लेकर, दुष्टों का दमन करके देवताओं का उद्धार करते हैं।

दोहा- **सुरापान करि अकसर सुरपति रंभहि संग।**
निजन बिहार करत भए उर भरि मदन तरंग॥९९॥

एक बार देवराज इन्द्र मदिरा पीकर रम्भा नामक अप्सरा के साथ कामासक्त हुए एक निर्जन स्थान पर विहार करने लगे।

चौ.- **तबहिं जात तहँ तें कैलासा। तेहि लखेहु तपनिधि दुरवासा॥**
रहे संग उन्ह सिष्य अपारा। मनहुँ सउड़ ससि नभ बिस्तारा॥

उस समय उन्होंने वहाँ से होकर कैलाश की ओर जाते हुए महर्षि दुर्वासा को देखा। उनके साथ उनके अनेक शिष्य थे; मानों आकाश के विस्तार में नक्षत्रों के साथ चन्द्रमा स्थित हो।

सुरपति मुनि कहँ कहि तपधामा। दूरहि तें जब कीन्ह प्रनामा॥
आसिस देत हरषि मुनिराई। हरिप्रदत्त उन्ह माल पठाई॥

इन्द्र ने जब उन मुनि को तपधाम कहकर दूर से प्रणाम किया, तब उन्होंने हर्षित होकर आशीर्वाद देते हुए भगवान श्रीहरि की दी हुई माला उन्हें भेंट स्वरूप भेजी।

किंतु इंद्र निज धन पद माना। तनक न कीन्ह तासु सनमाना॥
पुनि उपेच्छि धरि ऐरावत सिरु। कहत मोर पुर मिल इहि तें बरु॥

किन्तु इन्द्र ने अपने पद और वैभव के मद में उस माला का थोड़ा भी सम्मान नहीं किया और यह कहते हुए कि मेरे लोक में इससे भी उत्तम मालाएँ मिलती है, उन्होंने उसे उपेक्षापूर्वक ऐरावत के सिर पर रख दी।

गज सो मालिका चरन बिडारी। निरखि मुनीस क्रुद्ध भए भारी॥
हरि यह माला आपु भेंटि मोहिं। आसिस रूप दीन्हि मैं तोहीं॥

ऐरावत ने वह माला अपने पैरों से कुचल दी, यह देखकर महर्षि अत्यन्त क्रुद्ध हुए और बोले- यह माला मुझे भगवान श्रीहरि ने स्वयं भेंट की थी और अपने आशीर्वाद स्वरूप मैनें इसे तुम्हें दी।

दोहा- **हरिहि समरपित फूल फल जल नबेद जस पाउँ।**
तसहिं गहिअ तेहिं सादर बार तनिक जनि लाउँ॥१००॥

भगवान श्रीहरि को समर्पित पुष्प, फल और नेवैद्य को जैसे ही पाओ; वैसे ही बिना विलम्ब किये उसे आदरपूर्वक ग्रहण कर लेना चाहिये।

चौ.- **तेहिं परित्यागे लाग अगाधा। नर कहँ ब्रह्मघात अपराधा॥**

हरि प्रसाद यह गहिबे जोगा। पै हतभागि तुअँ त रत भोगा॥

उसका परित्याग करने से मनुष्य को ब्रह्महत्या का पाप लगता है। भगवत्प्रसादरूप यह माला ग्रहण किये जाने योग्य थी; किन्तु तू अभागा तो विषयों में ही डूबा हुआ है।

तुम निज अकथ बिभव अभिमाना। प्रभुहि प्रसाद कीन्हँ अपमाना॥
सो पद बल जे अह तव पाहीं। श्री समेत सो कछु दिनु माहीं॥

तुमने अपने अकथनीय वैभव के अभिमान में भगवान के प्रसाद का अपमान किया है, अतः तुम्हारा वही पद और बल, जो इस समय तुम्हारे पास है, लक्ष्मी सहित कुछ ही दिनों के भीतर

परिहरि तोहिं अनत चलि जैहीं। तोर दम्भ कर दंड उचित एहिं॥
सुनि सुरेस निज कृत पछिताना। छमा माँगि करि बिनय महाना॥

तुम्हारा त्याग करके, अन्यत्र चला जाएगा, तुम्हारे अभिमान का यही दण्ड उचित है। यह सुनकर देवेन्द्र अपनी करनी पर बहुत पछताया, फिर विनम्रतापूर्वक उनसे क्षमा माँगी।

मुनि तब कहेहु जगत प्रतिपाला। हरिहि पाइ सवँ बिपति बिसाला॥
समाचार सुनि मुनिहिं साप कर। भै एकठौर सकल रजनीचर॥

तब मुनि दुर्वासा ने कहा कि जगत्पालक भगवान श्रीहरि समय आने पर तुम्हारी महाविपत्ति का हरण करेंगे। इधर मुनि के श्राप का समाचार सुनकर सारे असुर एकत्र हो गए।

दोहा– राय बिरोचनसुत बलिउँ जातुधानपति कीन्ह।
बहुरि तासु धुज तर असुर अनि बिसाल करि लीन्ह॥१०१॥

हे राजन! उन्होंने विरोचन के पुत्र बली को दैत्यों का राजा बना लिया और उनके ध्वज के नीचे एक विशाल असुर सेना एकत्र की।

चौ.– बलि जितेन्द्रि हरिजन बलरासी। दानि महान गुनधि सतभाषी॥
ते सोइ अनि करि मारु बजावा। बेगि सरग पर कीन्हेंहु धावा॥

राजा बलि जितेन्द्रीय, हरिभक्त, अत्यन्त बलवान, महादानी, सत्यवादी और गुणों के सागर थे। उन्होंने उसी सेना को साथ करके मारू राग बजाया और शीघ्र ही स्वर्ग पर आक्रमण कर दिया।

रहे तेन्ह कर आयुध नाना। रहे सबनि दुरदम बलवाना॥
प्रलय घट्ट सम गर्जि गभीरा। चढ़े सरग पर तें रनधीरा॥

उनके हाथों में अनेक प्रकार के शस्त्र थे और वे सभी युद्ध में दुर्वध्य व बलवान थे। वे रणधीर योद्धा प्रलयकाल के बादलों के समान भयङ्कर गर्जना करके, स्वर्ग पर जा चढ़े।

बिबुधद्रोहि आवत लखि घोरा। गज चढ़ि गहि सतपरुअ कठोरा॥
जस तस सुरपति सेन सजाई। प्रकुपित भयउँ अरिउँ समुहाई॥

उन घोर दैत्यों को आते देखकर हाथ में सौ पर्वोंवाला कठोर वज्र लिये ऐरावत पर चढ़कर देवराज इन्द्र ने जैसे-तैसे सेना तैयार की और अत्यन्त क्रोधित हो शत्रु के सन्मुख गए।

बहुरि बरषि सर कोटि कठोरा। असुरन्हँ बिकल कीन्ह चहुँओरा॥

तदुप बिनासन दनुज महाना। अग्निबान उन्ह धनु संधाना॥

फिर करोड़ों कठिन बाण बरसाकर उन्होंने असुरों को चारों ओर व्याकुल कर दिया। तत्पश्चात् उन महान बलि दैत्यों का वध करने के लिये उन्होंने धनुष पर अग्निबाण का सन्धान किया।

तब बलि बरुन अस्त्र धनु लाई। दीन्हँ निमिष महुँ ताहिं नसाई॥

तब दैत्यराज बलि ने वरुणास्त्र चलाकर क्षणभर में ही अग्निबाण का निवारण कर दिया।

दोहा– अस बिलोकि रन दुरमद बज्रपानि रिस खाइ।
बलिहि बधन निज बज्र गहि परे तासु दिसि धाइ॥१०२॥

यह देखकर युद्ध में दुर्दमनीय योद्धा वज्रपाणि इन्द्र क्रोधित होकर बलि का वध करने लिये अपना वज्र उठाकर उनकी ओर दौड़े।

चौ.– तेहिं सवँ भई तहाँ नभबानी। थोबु थोबु सुरनायक ग्यानी॥
मुनिहिं साप तोहि बिदित भाँति भलि। बहुरि जान तुम बलि अतुलित बलि॥

उस समय वहाँ आकाशवाणी हुई कि हे सुजान देवराज! ठहरिये! ठहरिये! महर्षि दुर्वासा का श्राप तुम्हें भली-भाँति विदित है और तुम यह भी जानते हो कि बलि अतुलनीय बलवान है।

तप संजम जे सुर अनिबारय। तुम तिन्ह बिमुख बलिउँ घन आश्रय॥
सो तुम कोटि जतन करि ताहीं। जीति आथवा बधि सक नाहीं॥

जो तप और संयम देवताओं के लिये अनिवार्य है, तुम उसके विमुख और बलि उनका परम आश्रय है। अतः तुम करोड़ों प्रयत्न करके भी बलि को न तो जीत सकते और न मार ही सकते हो।

बिगत काल एहि जीतिहिं सोई। प्रनतपाल जिन्हँ कह सब कोई॥
अस सुनि सुरपति समर बिहाई। अंतरध्यान भए अकुलाई॥

समय बीतने पर इन्हें वे ही जीतेंगे, जिन्हें सब कोई शरणागत के रक्षक कहते हैं। यह सुनकर देवराज इन्द्र अकुलाकर युद्ध का त्याग करके वहाँ से अंतरध्यान हो गए।

एहिबिधि करि सुरपुर अधिकारा। बलि उर भा नृप मोद अपारा॥
नीति धरम पुनि तिन्ह अनुमानी। राजलच्छि उन्ह राज समानी॥

हे परीक्षित! इस प्रकार स्वर्ग पर अधिकार करके बलि के हृदय में अपार आनन्द हुआ। फिर उनकी नीति और धर्म का विचार करके राजलक्ष्मी उनके राज्य में समा गई।

दोहा– इत सुरेस सब सुरन्हँ सँग गयउ परमपितु पास।
पुनि अति दुख करि साप कथा कही सहित बलि त्रास॥१०३॥

इधर देवराज इन्द्र समस्त देवताओं के साथ परमपिता ब्रह्मा के पास गए और अत्यन्त दुःख के साथ बलि के द्वारा दिये कष्ट सहित महर्षि दुर्वासा के श्राप की कथा उन्हें कह सुनाई।

चौ.– तब बिरंचि बोले सुरराई। हरिहि सकहि सुर ताप मेटाई॥
सो सब चलुँ तहँ मोर सँघाता। बसइ जहाँ प्रनतन्हँ सुखदाता॥

तब ब्रह्माजी बोले- हे देवराज! केवल भगवान श्रीहरि ही देवताओं का यह दुःख मिटा सकते हैं। अतः तुम सभी मेरे साथ वहाँ चलो, जहाँ शरणागतों को सुख देनेवाले वे प्रभु रहते हैं।

सुनत गए सब छीरसिंधु तट। अस्तुति माँझ कहा निज संकट॥
सुनतहिं बपुष धरे भुजचारी। प्रगटे प्रनतन्हँ करन सुखारी॥

यह सुनते ही वे सब क्षीरसागर के तट पर गए और स्तुति करके, उन्होंने प्रभु से अपनी विपत्ति कही; जिसे सुनते ही चतुर्भुजरूप धारण करके शरणागतों को सुखी करने के लिये भगवान प्रकट हो गये।

तब बिरंचि करि अस्तुति कहई। नाथ तुमहिं प्रनतन्हँ सब अहई॥
पंचतत्व तुम तुम जगदीसा। तुमहिं बिभूषन बिवुधन्हँ सीसा॥

तब स्तुति करके ब्रह्माजी कहने लगे कि हे नाथ! आप ही शरणागतों के सब कुछ हैं। आप ही पञ्चतत्व स्वरूप, आप ही समस्त जगत के ईश्वर और समस्त देवताओं के शिरोमणि हैं।

आजु उन्हहिं सिरु संकट भारी। जेहिं आन कोउँ सक न निबारी॥
तातें करिअ नाथ तुम दाया। कहिअ सुरन्हँ कल्यान उपाया॥

आज उन्हीं देवताओं पर महान सङ्कट आ पड़ा है, जिसका निवारण कोई अन्य कोई नहीं कर सकता। इसलिये हे नाथ! आप दया कीजिये और देवताओं के कल्याण का उपाय बतलाईये।

दोहा- तब हरि कह सुनु चतुर्मुख सवँ दनुजन्हँ अनुकूल।
पुनि दुरवासउँ सापबस बिबुध भए निरमूल॥१०४॥

तब श्रीहरि ने कहा- हे चतुरानन! अभी समय दैत्यों के अनुकूल हैं और दुर्वासा के श्राप के कारण देवता भी बलहीन हो चुके हैं।

चौ.- अब उपाउ अह एकहि ऐसा। हरि सक जे बिबुधन्हँ सब क्लेसा॥
बलिउँ पास सब सुरगन जाई। मथन जलधि तेहिं लेहुँ मनाई॥

अब ऐसा एक ही उपाय है, जो देवताओं के सब क्लेशों को मिटा सकता है। आप सब देवगण बली के पास जाकर उन्हें समुद्र मन्थन के लिये मना लीजिये।

अस करि सिंधु तें उपज अनेका। रतन अमोल सुधाघट ऐका॥
सोइ अमिअ गहि सुर समुदाई। अमर होइ सक बिभव फिराई॥

ऐसा करने पर समुद्र से अनेक अनमोल रत्न और अमृत का एक कलश उत्पन्न होगा। उसी अमृत को पीकर देवगण अमर होकर अपना खोया हुआ वैभव पुनः पा सकते हैं।

नाथ परन्तु दनुज बलवाना। अमिअ छीनि जे करिगै पाना॥
तब हम उन्ह करि लेइहिं काई। सुनि नारायन कह मुसुकाई॥

किन्तु हे नाथ! दैत्य बलवान हैं, जो यदि वे अमृत छीनकर स्वयं पी गए, तब हम उनका क्या बिगाड़ लेंगे? यह सुनकर भगवान ने मुस्कुराकर कहा-

चिंत न करु मैं जुगुति जुड़ाई। सुरन्हँ देउँ सब अमिअ पिबाई॥
अह प्रतीति मम प्रति हिय जासू। सबबिधि सारउँ मैं कृत तासू॥

आप चिन्ता मत कीजिये, मैं युक्तिपूर्वक सारा अमृत देवताओं को पिला दूँगा। जिसके हृदय में मेरे प्रति विश्वास होता है, मैं सब प्रकार से उसके कार्यों को पूर्ण करता हूँ।

दोहा- करि मिताइ दानवन्हँ सँग करु उद्योग महान।
पुनि तें कह जस मानु तस पर न कवन ब्यौधान॥१०५॥

उन दैत्यों के साथ मित्रता करके आप देवता यह महान उद्योग करें और वे जैसा कहें वैसा मान लें, ताकि इस कार्य में कोई विघ्न न पड़े।

चौ.- इंद्रादिक तब हिय हरषाई। बलि पहि गै हरि पद सिरु नाई॥
बलि जब बिबुधन्हँ आवत देखा। हृदयँ लाग करि सोच बिसेषा॥

तब श्रीहरि के चरणों में सिर नवाकर इन्द्रादि देवता हृदय में प्रसन्न हो महाराज बलि के पास गए। बलि ने जब देवताओं को आते हुए देखा, तो वे अपने हृदय में विशेष चिन्तन करने लगे।

अस्त्र सस्त्र बिनु सुरगन आजा। आवत मोर पास केहि काजा॥
अरि मुख लखि पर भाउँ मिताई। सो मैं आपु करब अगुआई॥

आज देवता अस्त्र-शस्त्रों के बिना ही मेरे पास क्यों आ रहे हैं? मुझे उन शत्रुओं के मुख पर मित्रता का भाव दिखाई पड़ता है; अतः मैं स्वयं जाकर उनकी अगवानी करूँगा।

अस बिचारि सुरगन सन आवा। करि प्रनाम निज मोद जनावा॥
बहुरि आनि गृह दीन्हें आसन। पूछा हेतु पाइ अनुसासन॥

ऐसा विचारकर वे देवताओं के पास आए और प्रणाम करके उनके आगमन पर आनन्द व्यक्त किया। फिर अपने भवन में लाकर उन्होंने उन्हें आसन दिया और उचित अवसर जानकर उनके आगमन का कारण पूछा।

तब सुरेस कह सुनहुँ सुजाना। हम सब कस्यप कइ संताना॥
एहि कारन हम बंधु सहोदर। तदपि कीन्ह अति हानि परसपर॥

तब इन्द्र बोले- हे सुजान सुनिये! हम सब महर्षि कश्यप की सन्तान हैं, इस कारण हम सगे भाई हैं; फिर भी हमनें आपस में एक-दूसरे का बहुत अहित किया है।

तापर मीचु जरा रुज भारी। रहत उभयकर काज बिगारी॥
सो इन्हँ ब्याधिन्हँ किए निदाना। हरि उपाउँ अस हमहि बखाना॥

ऊपर से मृत्यु, जरा और अनेक प्रकार के कठिन रोग हम दोनों के समुदाय का काम बिगाड़ते रहते हैं। अतः इन सब व्याधियों का निदान करने के लिये भगवान श्रीहरि ने हमें यह उपाय बताया है कि,

जलनिधि गरभ बसहि नग नाना। सहित मीचु अरि अमिअ महाना॥
तातें तिन्ह कढ़िबे हरि चहई। देअँ दनुज मिलि जलनिधि मथई॥

समुद्र के गर्भ में अनेक प्रकार के रत्नों सहित मृत्यु का शत्रु महान अमृत छिपा पड़ा है, अतः उसे निकालने के निमित्त श्रीहरि चाहते हैं कि देवता और दैत्य मिलकर समुद्र का मन्थन करें।

पाछ बस्तु जे उपज अनूपा। लहँ तेहिं देअँ दनुज समरूपा॥

फिर पीछे जो अनुपम वस्तुएँ उत्पन्न हों, देवता और दैत्य उसे समान रूप से बाँट लें।

दोहा- बहुरि कहा प्रभु मंदर गिरि कइ करेहुँ मथानि।
नेति बासुकिहि करि मथेहुँ कंपति धीरज ठानि॥१०६॥

फिर भगवान ने कहा कि मन्दराचल पर्वत को मथानी और वासुकी नाग को नेति बनाकर इस प्रकार धैर्यपूर्वक समुद्र को मथना।

चौ.- सिंधु तें एहिबिधि अवँरित पाई। अजर अमर होइहिं हम भाई॥
बलि कह करिहिं सहाय तिहारी। किंतु चलिहि सब बात हमारी॥

हे भाई! इस प्रकार समुद्र से अमृत प्राप्त करके हम अजर और अमर हो जायेंगे। तब महाराज बलि ने कहा कि हम सहायता तो करेंगे, किन्तु हमारे ही सब नियम चलेंगे।

परिछित बिबुध मानि उन्ह बाता। गै गिरि सन तिन्ह किए सँघाता॥
बहुरि गरुअ करि हृदयँ अपारा। सब मिलि गिरि मंदरहि उखारा॥

हे परीक्षित! तब देवताओं ने उनकी बात मान ली और उन्हें साथ लेकर मन्दराचल पर्वत के पास गए। फिर उन सबने अपने हृदय में अपार गर्व करके, मन्दराचल पर्वत को उखाड़ लिया।

जात परन्तु पंथ तिन्ह भारा। देव दनुज बहु भै दबि छारा॥
एहिबिधि मंदर दंभ सब हरा। तब उन्ह पंथहिं बीच गिरि धरा॥

किन्तु चलते समय पर्वत के भार के कारण बहुत से दैत्य और देवता दबकर चूर्ण हो गए। इस प्रकार मन्दराचल ने सबका अहङ्कार हर लिया; तब उन्होंने मार्ग में ही पर्वत को रख दिया।

पुनि सब हरि कहँ सुमिरन लागे। तब हरि प्रगट भए तिन्ह आगे॥
उन्ह निज दृष्टि अमिअ बरिसाई। दीन्ह मुए सुर असुर जिआई॥

फिर वे सभी मिलकर श्रीहरि का स्मरण करने लगे; तब भगवान उनके सन्मुख प्रकट हुए। उन्होंने अपनी अमृतमयी दृष्टि की वर्षा से मारे गए समस्त देवता व दैत्यों को पुनः जीवित कर दिया।

भुजा बाम निज बहुरि बढ़ाई। गिरिहि लीन्ह खग पीठि चढ़ाई॥

फिर अपना बाँया हाथ बढ़ाकर मन्दराचल को गरुड़ की पीठ पर चढ़ा लिया।

दोहा- सुर अरु असुर पठाइ पुनि बासुकि पहि पाताल।
आपु चले चढ़ि गरुड़ पर छीरसिंधु तेहिं काल॥१०७॥

फिर देवता व दैत्यों को वासुकी नाग के पास पाताल लोक भेजकर, वे स्वयं गरुड़ पर सवार हो उसी समय क्षीरसागर को चले।

चौ.- इत पाताल नाग पहि जाई। कहा सुरासुर सीस नवाँई॥
हे अहिपति हरि बच अनुहारा। छीरसिंधु हम मथिहिं अपारा॥

इधर देवता और दैत्य पाताल लोक में जाकर वासुकी नाग को शीश नवाकर इस प्रकार बोले-हे सर्पराज भगवान श्रीहरि की आज्ञा से हम सभी अपार समुद्र को मथेंगे।

सो भए नेति मंदरहिं भाई। करु हमार अस काज सहाई॥

सुनि भुअंग डरपेउँ अति भारी। बहुरि लाग एहिभाँति उचारी॥

अतः हे भाई! तुम मथानी बने हुए मन्दराचल पर्वत की नेति बनकर, इस कार्य में हम सबकी सहायता करो। यह सुनकर सर्पराज वासुकि अत्यन्त भयभीत होकर इस प्रकार कहने लगे-

बपुष मोर अति कोमल भाई। दुखिहि कठिन भुविधर लपटाई॥
तातें होउँ न तोर सहायक। दाम आन तैं खोजिअ लायक॥

हे भाई! मेरा शरीर अत्यन्त कोमल है, जो कठोर पर्वत से लिपटने पर दुःखेगा। अतः मैं आपकी सहायता नहीं करूँगा; आप कोई अन्य योग्य नेति खोज लीजिये।

सुनि सुर कहा सहित अनुरागा। मिलिहिं तोहि अपि अवँरित भागा॥
पुनि लपटाइ महीधर तोहीं। कष्ट कवनि बिधि तनक न होहीं॥

यह सुनकर देवताओं ने प्रेम सहित कहा कि अमृत में तुम्हें भी भाग मिलेगा और पर्वत पर लपेटे जाने से तुम्हे किसी प्रकार का कोई कष्ट तनिक भी नहीं होगा।

बहुरि इहइ आयसु भगवंता। महाब्याल सुनि चलेउँ तुरंता॥
तब सुर असुर सिंधु तट आई। दीन्ह तेहिं महिधर लपटाई॥

फिर भगवान की भी यही आज्ञा है; इतना सुनते ही वह महान सर्प तुरन्त उनके साथ चल पड़ा। तब समुद्र के तट पर आकर देवताओं व दैत्यों ने उस सर्प को पर्वत से लपेट दिया।

पुनि उठाइ तेहिं प्रभु बल पाई। छीर सिंधु बिच मेलेहुँ जाई॥

फिर प्रभु का बल पाकर सभी ने पर्वत को उठाया और समुद्र के मध्य ले जाकर रख दिया।

दोहा- **पै धरान गिरि जसहि जल ते बूड़न लग नीर।**
सब सचिंत कह होइ कस मंथन काज गभीर॥१०८॥

किन्तु जैसे ही पर्वत को जल में रखा गया; वैसे ही वह जल में डूबने लगा। तब सभी अत्यन्त चिन्तित होकर कहने लगे कि अब मन्थन का महान कार्य किस प्रकार होगा?

चौ.- **अस सुनि बिहँसत दयानिधाना। लीन्हा कच्छप बपुष महाना॥**
जोजन लच्छ तासु बिस्तारा। पीठि कठिनपनु कहे न पारा॥

यह सुनकर मुस्कुराते हुए दयानिधान श्रीहरि ने कूर्म (कछुए) का महान शरीर धारण कर लिया। वह एक लाख योजन विस्तृत था और उसकी पीठ की कठोरता का वर्णन नही हो सकता था।

बपुष अकथ लखि अस हरि केरा। कीन्ह सबन्हँ जयनाद घनेरा॥
कच्छप तदुप सिंधु महँ जाई। लीन्ह महीधर पीठि चढ़ाई॥

भगवान श्रीहरि का ऐसा अकथनीय शरीर देखकर, सभी ने महान जयध्वनि की। तदनन्तर कूर्म भगवान ने समुद्र में जाकर पर्वत को अपनी पीठ पर उठा लिया।

इहाँ चारिभुज अस कहि लागे। जे चहु बिघन अब न कोउ जागे॥
तो सब देव दनुज समुदाई। प्रथम ब्याधिहर पूजहुँ जाई॥

इधर चतुर्भुज स्वरूपधारी भगवान श्रीहरि ने कहा कि यदि तुम सब चाहते हो कि अब आगे और कोई विघ्न उत्पन्न न हो, तो जाकर सर्वप्रथम विघ्नहर्ता श्रीगणेश का पूजन कर लो।

अस सुनि परम हरषबस सबहीं। मंगलनिधि पद पूजे तबहीं॥
पाछ सुरासुर परम उमंगा। कटि कसि पीटि लाग निज अंगा॥

यह सुनकर अत्यन्त हर्षित हो सबने मङ्गलों के धाम गणेशजी के चरणों का पूजन किया। तत्पश्चात् समस्त दैत्यों व देवों ने अत्यंत उत्साह से अपनी-अपनी कमर कस ली और अङ्गों (बाहु व जङ्घाओं) को थपकानें लगे।

दोहा- **तदुप कहा हरि बिवुध सब गहहिं ब्याल सिरु भाग।**
दनुज रहहिं पुनि पूँछ दिसि सुनि कलही कहि लाग॥१०९॥

तत्पश्चात् भगवान श्रीहरि ने कहा कि समस्त देवता वासुकी नाग का सिरवाला भाग पकड़ेंगे और दैत्य उसके पूछवाले भाग की ओर रहेंगे; यह सुनते ही कलहप्रिय दैत्य कहने लगे कि,

चौ.- **समरधीर हम सहज असंका। गहहिं न फनिहिं अपावन अंका॥**
सिरुहिं लेहिं न त हम घर जाई। सिंधु इन्हहि तें लेहुँ मथाई॥

हम दैत्य स्वभाव से ही रणधीर और निडर हैं, अतः सर्प के अशुद्ध भाग को नहीं पकड़ेंगे। हम सिरवाला भाग ही पकड़ेंगे, अन्यथा हम घर जा रहे हैं, आप समुद्र इन्हीं से मथवा लीजिये।

तब हरि तिन्ह बहुभाँति बुझाए। पुनि पन्नग सिरु आस पठाए॥
तदुप भयउँ मंथन आरंभा। थाहन जलधि गरभु आचंभा॥

तब श्रीहरि ने उन्हें बहुत प्रकार से समझाया और सर्प के सिरवाले भाग की ओर भेज दिया। तत्पश्चात् समुद्र के गर्भ में स्थित रत्नरूपी आश्चर्य का पार पाने के लिये समुद्र मन्थन प्रारम्भ हुआ।

मथत दनुज अति अहमिति पागे। अहि सिरु निज दिसि खींचन लागे॥
बिबुध पूँछ गहि आपन ओरा। खींचि लाग करि अतिसय जोरा॥

मंथन करते हुए समस्त दैत्य मिलकर अत्यन्त अहङ्कारपूर्वक सर्प के सिरवाले भाग को अपनी ओर खींचने लगे और देवता उसकी पूँछ पकड़कर अत्यधिक जोर लगाकर अपनी ओर खींचने लगे।

कच्छप कठिन पीठि रगड़ाई। घरर घरर धुनि गिरि उपजाई॥
पुनि गति करत उभय दिसि नीरा। छर छरात भा परम गभीरा॥

कूर्म की कठोर पीठ से रगड़ाकर पर्वत से घर्र-घर्र की ध्वनि होने लगी और दोनों ओर आता-जाता हुआ जल अत्यधिक गम्भीरता से छल-छलाने लगा।

दोहा- **कोटि तरंग भयंकर तटन्हँ ताड़ि उमगानि।**
भए बिकल थलचर हृदय प्रलय राति अनुमानि॥११०॥

मंथन से उत्पन्न करोड़ों भयङ्कर तरङ्गें तटों पर आघात करती हुई उमड़ने लगी; जिसे देखकर थलचर जीव मन-ही मन प्रलय की रात्रि का अनुमान करके, अत्यन्त व्याकुल हो उठे।

चौ.- जलचर जानि होत उड़पाता। भए छुब्ध सुमिरहि जनत्राता॥
एहिबिधि सृष्टि सकल अकुलानी। हिय हँहरेहु मुख न चल बानी॥

जलचर जीव उल्कापात हुआ जानकर विक्षुब्ध हो श्रीहरि का स्मरण करने लगे। इस प्रकार सम्पूर्ण सृष्टि व्याकुल हो गई, सभी का हृदय घबरा गया और मुख से वाणी नहीं निकल पाई।

एहि प्रकार खींचत सवँ नागा। कठिन बिषागिनि उगरन लागा॥
जरत असुर तब अति अकुलाई। तुरत हरिहि सन पीर सुनाई॥

इस प्रकार खींचते समय वासुकीनाग अपनी श्वासों द्वारा कठोर विषयुक्त अग्नि छोड़ने लगा। तब दाह से पीड़ित असुरों ने अत्यंत व्याकुल होकर तुरन्त श्रीहरि को अपनी पीड़ा कह सुनाई।

प्रभु अब हम अहि पूँछहि गहही। तब लीलानिधि बिहँसत कहही॥
स्वकर स्वपद तुम मारि कुठारी। पीर आपु अब सहुँ तिन्ह भारी॥

हे प्रभु! अब हम सर्प की पूँछ ही पकड़ेंगे, तब लीलासागर प्रभु ने हँसकर कहा- तुमने अपने हाथों से अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारी है, अब उससे उत्पन्न महान पीड़ा को स्वयं ही सहो।

तिमिरपेमि सुनि मुख लटकाई। निज अस्थान लगे सब जाई॥
मंथन भयउ अरंभ बहोरी। दुहुँ दल खींची लाग अहि दोरी॥

यह सुनकर अज्ञानता से प्रेम करनेवाले सभी दैत्य मुँह लटकाकर अपने-अपने स्थानों पर जा लगे। फिर मन्थन पुनः प्रारम्भ हो गया और दोनों दल सर्परूपी रस्सी को खींचने लगे।

दोहा- मथत भाँति एहि सुर असुर थके महाश्रमु पाइ।
तब हरि सन सब बिकल कह प्रभु अब अरु न मथाइ॥१११॥

इस प्रकार समुद्र को मथते हुए देवता और दैत्य महान श्रम से थक गए। तब वे व्याकुल होकर श्रीहरि से कहने लगे कि हे प्रभु! समुद्र अब हमसे और अधिक नहीं मथा जाएगा।

चौ.- तब मायापति दइ उन्ह धीरा। आपु मथत भए जलधि गभीरा॥
कछु सवँ बिगत गरल बिकराला। उपजा कंपति तें अति ज्वाला॥

तब उन्हें धैर्य बँधाकर मायापति भगवान स्वयं समुद्र को मथने लगे। कुछ समय बीतने पर समुद्र से भयङ्कर ज्वाला धारण किये हुए विकराल विष उत्पन्न हुआ।

तासु ताप सब दिसि अकुलानी। तब प्रभु सन कह सब अस बानी॥
सपदि थापु कत माहुर भारी। न त यह देहिं अखिल जग जारी॥

उसके ताप से समस्त दिशाएँ अकुला उठी, तब सब देवता व असुर भगवान से कहने लगे- हे नाथ! इस प्रचण्ड विष को शीघ्र ही कहीं स्थिर कीजिये, अन्यथा यह समस्त संसार को भस्म कर देगा।

सुनु सुर असुर अखिल जग माहीं। दुराधरष हर सम अस नाहीं॥
जे अस माहुर सकहि जिराई। सो तुम भजहुँ उन्हहिं पद जाई॥

हे देवताओं और दैत्यों सुनो! सम्पूर्ण संसार में भगवान शिवजी के समान ऐसा दुराधर्ष कोई भी नहीं, जो इस विष को पी सके; अतः तुम सब जाकर उन्हीं के चरणकमलों का भजन करो।

सुनि गवने सब सिव समुहाना। बहुरि हलाहल बिषय बखाना॥
सम्भु दीन्ह तब सब कहँ धीरा। आए सद्य सिंधु के तीरा॥

यह सुनकर सभी शिवजी के पास गए और उन्हें हलाहल नामक उस विष के सम्बन्ध में कह सुनाया। तब शिवजी ने सबको धैर्य बँधाया और शीघ्र-ही समुद्र के तट पर आए।

तेहिं सवँ गहि घट दारुन बिष कर। लगे बिचार करन अस संकर॥

उस समय उस कठोर विष के कलश को उठाकर शिवजी इस प्रकार विचार करने लगे।

दोहा- **मम हिय करहि निवास हरि जे गर उदर उतारुँ।**
होइहिं तब उन्ह कष्ट अति सो एहि कंठहिं धारुँ॥११२॥

मेरे हृदय में भगवान श्रीहरि का निवास है, यदि इस विष को मैं अपने उदर में उतारूँगा तो उन्हें बहुत कष्ट होगा; अतः मैं इसे अपने कण्ठ में ही धारण कर लेता हूँ।

चौ.- **अस बिचारि गहि बिष दुखदाई। रुद्र लीन्ह निज कंठ बसाई॥**
तेहिं सवँ महिप कंठ उन्हँ केरा। बिष प्रभाउँ भा नील घनेरा॥

ऐसा विचार कर उस दुःखदायक विष को भगवान रुद्र ने अपने कण्ठ में ही रोक लिया। हे परीक्षित! उस समय विष के प्रभाव से उनका कण्ठ अत्यन्त नीला पड़ गया।

तब उन्ह नाउँ भयउँ बिख्याता। नीलकंठ भगतन्हँ भयत्राता॥
कृपादृष्टि हरि केर नहाई। लीन्ह सबन्हँ निज जरनि मेटाई॥

तभी उनका नाम 'नीलकण्ठ' प्रसिद्ध हुआ, जो भक्तों के भय का नाश करनेवाला है। इधर भगवान श्रीहरि की कृपादृष्टि में नहाकर सभी ने अपनी-अपनी जलन मिटा ली।

परम उमंग उभयदल धाई। जलधि लाग मथि पुनि हरषाई॥
कामधेनु तब दूसर बारा। उपजि दीन्ह सुख सबन्हँ अपारा॥

फिर दोनों दल प्रसन्न होकर दौड़े और अत्यन्त उत्साह के साथ पुनः समुद्र को मथने लगे। तब दूसरी बार में समुद्र से कामधेनु प्रकट हुई और सभी को अपार सुख दिया।

तेहिं सिहाइ अस कह सुखधामा। करिअ सुरासुर ऐहिं प्रनामा॥
माँगिअ सबिनय एहि सन जोई। तेहिं छिनु देति धेनु यह सोई॥

उनकी प्रशंसा करते हुए सुखधाम प्रभु बोले- हे देवताओं व दैत्यों! इन्हें प्रणाम करो। इन कामधेनु से विनयपूर्वक जो भी माँगा जायँ, ये गौदेवी उसी क्षण वही वस्तु देती है।

सुनि उमगे दुहुँ दल तेहिं पाई। हरि परन्तु अस कहा बुझाई॥

यह सुनकर दोनों दल उन्हें पाने के लिये उमड़ पड़े, किन्तु श्रीहरि ने उन्हें समझाकर यह कहा-

दोहा- **प्रथम भाग जस हरहि रहा तस दूसर द्विज केर।**
तासु सुआसिस मिलइ जब अमिअ मिलिहि बिनु देर॥११३॥

जिस प्रकार समुद्र मन्थन में पहला भाग शिवजी का था, उसी प्रकार उसमें दूसरा भाग ब्राह्मणों का है। जब उनका शुभाशीर्वाद मिल जाएगा, तब अमृत भी अविलम्ब मिल जाएगा।

चौ.- हरि बसिष्ठ कहँ तदुप बोलाई। कामधेनु उन्ह दान कराई॥
अब जे उपजहिं मंथन माहीं। एक एक दुहुँ दल लै ताहीं॥

तदुपरान्त भगवान ने महर्षि वशिष्ठ को बुलवाकर कामधेनु उन्हें दान करवा दी। (भगवान ने पुनः सबसे कहा-) अब मन्थन से जो भी उत्पन्न होगा, दोनों दल उसे एक-एक करके, बाँट लेंगे।

तीसर बार भयउँ हय उदभव। जग बिख्यात नाउँ उच्चैश्रव॥
स्वेत बरन घन अयाल ग्रीवाँ। तड़ित चपलपनु सुषमा सीवाँ॥

तीसरी बार समुद्र से एक अश्व निकला, जिसका नाम संसार में उच्चैश्रव प्रसिद्ध हुआ। उसका रङ्ग श्वेत व कण्ठ और अयाल घनी थी। वह बिजली की-सी चञ्चलता से युक्त और सुन्दरता की सीमा था।

निरखि तेहिं कह बिबुधन्हँ रोगा। बलिहि याहिं पर चढ़िबे जोगा॥
तातें मिलन चहिअ यह हमहीं। दनुजन्ह दीन्ह सो हय हरि तबहीं॥

उसे देखकर देवों के लिये रोगरूप दानवों ने कहा कि इस पर चढ़ने के योग्य तो केवल महाराज बलि ही हैं। अतः यह अश्व हमें ही मिलना चाहिये; तब भगवान ने वह अश्व दैत्यों को दे दिया।

चौथेउँ रतनरूप रद चारी। ऐरावत गज उपजेहुँ भारी॥
गज छबि लखि निसिचर हरि आगे। फिरि निज बात कहन अस लागे॥

तीसरे रत्न के रूप में समुद्र से चार दाँतोंवाला ऐरावत नामक महान हाथी प्रकट हुआ। उसकी सुन्दरता देखकर ललचाए हुए दैत्य श्रीहरि के सन्मुख अपनी बात से पलटकर इस प्रकार कहने लगे-

बाजि नाथ यह सुर गहि लेही। पुनि गयंदु यह हम कहँ देही॥

हे नाथ! इस अश्व को देवता रख लें और यह हाथी हमें दे दें।

दोहा- पूरब करि जे टेक सब तस निबाहु अब ताहिं।
हय तैं लीन्ह त सिंधुर रहिहहिं बिबुधन्हँ पाहिं॥११४॥

तब भगवान ने कहा कि पूर्व में जो बात सबने मिलकर निश्चित की थी, उसे वैसे ही निभाओ। यदि घोड़ा तुमने लिया है, तो अब हाथी देवताओं के पास रहेगा।

चौ.- सुनत रातिचर मींझत हाथा। पुनि मंथन लागे सुर साथा॥
नरपति मंथन पंचम बारा। उपजि एक मनि तेज अपारा॥

उनकी बात सुनकर दैत्य हाथ मलते हुए पुनः देवताओं के साथ समुद्र को मथने लगे। हे परीक्षित! मन्थन से पाँचवी बार अपार तेजयुक्त एक मणि उत्पन्न हुई।

जेहिं सुरासुर हरि ईछा लखि। उन्हहिं समरपी पेमु बिसेषी॥
कस्तुभ नाउँ सो मनि तेहिं काला। हरषि पोइ उन्ह आपन माला॥

जिसे श्रीहरि की इच्छा जानकर देवताओं व दैत्यों ने बड़े प्रेम से उन्हीं को अर्पित कर दी। उस समय कौस्तुभ नाम की उस मणि को भगवान ने प्रसन्नतापूर्वक अपनी माला में पिरो लिया।

षट्‌उँ बार जलनिधि के अंका। उपजा पारिजात तरु बंका॥
कामदाइ हरि ताहि बताई। सब मत दीन्ह सिंधु तट बाई॥

छठी बार समुद्र की गहराई से 'पारिजात' नामक एक भव्य वृक्ष उत्पन्न हुआ। उसे समस्त इच्छाओं को पूर्ण करनेवाला बताकर; सभी के मत से भगवान ने समुद्र के तट पर ही स्थापित कर दिया।

तदुप उपजि मंथन तें रंभा। जेहिं लहिबे भइ अनख अरंभा॥
पाइ सकेहुँ अकेल न कोई। तें रहि सबन्हँ जगतबधु होई॥

तदुपरान्त समुद्र से रम्भा नाम की एक अप्सरा प्रकट हुई, जिसे पाने के लिये देवताओं और दैत्यों में होड़ लग गई; किन्तु उसे कोई एक अकेला न पा सका और वह जगत्वधू होकर सभी की हो गई।

सिंधुसुता होइ आठवँ बारा। महालच्छि पुनि जग पग धारा॥
द्विज बपु प्रगटि सिंधु कर जोरी। हरिहिं संग उन्ह ब्याहिं बहोरी॥

आँठवी बार मन्थन से समुद्र की कन्या होकर महालक्ष्मी ने संसार में पुनः आगमन किया। फिर समुद्र ने ब्राह्मण के रूप में हाथ जोड़ते हुए प्रकट होकर उन्हें जगत्पति श्रीहरि को ब्याह दिया।

अस बिलोकि सुर अज हर हरषे। दनुजन्हँ सहित सुमन बहु बरषे॥
बारुनि कन्या रूप बनाई। मंथन नवम बार समुहाई॥

यह देखकर शिवजी, ब्रह्माजी व देवता अत्यन्त हर्षित हुए और उन्होंने असुरों के साथ बहुत से पुष्प बरसाये। फिर नौवीं बार समुद्र से कन्या का रूप बनाकर वारुणी प्रकट हुई;

जिहिं बिलोकि हरषे जतुधाना। तब तेहिं दीन्ह उन्हहिं भगवाना॥
महालच्छिहि पदाम्बुज देखी। देवन्हँ पाइसि आस बिसेषी॥

जिसे देखकर दैत्य अत्यन्त प्रसन्न हुए, तब भगवान ने उसे उन्हीं को दे दिया। महालक्ष्मी के चरणकमलों को देखकर देवताओं को विशेष आशा प्राप्त हुई;

तातें भरि सब परम उमंगा। मथि लग द्रुतगति नीरधि अंगा॥
तब धनवंतरि बैद बपुष धरि। मंथन कठिन उए कस श्रीहरि॥

इसलिये वे सब अत्यन्त उत्साह से भरकर शीघ्रतापूर्वक समुद्र के जल को मथने लगे। तब उस कठिन मन्थन से 'धनवन्तरी-वैद्य' का शरीर धरकर भगवान श्रीहरि किस प्रकार प्रकट हुए;

जस उर महितल नयजल पाई। परा आदरांकुर उमगाई॥

जैसे विनयरूपी जल को पाकर हृदयरूपी भूमि पर आदर का अङ्कुर फूट आता है।

दोहा- **अमिअ कलस उन्ह कर रहेउ देखि सुरासुर जाहिं।**
तरकि अमरपनु आपन फूर समाने नाहिं॥११५॥ (क)

उनके हाथों में अमृत का कलश था, जिसे देखते ही देवता व असुर अपने अमृत्व का अनुमान करके, फूले नहीं समाये।

जामिनिचर एक तेहिं समय धनवंतरि पहि जाइ।
छीनि कलस अति बिहसेहुँ तब कह सुर अकुलाइ॥११५॥ (ख)

उसी समय एक दैत्य ने भगवान धनवन्तरि के पास जाकर अमृत का कलश छीन लिया और जोर से हँसा, तब देवताओं ने व्याकुल होकर कहा-

चौ.- **भाग सुरन्हँ अपि अवँरित माहीं। सो अकेल तुम गहि सक नाहीं॥**
ते कह प्रथम पिअहिं हम ऐहीं। रहहि सेष जे तुम्हँ कहँ देहीं॥

इस अमृत में देवताओं का भी भाग है, अतः तुम अकेले इसे नहीं पी सकते। तब उस दैत्य ने कहा कि इसे पहले हम पीयेंगे, फिर यदि कुछ बच गया, तो तुम्हें भी दे देंगे।

सुनत बिबुध भै परम निरासा। कहा बहोरि जाइ हरि पासा॥
तब प्रभु कह चिंता परिहरऊँ। तुरत उपाय कवन मैं करऊँ॥

यह सुनकर देवता अत्यन्त निराश हो गये और उन्होंने जाकर भगवान श्रीहरि से यह बात कह दी। तब प्रभु ने कहा कि तुम चिन्ता त्याग दो, मैं तुरन्त ही कोई उपाय करता हूँ।

हरिहि बचन सुनि अस गम्भीरा। बिबुधन्हँ आपन हिय धरि धीरा॥
इहाँ किए हित अँवरित पाना। झपटि छीनि लग जड़ जतुधाना॥

भगवान श्रीहरि के ऐसे गम्भीर वचन सुनकर देवताओं ने अपने हृदय में धैर्य धारण किया। इधर अमृतपान करने के लिये मूर्ख दैत्य आपस में छीना-झपटी करने लगे।

प्रथम गहउँ मैं नहिं मैं गहऊँ। नहिं नहिं प्रथम त मैंहीं पहऊँ॥
करत ढोटपनु जब एहिंभाँती। झगरन लगे सुरन्हँ आराती॥

'पहले मैं पीऊँगा', 'नहीं मैं पीऊँगा'; 'नहीं-नहीं पहले तो मैं ही पीऊँगा'; इस प्रकार ढीठता करते हुए देवताओं के वे शत्रु जब झगड़ने लगे।

आसंकित सुर तिन्ह चहुँ ओरा। जाइ लगे पुनि सुन सब सोरा॥
तेहिं सवँ सुरन्हँ सवारन काजा। तिय तनु धरा मायसिरताजा॥

तब आशङ्कित हुए देवता उनके चारों ओर जा लगे और उनके समस्त कलह को सुनने लगे। उसी समय देवों का कार्य सिद्ध करने के लिये मायापति ने एक स्त्री का रूप धारण कर लिया।

दोहा- **परिछित मोहिनि नाउँ सो तिय छबिनिधि कमनीय।**
भ्रुकुटि जासु मुनि तपिन्हँ कर धीर सहज दमनीय॥११६॥

हे परीक्षित! मोहिनी नाम की वह कमनीय स्त्री सौन्दर्य की महान राशि थी; जिसकी भृकुटि मुनियों और तपस्वियों के धैर्य को भी सहज ही हरनेवाली थी।

चौ.- **हर बिरंचि तिन्हँ देखि बिमोहे। गनिति माँझ बपुरे सुर को है॥**
बदनु ढापि अंचलु अति गाढ़ा। बिचरनि धरे कुटिलपनु बाढ़ा॥

ब्रह्मा और शिव भी उसे देखकर विमोहित हो गये; फिर बेचारे देवता किस गिनती में है। अपने मुख को लम्बे घूँघट में ढँककर, अपनी चाल में कुटिलता की बाढ़ लिये;

सबबिधि त्रिपुर धीर तट तोरी। छबि नदि सो चलि खल बन ओरी॥

मधुर मधुर धुनि नूपुर केरी। भइ जस कलहिन्हँ श्रवन घनेरी॥

सब प्रकार से त्रिलोक के धैर्यरूपी किनारों को तोड़ती हुई सुन्दरता की वह नदी दैत्यरूपी वन की ओर चली। उसके नूपुरों की मधुर-मधुर ध्वनि, जैसे ही कलहप्रिय दैत्यों के कानों में गहराई,

तसहिं तें बिसरि परसपर रारी। अति अचरज तेहिं लाग निहारी॥
पुनि मोहिनि निज अंचलु फेरी। उन्हँ दिसि मादक हासि उढेरी॥

वैसे ही वे परस्पर झगड़ना छोड़कर अत्यन्त आश्चर्य से उसे देखने लगे। फिर मोहिनी ने भी अपने मुख पर पड़े हुए आँचल को हटाकर, उनकी ओर अपनी मादक मुस्कान उढ़ेल दी।

बहुरि लजत करि चितबनि बाँकी। मंद मंद हँसि लगि तिन्ह ताकी॥
तरकि सुराज बिबुध आराती। प्रमुदि परसपर कह एहिंभाँती॥

पुनः सकुचाते हुए वह अपनी चितवन को टेढ़ा करके, मन्द-मन्द मुस्कान से उन्हें देखने लगी। बात को बनता हुआ देखकर अत्यन्त आनन्दित हुए दैत्य परस्पर इस प्रकार कहने लगे-

दोहा- **बिदुषी लाग बरानना लेहिं पंच करि एहिं।**
परिहरि ब्यरथ अनख सब बाँटि अमिअ हम लेहिं॥११७॥

सुन्दर मुखवाली यह नारी परमविदुषी जान पड़ती है, इसलिये इसे पञ्च बना लेते हैं और इस व्यर्थ की स्पर्धा का त्याग करके हम सब मिलकर अमृत बाँट लेते हैं।

चौ.- **कलह किए कछु आव न हाथा। अस बिचारि तिन्ह पहि गै साथा॥**
पुनि कह सुंदरि हम जतुधाना। चह समरूप सुधा करि पाना॥

कलह करने पर कुछ भी हाथ नहीं आयेगा, ऐसा विचारकर सब एक साथ उस स्त्री के पास गए और बोले- हे सुन्दरी! हम दैत्य इस अमृत को समानरूप से पीना चाहते हैं;

सो तुम निज सुन्दर कर लाई। सुधा देहु सम हमहि पिबाई॥
किंतु कवन तेहिं उतरु न दीन्हा। केवल गवन पंथ निज कीन्हा॥

अतः तुम अपने सुन्दर हाथों से हमें बराबर अमृतपान करा दो। किन्तु उसने उनकी बात का कुछ भी उत्तर न दिया और वह केवल अपने मार्ग पर ही बढ़ती रही।

तब बिमुग्ध सब आतुर धाई। परे तासु पदतल अकुलाई॥
हे मृगनयनि उपेछु न हमहीं। तुमहि पिबाहु सुधा हम चहहीं॥

तब अत्यधिक आसक्त हुए समस्त दैत्य उतावली से दौड़े और अकुलाकर उसके चरणतलों पर गिरकर बोले- हे मृगनयनी! हमारी उपेक्षा न करो, हम चाहते हैं कि हमें अमृत तुम्हीं पिलाओ।

मोहिनि बपु प्रभु पुनि मुसुकाने। दनुज बिमोहि परम ललकाने॥
उन्ह कहँ सबबिधि करतल जानी। हरिमाया अस कह मृदु बानी॥

तब मोहिनी के रूप में भगवान पुनः मुस्कुरा दिये, यह देखकर विमोहित हुए दैत्य अत्यधिक ललक उठे। उन्हें सब प्रकार से अपने वश में हुए जानकर प्रभु की मायारूपिणी मोहिनी कोमल वाणी से इस प्रकार बोली-

दोहा- हठ तुम्हार जे इहइ अह तब मैं अवसि पिबाउँ।
अधरम किंतु न मोहि रुच तातें कीन्ह दुराउ॥११८॥

यदि तुम्हारा यही हठ है, तो मैं तुम्हें अमृत अवश्य पिलाऊँगी, किन्तु अधर्म मुझे अच्छा नहीं लगता है, इसीलिये पहले मैंने तुम्हारी उपेक्षा की थी।

चौ.- बिबुधन्ह श्रमु एहि काढ़न माहीं। कवनि भाँति तुम्ह तें कमु नाहीं॥
तद्यपि ताहिं अँगूठ देखाई। चह अकेल तुम अवँरित पाई॥

इसे निकालने में देवताओं का परिश्रम तुम दैत्यों से किसी भी प्रकार कम नहीं है; फिर भी उन्हें अँगूठा दिखाकर तुम अकेले ही अमृत प्राप्त कर लेना चाहते हो।

डाँगफास कइ एहि पंचाती। मोहि न तनक तुम्हार सोहाती॥
पुनि तुम मानबि नहिं मत मोरा। सो चलि मैं आपन गृह ओरा॥

तुम्हारी यही छलकपटयुक्त नीति मुझे तनिक भी अच्छी नहीं लगती और तुम दैत्य मेरी बात तो मानोगे नहीं; अतः मैं अपने घर की ओर चली।

जामिनिचर सुनि हृदयँ बिचारा। एहिबिधि होइहिं काज बिगारा॥
तब तें कह तुम सत्य उचारा। कीन्ह सुरन्हँ प्रति हम अतिचारा॥

दैत्यों ने यह सुनकर विचार किया कि इस प्रकार तो सारा काम बिगड़ जाएगा। तब उन्होंने कहा कि तुम सत्य कहती हो, हमने देवताओं के प्रति अत्याचार किया है।

सपनु कहइ हम बिसरि प्रपंचा। भाग देहि उन्ह तोहि करि पंचा॥
अब कामिनि तोहिं भावइ जोई। हमहि तजे बिनु करु तुम सोई॥

हम प्रतिज्ञापूर्वक कहते हैं कि हम कपट त्यागकर तुम्हें पञ्च बनाकर देवताओं को भी अमृत में भाग देंगे। अतः हे कामिनी! अब हमें त्यागे बिना तुम्हे जो भी अच्छा लगे, वही करो।

जानि बिमुग्ध सकल जतुधाना। मोहिनि बपु बोले भगवाना॥

तब समस्त दैत्यों को अत्यन्त आसक्त जानकर मोहिनी के रूप में भगवान श्रीहरि बोले-

दोहा- पृथक पृथक अब सुर असुर बैठिअ पँगति बनाइ।
अबहि बाँटि समरूप सुधा सब कहँ देउँ पिबाइ॥११९॥

अब अलग-अलग होकर समस्त देवता व दैत्य कतार बनाकर बैठ जाइये; मैं अभी सबको समान रूप से अमृत पिला देती हूँ।

चौ.- देव दनुज अस सुनि हरषाने। निज निज पंगति लाग जुड़ाने॥
मोहिनि तब गइ दनुजन्हँ पासा। ठुमुकि मंद हँसि पुनि अस भाषा॥

यह सुनकर देवता व दैत्य प्रसन्नतापूर्वक अपनी-अपनी कतार जोड़ने लगे। तब मोहिनी ठुमकती हुई दैत्यों के पास गई और मन्द-मन्द मुस्कराते हुए उन्हें इस प्रकार कहा-

सबल होत तुम बिबुधन्हँ भागा। मानेहु केवल मम अनुरागा॥
सोइ रस सुमिरि प्रथम मैं जाई। अरध अमिअ उन्ह रही पिबाई॥

बलवान होते हुए भी केवल मेरे प्रति प्रेम के कारण ही तुम लोगों ने इस अमृत में देवताओं का भाग स्वीकार किया है। उसी प्रेम का स्मरण करके, पहले मैं जाकर आधा अमृत उन्हें पिला रही हूँ।

तदुप सान्ति तें नाचि बिमोही। देउँ पिबाइ भाग तव तोहीं॥
तातें निबरि फिरौं मैं जब लौ। तैं धरि धीर जोहु मोहि तब लौ॥

तदुपरान्त अपना नृत्य दिखाते हुए रिझाकर शान्तिपूर्वक तुम्हारा भाग तुम्हें पिलाऊँगी। इसलिये जब तक उनसे निवृत्त होकर मैं लौटूँ, तब तक तुम सभी धैर्यपूर्वक मेरी प्रतीक्षा करना।

अस सुनि हरषे दनुज बिमूढ़ा। बूझा कोउँ न बचन सगूढ़ा॥
पुनि कह प्रिये भाव तोहिं जोई। सकुचनि भय परिहरि करु सोई॥

यह सुनते ही वे महामूर्ख दैत्य हर्षित हो उठे, किन्तु उनके गूढ़ वचनों को कोई नहीं समझ पाया। फिर वे बोले- हे प्रिये! तुम्हें जो भी अच्छा लगे, भय और सङ्कोच त्यागकर तुम वही करो।

मोहिनि तनु अस सुनि भगवाना। लगे कराइ सुरन्हँ रसपाना॥
दृग करि बिच बिच माय तिरीछे। छार पुष्पसर अतिसय तीछे॥

मोहिनी के रूप में यह सुनकर भगवान श्रीहरि देवताओं को अमृत पिलाने लगे। मायारूपी मोहिनी बीच-बीच में अपने नेत्र तिरछे करके, उनकी ओर अत्यन्त तीक्ष्ण पुष्पबाण छोड़ देती थी।

तातें बिसरि सुधा सुधि दानव। भए प्रमत्त तासु छबि आसव॥

इसलिये अमृत की सुधि भूलकर दैत्य उसकी सुन्दरतारूपी मदिरा से उन्मत्त हो गए।

दोहा- **सुधा पिआबत सुरन्हँ इत मोहिनि तनु भगवान।**
अंतिम पंगति आइ गै तरनि इंदु समुहान॥१२०॥

इधर देवताओं को अमृत पिलाते हुए मोहिनी के रूप में भगवान श्रीहरि सूर्य और चन्द्रमा के सन्मुख अंतिम पङ्क्ति में आ पहुँचे।

चौ.- **तेहिं सवँ हृदय बिचारेहु राहू। सुरन्हँ देइ तिय जे सब लाहू॥**
तब दनुजन्हँ कर आवइ काहीं। पुनि बस चल सवँ पर केउ नाहीं॥

उस समय राहु नामक दैत्य ने मन में विचार किया कि यदि यह स्त्री सारा अमृत देवताओं को पिला देगी, तब हम दैत्यों के हाथ क्या आयेगा और समय पर तो किसी का वश नहीं चलता।

सो मोहि उचित खुटन तें पहिलहिं। जतन कवन करि लेउँ तेहिं गहि॥
अस बिचारि सुर बपुष दुराई। छलि बैठा बिधु रबि बिच आई॥

अतः मुझे चाहिये कि समाप्त होने से पहले ही मैं कोई उपाय करके अमृत पी लूँ। ऐसा विचार करके देवशरीर धरकर वह कपटी छिपते हुए देवताओं की पंक्ति में सूर्य व चन्द्रमा के मध्य आ बैठा।

पुनि रबि पाछ अमिअ गहि लीन्हा। छल अस ताकर जस दुहुँ चीन्हा॥
चिक्कि तसहि तें कह नरनाहू। नाथ यह खल त निसिचर राहू॥

फिर सूर्य के बाद उसने भी अमृत पी लिया। हे परीक्षित! जैसे ही सूर्य और चन्द्रमा ने उसका यह कपट देखा, वैसे ही वे चिल्लाकर कहने लगे- हे प्रभु! यह दुष्ट तो दैत्य राहु है।

परम क्रुद्ध भै सुनि सुरत्राता। भजेहु सभय खल कम्पित गाता॥
सेष सोम हरि बिधु सिरु ढारा। रीत कलस पुनि महितल पारा॥

यह सुनते ही भगवान अत्यन्त क्रुद्ध हो गये; तब भय से काँपते हुए वह दैत्य उठकर भागा। इधर बचा हुआ अमृत भगवान ने चन्द्रमा के सिर पर डालकर रिक्त कलश भूमि पर दे मारा।
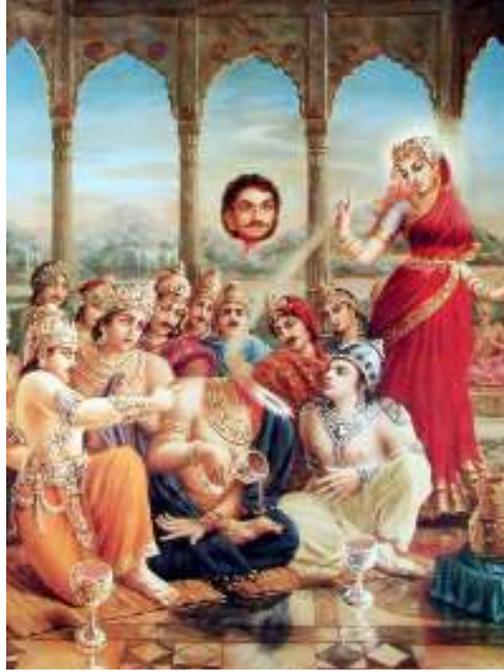
बहुरि चारिभुज रूप बनाई। खल सिरु छेदेउँ चक्र चलाई॥
तदपि न खल परिहरेहु सरीरा। भै एक कर दुइ दनुज गभीरा॥

फिर चतुर्भुज रूप धरकर उन्होंने अपने चक्र से उस दुष्ट का सिर काट दिया। इस पर भी वह दुष्ट मरा नहीं, बल्कि अब एक के स्थान पर दो भयङ्कर दैत्य हो गए।

तब बिधु दिनकर कह कर जोरी। नाथ भाग एहि करिअ न ओरी॥

तब सूर्य व चन्द्रमा ने हाथ जोड़कर कहा- हे प्रभु! अब इसके और अधिक भाग न कीजिये।

दोहा- **सुनि प्रभु दनुजन्हँ लाग कहि अब भै अमर तुम दोउ।**
सो परिहरि खलबृत्ति निज ग्रहन्हँ संग ग्रह होउ॥१२१॥

यह सुनकर भगवान ने उन दोनों दैत्यों से कहा कि अब तुम दोनों अमर हो गए हो। अतः अपनी असुरवृत्ति का त्याग करके, तुम भी अन्य ग्रहों के साथ ग्रह हो जाओ।

चौ.- **सीस राहु कहिअत एहि हेतू। धड़ प्रख्यात अधम ग्रह केतू॥**
तरनि चंद्र तिन्ह बिमुख उचारे। अजहुँ जात तिन्ह हाथ प्रतारे॥

शीश इसी कारण राहु और धड़ अधम ग्रह केतु के नाम से प्रसिद्ध है। सूर्य व चन्द्रमा ने उसका भेद खोला था, इसी कारण वे आज भी (ग्रहण के रूप में) उसके हाथों प्रताड़ित होते हैं।

महिपति जामिनिचर जब जाना। बिबुध रचेहुँ प्रपंच महाना॥
तब प्रकोप भा तिन्ह हिय भारी। बहुबिधि लाग सजावन धारी॥

हे परीक्षित! जब दैत्यों ने जाना कि देवताओं ने (उनके साथ) घोर कपट किया है, तब उनके हृदय में भयङ्कर क्रोध हुआ और वे अनेक प्रकार से सेना सजाने लगे।

चढ़ि मयदानवकृत नभचारी। बलि चलेहुँ गहि आयुध भारी॥
कालनेमि द्विजचिति हयग्रीवाँ। अनिप तासु अतुलित बलसीवाँ॥

महाराज बलि मयदानव के द्वारा निर्मित विमान पर चढ़कर बहुत से अस्त्र-शस्त्र लेकर चले। उनके सेनापति कालनेमि, विप्रचित्ति, हयग्रीव आदि अतुलनीय बलवान थे।

ए सब निज निज अनिहिं सजाई। अस्त्र सस्त्र गहि चले रिसाई॥
होतहि अमर इहाँ सुरनाथा। जम पवादि सेनप करि साथा॥

ये सब अपनी-अपनी सेना सजाकर क्रोधपूर्वक अस्त्र शस्त्र लेकर चले। इधर अमर होते ही देवराज इन्द्र, यम व पवन आदि देवसेनापतियों को साथ करके

साजि प्रचंड सिंधु सम धारी। दनुजन्ह समुख लगे गति भारी॥
दुहुँ दल प्रबल जुजुत्सु प्रचंडा। गर्जि कँपाइ लाग नवखंडा॥

समुद्र के समान प्रचण्ड सेना सजाकर बड़े वेग से दैत्यों के सन्मुख जा डटे। दोनों दल अत्यन्त बलवान और युद्ध के अत्यधिक प्यासे थे, जो करके नवों खण्डों को कम्पित करने लगे।

दोहा– निरखि सुरासुर आपने प्रतिभट भिरे बहोरि।
असि भुसुंडि सर परिघ बहु चलन लगे सब ओरि॥१२२॥

फिर अपनी-अपनी जोड़ का योद्धा देखकर देवता व दैत्य परस्पर भिड़ गए और सब ओर से तलवार, भुशुण्डी, परिघ, बाण आदि शस्त्र चलने लगे।

चौ.– अनि बिसाल जद्यपि जतुधाना। तदपि सद्य सुर कीन्ह निदाना॥
इत आयुध गहि बिबिध कठोरा। बलि सुरपति रनु कर घनघोरा॥

यद्यपि दैत्यों की सेना विशाल थी, तथापि देवताओं ने शीघ्र ही उसे नष्ट कर दिया। इधर बहुत से कठोर शस्त्र लेकर महाराज बली और देवराज इन्द्र परस्पर भयङ्कर युद्ध करने लगे।

जातुधानपति जतनेहुँ नाना। किंतु न लटेउ सुरप बलवाना॥
तासु अस्त्र सब निफरहिं कैसे। संकट कपटि मित्र तज जैसे॥

दैत्यराज बलि ने अनेक प्रयत्न किये, किन्तु बलवान इन्द्र उनसे पराजित नहीं हुए। उनके सारे अस्त्र किस प्रकार से निष्फल हो रहे थे; जिस प्रकार आपत्तिकाल में कपटी मित्र छोड़कर चला जाता है।

इंद्र त्रिशूल काढ़ि बिकराला। उर बिदारि तेहिं कीन्ह बिहाला॥
तब निसिचरपति हृदयँ बिचारा। अरु न जाइ सहि सुरपति मारा॥

इन्द्र ने एक विकराल त्रिशूल लेकर बलि का हृदय विदीर्ण करके उनको व्याकुल कर दिया। तब उन दैत्यराज ने अपने हृदय में विचार किया कि इन्द्र की मार अब और सही नहीं जाती।

अबध भयउँ तें सोम पान करि। सो कल्यान न तेहिं तें प्रगट लरि॥
अस बिचारि भा अंतरध्याना। मायजुद्ध करि लाग महाना॥

वह अमृतपान करके अवध्य हो गया है, अतः उससे प्रकटरूप से युद्ध करने में कल्याण नहीं है। ऐसा विचार कर वे अंतरध्यान होकर भीषण मायायुद्ध करने लगे।

दोहा- **बलि बिमान चढ़ि गै गगन बरिषत कबहुँ कृषानु।**
प्रस्तर कबहुँक बिषम सर बरिषि कुदिनु उपजानु॥१२३॥

बलि अपने विमान में बैठकर आकाश पर जा चढ़े और कभी अग्नि बरषाकर, कभी पत्थर और कभी कठिन बाण बरसाकर उन्होंने दुर्दिन उत्पन्न कर दिया।

मासपारायण चौथा विश्राम

चौ.- **जातुधानि अगनित पटहीनी। खप्पर गहे प्रगट तेहिं कीनी॥**
ते जीवंत मूरति अमंगल। मारु काटु बबकत चलि सुरदल॥

उन्होंने अपनी माया से खप्पर धारण की हुई अनगिनत वस्त्रहीन राक्षसियाँ प्रकट कर दी। अमङ्गल की वे जीवन्त मूर्तियाँ, 'मारो-काटो' इस प्रकार बड़बड़ाती हुई, देवताओं के दल की ओर चली।

तिन्हँ आपन दिसि आवत जानी। सभय तुरत सुर कटकु परानी॥
रहे तहाँ सोइ जे रनुधीरा। तेपि घिरे पै असुरि गभीरा॥

उन्हें अपनी ओर आती देखकर भयभीत हुई देवसेना युद्ध त्यागकर तुरन्त ही भाग चली। वहाँ केवल वे योद्धा ही डटे रहे, जो रणधीर थे; किन्तु वे भी उन भयङ्कर राक्षसियों से घिर गए।

तरकि पराभव सुरन्हँ तुरंता। सुरपति हिय हेरे भगवंता॥
तब सरबग्य गरुड़ चढ़ि धाए। आवत लखि उन्ह सुर हरषाए॥

देवताओं की पराजय का अनुमान करके, इन्द्र ने मन-ही मन श्रीहरि का स्मरण किया। तब सर्वज्ञ भगवान गरुड़ पर सवार होकर दौड़े; उन्हें आते हुए देखकर समस्त देवता हर्षित हो उठे।

आवतही हरि सुरन्हँ बखाना। तैं अबध्य भए अमरित पाना॥
तातें परिहरि भय सबभाँती। करु संग्राम समुख आराती॥

श्रीहरि ने युद्धभूमि में आते ही देवताओं से कहा कि तुम अमृतपान करके अवध्य हो चुके हो, अतः सब प्रकार से भय का त्याग करके, सन्मुख होकर शत्रु से युद्ध करो।

सुनि बैकुंठनाथ कर बचना। सुर पुनि लगे ब्यूह कइ रचना॥
इहाँ मायपति भ्रुकुटि प्रतारी। बलिहुँ माय छिनु माँझ बिडारी॥

वैकुण्ठाधिपति के ये वचन सुनकर देवता पुनः व्यूह-रचना में लग गए। इधर मायापति भगवान ने अपनी भृकुटी के सङ्केतमात्र से क्षणभर में ही बलि की सारी माया हर ली।

दोहा- **नृपति बाघ बाहन चढ़ि कालनेमि बिवुधारि।**

आइ तेहिं सवँ प्रभु समुख रनु उन्ह लाग पचारि॥१२४॥

हे परीक्षित! उस समय अपने वाहन बाघ पर चढ़कर देवशत्रु कालनेमि नामक दैत्य प्रभु के सन्मुख आकर उन्हें युद्ध के लिये ललकारने लगा।

चौ.- जड़पनु तासु देखि अस भारी। कहा कछु न बिहँसे असुरारी॥
अस बिलोकि दुइ गदा भवाँई। सठ हरि अरु खग आस चलाई॥

उसकी ऐसी भारी जड़ता देखकर भी बिना कुछ कहे असुरारि भगवान केवल हँस दिए। यह देखकर कालनेमि ने श्रीहरि व उनके वाहन गरुड़ की ओर घुमाकर दो गदाएँ एक साथ चलाईं।

पाख पवन तब तिन्हँ उरगारी। दीन्ह सहज उड़ाइ सम छारी॥
हरि सक्रुद्ध निज चक्र चलावा। सठहिं सअनि जमलोक पठावा॥

तब हरिवाहन गरुड़ ने अपने पङ्खों की प्रचण्ड वायु से सहज ही में उन्हें धूल के समान उड़ा दिया। फिर भगवान ने अत्यन्त कुपित होकर सुदर्शन-चक्र चलाया और सेना सहित उसे यमलोक भेज दिया।

अस लखि सभय निसाचर धारी। हाहाकार करत अति भारी॥
निदरि पतिन्हँ सब सस्त्र बिहाई। भाजि छूटि निज प्रान बचाई॥

यह देखकर सम्पूर्ण दैत्य-सेना घबराकर अपने सेनानायकों का निरादर करके, शस्त्र त्यागकर बड़ा भारी कोलाहल करती हुई अपने प्राण बचाकर भाग छूटी।

बलि सक्रुद्ध तब सुरपति ओरा। बरषि बिसिख धावा गति घोरा॥
आवत लखि तेहिं कह सुरराजा। कपट जुद्ध करि आव न लाजा॥

तब बलि अत्यन्त क्रोधित हो बाण बरसाते हुए प्रचण्ड वेग से इन्द्र की ओर दौड़े। उन्हें आता हुआ देखकर देवराज ने कहा- रे बलि! कपट युद्ध करते तुम्हें लज्जा नहीं आती?

दोहा- तब बलि कह रे कादर बनु सयान अस नाहिं।
दिवस चारि पूरब समर कौन भजेहुँ मोहि पाहिं॥१२५॥

तब बलि ने कहा कि रे कायर! इस प्रकार सयाने न बनो; चार दिन पूर्व मेरे सन्मुख युद्धभूमि से कौन भागा था?

चौ.- अस कहि बिषम अमित सर मारी। बलि सक्रहि उर दीन्ह बिदारी॥
उन्ह पुनि करत कोप घनघोरा। मारेहुँ बलि उर बज्र कठोरा॥

ऐसा कहकर राजा बलि ने अनेक बाणों से देवराज इन्द्र का हृदय विदीर्ण कर दिया। तब उन्होंने भी भयङ्कर क्रोध करते हुए, बलि के हृदयस्थल पर अपना कठोर वज्र दे मारा।

गर्जि खसा भुवि तब तजि प्राना। जातुधानपति सहित बिमाना॥
तेहिं सवँ जम्भ नाउँ एक निसिचर। बलिहि दसा लखि रिसेउँ भयंकर॥

तब गर्जना करके दैत्यराज बलि प्राणहीन होकर अपने विमान सहित भूमि पर आ गिरे। उस समय जृम्भ नाम का एक राक्षस अपने स्वामी की यह दशा देखकर अत्यन्त क्रोधित हुआ।

कठिन गदा पुनि गज सिरु मारी। अटहासेउँ रनुमेदिनि भारी॥

महाघात अस सिरु तल पाई। घुटरुन्हँ रहा नाग चकराई॥

फिर उसने ऐरावत के सिर पर गदा से भीषण आघात करके, युद्धभूमि में भयङ्कर अट्टहास किया। कुम्भस्थल पर हुए इस भयङ्कर आघात से पीड़ित होकर वह गजेन्द्र चकराकर घुटनों पर आ गिरा।

सुनासीर तब परिहरि कुंजर। धाइ तुरंत चढ़े रथ ऊपर॥
बल बिलोकि अस तिन्हँ उन्हँ कयऊँ। जरी दाम बल अबहि न गयऊ॥

तब इन्द्र ऐरावत को उसी स्थिति में छोड़कर दौड़े और तुरन्त ही रथ पर जा चढ़े। उस राक्षस का ऐसा बल देखकर उन्होंने कहा कि रस्सी जल गई, किन्तु बल अब तक नहीं गया।

सुनि तकि तकि कर दनुज प्रहारा। किंतु न भा बलिबधिक बिगारा॥
सारथित्व लखि मातलि केरा। होन लाग तिन्हँ सोच घनेरा॥

ऐसा सुन वह राक्षस तक-तक कर प्रहार करने लगा, किन्तु उसके हाथों बलिहन्ता इन्द्र का कुछ भी अहित न हुआ। रथसञ्चालन में इन्द्रसारथी मातली का कौशल देखकर उस दैत्य को बड़ी चिन्ता होने लगी।

दोहा- **खल त्रिसूल सारथि हृदयँ मारि बिकल तेहिं कीन्हँ।**
बज्रपानि लखि तुरत तिन्ह सिरु खंडित करि दीन्ह॥१२६॥

तब उस दुष्ट ने मातली के हृदय में त्रिशूल मारकर उसे व्याकुल कर दिया। यह देखकर वज्रपाणि इन्द्र ने तुरन्त ही उस राक्षस का मस्तक काट दिया।

चौ.- **जीति बिबुधपति सब आराती। अमरावति पुनि लहिं एहिंभाँती॥**
रहा इहइ द्विजकुल सुखदाता। जुद्ध सुरासुर जग बिख्याता॥

इस प्रकार समस्त शत्रुओं को जीतकर देवराज इन्द्र ने पुनः अपनी राजधानी अमरावती को प्राप्त कर लिया। हे चन्द्रवंश को सुख देनेवाले राजा परीक्षित! यही जगत प्रसिद्ध देवासुर संग्राम था।

जब बलि दमन सुक्र सुनि पाए। तब तें जुद्धभूमि दिसि धाए॥
पुनि संजीबनि मंतर मारी। बलि तनु दीन्ह प्रान संचारी॥

जब शुक्राचार्य ने बलि का मारा जाना सुना तब वे युद्धभूमि की ओर दौड़े और सञ्जीवनी मन्त्र के प्रभाव से उन्होंने बलि के मृत शरीर में पुनः प्राणों का सञ्चार कर दिया।

पाछ असुर सो सकल जिआए। रनु महुँ जासु सिर न कटि पाए॥
पुनि सिष कर उन्ह होम करावा। बिस्वजीत जेहिं प्रबुधन्हँ गावा॥

फिर पीछे उन सब असुरों को भी जीवित कर लिया, युद्ध में जिनके सिर नहीं कट पाये थे। फिर उन्होंने शिष्य बलि के हाथों एक यज्ञ करवाया, प्रबुद्धजन जिसे विश्वजित्-यज्ञ कहते हैं।

होमकुंड तें नृप तेहिं काला। पुरटहिं रथ एक उपजेहुँ आला॥
सिखर सिंघध्वज अरु हय चारी। रहे दिब्यदुति रथु संचारी॥

हे परीक्षित्! उस समय यज्ञ कुण्ड से सोने का एक विलक्षण रथ प्रकट हुआ। उसके शिखर पर लगी हुई सिंह के चिह्नयुक्त ध्वजा और उसमें जुते चार अश्व, रथ में दिव्य आभा बिखेर रहे थे।

दोहा- दिब्य कवच धनु भाथ अरु खंग एक बिकराल।
एक एक करि उपजेउँ मख देखत तेहिं काल॥१२७॥

उस समय देखते-ही देखते यज्ञकुण्ड से एक-एक करके एक दिव्य कवच, धनुष, तरकश और एक विकराल खड्ग प्रकट हुआ;

चौ.- जिन्हँ कहँ दीन्ह बलिहि भृगुनंदन। कंबु एक पुनि देत कह बचन॥
राजन तैं अब सुरपुर जाई। चढ़िअ सुरन्हँ पर एहि बजाई॥

जिन्हें भृगुनन्दन शुक्राचार्य ने राजा बलि को अर्पित कर दिया और एक शङ्ख देकर फिर वे उनसे कहने लगे- हे राजन! अब आप देवलोक जाइये और इसे बजाकर देवताओं पर चढ़ाई कीजिये।

अवसि होइ अज बिजय तुम्हारी। बलि अस सुनि भा परम सुखारी॥
श्रद्धासहित तदुप सिरु नाई। चला करन पुनि सुर पर घाई॥

आज अवश्य तुम्हारी ही विजय होगी, यह सुनकर बलि अत्यन्त सुखी हुए। तदुपरान्त अपने गुरु को श्रद्धा सहित सिर नवाकर वे पुनः देवताओं पर आक्रमण करने चले।

कटकु सहित जब सुरपुर आवा। गुर प्रदत्त तेहिं संख बजावा॥
सुनतहि जासु भयंकर नादा। बिबुधरवनि करि लागि बिषादा॥

जब वे सेना सहित स्वर्ग पहुँचे, तब उन्होंने गुरु के द्वारा दिया गया वही शङ्ख बजाया, जिसकी भयङ्कर ध्वनि सुनते-ही देवताओं की स्त्रियाँ विषाद करने लगी।

इन्द्र चकित भा अरिहिं जिअत लखि। चतुरंगिनि सँग कीन्हँ बिसेषी॥
काल चंडपनु धरि पुनि भारी। बलि तें कीन्ह भयंकर रारी॥

अपने शत्रु को जीवित देखकर इन्द्र चकित रह गये, फिर देवताओं की विशेष चतुरङ्गिनी सेना साथ लेकर और काल के समान कठोरता धारण कर उन्होंने बलि से भयङ्कर युद्ध किया।

पै बल तेज बलिहि बिकरारा। जब न सुरन्हँ तें गयउ सँभारा॥
तब उन्ह हँहरि पराभव माना। बहुरि भाजि गै गुर समुहाना॥

किन्तु बलि का विकराल बल और तेज जब देवताओं से सहा नहीं गया, तब उन्होंने घबराकर हार मान ली और (वहाँ से) भागकर अपने गुरु (बृहस्पति) के पास गये।

दोहा- तब सुरगुर सब कारन सुरन्हँ पराभव केर।
कहा जाहिं सुनि उन्ह हृदयँ भई निरास घनेर॥१२८॥

तब देवगुरु ने देवताओं की पराजय का सब कारण उन्हें कह दिया, जिसे सुनकर देवताओं के हृदय में अत्यधिक निराशा उत्पन्न हो गई।

चौ.- एहि सवँ सत सुरपति मिलि ताहीं। कवनि भाँति रनु जिति सक नाहीं॥
गुर कर अस बच बिबुधन्हँ काना। घुमरत भय करि लाग महाना॥

(देवगुरु ने पुनः कहा-) इस समय सौ इन्द्र मिलकर भी उसे किसी भी प्रकार युद्ध में नहीं जीत सकते। गुरु के यह वचन देवताओं के कानों में गूँज-गूँजकर अत्यधिक भय उत्पन्न करने लगे।

इत बलि जय दुंदुभी बजाई। गुर सन फिरेहुँ परम हरषाई॥
पाइ आज प्रभु तोर प्रतापा। मिटेउ सहज दनुजन्हँ कर तापा॥

इधर विजय दुन्दुभी बजाते हुए राजा बलि अत्यन्त हर्षित होकर अपने गुरु शुक्राचार्य के पास लौट आए और बोले- हे प्रभु! आपके प्रताप से आज दैत्यों सन्ताप सहज-ही में मिट गया।

अब उपाय अस कवन जनावऊँ। करि जेहिं बिभव अचल करि पावऊँ॥
अस्वमेध सत अबिघन राऊ। जे करि सक होइहि थिर ठाऊँ॥

अब आप कोई ऐसा उपाय बताईये जिसे करके मैं अपना वैभव स्थिर कर सकूँ। (तब शुक्र ने कहा-) हे राजन! जो यदि तुम सौ अश्वमेघ यज्ञ निर्विघ्न सम्पन्न कर लो, तब तुम्हारा राज्य अचल हो जायगा।

गुर करतल समेत अनुरागा। बलि तब अस्वमेध करि लागा॥
पूरन करि प्रति मख सहरोषा। देत जाचकन्हँ हिय संतोषा॥

तब राजा बलि अपने गुरु की छत्रछाया में प्रेमपूर्वक अश्वमेध यज्ञ करने लगे। इस प्रकार प्रत्येक यज्ञ को प्रसन्नतापूर्वक पूरा करते हुए याचकों के हृदय में संतोष उत्पन्न करके

सुजसु अमल सरि तिन्ह उमगानी। निसिदिनु त्रिपुरहि लागि सिंचानी॥
समाचार अस देवन्हँ पाए। तब तें रहन लाग चिंताए॥

उनके सुन्दर यश की निर्मल सरिता उमड़ चली और दिन-रात तीनों-लोकों को सींचने लगी। जब देवताओं ने यह समाचार पाया, तब वे (निरन्तर) चिन्तित रहने लगे।

अदिति निरखि निज सुतन्हँ निरासा। गई एक दिनु निज पति पासा॥

अपने पुत्रों की चिन्ता देखकर देवमाता अदिति एक बार अपने पति कश्यप के पास गई।

दोहा- **मुनि कहेउ हरि ब्रत बिषय उन्ह बँधात बहु धीर।**
सुरन्हँ मातु तब लागि करि ब्रत संजम गम्भीर॥१२९॥

उन मुनि ने उन्हें बहुत प्रकार से धैर्य बँधाते हुए, भगवान श्रीहरि के एक व्रत के विषय में कहा; तब देवमाता अत्यधिक संयमपूर्वक वह व्रत करने लगी।

चौ.- **ब्रत प्रताप प्रगटे भगवाना। माँगा तब उन्ह अस बरदाना॥**
प्रभु तैं जनमि मोर सुत रूपा। काढ़िअ सपदि सुरन्हँ दुख कूपा॥

उस व्रत के प्रभाव से भगवान नारायण प्रकट हुए, तब उन्होंने उनसे यह वरदान माँगा कि हे प्रभु! आप मेरे पुत्र के रूप में उत्पन्न होकर देवताओं को शीघ्र ही दुःखरूपी कूप से उबारिये।

तब प्रभु अदितिहि धीर बँधाई। भए तासु सुत अवसर पाई॥
रहा तासु तब बामन नामा। सक्रानुज कस्यप सुखधामा॥

तब भगवान ने देवमाता अदिति को धैर्य बँधाया और अवसर पाकर उनके पुत्र हुए। उस समय उनका नाम वामन था, जो इन्द्र के अनुज और महर्षि कश्यप के लिये सुख के धाम थे।

प्रगट हरिहि निज सहुदर देखी। देअँ जुड़ानिसि आस बिसेषी॥
इत बलि करि निन्यानउँ जागा। अंतिम जग्य करन जब लागा॥

साक्षात् श्रीहरि को ही अपने सहोदर के रूप में देखकर देवताओं को विशेष आशा प्राप्त हुई। इधर अपने निन्यानवे यज्ञ पूर्ण करके राजा बलि जब अंतिम यज्ञ करने लगे,

धरनिदान लहिबे नरनाथा। दंड कमंडलु तब गहि हाथा॥
बामन पथ लघु चरन बढ़ाई। बलि मखसाल चले अतुराई॥

हे परीक्षित! तभी दान में भूमि प्राप्त करने के लिये अपने हाथों में दण्ड और कमण्डल धारण करके भगवान वामन मार्ग पर शीघ्रता से अपने छोटे-छोटे चरण बढ़ाकर राजा बलि की यज्ञशाला को चले।

उन्ह कर बपुष होत अति छोटा। मुख बस तेजपुंज एक मोटा॥
लोचन सान्ति काँध उपबीता। रसनउँ बेदमंत्र सुपुनीता॥

उनका शरीर अत्यधिक बौना होते हुए भी उनके मुखमण्डल पर महान तेज विद्यमान था। उनके नेत्रों में शान्ति, कन्धे पर जनेऊ और जिह्वा पर परम पवित्र वेदमन्त्र थे।

दोहा- **महामहिम अस बटुक कहँ आवत लखि निज ओरि।**
मुनि द्विज बलि भृगुनंदन चकित उठे कर जोरि॥१३०॥

महान महिमा से विभूषित ऐसे बटुक ब्राह्मण को अपनी ओर आते हुए देखकर, यज्ञशाला में उपस्थित ब्राह्मण, मुनि और राजा बलि समेत स्वयं शुक्राचार्य भी चकित हो हाथ जोड़कर खड़े हो गए।

चौ.- **उन्ह सबनेहुँ निज जीवन माहीं। अस लघु मनुज लखेहुं कबु नाहीं॥**
बलि करबद्ध बढ़े तब आगे। करि दंडवत कहा अनुरागे॥

उन सबने अपने जीवन में ऐसा बौना मनुष्य कभी नहीं देखा था। फिर राजा बलि हाथ जोड़कर आगे बढ़े और उन्हें दण्डवत प्रणाम करके, प्रेममग्न होकर बोले-

द्विज मैं निज गुर आयसु लीन्हें। अस्वमेध निन्यानउँ कीन्हें॥
अब यह अहहिं सतउँ मम जागा। स्वागत तोर लेहुँ मख भागा॥

हे ब्राह्मणदेवता! मैं अपने गुरु की आज्ञा से निन्यानवे अश्वमेध यज्ञ पूर्ण कर चुका हूँ। अब यह मेरा सौंवा यज्ञ है, जिसमें आपका स्वागत है, आप इस यज्ञ में अपना भाग लीजिये।

पुनि कह अनुग्रह प्रभु बड़ कीन्हा। घर बैठे मोहि दरसनु दीन्हा॥
मम करतल हय गय रथ धरनी। अरु निधि अह न जाइ जे बरनी॥

बलि पुनः बोले- हे भगवन्!यह आपने बड़ी कृपा की जो मुझे घर बैठे आकर दर्शन दिया। मेरे पास हाथी, घोड़े, रथ, पृथ्वी आदि के साथ-साथ इतनी सम्पदा है, जिसका वर्णन नहीं हो सकता।

सो करि कृपा माँगु अब जोई। बिनु संकोच समरपउँ सोई॥
हे बलि तुम अस कह कस नाहीं। गनिति तोरि अतिदानिन्हँ माहीं॥

अतः अब आप कृपा करके जो भी माँगेंगे, बिना सङ्कोच किये मैं वही आपको समर्पित करूँगा। (तब श्रीहरि ने कहा-) हे बलि! तुम इस प्रकार क्यों न कहोगे, जब तुम्हारी गिनती महादानियों में होती है?

सुजसि पूरबज भै तव भारी। पीठि न देखि जासु अरि रारी॥
आजु सुजसु तुम उन्ह बिस्तारा। माँगन कहि समेत अधिकारा॥

तुम्हारे पूर्वज बड़े ही यशस्वी रहे हैं, युद्ध में शत्रु ने जिनकी पीठ कभी नहीं देखी। मुझे अधिकार सहित माँगने का कहकर आज तुमने उनके सुन्दर यश को और अधिक बढ़ा दिया।

दोहा- **तातें दनुजप मोहि अब धरनि देहुँ पग तीन।**
सुनि अस सुक्र समेत बलि अचरज अतिसय कीन॥१३१॥ (क)

इसलिये हे दैत्यराज! अब आप मुझे दान में तीन पग पृथ्वी दीजिये, यह सुनते ही शुक्राचार्य सहित राजा बलि अत्यन्त आश्चर्य करने लगे।

कर जोरे बलि कहेउँ तब गनिअ न मोहि अपराधि।
पै न जान तैं बिप्र होइ जाति बात कस साधि॥१३१॥ (ख)

तब बलि ने उन्हें हाथ जोड़कर कहा- हे नाथ! आप मुझे अपराधी न समझियेगा, किन्तु ब्राह्मण होकर भी आप यह नहीं जानते कि अपनी बात किस प्रकार बनाई जाती है।

चौ.- **जे जाचक आवइ मम पाहीं। ऐतनौ द्रब्य देउँ मैं ताहीं॥**
पुनि फिरि तें जीवनु बिस्तारा। जात न माँगन दूसर द्वारा॥

मेरे पास जो भी याचक आता है, उसे मैं इतना द्रव्य देता हूँ कि वह अपने सम्पूर्ण जीवनकाल में भी पुनः किसी अन्य द्वार पर माँगनें नहीं जाता।

तुअँ सम द्विज कहँ अस लघु दाना। देत सकुच मोहि होत महाना॥
तातें नाथ माँगु अस दाना। देत मोहि मिल तोष महाना॥

अतः आप जैसे तेजस्वी ब्राह्मण को ऐसा छोटा-सा दान देते हुए मुझे बड़ा ही सङ्कोच होता है। अतः हे नाथ! कोई ऐसा दान माँगिये, जिसे देकर मुझे भी संतोष प्राप्त हो।

सुनि सगरुअ अस बलि कर बचना। बिहँसे नागर कौतुक रचना॥
राजन लोभ होत अति ओछा। बुधि जसु करइ बिप्र कर छोछा॥

बलि के ऐसे गर्वयुक्त वचन सुनकर कौतुक प्रकट करने में कुशल भगवान हँस दिये और बोले- हे राजन! लोभ बड़ा ही नीच होता है, जो ब्राह्मण की बुद्धि व उसके यश को क्षीण कर देता है।

धनपति होइ भलेहिं केउँ लोभी। मिटइ न तृषा तासु हिय तो भी॥
जे संतोष करिअ हिय माहीं। महि पग तीनि ताहिं कमु नाहीं॥

कोई लोभी मनुष्य भले ही कुबेर हो जाय, किन्तु फिर भी उसके मन से तृष्णा नहीं मिटती और जो यदि मन में संतोष किया जाय, तो उसी व्यक्ति के लिये तीन पग पृथ्वी भी कम नहीं होती।

सो मोहि देहुँ राउ एहि दाना। सुनि भा बलिहिं सकोच निदाना॥
पुनि उन्ह द्विज पदकंज पखारे। निरखि देव अति भए सुखारे॥

अतः हे राजन! आप मुझे यही दान दीजिये, यह सुनकर बलि के सङ्कोच का निवारण हो गया और उन्होंने भगवान वामन के चरणकमल धोए, यह देखकर देवताओं को अत्यन्त सुख हुआ।

पुनि पनु करन सहित अनुरागा। तिय तें उन्ह गंगाजलु माँगा॥
पिय आयसु सुनि अति सुखु मानी। जलु झारी बिंध्यावलि आनीं॥

फिर सङ्कल्प करने के लिये उन्होंने अपनी स्त्री से प्रेमपूर्वक गङ्गाजल माँगा। पति की आज्ञा सुनते ही अत्यन्त सुख मानकर रानी विंध्यावली जल की झारी ले आई।

दोहा- **धरनि दान संकलपु हित भै बलि जब तैय्यार।**
बिप्र भेद तब जानि कह गुर करि हृदयँ बिचार॥१३२॥

जब राजा बलि भूमि के दान के निमित्त सङ्कल्प करने को तैयार हुए, तब याचक ब्राह्मण का भेद समझकर अपने हृदय में विचारकर शुक्राचार्य ने उनसे कहा-

चौ.- **ब्रह्मचारि नृप तुम जिन्हँ जाना। तें परब्रह्म प्रगट भगवाना॥**
सुर हित ए बामन अवतारा। अए हरन सब बिभव तुम्हारा॥

हे राजन! जिन्हें तुमने एक साधारण ब्रह्मचारी समझ रखा है, वे साक्षात् परब्रह्म नारायण हैं। देवताओं के हित के लिये 'वामन' नाम से अवतार लेकर ये आपका सम्पूर्ण वैभव हरने आए हैं।

ते पग तीनि धरनि मिस लाई। त्रिपुरहि तुअ तें जाइहिं पाई॥
पाछ बिभव सो अरिन्हँ समरपहिं। तातें तुम संकलपहि करु नहिं॥

ये तीन पग पृथ्वी के बहानें, तुमसे दान में तीनों ही लोक प्राप्त कर लेंगे। फिर पीछे वे उस सम्पदा को तुम्हारे शत्रु देवताओं को समर्पित कर देंगे; इसलिये तुम सङ्कल्प ही मत करो।

संपति जे कछु नर कर होई। पंच समान भाग अह सोई॥
प्रथम धरमु दूसर जसु बाढ़न। सहित प्रगति तीसर अरि ताड़न॥

मनुष्य की जो भी सम्पत्ति होती है, उसके पाँच समान भाग होते हैं। पहला धर्म के लिये, दूसरा अपनी कीर्ति बढ़ाने के साथ-ही अपनी उन्नति के लिये और तीसरा अपने शत्रुओं को दण्डित करने के लिये,

चौथ किए हित पर उपकारा। अंतिम घर कुटुम्ब बिस्तारा॥
सो तुम रखिबे हित पनु माना। देहुँ भाग पंचम इन्हँ दाना॥

चौथा परोपकार के लिये और अंतिम भाग घर व कुटुम्ब के विस्तार के लिये होता है। अतः तुम अपने प्रण का मान रखने के लिये इन्हें अपनी सम्पत्ति का पाँचवाँ भाग दान कर दो।

दोहा- **न त दोइहिं पग माँझ बलि नापि भुवन दस चारि।**

नख तें सिखा प्रजंत तहिं ए करि देहिं भिखारि॥१३३॥

अन्यथा हे बलि! ये दो ही पग में चौदहों भुवन नापकर तुम्हें नख से लेकर चोटी तक नितान्त भिखारी बना देंगे।

चौ.- **सोचु दसा असि देइहिं काहीं। तीसर पग हित पुनि तुम ताहीं॥**
सुनि गुर बचन बिचारि बहोरी। जातुधानपति कह कर जोरी॥

तुम स्वयं सोचो! ऐसी दशा में तीसरे पग के लिये तुम इन्हें क्या दोगे? गुरु के ये वचन सुनकर फिर विचार कर दैत्यराज बलि ने हाथ जोड़कर उनसे कहा कि

नाथ बचन हितकर सब भाँती। पुनि गुर आयसु टारि न जाती॥
किंतु किए पनु देउँ न दाना। लागिहि पातक मोहि महाना॥

नाथ (आप) का वचन सब प्रकार से मेरा हित करनेवाला है और आप मेरे गुरु भी हैं जिनकी आज्ञा टाली नहीं जाती। किन्तु प्रण करके जो यदि अब मैं दान नहीं देता हूँ तो मुझे महान पाप लगेगा।

छूट पाछ मरनोपर देही। राज मोह करु कारनु केहीं॥
पुनि जेहिं दितिपूतन्हँ मदु मोड़ा। उन्हहिं हाथ अज मम सन ओड़ा॥

मरने के उपरान्त तो शरीर भी पीछे छूट जाता है, फिर मैं राज्य का मोह किस कारण करूँ? फिर जिन्होंने दिति के पुत्रों का गर्व चूर्ण किया था, आज उन्हीं भगवान ने मेरे सम्मुख हाथ पसारे हैं।

अब तुम्हार आयसु सिरु लाई। पनु आपन जे देउ बिहाई॥
तद्यपि तेन्हँ भुजन्हि बलु ऐता। हठि सब हरहिं मोहि गहि खेता॥

अब आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके यदि मैं अपना वचन त्याग भी देता हूँ, तो भी इन श्रीहरि की भुजाओं में इतना बल है कि ये युद्ध में मुझे बलपूर्वक बाँधकर मेरा सब कुछ हर सकते हैं।

दोहा- **पुनि ए जे चह तेहिं महँ घट अरु बढ़ कछु नाहिं।**
जगत बिदित यह सत्य गुर मैंपि धरौं हिय माहिं॥१३४॥

फिर ये जो चाहते हैं उसमें कुछ भी घटता या बढ़ता नहीं है; इस सत्य को समस्त संसार जानता है और मैं भी इसी पर विश्वास करता हूँ।

चौ.- **तातें बचनु बिसरि मुनिनाथा। अजसु अछत कछु आव न हाथा॥**
राजलच्छि गुर जे मम पाहीं। ए द्विज प्रगट प्रानपति ताहीं॥

इसलिये हे मुनिनाथ! वचन त्यागकर मेरे हाथ में अपयश के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं आयेगा। हे गुरुदेव! मेरे पास जो राजलक्ष्मी है, ये ब्राह्मण साक्षात् उनके प्राणपति हैं।

मुनि जति तापस बिबुध महाना। जतन करइ जिन्हँ हित बिधि नाना॥
अस कमलापति मो सन माँगा। कस न बढ़ाउँ कीति सौभागा॥

मुनि, यति, तपस्वी और देवता जिन्हें पाने के लिये अनेक प्रकार से यत्न करते हैं, ऐसे कमलापति ने जब स्वयं ही मुझसे कुछ माँगा है, तो मैं अपनी कीर्ति और अपना सौभाग्य कैसे न बढ़ाऊँ?

अस सुनि सुक्र हृदयँ अनुमाना। मानहिं नहिं सठ देइहिं दाना॥
तब उन्ह कुपित साप अस दीन्हा। हठबस सठ निज पतन न चीन्हा॥

यह सुनकर शुक्राचार्य ने मन में विचार किया कि यह मूर्ख मानेगा नहीं, दान देकर ही रहेगा। तब उन्होंने क्रोधित होकर श्राप दिया कि हठ के वश होकर तू मूर्ख अपना पतन नहीं देख रहा;

सो तव पद अरु संपति नाना। करइ तोहि तजि अनत पयाना॥
सुनि गुर कर अस भीषनु सापा। प्रभु मुखु लखि उन्ह गनेहुँ न तापा॥

अतः तेरा पद व तेरी नाना प्रकार की सम्पत्ति तुझे त्यागकर अन्यत्र चली जाय। गुरु का ऐसा भीषण श्राप सुनकर भी उन्होंने भगवान के मुख की ओर देखकर दुःख नहीं माना।

दोहा- पुनि जब बलि संकलपु हित कर गहि जलु कइ झारि।
सुक्र नाल तिन्ह तेहिं समयँ लघु तनु धरि गै आरि॥१३५॥

फिर जब सङ्कल्प करने के लिये राजा बलि ने अपने हाथ में जल की झारी उठाई, उसी समय छोटा-सा शरीर धरकर शुक्राचार्य उस झारी में घुसकर उसकी नाल में अड़ गए।

चौ.- झारी तें जलु झरिहि न पावइ। तब हरि किमि संकलपु करावइ॥
जुगुती इहइ हृदय निज लाई। बैठे सुक्र नाल महुँ जाई॥

जब झारी से जल ही नहीं निकलेगा, तब भगवान सङ्कल्प किस प्रकार करायेंगे; यही युक्ति अपने मन में सोचकर शुक्राचार्य झारी की नाल में जाकर बैठ गए।

पाछ झारि तें चलेउँ न नीरा। तब सरबग्य भए गम्भीरा॥
पुनि हँसि कुस तृन एक उठाई। उन्हँ नलिका महुँ दीन्हँ चलाई॥

फिर पीछे जब सङ्कल्प करते समय झारी से जल नहीं गिरा, तब सर्वज्ञ श्रीहरि गम्भीर हो गए। फिर उन्होंने हँसकर कुशा का एक तिनका उठा लिया और झारी की नाल में चला दिया।

जब एक दृग फूटेहुँ तृन लागे। सुक्र खिसाइ सचुप तब भागे॥
सुभ कृत चरन अड़ावइ जोई। नृप तिन्ह सुक्र सरिस गति होई॥

जब उस तिनके की चोट से शुक्र की एक आँख फूट गई, तब वे लज्जित हो चुपचाप वहाँ से भाग छूटे। हे राजन! जो मनुष्य किसी शुभ कार्य में विघ्न डालता है, उसकी दशा शुक्राचार्य जैसी हो जाती है।

तदुप कीन्ह बलि बर संकलपा। लोक तीनि प्रभु सन गनि अलपा॥
पुनि कह निज अनंदु बुधि चापी। रुचि अनुरूप लेहुँ महि नापी॥

तदुपरान्त भगवान के सम्मुख तीनों लोकों को तुच्छ जानकर बलि ने भूमि दान हेतू उत्तम सङ्कल्प किया। फिर अपने हर्ष को अपनी बुद्धि से वश में करके वे बोले- अब आप अपनी रुचि के अनुरूप भूमि नाप लीजिये।

दोहा- होइ तोर कल्यान नृप अस कहि बातहीं बात।
तनु बिराट अस कीन्ह हरि महिम न जासु कहात॥१३६॥

हे राजन! तुम्हारा कल्याण हो, ऐसा कहकर बात-ही बात में भगवान वामन ने अपने शरीर को बढ़ाकर ऐसा विराट कर लिया कि जिसकी महिमा का बखान ही नहीं हो सकता।

चौ.- तरकि फिरत दिनु सुर जछ नागा। बरिषे कुसुम सहित अनुरागा॥
तब हरि केर पारषद सोरह। नर तनु प्रगटे गरुड़ सहित तहँ॥

अपना अच्छा समय फिरता हुआ जानकर देवता, यक्ष व सर्पादि सब भगवान पर प्रेम सहित पुष्पवर्षा करने लगे। तभी वहाँ पक्षिराज गरुड़जी सहित श्रीहरि के सोलहों पार्षद मनुष्य शरीर धरकर प्रकट हुए।

भूप रीछपति अपि तहँ आए। हेरि हरिहि तनु हिय हरषाए॥
बहुरि धाइ उन्ह करि सो गाता। दुइ घरि माँझ प्रदच्छिन साता॥

हे परीक्षित! ऋक्षराज जामवन्त भी वहाँ पधारे और श्रीहरि के विराट रूप को देखकर अपने हृदय में अत्यन्त हर्षित हुए। फिर उन्होंने दौड़कर दो ही घड़ी में उनके उस विराट रूप की सात प्रदक्षिणाएँ कर ली।

बामन तदुप उभय पगु नापे। भुवन सकल लखि निसिचर काँपे॥
तेहिं सँव प्रभु पद अजपुरि गयऊ। लखि बिरंचि अति हरषित भयऊ॥

तदुपरान्त भगवान वामन ने दो ही पग में समस्त भुवन नाप लिये; यह देखकर असुर मन में काँप उठे। उस समय उनका चरण ब्रह्मलोक से होकर निकला, यह देखकर ब्रह्माजी अत्यन्त हर्षित हुए और

नभगंगहिं जलु ताहिं पखारी। पिएहुँ पदोदक उन्ह सुखु भारी॥
सुर हनि दुंदुभि करि जयकारा। अज हर बरिषे कुसुम अपारा॥

आकाशगङ्गा के जल से उस चरण को धोकर उन्होंने अत्यन्त सुख से प्रभु का चरणामृत पिया। फिर देवों ने दुन्दुभियाँ बजाकर जय-जयकार की और शिवजी व ब्रह्माजी ने अपार पुष्प बरसाए।

दोहा- तदुप कहा बामन बिहँसि दानबीर बलिराउ।
भए भुवन मम सकल अब धरु कत तीसर पाँउ॥१३७॥

तदुपरान्त भगवान वामन ने मुस्कुराकर कहा- हे दानवीर राजा बलि! समस्त भुवन तो मेरे हो चुके हैं, अब मैं अपना तीसरा चरण कहाँ रखूँ?

चौ.- बामन पुनि पुनि निज महिं माँगी। बलि सिरु ढारि रहे चुप पागी॥
अब अरु जे न धरनि तव पाहीं। अवसि देहुँ कहि बलि मम नाहीं॥

भगवान ने बार-बार अपनी इच्छित पृथ्वी माँगी, किन्तु बलि चुपचाप सिर झुकाए खड़े रहे। तब उन्होंने कहा- हे बलि! यदि तुम्हारे पास अब और भूमि नहीं है, तो अवश्य ही मुझे मना कर दो।

किंतु ओढ़ि एहिंबिधि चुप चादर। भाजि सक न पनु तें होइ कादर॥
परसि पदाम्बुज बलि तब बोला। नाथ न पनु तें मनु मम डोला॥

किन्तु इस प्रकार मौन की चादर ओढ़े तुम कायर होकर अपनी प्रतिज्ञा से भाग नहीं सकते। तब उनके चरणकमलों को पकड़कर बलि ने कहा- हे नाथ! मेरा मन अपने सङ्कल्प से नहीं डिगा है।

रिस न करिअ जगपति भगवाना। पुरवउँ अवसि संकलपु ठाना॥
सुनि प्रिय बचन बटुक हरि हरषे। सत्य धरम पुनि बलि कर परखे॥

हे जगन्नाथ! हे भगवन्! क्रोध न कीजिये, मैं अपना लिया सङ्कल्प अवश्य पूर्ण करूँगा। उनके प्रिय वचन सुनकर बटुकवेषधारी भगवान हर्षित हुए; फिर बलि के सत्य व धर्म को परखने के लिये,

उन्ह अहिरिपु सन सयन बुझाई। तेन्हँ पास महुँ लीन्ह बँधाई॥
अस अवलोकि सबन्हँ दुखु माना। तब सुररिषि उन्ह मरमु बुझाना॥

उन्होंने सङ्केत करके सर्पों के शत्रु गरुड़ के हाथों उन्हें पाश में बँधवा लिया। यह देखकर सबको दुःख हुआ, तब देवर्षि नारद ने उन्हें (परीक्षा-सम्बन्धी) सारा भेद कहकर समझा दिया।

पै इत बलि तनक न बिलगाना। उन्ह बिलोकि पुनि कह भगवाना॥

किन्तु इधर राजा बलि ने इस बात पर तनिक भी दुःख नहीं माना; तब उन्हें देखकर भगवान पुनः बोले-

दोहा- **मम इच्छित महि देहुँ मोहि अजसु जगत न त लेहुँ।**
नरक भोगु गुर सापबस सुनि अस बलि बिहँसेहुँ॥१३८॥

हे बलि! तुम मुझे मेरी इच्छित भूमि प्रदान करो अन्यथा संसार में अपयश लेकर गुरु के श्राप से नर्क भोगो; यह सुनकर राजा बलि मुस्कुरा दिए।

चौ.- **पुनि बंधहिं कहि लग कर जोरी। उतरु देउँ प्रभु छमु मम खोरी॥**
मम सनमुख तिहुँपुर प्रतिपाला। कस जरि सकौं नरक कइ ज्वाला॥

फिर उन्होंने पाश में बँधे हुए ही हाथ जोड़कर कहा- हे प्रभु! मैं उत्तर दे रहा हूँ, मेरा अपराध क्षमा करें; किन्तु जब त्रिलोकीनाथ स्वयं मेरे सन्मुख खड़े हैं, तो मैं नर्क की अग्नि में कैसे जल सकता हूँ?

अवसि देब महिं तहिं सुरनाहा। तव बलु करब बचन निरबाहा॥
बिभव मोर प्रभु नापेहुँ जेई। बपु मम समर जुड़ानेहुँ तेई॥

हे देवाधिपति! मैं आपको पृथ्वी अवश्य दूँगा और आप ही के बल से अपने वचन का भी निर्वाह करूँगा। हे प्रभु! मेरा जो वैभव आपने (अपने दो चरणों से) नापा है, उसे मेरे इस शरीर ने युद्ध में जीता था।

एहिं कारन प्रभु मोर सरीरा। भुवि सम म्हातममय गम्भीरा॥
तातें मम सिरु धरि निज पाँऊ। नापि लेहुँ मम तनु द्विजराऊ॥

इसी कारण हे भगवन्! मेरा यह शरीर भी पृथ्वी ही के समान अत्यधिक मूल्यवान है। अतः हे विप्रश्रेष्ठ! आप अपना पैर मेरे सिर पर रखकर (शेष भूमि के बदले) मेरे शरीर को नाप लीजिये।

पनु प्रति प्रीति बलिहि कइ देखी। हरषित भा प्रभु हृदयँ बिसेषी॥
तब उन्ह सद्य प्रेरि उरगारी। बंध सकल तिन्ह दीन्ह निबारी॥

अपनी प्रतिज्ञा के प्रति बलि का ऐसा प्रेम देखकर भगवान के हृदय में विशेष आनन्द हुआ। तब उन्होंने शीघ्र ही गरुड़ को प्रेरित करके उनके समस्त बन्धन खुलवा दिये।

बलि तब सिरु आपन करि आगे। पुलकि बचन कहेहुँ रसु पागे॥

तब प्रभु के सम्मुख अपना सिर आगे करके राजा बलि ने पुलकित हो प्रेम से सने हुए ये वचन कहे-

दोहा- **हे परब्रह्म दयानिधि अगम चरित सब तोर।**
पगु बढ़ाइ तनु नापि मम पुरवावहुँ पनु मोर॥१३९॥

हे परब्रह्म! हे दयासिन्धु! आपके सारे चरित्र अगम हैं। अब आप अपना चरण बढ़ाइये और मेरा शरीर नापकर मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण करवाईये।

चौ.- हरि तब धरि बलि सिरु पद धूरी। अज हर तेन्हँ प्रसंसेहुँ भूरी॥
अस बिलोकि सुर रिषि हरषाए। लाग कुसुम उन्ह पर बरिषाए॥

तब भगवान ने बलि के सिर पर अपनी चरणरज रख दी और शिवजी व ब्रह्माजी ने उनकी भूरी-भूरी प्रशंसा की। यह देखकर देवता व ऋषि हर्षित होकर उन पर पुष्पवर्षा करने लगे।

तदुप हरषि हिय जातुधानपति। पद सिरु नाइ लाग करि अस्तुति॥
जय जय जय सेवक पनुपालक। अतुलनीय बलि खलदलु घालक॥

तदुपरान्त अपने हृदय में हर्षित होकर दैत्यराज बलि ने भगवान के चरणों में सिर नवाया और उनकी स्तुति करने लगे। हे सेवक के प्रण की रक्षा करनेवाले, अमित पराक्रमी, दुष्टदलहन्ता भगवन्! आपकी जय हो, जय हो।

जगन्नाथ जय रमानिवासा। अनुग्रहरासि दास मदनासा॥
मैं भ्रम बस्य हृदय अस माना। रहा देइ तोहि तिहुँपुर दाना॥

हे जगन्नाथ! हे रमानिवास! हे सेवकों के अहङ्कार को हरनेवाले! हे अनुग्रह की राशि! आपकी जय हो। भ्रम के वशीभूत होकर मैंने अपने मन में यह मान लिया था कि मैं आपको तीनों लोक दान कर रहा हूँ।

पाइ परन्तु अनुग्रह तोरा। दम्भजनित भ्रम बिनसेहुँ मोरा॥
अब निज भगति देहु मोहि नाथा। लहउँ ब्रह्ममुद होइ सनाथा॥

किन्तु आपका अनुग्रह पाकर अहङ्कार से उत्पन्न मेरा वह भ्रम दूर हो गया। हे नाथ! अब आप मुझे अपनी भक्ति प्रदान करें, जिससे सनाथ होकर मैं ब्रह्मानन्द प्राप्त करूँ।

प्रभु तब भगति देत उर लाई। सुतललोक उन्हँ दीन्ह पठाई॥
बलिहि चरित सुनि नृप अनुरागे। अगहुँअ कथन कहन मुनि लागे॥

तब श्रीहरि ने उन्हें हृदय से लगाकर अपनी भक्ति का वर देते हुए सुतल लोक भेज दिया। राजा बलि का यह चरित्र सुनकर महाराज परीक्षित प्रेममग्न हो गये; तब शुकदेवजी आगे की कथा कहने लगे।

दोहा- बैवस्वत मनु सुतन्हँ महुँ भै सर्जाति नरेस।
प्रजापाल बेदग्य उन्ह सुनु अब चरित बिसेष॥१४०॥

हे परीक्षित! वैवश्वत-मनु के पुत्रों में सर्याति नाम के एक राजा हुए थे, अब आप उन्हीं प्रजापालक और वेदवेत्ता नरेश का विशेष चरित्र सुनिये।

चौ.- नाउँ सुकन्या रहि उन्ह केरी। सुता सुलछनि ललाम घनेरी॥
पितु सनेह तिहिं तें कर भारी। सुगुन सुलच्छन तासु बिचारी॥

उन राजा की 'सुकन्या' नाम की अत्यन्त सुन्दर और शुभलक्षण सम्पन्न एक पुत्री थी। पिता उसके उत्तम गुणों व शुभ लक्षणों का विचार करके उससे अत्यधिक प्रीति करते थे।

तिय अरु सुता सहित एक बारा। राय गए बन करन बिहारा॥
सैनिक कछु तब आयसु पाई। भए संग बनसाज जुड़ाई॥

एक बार राजा सर्याति अपनी रानी व पुत्री सहित वन में विहार करने के लिये गये। उस समय आज्ञा पाकर कुछ सैनिक वन विहार के लिये आवश्यक वस्तुएँ लेकर उनके साथ हो लिये।

बनहिं सुकन्या सखिन्ह सँघाता। फिरत निरखि लगि छबि सुखदाता॥
तेहिं सँव तहँ औरउँ एक देखा। जिन्हँ दुइ रंध्र चमंक बिसेषा॥

वन में सुकन्या सखियों के साथ विचरते हुए उसकी सुखदायक शोभा देखने लगी। उस समय वहीं उसने मिट्टी से बना हुआ एक औला देखा, जिसमें स्थित दो छिद्र अत्यधिक चमक रहे थे।

कुतुहल बस एक सूल उठाई। कुँअरि दीन्ह सोउ रंध्र चलाई॥
जातें चलि उन्ह तें लहु धारा। भा अति भय जब कुँअरि निहारा॥

चपल राजकुमारी ने कौतुहल के वशीभूत हो एक काँटा उठाकर उन छिद्रों में चला दिया, जिस कारण उन छिद्रों से रक्त की (छोटी-सी) धाराएँ बह चली; राजकुमारी ने जब यह देखा, तो उसे अत्यन्त भय हुआ।

पुनि सचिंत निज डेरउँ आई। किंतु न आपन करनि जनाई॥

फिर चिन्तित होकर वह अपने शिविर में लौट आई, किन्तु अपनी करतूत के विषय में किसी को नहीं बताया।

दोहा- **औरउँ चवन समाधिरत रहे छिद्र चख तेन्हँ।**
परिछित कुँअरि बिदारेहुँ निज अजानपनु जेन्हँ॥१४१॥

हे परीक्षित! मिट्टी के उस औले में महर्षि च्यवन समाधिस्थ थे और उन छिद्रों के भीतर उनके नेत्र थे, जिन्हें अपनी अज्ञानता के कारण राजकुमारी ने विदीर्ण कर दिया था।

चौ.- **भा जब यह अपराध गभीरा। उठि नृप उदर तबहिं घन पीरा॥**
पुनि हय गय सैनिक अकुलाए। सोइ पीर पै बूझि न पाए॥

जिस समय यह गम्भीर अपराध हुआ था, तभी से राजा के उदर में अत्यधिक पीड़ा होने लगी और उसी पीड़ा से उनके हाथी, घोड़े व सैनिक भी अकुला उठे, किन्तु उन्हें इसका कारण समझ में नहीं आया।

दुख कारनु पूछत तब राऊ। सबन्हँ संग गै चैवन ठाऊँ॥
रुधिर स्रवत उन्ह मुनि दृग सूझे। तुरत बेदनउँ कारनु बूझे॥

तब राजा इस पीड़ा का कारण पूछते हुए सबके साथ ऋषि च्यवन के स्थान पर पहुँचे और वहाँ जब उन्हें मुनि के नेत्रों से रक्त बहता दिखाई पड़ा, तब वे अपनी वेदना का कारण तुरंत समझ गए।

फिरि पूछा उन्ह डेरउँ माहीं। कुँअरि सत्य सब बात जनाहीं॥
सुनि नृप प्रथम त चिंतत भयऊँ। तदुप धीर धरि मुनि सन गयऊ॥

फिर लौटकर उन्होंने शिविर में इस सम्बन्ध में पूछा; तब राजकुमारी ने सब बात सत्य-सत्य कह दी, जिसे सुनकर पहले तो राजा चिन्तित हुए, तदुपरान्त धीरज धरकर वे मुनि के पास गए।

तुरत मानि निज सुति अपराधा। करै लाग अस्तुति नय साधा॥
बहुरि सुता निज मुनि कहँ ब्याही। सरजाती सीते मनु माहीं॥

फिर तुरन्त ही अपनी पुत्री का अपराध मानकर वे उन मुनि के सन्मुख विनयपूर्वक स्तुति करने लगे। फिर उन मुनि को अपनी पुत्री ब्याहकर राजा सर्याति ने मन-ही मन संतोष प्राप्त किया।

मुनिवर तब कृपदृष्टि बिलोकी। नृपहि कीन्ह सब सहित बिसोकी॥

तब महर्षि च्यवन ने कृपायुक्त दृष्टि से देखकर सबके साथ राजा को शोक से रहित कर दिया।

दोहा- सुता प्रान तें प्रिय अधिक परिहरि मुनिहिं निकेत।
तदुप फिरे नृप निज नगर तिय अरु सेन समेत॥१४२॥

तदुपरान्त राजा अपनी प्राणों से भी अधिक प्रिय पुत्री को मुनि के आश्रम पर छोड़कर रानी और सेना सहित नगर में लौट आए।

चौ.- भै समाधिरत मुनि पुनि जबहीं। अन जल त्यागि जोरि कर तबहीं॥
राजकुँअरि मुनि सनमुख ठारी। धरे हृदय पतिब्रत अति भारी॥

जब वे मुनि पुनः समाधि में मग्न हो गये, तभी वह राजकुमारी भी अन्न-जल का त्याग करके, अपने हृदय में महान पतिव्रत धर्म धारण कर हाथ जोड़े हुए उनके सन्मुख खड़ी हो गई।

इंद्र बिमोहे सो छबिरासी। जाइ समुख लागे अस भाषी॥
सुमुखि सहति दुख किउँ हठ ठानी। चलहुँ संग मम करु निज रानी॥

सौन्दर्य की उस राशि पर विमुग्ध होकर इन्द्र उसके सन्मुख गए और इस प्रकार बोले- हे सुमुखी! हठ ठानकर तुम इस प्रकार दुःख क्यों उठाती हो? मेरे साथ चलो, मैं तुम्हें अपनी रानी बना लूँगा।

पुनि पुनि कामि कहा अस ताही। सति परन्तु फिरि देखेहुँ नाहीं॥
एहिबिधि पति पद ध्यान लगाए। सम्बत चौदह तेहिं बिताए॥

कामी इन्द्र ने उससे यही बात बार-बार कही, किन्तु उस सती स्त्री ने पलटकर उनकी ओर देखा तक नहीं। इस प्रकार पति के चरणों में ध्यान लगाये हुए ही उसने चौदह वर्ष बिता दिये।

जागे मुनि जब ब्रत तिन्ह जाना। पेमु अमल उन्ह हिय उमगाना॥
तेहिं छिनु अए अस्विनीकुमारा। कहिअ करइ सोइ मुनिहिं उचारा॥

जब मुनि समाधि से उठे और उन्हें राजकुमारी के व्रत का ज्ञान हुआ, तब उनके मन में निर्मल प्रेम हो आया। उसी क्षण वहाँ अश्विनीकुमार पधारे और मुनि से बोले- आप जो कहें, हम वही करेंगे।

तब मुनि कहा मनहिं हरषाई। देहुँ नयन अरु नव तरुनाई॥
बिदित मोहि मख तुमहि न भागा। पै मेटब मैं तव दुरभागा॥

तब मुनि ने उनसे कहा कि तुम मुझे नेत्र और नवीन यौवन प्रदान करो। मैं जानता हूँ कि यज्ञ में तुम्हें भाग नहीं दिया जाता, किन्तु मैं तुम्हारे इस दुर्भाग्य को नष्ट कर दूँगा।

सुनि सुरबैद परम सुखु माना। औषध कुंड एक निरमाना॥
पुनि चवनहि ता महुँ अन्हवाई। दीन्ह तेन्ह तनु दिब्य बनाई॥

यह सुनकर देवचिकित्सक अत्यन्त सुखी हुए और उन्होंने औषध का एक कुण्ड निर्मित कर दिया। फिर महर्षि च्यवन को उसमें स्नान कराकर उन्होंने उनके शरीर को दिव्य बना दिया।

बहुरि गए अस्विनीकुमारा। मुनिहिं नाइ सिरु मुदित अपारा॥

फिर मुनि के चरणों में सिर नवाकर अत्यन्त आनन्दित हो अश्विनीकुमार वहाँ से चले गए।

दोहा- **तदुप सकुन्यहि कहा मुनि मैं तापस निहकाम।**
तदपि धरम तव हेरि अब गहउँ ग्रहस्थ ललाम॥१४३॥

तदुपरान्त मुनि ने सुकन्या से कहा कि मैं निष्काम तपस्वी हूँ, तथापि तुम्हारे पतिव्रत धर्म का विचार करके मैं अब सुन्दर ग्रहस्थाश्रम ग्रहण करूँगा।

चौ.- **महिप सुकन्यहि सँग मुनिराई। गहेहुँ गृहस्थाश्रम सुखदाई॥**
उन्ह बोलाइ एहिबिच सवँ चीन्हा। सोमहोम सरजाती कीन्हा॥

हे परीक्षित! इस प्रकार महर्षि च्यवन ने सुकन्या के साथ सुखद ग्रहस्थाश्रम ग्रहण कर लिया। इसी बीच अवसर पाकर राजा सर्याति ने महर्षि च्यवन को बुलाकर सोमयज्ञ का आयोजन किया।

सक्र मान मथि मुनि सो जागा। दीन्ह अस्विनिकुमारन्हँ भागा॥
उन्ह सरजातिउँ बंस महीसा। भै हरिभगत नृपति अँवरीषा॥

उस यज्ञ में इन्द्र का मान मथकर महर्षि च्यवन ने अश्विनिकुमारों को यज्ञ में भाग दिलवाया। हे परीक्षित! उन्हीं सर्याति के वंश में (आगे चलकर) अम्बरीश नाम के एक भगवद्भक्त राजा हुए।

हरि बिचारि राउर सुभ लच्छन। चक्र नियोजेहु उन्ह पुर रच्छन॥
नारि सहित अकसर अँवरीषा। एकादसि ब्रत कीन्ह महीसा॥

उन राजा के शुभ गुणों का विचार करके भगवान श्रीहरि ने अपने चक्र को उनके नगर की रक्षा में नियुक्त कर दिया। हे परीक्षित! एक बार राजा अम्बरीश ने अपनी स्त्री के साथ एकादशी का व्रत किया।

बिबिध भाँति करि हरि अभिषेका। बिप्रन्ह दीन्हें दान अनेका॥
बारस कहँ हरि पद अनुरागे। नृप जब ब्रत पारन करि लागे॥

भगवान श्रीहरि का अनेक प्रकार से अभिषेक करके, उन्होंने ब्राह्मणों को अनेक दान दिए। फिर भगवान के चरणों के प्रति प्रेम रखकर जब वे द्वादशी-तिथि में अपने व्रत का पारण करने लगे,

दोहा- **सो सँव परिखन उन्ह धरम समरथ सापासीष।**
सिषन्हँ संग करि आएहुँ तहँ दुरवास रिषीस॥१४४॥

उस समय उनके धर्म की परीक्षा लेने के लिये श्राप व वरदान देने में समर्थ ऋषीश्वर दुर्वासा अपने शिष्यों के साथ वहाँ पधारे।

चौ.- भोज निबेदेहुँ नृप उन्ह जबहीं। दुरवासा कहि लागे तबहीं॥
प्रथम करब जमुना असनाना। तदुप गहौं नृप तव सनमाना॥

जब राजा ने उनसे भोजन के लिये आग्रह किया, तब दुर्वासा उनसे कहने लगे- हे राजन! मैं पहले यमुना स्नान करूँगा, तदुपरान्त तुम्हारे द्वारा दिया गया सम्मान ग्रहण करूँगा।

अस कहि सिषन्हँ सहित दुरवासा। नित्यकरम हित गै सरि आसा॥
सद्यकोप तहँ कलि आराती। कीन्ह बिलम्ब बूझि भलिभाँती॥

यह कहकर महर्षि दुर्वाषा अपने शिष्यों के साथ नित्यकर्म के लिये यमुना की ओर गए। हे कलिशत्रु परीक्षित! शीघ्र कुपित होनेवाले उन ऋषि ने नित्यकर्म से निवृत्त होने में जानबूझकर विलम्ब किया।

पारन टारि इहाँ नरराजा। बाट जोहि रहे मुनिहिं समाजा॥
घरि भर द्वादसि सेष रहिउँ जब। धरमभीरु अति सोचि लाग तब॥

इधर राजा अम्बरीश अपने व्रत का पारण रोककर मुनि समुदाय के आने की प्रतिक्षा कर रहे थे। किन्तु जब द्वादशी मात्र घड़ी भर शेष रह गई, तब वे धर्मभीरू राजन अत्यधिक चिन्ता करने लगे।

पुनि कहेहुँ बिप्रन्ह सिरु नाई। चलि बारस न फिरे मुनिराई॥
अब उन्ह बिनु जे भोजन करऊँ। रहइ मोर ब्रत पै अघ परऊँ॥

फिर उन्होंने ब्राह्मणों को सिर नवाकर कहा- द्वादशी बीत चली है, किन्तु मुनि अभी तक नहीं लौटे। अब यदि उनके बिना भोजन करता हूँ तो व्रत तो पूर्ण हो जाता है, किन्तु मुझे पाप लगेगा।

पुनि न करौं जे पारन अबही। बादि जात दुष्कर ब्रत तबही॥

और जो यदि अब भी मैंने व्रत का पारण नहीं किया तो मेरा यह दुष्कर व्रत व्यर्थ चला जाएगा।

दोहा- बिप्र कहा तब राजन हरि पादोदक पाइ।
अस परिथिति ब्रत पारिअ सब संकोच बिहाई॥१४५॥

तब ब्राह्मणों ने कहा- हे राजन! इस परिस्थिति में समस्त सङ्कोच त्यागकर आपको भगवान का चरणामृत ग्रहण करके अपने व्रत का पारण कर लेना चाहिये।

चौ.- चरनामृत गहि द्विज अनुहारा। नृप तब द्वादसि महुँ ब्रत पारा॥
द्वादसि बिगत फिरे दुरवासा। अम्बरीष तब गै उन्ह पासा॥

तब ब्राह्मणों के निर्देशानुसार राजा ने द्वादशी में भगवान का चरणामृत पीकर अपने व्रत का पारण कर लिया। इधर द्वादशी के बीतने पर जब मुनि दुर्वासा लौटे, तब अम्बरीश उनके पास गए।

करि दंडवत बरासन दीन्हा। नृप उन्हँ भोज निबेदनु कीन्हा॥
मुनि कहेहु तुम पारन राऊ। करत रहे द्वादसिउ सदाऊ॥

फिर दण्डवत् प्रणाम करके उत्तम आसन देकर उन राजा ने मुनि के सम्मुख भोजन के लिये निवेदन किया। तब मुनि ने कहा- हे राजन! तुम सदैव द्वादशी में अपने व्रत का पारण करते रहे हो;

तातें बिगत द्वादसिउँ माहीं। ब्रत पारन तुम कीन्ह कि नाहीं॥
हरि पादोदक मैं ब्रत पारा। किन्तु न तव बिनु कीन्ह अहारा॥

अतः बीती हुई द्वादशी में तुमने अपने व्रत का पारण किया या नहीं? तब राजा ने कहा कि मैंने भगवान का चरणामृत पीकर व्रत तो पूर्ण कर लिया है, किन्तु आपके बिना भोजन ग्रहण नहीं किया।

सुनि भै आग बबूर मुनीसा। पुनि कह रे जड़मति अवनीसा॥
हमहिं न्यौति हम बिनु ब्रत पारी। कीन्ह हमार निरादर भारी॥

यह सुनकर महर्षि दुर्वासा आग बबूले हो उठे और बोले रे जड़बुद्धि राजा! हमें न्योता देकर फिर हमारे बिना ही व्रत का पारण करके, तूने हमारा घोर निरादर किया है।

अस कहि तोरि जटा तें बारा। उन्ह सक्रुद्ध मेदिनितल तारा॥

यह कहकर उन्होंने अपनी जटा से एक बाल तोड़कर क्रोधपूर्वक भूमि पर पटका।

दोहा- **जिन्हँ प्रभाउ कृत्या उपजि बिकट अगिनि धरि गात।**
मुनि प्रेरित पुनि भूप दिसि धाइ परि घुघुरात॥१४६॥

जिसके प्रभाव से अपने अङ्गों में विकट अग्नि धारण किये कृत्या प्रकट हुई और मुनि की प्रेरणा से घुर-घुराती हुई राजा की ओर दौड़ पड़ी।

चौ.- **तिन्ह पद धमक कठिन अति पाई। दिसिन्हँ सहित बसुधा अकुलाई॥**
सेषसायिआश्रित पै देखी। रहे अचल मुसुकात बिसेषी॥

उसके पैरों की अत्यंत कठोर धमक से दिशाओं सहित सम्पूर्ण पृथ्वी अकुला उठी। किन्तु शेषशैय्या पर शयन करनेवाले श्रीहरि के आश्रय में बसनेवाले राजा अम्बरीश विशेष मुस्कान के साथ अपने स्थान पर अचल रहे।

भगतपाल कर चक्र कराला। ऐतनेहुँ प्रगटि जारि सो ज्वाला॥
निज पाचहि उलटत लखि त्रासा। भागि चले तहँ तें दुरवासा॥

इतने में ही भक्तवत्सल श्रीहरि के सुदर्शन चक्र ने प्रकट होकर ज्वालारूपिणी उस कृत्या को भस्म कर दिया। अपने पाँसे को उल्टा पड़ता देखकर दुर्वासा भयभीत होकर वहाँ से भाग चले।

चक्र परन्तु पाछही परेऊँ। सिर धुनि मुनि बिचार तब करेऊँ॥
स्वकर मारि निज पाँउ कुठारी। मैं मतिमंद सोचु अब भारी॥

किन्तु चक्र तो उनके पीछे ही पड़ गया था, तब मुनि सिर धुनते हुए विचार करने लगे कि अपने ही हाथों अपने पैर पर कुल्हाड़ी मारकर अब मैं मन्दबुद्धि अत्यन्त चिन्ता कर रहा हूँ।

को राखिहि अब मोहि जग माहीं। करत बिचार गए अज पाहीं॥
सुनि अज कह गहि सीतल स्वासा। मैं न राखि सकु तहिं दुरवासा॥

अब संसार में कौन मेरी रक्षा करेगा? इस प्रकार विचारते हुए वे ब्रह्माजी के पास गए। उनका दुःख सुनकर ठण्डी श्वास लेते हुए ब्रह्माजी ने कहा- हे दुर्वासा! मैं तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकता।

कीन्ह जेन्ह प्रति तुअँ अपराधा। तिन्ह प्रति हरि हिय पेमु अगाधा॥
आहु बसहँ अरु मो कहँ मारू। सिद्ध उकुति यह तव ब्यवहारू॥

तुमने जिनके प्रति अपराध किया है, उनके प्रति भगवान श्रीहरि के हृदय में अगाध स्नेह है। "आ बैल और मुझे मार", यह उक्ति तुम्हारे व्यवहार से सिद्ध होती है।

अब जे बसहँ मार तोहिं आई। तापर कवनेउँ मोर बसाई॥

जो यदि अब बैल (सचमुच) आकर तुम्हें मारे भी, तो भला उस पर मेरा क्या वश?

दोहा- दुरवासा तब सम्भु पहि गवने परम खिसाइ।
उन्हपि बूझि तेहिं हरि बिमुख कीन्हि न कछुक सहाइ॥१४७॥

तब मुनि दुर्वासा अत्यन्त लज्जित होकर शिवजी के पास गए; किन्तु उन्होंने भी उन्हें भगवान से द्रोह करनेवाला जानकर उनकी कोई सहायता नहीं की।

चौ.- तब अति बिकल सभय दुरवासा। मुख लगाइ गवने हरि पासा॥
प्रभु मोतें भइ भूल अगाधा। कीन्ह जे तव जन प्रति अपराधा॥

तब अत्यन्त व्याकुल व भयभीत होकर मुनि दुर्वासा मुँह लटकाए भगवान श्रीहरि के पास गए और बोले- हे प्रभु! मुझसे यह बड़ी भूल हो गई, जो मैंने आपके भक्त के प्रति अपराध कर दिया।

परा सरन तव जन हितकारी। रच्छिअ चक्र चहहिं मोहि मारी॥
त्रिपुरहि मम करतल मुनिराई। तदपि भगत पर मम न बसाई॥

हे भक्तों के कल्याणकर्ता! मैं आपकी शरण में आया हूँ, मेरी रक्षा कीजिये; आपका चक्र मुझे मारना चाहता है। तब भगवान ने कहा- हे मुनिराज! यद्यपि तीनों ही लोक मेरे वश में हैं, तथापि अपने भक्त पर मेरा वश नहीं चलता।

मैं आपुनु तें अधिक उन्ह चाहूँ। लाभु हानि उन्ह मम छय लाहू॥
मुनि मैं संतत जासु अधीना। तुम अपराध उन्हहि प्रति कीना॥

मैं उन्हें अपने आप से भी अधिक स्नेह करता हूँ, उनका लाभ मेरा लाभ है और उनकी हानि स्वयं मेरी हानि है। हे मुनि! मैं निरन्तर जिनके अधीन हूँ, आपने उन्हीं के प्रति अपराध किया है।

खनहिं खड्ड पर अनहित जेई। आपु खाइ खन जग महुँ तेई॥
तातें लहिअ सरन अब तेऊ। भगत अनन्य अहहिं मम जेऊ॥

जो दूसरों के अहित के लिये गड्ढा खोदते हैं, उनके लिये इस संसार में अपने आप खाई खुद जाती है। अतः अब आप उन्हीं की शरण में जाईये, जो मेरे अनन्य भक्त हैं।

सुनतहिं धीर धरे मनु माहीं। मुनि गै अम्बरीस के पाहीं॥
बरजि चक्र कहँ तब अँवरीषा। कह भयगत करुँ तुरत मुनीषा॥

ऐसा सुनते ही मुनि दुर्वासा अपने मन में धीरज धरकर राजा अम्बरीश के पास गए। तब चक्र को रोकते हुए राजा अम्बरीश ने उससे कहा कि शीघ्र ही इन मुनिराज को अपने भय से मुक्त कर दो।

दोहा- **उभौ अहहि बिप्रन्हँ भगत मैं अरु मम भगवान।**
बिप्रोत्तम दुरवास पुनि लेहुँ न उन्ह कर प्रान॥१४८॥

हे चक्र! मैं व मेरे स्वामी, हम दोनों ही ब्राह्मणों के भक्त हैं और ये महर्षि दुर्वासा तो ब्राह्मणों में भी श्रेष्ठ हैं; अतः तुम उनके प्राण न लो।

चौ.- **सुनत चक्र निज ज्वाल अबेरी। भा बिलीन करि अँवरिस फेरी॥**
तब हरिजन मुनि कहँ उर लावा। सिषन्हँ समेत सुभोज करावा॥

यह सुनते ही अपनी ज्वाला को समेंटकर राजा की परिक्रमा करते हुए वह चक्र अन्तरध्यान हो गया। तब उन हरिभक्त राजा ने मुनि को हृदय से लगा लिया और उन्हें शिष्यों सहित भोजन करवाया।

कदलि खात जिन्हँ के गड़ फाँसा। गति उन्ह होति जथा दुरवासा॥
इच्छबाकु कुल चरित सुहावन। मैं अब कहउँ तोहिं कलिताड़न॥

केला खाते हुए भी जिन्हें फाँस गड़ती है, उनकी दशा वैसी ही हो जाती है, जैसी मुनि दुर्वासा की हुई। हे कलि के शत्रु राजा परीक्षित! अब मैं तुम्हें इक्ष्वाकु-वंश की सुन्दर कथा कहता हूँ।

मनुसुत इच्छबाकु नृप केरे। भए तनय सत सुभट घनेरे॥
बिकुखि सहित निमि दंडक जेठे। अरयाबरत मध्य जे बैठे॥

मनु के पुत्र महाराजा इक्ष्वाकु के सौ पुत्र हुए, जो बड़े ही पराक्रमी थे। विकुक्षी समेत निमि और दण्डक उनके ज्येष्ठ पुत्र थे, जो आर्यावर्त के मध्य भाग के राजा हुए।

उन्ह तें लाघव सुत पच्चीसा। भै पूरब दिसि केर महीसा॥
पुनि पच्चीस नृपति पच्छिम भए। उत्तर दच्छिन तनय सेष गए॥

उनसे छोटे पचीस पुत्र पूर्व दिशा के राजा हुए, उनसे छोटे पचीस पुत्र पश्चिम के (नगरों के) राजा हुए। जो शेष रह गए थे, वे आर्यावर्त के दक्षिणी और उत्तरी भाग में चले गए।

बिकुखिहुं सुत पुनि भयउँ पुरंजय। सुर हित जिते असुर जिन्हँ दुरजय॥

फिर विकुक्षी का पुत्र पुरञ्जय हुआ, जिन्होंने देवताओं के लिये दुर्जय असुरों को जीता था।

दोहा- **सतजुग उत्तर सुर असुर मध्य भयउँ संग्राम।**
किंतु जीति गै सो समर जामिनिचर बलधाम॥१४९॥

सतयुग के उत्तरार्ध में देवताओं व असुरों के मध्य युद्ध हुआ, किन्तु बल के धाम दैत्यों ने उस युद्ध को जीत लिया।

चौ.- **तब सुर अए पुरंजय पासा। अज प्रेरित हिय धरि जय आसा॥**

पुनि कह राजन करिअ सहाई। असुर प्रबल जीते जनि जाई॥

तब ब्रह्माजी की प्रेरणा से जय की इच्छा लिये समस्त देवता राजा पुरञ्जय के पास आए और बोले- हे राजन! आप हमारी सहायता कीजिये; ये परम बलवान दैत्य हमसे जीते नहीं जाते।

सुरगन होउब अवसि सहाई। किन्तु भिरउँ जब अरि तें जाई॥
तब अस बल उपजिहि मम देही। सहि न सकसि रथ हय गय जेहीं॥

तब राजा ने कहा कि मैं सहायता तो अवश्य करूँगा, किन्तु मैं जब शत्रु से जाकर भिड़ूँगा, तब मेरे शरीर में ऐसा बल उत्पन्न होगा, जिसे रथ, हाथी और घोड़े आदि नहीं सह सकेंगे।

जे सुरेस मम बाहन होई। तब मैं अवसि जितब रनु सोई॥
सक्र मानि तब बृष तनु लाई। लीन्ह तेहिं निज पीठि चढ़ाई॥

जो यदि इन्द्र स्वयं मेरे वाहन बनें, तब मैं अवश्य उन्हें युद्ध में जीत लूँगा। यह सुनकर इन्द्र ने पुरञ्जय की बात मान ली और बैल का शरीर धारण करके उन्हें अपनी पीठ पर चढ़ा लिया।

तदुप पुरंजय रनु करि भारी। रजनीचर सब दीन्ह सँघारी॥
एहिबिधि तिन्ह पुर संपति जीती। उन्ह सुरपति कहँ दीन्ह सप्रीती॥

तदुपरान्त राजा पुरञ्जय ने घोर युद्ध करके समस्त राक्षसों को मार डाला। इस प्रकार उन्होंने दैत्यों का नगर व सम्पत्ति जीतकर प्रेमपूर्वक इन्द्र को समर्पित कर दी।

दोहा- **बैठे बृषहिं कुकुद निकट उन्ह कुकुत्थ भा नाउँ।**
सक्रहि बाहन कीन्ह जब इंद्रवाह भै राउँ॥१५०॥

पुरञ्जय वृषभ रूपधारी इन्द्र की पीठ पर उसके कुकुद के निकट बैठे थे, इसलिये उनका नाम कुकुत्स्थ हुआ और जब इन्द्र को अपना वाहन बनाया तब वे राजा (पुरञ्जय) इन्द्रवाह भी कहलाए।

चौ.- **पुनि उन्ह बंस भयउँ एक राऊ। नृप जुअनास्व रहा जिन्हँ नाऊँ॥**
जब न भई उन्ह केउ संताना। दुख करि तब उन्ह मुनिन्ह बखाना॥

हे परीक्षित! उन पुरञ्जय के वंश में एक राजा हुए जिनका नाम युवनाश्व था। जब उनके कोई सन्तान नहीं हुई, तब अत्यन्त दुःखी होकर उन्होंने मुनियों से अपना दुःख कह सुनाया।

सुनि अति द्रवित भए मुनि ग्यानी। देव प्रधान सुरप कहँ ठानी॥
पुनि सब मिलि समेत अनुरागा। नृप कर लाग कराएसि जागा॥

उनका दुःख सुनकर वे ज्ञानी मुनि अत्यन्त द्रवित हो उठे और देवराज इन्द्र को प्रधान देवता नियुक्त करके वे सब मिलकर प्रेमसहित उन राजा के हाथों एक यज्ञ करवानें लगे।

जलघट इक उन्ह थापेहुँ तहवाँ। जग्यबेदि बर बिरचिसि जहवाँ॥
नृप हित पुत्रकाम हिय लाई। अभिमंत्रेहुँ जलघटु मुनिराई॥

फिर जहाँ उत्तम यज्ञवेदी बनाई थी वहीं उन्होंने जल का एक कलश स्थापित करवाया और राजा के निमित्त पुत्र की कामना मन में लिये उन मुनियों ने कलश के जल को अभिमन्त्रित कर दिया।

सो निसि राउर मुनिन्हँ समेता। सयन कीन्ह सोइ होम निकेता॥
निसिहि तेन्हँ जब लागि पिआसा। मखगृह फिरत भए जल आसा॥

उस रात मुनियों के साथ राजा ने उसी यज्ञशाला में शयन किया और जब रात्रि में उन्हें प्यास लगी, तब वे यज्ञशाला में ही जल खोजते हुए घूमने लगे।

तंद्रा बिबस सघन तम माहीं। गै तें अभिमंत्रित घट पाहीं॥
होनिहार बस होत अधीरा। प्राकृत जानि गहेहुं सो नीरा॥

तंद्रा के वशीभूत हुए वे घने अन्धकार में अभिमन्त्रित जल कलश के पास जा पहुँचे और होनहारवश प्यास से अधीर होकर उन्होंने साधारण समझकर उस अभिमन्त्रित जल को ही पी लिया।

दोहा- **प्रात घटनि सब जानि मुनि नृपहि कहा अस चोख।**
जल प्रताप सिसु होइ एक नरपति अब तव कोख॥१५१॥

फिर सवेरा होने पर सारी बात जानकर मुनियों ने राजा से स्पष्ट शब्दों में कहा कि हे राजन! अब अभिमन्त्रित जल के प्रताप के कारण तुम्हारी कोख से एक बालक उत्पन्न होगा।

चौ.- **सुनि जुअनास्व प्रथम अकुलाना। हरि पृह समुझि धीर पुनि ठाना॥**
परिछित पूर गरभु सवँ पाए। रिषिन्ह समेत सक्र तहँ आए॥

यह सुनकर पहले तो युवनाश्व अकुला उठे, फिर इसे हरि की इच्छा जानकर उन्होंने धैर्य धारण किया। हे परीक्षित! गर्भावधि पूर्ण हुई जानकर मुनियों सहित इन्द्र उनके पास आए।

तेहिं सवँ भूपहिं दाहिन कोखा। छेदि तेन्हँ काढ़ेहुँ सिसु चोखा॥
पुनि भेषज करि सीएहुँ घाऊ। चोखाए नृप बिबुध पसाऊ॥

उस समय उन्होंने राजा की दाहिनी कोख फाड़कर बालक को सकुशल निकाल लिया। फिर औषधि करके घाव को सी दिया और उन देवताओं के प्रताप से राजा स्वस्थ हो गये।

सिसु सो अमित तेज छबि पागा। छुधावंत जब रोवन लागा॥
मुनि समाज तब कह अकुलाना। अहो करिहि सिसु किन्ह पयपाना॥

अपार तेज व सुन्दरता से युक्त वह बालक जब भूख से पीड़ित होकर रोने लगा, तब व्याकुल होकर मुनिगण कहने लगे- अहो! यह बालक किसका दुग्धपान करेगा?

सुनतहि इंद्र कहा मां धाता। पुनि निज गोद लीन्ह नवजाता॥
तरजनि अमिमय तदुप बढ़ाई। सद्य बालकहि लाग पिबाई॥

यह सुनते ही 'मां धाता' कहकर इन्द्र ने उस नवजात को अपनी गोद में उठा लिया। तदुपरान्त वे शीघ्र ही अपनी अमृतमयी तर्जनी अँगुली आगे बढ़ाकर उस बालक को पिलाने लगे।

दोहा- **सक्र प्रथम संबोधेहुँ मां धाता कहि राउ।**
तातें मुनिगन राखेहुँ मान्धाता सिसु नाउ॥१५२॥

हे परीक्षित! इन्द्र ने (उस बालक को) 'मां धाता' कहकर प्रथम बार सम्बोधित किया था; इसी कारण मुनियों ने उस बालक का नाम 'मान्धाता' ही रख दिया।

चौ.- तरुन भए माँधाता जबही। सप्त द्वीप उन्ह जीते तबही॥
रावनादि दस्युन्हँ परतारी। आर्ज भूमि तें दीन्ह निकारी॥

जब मान्धाता युवा हुए तब उन्होंने युद्ध में सातों द्वीप जीत लिये और रावण आदि दस्युओं को दण्डित करके आर्य भूमि से खदेड़ दिया।

त्रसद् दस्यु तब अस अलँकारा। उन्ह सनमानेहुँ सुरप निहारा॥
पुनि ससबिन्दु सुकीरति चीन्हीं। सुता बिन्दुमति निज तेहिं दीन्हीं॥

जब इन्द्र ने यह देखा तो उन्होंने उन्हें 'त्रसद्दस्यु' इस अलङ्कार से सम्मानित किया। राजा शशबिन्दु ने उनकी इस सुन्दर कीर्ति को देखकर अपनी पुत्री बिन्दुमति उन्हें ब्याह दी।

पुनि तिन्ह बंस भयउँ एक राऊ। भयउँ सत्यब्रत जिन्हँ कर नाऊँ॥
कामबिबस उन्ह अकसर हारी। ब्याहबेदि तें बिप्रकुमारी॥

फिर उनके वंश में आगे एक राजा हुआ जिसका नाम सत्यव्रत था। एक बार काम पीड़ित होकर उसने विवाह मण्डप से एक ब्राह्मणकन्या का अपहरण कर लिया।

पितु जब सुनेहुं परम दुख लागा। पुनि बसिष्ठ प्रेरित तेहिं त्यागा॥
तब मुनि प्रति हिय बैर बसाई। गयउ सत्यब्रत बन दुख पाई॥

जब पिता ने उसके इस कुकर्म को सुना, तब महर्षि वशिष्ठ की प्रेरणा से उन्होंने उसे त्याग दिया। तब अपने मन में उन मुनि के प्रति शत्रुभाव रखकर सत्यव्रत दुःखी हो वन को चला गया।

तहँ चाँडाल कुसंगति पाई। बसन लाग निज राज गँवाई॥

राज्यभ्रष्ट हो चुका सत्यव्रत वहाँ चाण्डालों का कुसंग पाकर उन्हीं के साथ रहने लगा।

दोहा- परिछित जलदनाथ निरखि बिप्रनारिहर ताहिं।
बारह सम्बत लौ तहाँ बरषानेहुँ जलु नाहिं॥१५३॥

हे परीक्षित! सत्यव्रत को ब्राह्मण की स्त्री का हरण करनेवाला जानकर मेघों के स्वामी इन्द्र ने बारह वर्ष तक उसके राज्य में जल नहीं बरसाया।

मासपारायण पाँचवा विश्राम

चौ.- सो सवँ गए रहे तप लागी। कौसिक तियहि ससुत तहँ त्यागी॥
एक बार बिनु भोजन पाए। तीनिहुँ मुनिसुत अति अकुलाए॥

उस समय विश्वामित्रजी पुत्रों सहित अपनी पत्नि को उसी नगर में छोड़कर तप के लिये गए हुए थे। भोजन न मिल पाने के कारण एक बार तीनों मुनिकुमार भूख से अत्यधिक अकुला गए।

जननि बिबस जब देखि न पाई। अनत सुतन्ह निज किए बचाई॥
नेति मझोल तनय गर बाँधी। बेचन चलि उर पाहन साँधी॥

विवश हुई माता से जब यह देखा न गया, तब अपने अन्य पुत्रों की रक्षा हेतू अपने मझले पुत्र के गले में रस्सी बाँधकर, वह अपने हृदय पर पत्थर रखकर उसे बेचने के लिये चल पड़ी।

अस हिय भेदक दृस्य निहारी। सत्यब्रतहि दय लागेसि भारी॥
तब उन्ह कंद मूल फल भेंटी। तुरत दीन्ह जननिहिं दुख मेटी॥

हृदय को विदीर्ण कर देनेवाले ऐसे दृश्य को देखकर सत्यव्रत को बड़ी दया लगी। तब उन्होंने कन्द, मूल और फल भेंट करके, तुरन्त ही उस माता के दुःख का निवारण कर दिया।

नृप बंधाएसि गर जोइ बालव। जग प्रसिद्ध भा सो मुनि गालव॥
तदुप फिरी आश्रम मुनिनारी। तीनिहुँ सुत समेत सुखु भारी॥

हे राजन! जिस बालक का गला रस्सी से बाँधा गया था, वह संसार में गालव मुनि के नाम से प्रसिद्ध हुआ। तदुपरान्त मुनिपत्नि अपने तीनों पुत्रों सहित अत्यन्त सुखी होकर आश्रम में लौट आई।

दोहा- पाछ सत्यब्रत प्रतिदिवस फल कइ गठरि जुड़ाइ।
बाँधि लाग एक बिटप पर उन्ह आश्रम सन जाइ॥१५४॥

उस दिन के पश्चात् सत्यव्रत प्रतिदिन फलों की एक गठरी बनाकर उनके आश्रम के निकट जाकर एक वृक्ष पर बाँधने लगे।

चौ.- मुनि तिय पाइ गठरि तहँ टाँगी। श्रमुगत सुत पालन करि लागी॥
दुरभावना पिसाचिनि सोऊ। परिछित खाइ निजाश्रय जोऊ॥

वृक्ष पर फलों की गठरी मुनि विश्वामित्रजी की पत्नि बिना किसी कष्ट के अपने पुत्रों का पालन करने लगी। हे परीक्षित! दुर्भावना वह पिशाचिनि है, जो अपने ही आश्रय को खा जाया करती है।

एहि प्रेरित कौसिक कुलत्राता। कीन्ह बसिष्ठ केर गउ घाता॥
निरखि बसिष्ठ परम दुखु लागा। कह सरोष नारकी अभागा॥

इसी दुर्भावना से प्रेरित होकर मुनिकुलपालक होते हुए भी सत्यव्रत ने वशिष्ठजी की गाय को मार डाला। यह देखकर वशिष्ठजी को बड़ा दुःख हुआ और क्रुद्ध होकर वे बोले- रे नारकी! रे अभागे!

अघ इक हरि तैं बिप्रकुमारी। दूसर करि पितु जसु छति भारी॥
बैर मोर प्रति पुनि अज साधे। बधि मम गाइ पुनिहुँ अपराधे॥

एक पाप के रूप में तूने एक ब्राह्मणकन्या का हरण किया, दूसरे पाप के रूप में (अपने इस कुकर्म से) अपने पिता के यश को बड़ी क्षति पहुँचाई और आज मुझसे बैर निकालने के लिये तूने मेरी गाय को मारकर तू पुनः अपराधी हुआ है;

तातें तिहुँ पातक एहिंकाला। संकु होइ उभरहि तव भाला॥
सुनत सत्यब्रत अति पछिताए। जग एहि साप त्रिसंकु कहाए॥

अतः इसी समय तेरे ये तीनों पाप शङ्कु होकर तेरे ललाट पर उभर आएँ। यह श्राप सुनकर सत्यव्रत को अत्यधिक पश्चाताप हुआ और इसी श्राप से संसार में उनका नाम त्रिशङ्कु प्रसिद्ध हुआ।

जदपि किए तप बिबिध उपाई। उन्ह पातक सब लीन्ह मेटाई॥
तद्यपि तमकृत हेरि अगाहा। सूर्यबंसि निज बध करि चाहा॥

यद्यपि उन्होंने तप व अनेक उपाय करके अपने समस्त पापों को मिटा लिया; तथापि अपने अज्ञानयुक्त कर्मों का स्मरण करके उन सूर्यवंशी राजपुत्र ने (एकबार) आत्महत्या करनी चाही,

भगवति उमा किंतु तब जाई। तेहिं प्रबोधि पुनि लीन्ह बचाई॥

किन्तु तभी भगवती पार्वती ने जाकर उन्हें भली-प्रकार समझाया और ऐसा करने से बचा लिया।

दोहा- **सुद्ध जानि पितु बोलि तिन्हँ हरषि राजपदु दीन्ह।**
बहुरि किए हित हरि भजन आपु गवन बन कीन्ह॥१५५॥

पापों से मुक्त हुआ जानकर पिता ने उन्हें बुलवाकर प्रसन्नतापूर्वक राजपद दे दिया और स्वयं हरिभजन करने के लिये वन को चले गए।

चौ.- **दीरघ अवधि राज उन्ह भोगा। सुत हरिचंदहि लखि पुनि जोगा॥**
पितु परिपाटि तिलक करि ताहीं। गवने ते गुर बसिष्ठ पाहीं॥

उन्होंने दीर्घ अवधि तक राज्य किया, फिर पुत्र हरिश्चन्द्र को योग्य पाकर, अपनी पितृ परम्परानुसार उसका राजतिलक करके वे अपने गुरु वशिष्ठजी के पास गए।

पुनि कह मख अस कहु मुनिराऊ। जेहिं करि सबपु सरग मैं जाऊँ॥
अस मख राउ अहहि श्रुति नाहीं। तब त्रिसंकु गै गुर सुत पाही॥

फिर उनसे बोले- हे मुनिराज! मुझे कोई ऐसा यज्ञ बतलाइए जिसे करने पर मैं शरीर सहित स्वर्ग जा सकूँ। वशिष्ठ बोले- हे राजन! ऐसा कोई भी यज्ञ वेदों में नहीं है, तब त्रिशङ्कु उनके पुत्रों के पास गए।

पुनि उपाउँ उन्ह पूछेउँ सोई। तब उन्ह कहा क्रुद्ध अति होई॥
मानि न तैं गुर गिरा अदोषी। सिसु मरजाद पूछि पुनि सोषी॥

फिर उनसे भी वही उपाय पूछा, तब गुरुपुत्रों ने अत्यन्त क्रोधित होकर कहा- रे शठ! तूने अपने गुरु की निर्दोष वाणी को न मानते हुए, पुनः हमसे पूछकर शिष्य की मर्यादा का उल्लङ्घन किया है।

तातें होहु सठहुँ चाँडाला। पुनि भोगहुँ निज पाप बिसाला॥
तेहिं छिनु साप बिबस्य त्रिसंकू। भा मानहुँ जीवंत कलंकू॥

इसलिये शठ! तू चाण्डाल हो जा और अपने घोर पाप का फल भोग। उसी क्षण श्राप के वशीभूत हुए राजा त्रिशङ्कु मानो जीवन्त कलङ्करूप हो गया।

दोहा- **बपुष सहित भूषन बरन घूसर भै जनु नाग।**

दुसह तीछ दुर्गन्धजुत भयउँ तासु अँगराग॥१५६॥

शरीर सहित उनके आभूषणों का रङ्ग सर्प के रङ्ग के समान अत्यधिक काला हो गया और उनका अङ्गराग भी दुःसह्य तीक्ष्ण दुर्गन्धयुक्त हो गया।

चौ.- **साप त्रिसंकु तेज जब नासा। सभय गयउ तें कौसिक पासा॥**
गुरसुत साप देत मुनिराई। मोहि दीन्ह चाँडाल बनाई॥

जब श्राप के कारण राजा त्रिशङ्कु का तेज नष्ट हो गया, तब वह भयभीत होकर विश्वामित्रजी के पास गया और बोला- हे मुनिराज! मेरे गुरु के पुत्रों ने श्राप देकर मुझे चाण्डाल बना दिया।

देखि दया लगि मुनिहिं अपारा। तब उन्ह एहिबिधि बचन उचारा॥
मेटि न सकउँ साप मैं राऊ। किन्तु सरग तोहिं अवसि पठाऊँ॥

उन्हें देखकर मुनि को अत्यन्त दया आई, तब उन्होंने इस प्रकार कहा- हे राजन! मैं तुम्हें प्राप्त श्राप को तो मिटा नहीं सकता, किन्तु तुम्हें स्वर्ग अवश्य भेज दूँगा।

अस कहि महिभर रिषिन्ह बोलाए। किन्तु बसिष्ठ सुत न जब आए॥
सरिस साप दइ तब मुनिराई। डोम भाट उन्ह दीन्ह बनाई॥

ऐसा कहकर उन्होंने पृथ्वी-भर के ऋषियों को आमन्त्रित किया, किन्तु जब वशिष्ठजी के पुत्र नहीं आए, तब क्रोधित हुए विश्वामित्रजी ने श्राप देकर उन्हें डोम और भाट बना दिया।

पुनि सउधानि सहित अनुरागा। नृप कर लाग कराएसि जागा॥
किंतु त्रिसंकुहि सापित चीन्हीं। केउ सुर न मख आहुति लीन्ही॥

फिर सावधानीपूर्वक प्रेमसहित वे मुनिराज राजा के हाथों यज्ञ करवाने लगे, किन्तु त्रिशङ्कु को शापित जानकर किसी भी देवता ने उस यज्ञ में आहुति ग्रहण नहीं की।

मुनि सक्रुद्ध तव झारि उठाई। कह अस सापित कहँ अन्हवाई॥
मकु रह सुर तुअँ तें मुखु मोरे। निज बल पठउँ सरग मैं तोरे॥

तब विश्वामित्रजी ने क्रोधित होकर अपना कमण्डलु उठाया और श्रापित राजा को नहलाकर इस प्रकार कहा- हे राजन! भले ही देवता तुमसे मुँह मोड़े रहें, मैं तुम्हें अपने बल पर स्वर्ग भेजूँगा।

उपकृत अस कहि तपबल लाई। सतनु दीन्ह तेहिं सरग पठाई॥

यह कहकर उपकार से दबे महर्षि ने अपना तपोबल लगाकर उन्हें शरीर सहित स्वर्ग भेज दिया।

दोहा- **सुरपति देखेहुँ सरग महुँ आवा केउ चाँडाल।**
बूझि मारि पुनि लात तिन्हँ महि फेरेहुँ ततकाल॥१५७॥

देवराज इन्द्र ने जब देखा कि स्वर्ग में कोई चाण्डाल आ पहुँचा है, फिर उसे पहचानकर (कि यह तो त्रिशङ्कु है) उन्होंने लात मारी और पृथ्वी की ओर वापस भेज दिया।

चौ.- **तब त्रिसंकु भुवि दिसि उलटाई। परन लाग अतिगति अकुलाई॥**
प्रनतपाल मुनि जब अस चीन्हा। नभहुँ तुरंत तेहिं थिर कीन्हा॥

तब व्याकुल होकर राजा उलटे मुँख पृथ्वी पर अत्यन्त वेगपूर्वक गिरने लगे। शरणागतवत्सल महर्षि विश्वामित्रजी ने जब यह देखा तो उन्होंने तुरन्त उन्हें आकाश में ही स्थिर कर दिया।

तिन्हँ प्रति किए बचन पुनि साँचा। बिस्वामित्र सरग नव राचा॥
नवल बिबुध पुनि जब सृजि लागे। आए सुर तब उन्ह सन भागे॥

फिर उनके प्रति अपना वचन सत्य प्रमाणित करने के लिये विश्वामित्रजी ने नवीन स्वर्ग निर्मित कर दिया। फिर जब वे नवीन देवताओं का सृजन करने लगे, तभी समस्त देवता भागते हुए उनके सम्मुख आए।

मुनि तुअँ सृजहि देव नव जोई। आदरु करिहि हमार न कोई॥
गाधितनय सुनि नीति बिचारी। रोकि सृजन उन्ह लाग उचारी॥

(देवों ने कहा-) हे मुनिराज! यदि आप नवीन देवताओं का सृजन करेंगे, तो कोई भी हमारा आदर नहीं करेगा। यह सुनकर नीति का विचार करते हुए विश्वामित्रजी सृजन रोककर उनसे कहने लगे कि

अब रह ममकृत सरग त्रिसंकू। सृजउँ न नव सुर फिरिअ निसंकू॥
परिछित उलट लटकि सो राजा। अज लौ अह नव सरग बिराजा॥

अब त्रिशङ्कु मेरे द्वारा निर्मित स्वर्ग में रहेंगे, मैं नवीन देव नहीं बनाऊँगा; आप निश्चिन्त होकर लौट जाईये। हे परीक्षित! तभी से वह राजा त्रिशङ्कु उलटे मुँख लटककर आज तक उस नवीन स्वर्ग में स्थित है।

दोहा- **लार टपक तिन्ह मुख सतत जग भइ जे क्रमनास।**
जीव केर सुभकृत सकल परस जासु कर नास॥१५८॥ (क)

उसके मुख से निरन्तर लार टपकती रहती है, जो संसार में कर्मनाशा नाम की नदी हो गई, जिसका स्पर्श मात्र ही प्राणी के समस्त शुभकर्मों को नष्ट कर देता है।

गाधितनय निज तपोबल देत पितहि भव फंद।
काटेहुँ परिछित जानि अस हरषेहुँ अति हरिचंद॥१५८॥ (ख)

"गाधिनन्दन विश्वामित्रजी ने अपने तप का बल देकर पिता त्रिशङ्कु के दुःख का निवारण किया है", यह जानकर राजा हरिश्चन्द्र अत्यधिक प्रसन्न हुए।

चौ.- **तदुप बसिष्ठ मंत्र अनुहारा। तेहिं राजपदु अवध सँभारा॥**
तारा नाउँ रही उन्ह नारी। सुभ सम्पन्न पातिब्रतधारी॥

तदुपरान्त महर्षि वशिष्ठ के मतानुसार अयोध्या का राज्य उन्होंने सँभाला। तारा नाम की उनकी एक रानी थी, जो शुभता से सम्पन्न पतिव्रता स्त्री थी।

बीति अवधि बहु तासु बिआहा। फुरि न परन्तु तनय कइ चाहा॥
तब तें गए अंबुपति पासा। गुर प्रेरित निज कहेसि निरासा॥

उनके विवाह को बहुत समय बीत गया, किन्तु पुत्रप्राप्ति की उनकी इच्छा पूर्ण नहीं हुई। तब वे गुरु वशिष्ठ से प्रेरित होकर वरुण देवता के पास गए और उन्हें अपना दुःख कह सुनाया।

होइ तवासिस जे सुत मोरे। तेहिं तें यजन करब मैं तोरे॥
सुनत अंबुपति कीन्ह पसाऊ। कछु सवँ बिगत लहेहुँ सुत राऊ॥

हे देव! यदि आपके आशीष से मेरे यहाँ पुत्र उत्पन्न हो, तो मैं उसी से आपका यजन करूँगा। यह सुनकर वरुणदेव ने कृपा की और कुछ ही समय पश्चात् राजा को पुत्र की प्राप्ति हो गई।

तात मात कर सो सुख धामा। जगजाहिर भा रोहित नामा॥
बरुन कहा तब उन्ह पहि जाई। मम आसीस लहेहुँ सुत राई॥

माता पिता के लिये समस्त सुखों का धाम वह बालक संसार में रोहिताश्व के नाम से प्रसिद्ध हुआ। तब वरुणदेव ने राजा के पास जाकर कहा- हे राजन! मेरे आशीर्वाद से तुम्हें पुत्र प्राप्त हो चुका है।

अब तेहिं तें करु तैं मम जागा। सुनि हरिचंदु परम दुख लागा॥

अतः अब तुम उससे मेरा यज्ञ करो, यह सुनते ही राजा हरिश्चन्द्र को अत्यन्त दुःख हुआ।

दोहा- बहुरि धीर धरि जोरि कर प्रमति राउ कहि लाग।
होइहि जब सिसु दस दिवस अवसि करौं तव जाग॥१५९॥

फिर धीरज धरकर हाथ जोड़कर महामति राजा हरिश्चन्द्र कहने लगे कि जब यह बालक दस दिन का हो जाएगा, तब मैं आपका यज्ञ अवश्य करूँगा।

चौ.- अवधि बिगत जलुपति पुनि आए। करि बहान नृप तबुहिं फिराए॥
परिछित एहिबिधि जब जब जाई। बरुन देव मख सुरति कराई॥

दस दिन की वह अवधि बीतने पर वरुणदेव पुनः आए, किन्तु राजा ने बहाना बनाकर उन्हें उस समय भी वापस लौटा दिया। हे परीक्षित! इस प्रकार वरुणदेव जब-जब जाकर यज्ञ की स्मृति कराते,

तब तब हरिचंदु तनय बिमोहे। करि कछु मिस उन्ह फेरत ओहे॥
भा जब तरुन कुँअर एक बारा। पितु पनु जानि भजेहुँ काँतारा॥

तब-तब पुत्रमोह के कारण कुछ बहाना करके, हरिश्चन्द्र उन्हें वापस लौटा देते थे। जब राजकुमार रोहित तरुण हो गया तब एक बार अपने पिता के यज्ञ-सम्बन्धी प्रण को जानकर वह वन में भाग गया।

बरुन देव तब नृपहि रिसाई। दीन्ह जलोदरग्रस्त बनाई॥
बरुन कोप पितु ऊपर जानी। जब कुमार फिरि लग दुख मानी॥

तब वरुण देवता ने क्रोधित होकर राजा हरिश्चन्द्र को जलोदर रोग से ग्रस्त कर दिया। पिता पर वरुण देवता का कोप हुआ जानकर जब राजकुमार रोहित दुःखी होकर घर लौटने लगा,

भय देखाइ बहुबिधि समुझाई। बरजेहुँ तब सुरपति तिन्हँ जाई॥
पुनि जब जब तेहिं फिरन बिचारा। तब तब सक्र परेहुँ पथ आरा॥

तब इन्द्र ने जाकर उसे (पिता के यज्ञ में उसकी बलि चढ़ाये जाने सम्बंधी) भय दिखाया और बहुत प्रकार से समझाकर (घर लौटने से) रोक दिया। तदुपरान्त जब-जब भी राजकुमार ने लौटना चाहा, तब-तब देवराज ने जाकर उसका मार्ग रोक लिया।

दोहा- सम्बत सप्त बिगत तदुप हृदय अटल पनु लाइ।
पितृबछल रोहित फिरेहुँ पितहिं समुख अकुलाइ॥१६०॥

तदुपरान्त सात वर्ष बीतने के उपरान्त मन-ही मन दृढ़ निश्चय करके, पितृवत्सल रोहित व्याकुल होकर अपने पिता महाराज के सम्मुख लौट आया।

चौ.- फिरत तेहिं मख हित सबिबेकू। मोल लीन्ह द्विज बालक एकू॥
पुनि हरिचंद तेहिं करि आगे। जब नरमेध जग्य करि लागे॥

लौटते समय राजकुमार ने विवेकपूर्वक यज्ञ के लिये एक ब्राह्मण का बालक मोल ले लिया और जब राजा हरिश्चन्द्र उसी बालक को आगे करके नरमेध यज्ञ करने लगे,

तब कौसिक श्रुतिबाद सुनाई। बिप्रतनय कहँ लीन्ह छराई॥
बहुरि कराएसि पूरन जागा। जेहिं तें नृपहि महोदर भागा॥

तब विश्वामित्रजी ने वेदों का मत समझाते हुए उस ब्राह्मणपुत्र को मुक्त करा लिया। फिर उन्होंने वह यज्ञ पूर्ण करवाया, जिससे राजा हरिश्चन्द्र का जलोदर नामक रोग छूट गया।

परिछित तदुप सोइ हरिचंदा। राजसूय कीन्हेंसि सानंदा॥
होता भै सो होम बसिष्ठा। भइ सबदिसि उन्ह परम प्रतिष्ठा॥

हे परीक्षित! तदुपरान्त उन्हीं राजा हरिश्चन्द्र ने आनन्दपूर्वक राजसूय यज्ञ किया। उस यज्ञ में महर्षि वशिष्ठ 'होता' (प्रधान यज्ञाचार्य) हुए, जिससे समस्त दिशाओं में उनकी महान प्रतिष्ठा हुई।

सो सनमान पाइ एक बारा। सुरपुर गए बसिष्ठ उदारा॥
भेंटे तहँ कौसिक उन्ह आई। तेज देखि पूछा अचराई॥

यज्ञसम्बन्धी वह सम्मान पाकर एक बार उदारमना वशिष्ठ स्वर्गलोक को गए। वहाँ विश्वामित्रजी ने आकर उनसे भेंट की और उनका महान तेज देखकर चकित हो वे इस प्रकार पूछने लगे-

मुनि अस अकथ महासनमाना। कहिअ भाँति केहि कहाँ जुड़ाना॥

हे मुनिवर कहिये! यह अकथनीय व महान आदर आपने कहाँ और किस प्रकार पाया?

दोहा- राजसूय हरिचंद कर मैं पाएहुँ यह मान।
दानि सत्य दृढ़ब्रती अज तेन्हँ तूल न जहान॥१६१॥

तब वशिष्ठजी ने कहा कि राजा हरिश्चन्द्र के राजसूय यज्ञ में मैंने यह सम्मान पाया है, आज संसार में उन जैसा दानी, सत्यवादी और दृढ़प्रतिज्ञ मनुष्य अन्य कोई नहीं।

चौ.- सुनि कौसिक अस उन्ह कइ बानी। खीझि भाँति एहि लाग बखानी॥
सुत हित बरुन समुख पनु लाई। सुत लहि पुनि पनु दीन्ह बिहाई॥

मुनि विश्वामित्रजी उनकी ऐसी वाणी सुनकर चिढ़कर इस प्रकार कहने लगे- जिसने पुत्र प्राप्ति हेतू वरुणदेव के सम्मुख प्रतिज्ञा करके फिर पुत्र प्राप्त होते ही उस प्रतिज्ञा को भुला दिया;

महाकुटिल अस मिथ्यारासी। मुनि कस अह दृढ़ब्रति सतभाषी॥
देखेसु तुम मैं कछु दिनु माहीं। तुम एहिंभाँति प्रसंसेहुँ जाहीं॥

हे मुनिराज! ऐसा महाकुटिल और असत्य की राशि हरिश्चन्द्र द्रढ़प्रतिज्ञ और सत्यवादी कैसे हो गया? आप देखियेगा! मैं कुछ ही दिनों के भीतर, जिसकी आपनें इस प्रकार बढ़ाई की है,

तेहिं पनु बिमुख कृपन मिथभाषी। अवसि जगत महुँ देउँ प्रकासी॥
कलह करत एहिबिधि दोउँ संता। निज निज आश्रम फिरे तुरंता॥

उस हरिश्चन्द्र को निश्चच ही इस संसार में प्रतिज्ञा से विमुख हो जानेवाला, कृपण व झूठा सिद्ध कर दूँगा। इस प्रकार कलह करते हुए वे दोनों संत तुरन्त अपने-अपने आश्रमों को लौट गए।

नृप हरिचंदहि लेन परीछा। बिस्वामित्र हृदय धरि ईछा॥
इत प्रगटानेहुँ एक बराहू। पुनि प्रेरेहुँ लच्छ दिसि ताहू॥

हे परीक्षित! राजा हरिश्चन्द्र की परीक्षा लेने की इच्छा हृदय में रखकर इधर महर्षि विश्वामित्रजी ने एक शूकर प्रकट किया और उसे (निश्चित) लक्ष्य की ओर छोड़ दिया।

दोहा- **भयदायक गुरदंतजुत दृग तें बरसत आग।**
जाइ बिसाल सो सूकर पैठा हरिचंद बाग॥१६२॥

भय उत्पन्न करनेवाले लम्बे दाँतों से युक्त वह विशाल शूकर अपने नेत्रों से क्रोधरूपी अग्नि बरसाता हुआ राजा हरिश्चन्द्र के उद्यान में जा घुसा।

चौ.- **गरजि महाधुनि पुनि सो धाई। लागा इत उत तरु उपटाई॥**
बन रच्छक अस लखि भय पागे। घेरि सरन्हि तेहिं मारन लागे॥

फिर महान ध्वनि से गर्जना करके दौड़ते हुए वह शूकर इधर-उधर वृक्षों को उखाड़ने लगा। यह देखकर रखवाले भयभीत हो गए और (सब ओर से) घेरकर उसे बाणों से मारने लगे।

तेहि घरि भर सब बाग उजारा। रच्छक दिसि फिरेहुँ रिस मारा॥
आवत देखि काल सम गाजे। तुरत सभय बन रच्छक भाजे॥

उसने घड़ी भर में ही सारा बाग उजाड़ दिया, फिर क्रोध करके वह रखवालों की ओर मुड़ा। उसे काल के समान गरजता हुआ अपनी ओर आता देखकर भयभीत हुए रखवाले तुरन्त ही भाग चले।

आइ नृपहि सन मरमु बखाना। चले तें हय चढ़ि गहि धनु बाना॥
तहँ जातहि बन दुरगति देखी। पसु पर नृपति रिसान बिसेषी॥

फिर उन्होंने आकर राजा के सम्मुख सब बात कह दी, तब वे स्वयं धनुष बाण लेकर अपने अश्व पर चढ़कर चले। वहाँ जाते वन की दुर्दशा हुई देखकर राजा को उस पशु पर बड़ा क्रोध आया।

पुनि उन्ह धनुष श्रवन लगि ताना। बधे तेहिं छारेहुँ एक बाना॥
देखि सो सूकर द्रुतगति भागा। राउँ सक्रुद्ध चलेउँ सँग लागा॥

फिर उन्होंने उसे मारने के लिये अपने धनुष को कानों तक तानकर एक बाण छोड़ा। यह देखकर वह शूकर वेगपूर्वक भाग चला, तब क्रुद्ध हुए हरिश्चन्द्र भी उसके साथ ही चल पड़े।

जब जब राउर सायक मारा। तब तब दुरि तेहिं साध बिगारा॥

राजा ने जब-जब भी उसे बाण मारा, तब-तब छिपकर शूकर ने उनका लक्ष्य बिगाड़ दिया।

दोहा- **एहिबिधि धनुधर पाछ तिन्ह गए सघन बन माहिं।**
गगन मध्य रबि चढेहुँ पै कर परेहुँ पसु नाहिं॥१६३॥

इस प्रकार धनुर्धारी हरिश्चन्द्र उसका पीछा करते हुए घने जंगल में जा पहुँचे। अब तक सूर्यदेव आकाश के बीचों-बीच आ चढ़े थे, किन्तु वह पशु राजा के हाथ नहीं आया।

चौ.- **पंथ भ्रमित एहिबिधि चिंताई। बैठे तें एक तरु तर जाई॥**
इहिबिच बिप्र बेषु तनु छाई। गै उन्ह पहि कौसिक मुनिराई॥

इस प्रकार मार्ग भूल चुके राजा हरिश्चन्द्र चिन्तितचित्त हो एक वृक्ष के नीचे जाकर बैठ गए। इतने में ही एक (साधारण) ब्राह्मण का वेष बनाकर महर्षि विश्वामित्रजी उनके समीप गए।

लखि हरिचंद ताहिं सिरु नावा। नाउँ सहित सब मरमु जनावा॥
पुनि कह द्विजबर पंथ देखावौ। इच्छित दान मोहि तें पावौ॥

उन्हें देखकर हरिश्चन्द्र ने सिर नवाया और अपने नाम सहित शूकर सम्बन्धी सारी बात उन्हें कह सुनाई। फिर वे बोले- हे विप्रश्रेष्ठ! मुझे मार्ग दिखलाइये और बदले में मुझसे अपना इच्छित दान लीजिये।

जब अस नीक बचन सुनि पावा। बिप्र बेषु कौसिक मुसुकावा॥
नृप तीरथ यह सुभ फलदाई। करिअ पितर तरपनु इहँ न्हाई॥

जब ऐसे प्रिय वचन सुने तब ब्राह्मण के वेष में विश्वामित्रजी मुस्कुराए और बोले- हे नरराज! यह स्थान उत्तम फलदायक तीर्थ है, आप स्नान करके यहाँ अपने पितृों का तर्पण कीजिये।

होत स्वघाति अवसि नर सोई। तीरथ पहुँचि नहाव न जोई॥
तातें प्रथम न्हाहुँ तैं राऊ। कीजिअ तरपर सबिधि सचाऊ॥

वह मनुष्य अवश्य ही आत्महन्ता होता है, जो तीर्थ में पहुँचकर भी स्नान नहीं करता। अतः हे राजन्! आप पहले स्नान कीजिये और मन लगाकर विधिपूर्वक अपने पितृों का तर्पण कीजिये।

तदुप अवध कर पंथ देखावौं। पाछ दान मैं तुम तें पावौं॥
हरषि नृपति तब जाइ नहानें। तरपन करि पुनि द्विज समुहाने॥

तदुपरान्त मैं तुम्हें अयोध्या का मार्ग दिखाऊँगा और पीछे तुमसे दान भी पा लूँगा। तब हर्षित होकर राजा हरिश्चन्द्र ने स्नान किया और तर्पण करके पुनः ब्राह्मण के सम्मुख लौटे।

दोहा- **नृपहुँ ठगन तत्पर द्विज रची गांधरबि माय।**
कुँअर कुँअरि राउर समुख पुनि दीन्हे उपजाय॥१६४॥

राजा को ठगने के लिये तत्पर उस ब्राह्मण ने गांधर्वी माया रची और उन राजा के सन्मुख (उस स्थान पर) एक युवक और एक युवती प्रकट कर दी।

चौ.- सोउ मायबस भूलि सुजाना। बिस्वामित्र कपट जनि जाना॥
कह बहोरि द्विज माँगिअ सोई। नीक लाग तुम्हरे उर जोई॥

उसी माया के वशीभूत होने से भ्रमित हुए सुजान हरिश्चन्द्र विश्वामित्र के कपट को जान न सके। फिर उन्होंने कहा- हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! आपके हृदय को जो भी अच्छा लगे आप मुझसे वहीं माँग लीजिये।

नृप बसिष्ठ मुख सुजसु तुम्हारा। सुना बिबिध बिधि मैं बहु बारा॥
तातें मोहि परम बिस्वासा। पुरवब अवसि मोर तुअ आसा॥

ब्राह्मण ने कहा- हे राजन! मैंने महर्षि वशिष्ठ के मुख से कई बार अनेक प्रकार से आपका सुन्दर यश सुना है। अतः मुझे इस बात का बड़ा भरोसा है कि तुम मेरी आशा अवश्य पूरी करोगे।

बहुरि मायकृत सुत दिसि सैनी। कहन लाग अस द्विज मृदुबैनी॥
राउ आज मम तनय बिआहू। एहि हित मैं तुम्ह तें धन चाहू॥

फिर अपने माया से उत्पन्न पुत्र की ओर सङ्केत करके वह मधुरभाषी विप्र इस प्रकार बोला- हे राजन! आज मेरे इस पुत्र का विवाह है, अतः इस कार्य के निमित्त मैं दान में तुमसे धन पाना चाहता हूँ।

राजसूय नृप तुम करि बीते। सहित सुकृत बहुतक अरजीते॥
किन्तु केउ गृहि सुत परनाई। होइ सुकृत मख तें अधिकाई॥

हे राजन! तुमने राजसूय यज्ञ किया है और साथ-ही (दूसरे भी) कई महान पुण्य कर अर्जित चुके हो; किन्तु किसी गृहस्थ के पुत्र का विवाह कराकर यज्ञ से भी बढ़कर पुण्य होता है।

एहिं बिआह किए धन दाना। राउ जुड़ाइअ पुन्य महाना॥

अतः मेरे इस पुत्र के विवाह में धन का दान करके आप महान पुण्य अर्जित कीजिये।

दोहा- नृप नवाइ सिरु कहेउ तब इच्छित देउँब दान।
हरषि पंथ मुनि सैनेहुँ उन्ह पुर कीन्ह पयान॥१६५॥

तब हरिश्चन्द्र ने सिर नवाकर कहा कि मैं आपको आपका इच्छित दान (अवश्य) दूँगा, यह सुनकर प्रसन्न हुए मुनि ने उन्हें मार्ग दिखा दिया, तब उन्होंने अपने नगर को प्रस्थान किया।

चौ.- होन लाग पुनि जबहि बिआहू। बिप्र पाहिं गवने नरनाहू॥
पुनि ताकर बिस्वास बढ़ाई। कह हरिचंदु चरन सिरु नाई॥

फिर जब उस मुनिपुत्र का विवाह होने लगा तब राजा हरिश्चन्द्र उन ब्राह्मण के पास गए। फिर उनके विश्वास को बढ़ाकर हरिश्चन्द्र ने उनके चरणों में सिर नवाया और उनसे कहने लगे कि

माँगिअ जे रुच सकुच बिसारी। सपनु देब मैं मुनि पद वारी॥
जानि बिमोहित आपन माया। भै गभीर अस कह मुनिराया॥

आपको जो भी अच्छा लगे सङ्कोच त्यागकर वहीं माँग लीजिये, मैं प्रणपूर्वक (आप) मुनि के चरणों पर वार दूँगा। तब राजा को अपनी माया के वशीभूत हुआ जानकर वे मुनिवर गम्भीर होकर इस प्रकार बोले-

सकल राज निज कोष समेता। देहु वरहि तुम धरमनिकेता॥
सुनि बिमुग्ध बिनु किए बिचारा। दीन्ह दीन्ह एहिंभाँति उचारा॥

हे धर्म के धाम राजन! आप अपने राजकोष सहित अपना सम्पूर्ण राज्य वर को प्रदान कीजिये। यह सुनकर विमुग्ध हुए राजा ने बिना विचार किये ही "दिया-दिया" इस प्रकार कह दिया।

राउर दछिना बिनु केउ दाना। फरहि न मनु एहिंभाँति बखाना॥
किए सारथक सुभकृत ऐहू। दछिना नृपति पृथक तुअँ देहू॥

(विप्र ने पुनः कहा-) हे राजन! महाराज मनु ने कहा है कि बिना दक्षिणा दिये कोई भी दान फलित नहीं होता। अतः इस शुभकर्म को सार्थक करने के लिये आप दक्षिणा अलग से दीजिये।

दोहा- धन केतौ दछिना हित देउ तोहिं द्विजराइ।
देइअ दछिना रूप नृप हाटक भार अढ़ाइ॥१६६॥

(तब राजा ने कहा कि) हे विप्रश्रेष्ठ! मैं आपको दक्षिणा के निमित्त कितना धन और दूँ? (तब ब्राह्मण ने कहा कि) हे राजन! आप दक्षिणा के रूप में मुझे ढाई भार सोना दीजिये।

चौ.- यह अपि देउँ अवसि द्विजराऊ। अस कहि फिरे सदन दिसिराऊ॥
जब मुनि आपन माय फिराई। कर बिचार राउर अकुलाई॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! मैं यह भी अवश्य दूँगा, ऐसा कहकर दिशाधिपति हरिश्चन्द्र अपने महल को लौट गए। जब उन मुनि कौशिक ने अपनी माया हर ली, तब हरिश्चन्द्र व्याकुल होकर विचार करने लगे कि,

मैं यह कवन दान स्वीकारा। स्वकर बसत निज सदन उजारा॥
अहो बिपिन मोहि अकेल पाई। बिप्र ठगेउँ सहसा भरमाई॥

मैंने यह कैसा दान देना स्वीकार किया है? मैंने तो अपने ही हाथों अपना बसता हुआ घर उजाड़ लिया। अहो! वन में अकेला पाकर उस ब्राह्मण ने भ्रमित करके मुझे अचानक ही ठग लिया!

बिभव समेत मोर सब राजू। मोहि बिमोहि लहेहुँ द्विजराजू॥
करउँ काह अब मैं कत जाऊ। केहि सन निज जिय जरनि जनाऊ॥

मुझे भ्रमित करके ऐश्वर्य सहित मेरा सम्पूर्ण राज्य उस ब्राह्मण ने पा लिया। अब मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ? किसके सम्मुख अपने जी की जलन व्यक्त करूँ?

इहइ चिंत निसि नींद न परेउँ। तेजवंत मुख छारहुँ भरेउँ॥
तारा बिकल बूझि हिय पी को। कर गहि कहत भई बच नीको॥

इसी चिन्ता में उन्हें रात को नींद नहीं आई, उनका तेजयुक्त मुख दुःखरूपी धूल से भर गया। प्रियतम के मन की व्याकुलता को भाँपकर रानी तारा उनका हाथ पकड़कर मधुर वचन बोली-

पिय धर्मग्य प्रजहिं सुखखाना। किउँ तव बदनु कमल कुम्हलाना॥
कहिअ मोहि मैं बल अनुहारा। अवसि गहउँ तव चिंतहुँ भारा॥

हे प्रियतम! हे धर्मवेत्ता! हे प्रजा के लिये सुखों की खान! आपका मुखकमल कुम्हला क्यों रहा है? मुझे बतलाईये! मैं अपनी सामर्थ्य के अनुसार अवश्य ही आपकी चिन्ता का भार वहन करूँगी।

राजसूय पूरब करि बीते। बलि बलहीन सत्रु सब जीते॥

आप पहले ही राजसूय यज्ञ कर चुके और अपने समस्त निर्बल-सबल शत्रुओं को भी जीत चुके हैं।

दोहा- **फिरा तनय पुनि अंबुपति तव प्रति परम सँतुष्ट।**
लहे मनोरथ जग सकल होत चिंत किउँ नष्ट॥१६७॥

आपका पुत्र लौट आया और वरुणदेवता भी आपसे परम सन्तुष्ट हैं। संसार में आपने अपने समस्त मनोरथों को भी पा लिया है, फिर आप इस प्रकार चिन्ता से नष्ट क्यों हो रहे हैं?

चौ.- **सुनि तिय बचन मंद मुसुकाई। जनपालक तिहिं दीन्ह चलाई॥**
एहिंबिधि बीति नयन महुँ राता। पूजन करि लागे नृप प्राता॥

पत्नि के यह वचन सुनकर स्वजनों से प्रेम करनेवाले हरिश्चन्द्र ने धीरे से मुस्कुराकर उसकी बात टाल दी। इस प्रकार जागते हुए ही सम्पूर्ण रात्रि बीत गई, फिर सवेरा होने पर राजा पूजन करने लगे।

सो सवँ समुख भयउँ द्विज सोऊ। राउ प्रनाम कीन्ह कर दोऊ॥
नृपति राज निज अब मोहि देहू। दछिना सहित सुजसु जग लेहू॥

उस समय वही ब्राह्मण पुनः उनके सन्मुख गया, तब राजा ने दोनों हाथ जोड़कर उसे प्रणाम किया। (ब्राह्मण ने कहा- हे राजन! अब तुम दक्षिणा सहित अपना राज्य मुझे प्रदान करो और संसार में उत्तम कीर्ति प्राप्त करो।

बिप्र तुम्हार राज यह भैऊ। एहि तजि सद्य अनत चलि जैऊ॥
किंतु न समरथ एहि सवँ मोरी। देउँ पाइ सवँ दछिना तोरी॥

हे विप्रवर! यह राज्य आपका हो चुका है, मैं इसे छोड़कर शीघ्र ही अन्यत्र चला जाऊँगा। किन्तु इस समय मेरी सामर्थ्य नहीं है, इसलिये मैं आपकी दक्षिणा समय आने पर दूँगा।

इहिबिच ससुत आइ तहँ तारा। देखि तेन्ह हरिचंदु उचारा॥
कोष सहित यह राजु महाना। मैं मख बेदि इन्हहि पद दाना॥

इसी बीच वहाँ पुत्र सहित महारानी तारा आ पहुँची, उन्हें देखकर राजा ने उनसे कहा कि यज्ञ की वेदी पर राजकोष सहित मैंने अपना यह महान राज्य इन विप्र के चरणों में दान कर दिया है।

दोहा- उत्तम प्रजहिं सहित सुखद अरिन्हँ रहित सम्पन्न।
अब यह राजु सुद्विज गहहि मैं चलु अनत प्रसन्न॥१६८॥

उत्तम प्रजा से युक्त, शत्रु से रहित, सम्पन्न और सुखदायक यह सम्पूर्ण राज्य अब ये श्रेष्ठ ब्राह्मण देवता ग्रहण करेंगे और मैं प्रसन्नतापूर्वक किसी अन्य स्थान पर चलता हूँ।

चौ.- अस कहि दान सत्य अनुरागी। प्राकृत बेषु चले सब त्यागी॥
तारा अस बिलोकि अकुलाई। सुत समेत उन्ह पाछे धाई॥

यह कहकर दानी और सत्यप्रेमी राजा हरिश्चन्द्र अपना सब कुछ त्यागकर साधारण वेष धरे वहाँ से चल पड़े। यह देखकर तारा व्याकुल हो गई और पुत्र सहित उनके पीछे दौड़ी।

अस दुखमय परिथिति लखि ताहीं। खरभर भयउँ अखिल पुर माहीं॥
पुरजन छाति पीटि लग रोई। देव काह अब आगिल होई॥

उन्हें ऐसी दुःखमय परिस्थिति में देखकर सम्पूर्ण नगर में कोलाहल मच गया। पुरवासी छाती पीट-पीटकर रोने लगे और कहने लगे कि हे देव! अब आगे क्या होगा?

हा जड़ देव नृपहि ठगि लीन्हा। पुनि अनाथ सब पुर कहँ कीन्हा॥
महाधूर्त यह बिप्र न अहई। जहँ तहँ नारि पुरुष अस कहई॥

हा जड़ देव! तुमने राजा को ठग लिया और सम्पूर्ण अयोध्या नगर को अनाथ कर दिया। यह ब्राह्मण नहीं अपितु कोई महाधूर्त है, जहाँ-तहाँ स्त्रीपुरुष इस प्रकार कहने लगे।

कासी निकट गए इत भूपा। कौसिक पुनि भै समुख द्विजरूपा॥
पुनि कह बच उर धरि निठुराई। दछिना देहु प्रथम तब जाई॥

इधर चलते हुए राजा हरिश्चन्द्र काशी के निकट जा पहुँचे, वहाँ विश्वामित्रजी पुनः उसी ब्राह्मण का वेष धरे उनके सम्मुख गए। फिर अपने मन में निष्ठुरता धरकर वे इस प्रकार वचन बोले- पहले मेरी दक्षिणा दो, फिर जाना।

दोहा- जे न देइ सक कहिअ मोहि अब दै सकुँ मैं नाहिं।
मैं आपन कंचन सबुहि हरषि देउँ बिसराहिं॥१६९॥

जो यदि तुम दे नहीं सकते, तो मुझे कह दो कि अब मैं नहीं दे सकता; मैं अपना सारा स्वर्ण प्रसन्नतापूर्वक छोड़ दूँगा।

चौ.- सुनि हरिचंद परम अकुलाई। लागे द्विजहि प्रतीति कराई॥
द्विजवर सब चिंता परिहरऊँ। अवसि बचन निज पूरन करऊँ॥

यह सुनकर राजा हरिश्चन्द्र अत्यन्त व्याकुल होकर ब्राह्मण को विश्वास दिलाने लगे कि हे विप्रवर! आप समस्त चिन्ता का त्याग कर दें, मैं अपना वचन अवश्य पूर्ण करूँगा।

द्विज रबिबंस जात मैं राऊ। नाहिं कहत कस बच बिसराऊ॥
जोरौं दछिना धन जब लागे। धरिअ धीर तुम संसय त्यागे॥

हे विप्र! मैं सूर्यवंश में उत्पन्न नरेश हूँ, 'ना' कहकर अपना वचन कैसे त्याग दूँ? इसलिये जब तक मैं दक्षिणा के लिये धन एकत्र करूँ, आप तब तक सन्देह त्यागकर धैर्य धारण करें।

अब कस मिलिहिं तोहिं धन राऊ। करतल राज कोष जनि ठाऊँ॥
धन हित बृथा तोर अब आसा। भै तुम अधनु देउँ कस त्रासा॥

हे राजन! अब तुम्हें धन कैसे प्राप्त होगा; तुम्हारे पास न तो राज्य है, न कोष और न घर ही है? अब तुम्हारी धनप्राप्ति की आशा व्यर्थ है, तुम निर्धन हो चुके हो, तुम्हें दण्ड भी कैसे दूँ?

सो तुम कहहुँ नाहिं एक बारा। हरषि फिरउँ मैं कनक बिसारा॥
पुनि जे निकस न मुख तें नाहीं। अबहि देहुँ मम पुरट चुकाही॥

अतः तुम एक बार 'नाहीं' कह दो, मैं अपना स्वर्ण छोड़कर प्रसन्नतापूर्वक लौट जाऊँगा और जो यदि तुम्हारे मुख से 'नाहीं' न निकल रहा हो, तो अभी मेरा स्वर्ण चुका दो।

द्विज न करिअ अस हृदय कठोरा। अबहि त चोख अहहि तनु मोरा॥

हे ब्राह्मणदेव! आप इस प्रकार अपना हृदय कठोर न कीजिये, अभी तो मेरा शरीर स्वस्थ है,

दोहा- **तिय अरु तनय सहित एहि बेचि बजारउँ माँझ।**
अवसि देउँ दछिना तव होन देउँ जनि साँझ॥१७०॥

बाजार के बीचों-बीच इसे स्त्री और पुत्र सहित बेचकर संध्या भी नहीं होने दूँगा और आपकी दक्षिणा चुका दूँगा,

चौ.- **धीर बँधाइ द्विजहि अस भाषी। सुत तिय सहित अए नृप कासी॥**
नगरु मध्य एक तरु तर जाई। बैठे करल घामु अकुलाई॥

ब्राह्मण को इस प्रकार कहते हुए धैर्य बँधाकर राजा हरिश्चन्द्र पत्नि तारा व पुत्र रोहित के साथ काशी में आये और कड़ी धूप से अकुलाकर नगर के मध्य एक वृक्ष के नीचे बैठ गए।

केहि बिधि निज पनु करौ निबाहा। जोरौं कहँ तें कनक अगाहा॥
प्रज पालना यजन अरु दाना। छत्रि धरम अस बेद बखाना॥

(वे सोचने लगे कि) मैं अपनी प्रतिज्ञा का निर्वाह कैसे करूँ और कहाँ से इतना अधिक स्वर्ण प्राप्त करूँ? "अपनी प्रजा का पालन, यज्ञ और दान" ही एक क्षत्रिय का धर्म है, ऐसा वेदों ने कहा है।

ऐहिं बिमुख मैं निपट भिखारी। अब केहि बिधि चुकाउँ धन भारी॥
मुखु करि धरनि आस तेहिं काला। भए हतास एहि सोच बिसाला॥

इसके विपरीत नितान्त भिखारी हो चुका मैं अब इतना अधिक धन किस प्रकार चुकाऊँ? उस समय धरती की ओर मुख करके इसी महान चिन्ता में डूबे हुए राजा हरिश्चन्द्र अत्यन्त निराश हो गये।

दसा देखि कंतहि अस दीना। अति बिषाद तारा हिय कीना॥
पुनि कह पिय चिंता परिहरहूँ। धरम हेतु बच पालन करहूँ॥

पति की ऐसी दीन दशा देखकर महारानी तारा ने मन-ही मन अत्यधिक विषाद किया। फिर उन्होंने कहा- हे प्रियतम! आप चिन्ता त्यागकर धर्म की रक्षा के लिये अपने वचन का पालन कीजिये।

धरम सत्य सम होत न कोऊ। बसहिं तुम्हार हृदय पुनि सोऊ॥
जुगुति एक अह अस मनु मोरे। करि सक जे तुम्हार दुख थोरे॥

सत्य के समान कोई धर्म नहीं होता है और वही आपके हृदय में बसता है। (इस समय) मेरे मन में एक ऐसा उपाय है, जो आपके दुःखों को कम कर देगा।

प्रिये अहहि कुलबाढ़निहारा। कहुँ मैं करब सोइ आचारा॥

हे प्रिये! मेरे वंश को बढ़ाने हेतू मेरा पुत्र तो है ही, अतः तुम कहो, मैं वही करूँगा।

दोहा- **पिय तियत्व मम भा सुफल कुल हित सुत उपजान।**
मोहिं सत्य हित बेचि अब करु निज बचन प्रमान॥१७१॥

हे प्रियतम! आपके वंश को बढ़ानेवाला पुत्र उत्पन्न करके, मेरा नारीत्व तो सफल हो ही चुका है। अतः अब आप सत्य की रक्षा के लिये मुझे बेचकर अपने वचन को सत्य प्रमाणित कीजिये।

चौ.- **तियहिं बचन अस सुनि नरराई। नृप मुरुछान सोक उर पाई॥**
पुनि जब चेत भई कछु तेहीं। करि बिलाप कहि लागेसि ऐही॥

हे परीक्षित! पत्नि के ऐसे वचन सुनकर राजा हरिश्चन्द्र अपने हृदय पर शोक का आघात पाकर मूर्छित हो गये। फिर जब उन्हें कुछ चेतना हुई तब वे विलाप करके इस प्रकार कहने लगे-

एक त मम सिरु कुसवँ अगाहा। पुनि जड़ देव सुनाएसि काहा॥
सुचि सुभाय तव मैं जनि भूला। सहुँ कस बचन सूल समतूला॥

एक तो मेरे सिर पर अत्यन्त बुरा समय आ पड़ा है, उस पर भी जड़ विधाता ने यह क्या सुना दिया? हे प्रिये! मैं तुम्हारा पवित्र स्वभाव नहीं भूला हूँ, तो तुम्हारे इस शूल तुल्य वचन को कैसे सहूँ?

पुनि पुनि सोचि रानि कइ बाता। पाइ अधीरजु कंपित गाता॥
नृप पुनि खसे सोक घन पाई। प्रानरच्छिका तनु उमगाई॥

रानी द्वारा कही गई बात के विषय में सोच-सोचकर अधीरता से काँपते हुए राजा हरिश्चन्द्र भीषण शोक से व्यथित होकर पुनः भूमि पर गिर पड़े और उनके शरीर में मूर्छा व्याप्त हो गई।

नृपहि धरनिगत एहिबिधि देखी। राजपुतिहि भइ पीर बिसेषी॥
सुलभ छत्रितिय धीरजु त्यागी। ते करुना करि अस कहि लागी॥

राजा को इस प्रकार पृथ्वी पर पड़ा देखकर क्षत्रियकन्या तारा को विशेष पीड़ा हुई। तब अपने क्षत्राणीसुलभ धैर्य को त्याग कर वे करुणा करके इस प्रकार कहने लगी-

नृप किन्ह कर सुमिरन अस खोटा। दीन्ह जेहिं यह संकटु मोटा॥

हे राजन! किसका स्मरण इस प्रकार खोटा है कि जिसने यह महान सङ्कट उत्पन्न कर दिया;

दोहा- **राजराज होइ प्रनत दुख सबबिधि मेटनिहार।**
जेहिं कारनु अज धरनि परे लहँ अनाथ सम छार॥१७२॥

जिसके कारण शरणागत के दुःखों को सब प्रकार से मिटानेवाले और राजाओं के राजा होकर भी आज आप किसी अनाथ की भाँति भूमि पर पड़े धूल-धूसरित हो रहे हैं।

चौ.- जेहिं अर्बुद सम्पति अति भारी। बिनु बिचार बिप्रउँ पद वारी॥
महादानि सोइ दुरदिन मारे। हा बिधना कर जात प्रतारे॥

जिन्होंने अपनी अरबों की विशाल सम्पदा भी बिना किसी दुविधा के एक ब्राह्मण के चरणों पर न्योछावर कर दी, हा! बुरे दिनों के मारे वे ही महादानी राजन (आज) विधाता के हाथों दण्डित किये जाते हैं।

अस कहि दुसह कंत दुख भारा। खसी रानि तनु चेत बिसारा॥
रोहित तब उन्ह दुख बिलखाई। धीर बँधात लागेसि जगाई॥

ऐसा कहकर पति के दुःसह दुःख के भार से दबी हुई रानी पृथ्वी पर गिर पड़ी और अचेत हो गई। तब रोहित माता-पिता के दुःख से बिलखकर उन्हें धैर्य बँधाकर जगाने लगा।

परे धरम संकट नृप रानी। जब पुनि कछु सवँ चेत जुड़ानी॥
द्विज सम्पन्न कछुक तेहिं काला। पंथ लखे आवत महिपाला॥

धर्म-सङ्कट में पड़े हुए राजा-रानी को जब कुछ समय पश्चात् पुनः चेतना हुई, तभी राजा ने मार्ग में उनकी ओर आते हुए कुछ धन-सम्पन्न ब्राह्मणों को देखा।

तब करबद्ध कहा पुनि तारा। बचन धरम अरु सवँ अनुहारा॥
होत तात सम द्विज सब बरना। पितु सन सुत पुनि करि सक जचना॥

तब रानी तारा ने धर्म व समय का विचार करके पुनः हाथ जोड़कर उनसे कहा- हे नाथ! ब्राह्मण समस्त वर्णों के लिये पिता तुल्य होता है और पिता के सन्मुख पुत्र याचना तो कर ही सकता है।

तातें सम्मति मम उर लाई। बिनइअ धन हित उन्ह पहि जाई॥

अतः आप मेरी सम्मति को अपने हृदय में धरकर उन ब्राह्मणों के पास जाईये और धन के लिये विनय कीजिये।

दोहा- प्रिये जाचना द्विज धरम पुनि मैं छत्रिय एक।
देहुँ देहुँ एहिंभाँति कहि किमि तजु जातिहि टेक॥१७२॥

हे प्रिये! माँगना तो ब्राह्मणों का धर्म है और मैं एक क्षत्रिय हूँ, 'मुझे दीजिये', 'मुझे दीजिये' इस प्रकार कहकर मैं अपनी जाति का गौरव कैसे त्याग दूँ?

चौ.- प्रनत त्रान बिद्या मख दाना। छत्रि धरम अस बुधन्हँ बखाना॥
देइअ अब अस कुसमउँ पागी। अनुचित सबबिधि छत्रिय लागी॥

शरणागत की रक्षा, विद्याध्ययन, यज्ञ और दान आदि क्षत्रिय के धर्म हैं, ऐसा विद्वान कहते हैं। अब इस विपरीत समय से घबराकर 'कुछ दीजिये' ऐसा कहना एक क्षत्रिय के लिये सब प्रकार से अनुचित है।

मकु मम जीहँ बिलग दुइ भागा। देहुँ कउँ न आतमधन त्यागा॥

माँगन अनुचित मोहि महाना। भुज बल करत रहेउ नित दाना॥

भले ही मेरी जीभ के दो टुकड़े हो जाय, किन्तु स्वाभिमान को त्यागकर 'कुछ दो' यह मैं नहीं कहूँगा। मेरे लिये माँगना अत्यन्त अनुचित है, मैं सदा ही अपने बाहुबल से (दूसरों को) देता आया हूँ।

सुनि पति बचन कहा पुनि तारा। अखय धरमधुजि प्रान अधारा॥
जिअ न भास जे जाचन माहीं। पुनि न कहेसु पिय मम प्रति नाहीं॥

पति के वचन सुनकर तारा ने पुनः कहा- हे अक्षय धर्म के ध्वजस्वरूप! हे प्राणाधार! यदि माँगते हुए आपका जी न माने तो हे प्रियतम! (मैं जो कहती हूँ उसके लिये) पुनः मुझे 'ना' न कहना।

मम पतिब्रत पिय होहु सहाई। बेचि मोहि रिनु देहुँ चुकाई॥
सुनि तिय बचन राउ अकुलाने। बोले नभ दिसि हाथ उठाने॥

हे प्रिय! मेरे पतिव्रतधर्म में मेरे सहायक होईये और मुझे बेचकर अपना ऋण चुका दीजिये। पत्नि के ऐसे वचन सुनकर राजा अकुला उठे और आकाश की ओर अपने हाथ उठाकर बोले-

हा बिधना कस गरदनि मारी। जिनिस भई अज प्रानपिआरी॥
तैं मम गरुअ सकति सब भाँती। तोहि कस बेचि जुड़ावौं छाती॥

हा देव! मेरे कण्ठ पर यह कैसा आघात हुआ कि आज मेरी प्राणप्रिया वस्तु होकर रह गई। हे प्रिये! तुम सब प्रकार से मेरी शक्ति और मेरा गौरव हो, तुम्हें ही बेचकर अपनी छाती कैसे ठण्डी करूँ?

सुनि अस बचन न निकसेहुँ प्राना। सत्य हृदय यह कठिन महाना॥

तुम्हारा यह वचन सुनकर भी मेरे प्राण नहीं निकले, सचमुच! मेरा यह हृदय बड़ा ही कठोर है।

दोहा- द्युत न मदिरा राज हित जनि केउ भोग बिलास।
रहे बेचि तुम मोहि पिय जग महुँ धरम बिकास॥१७४॥

हे प्रियतम! आप न द्युत के लिये, न मदिरा के लिये, न राज्य के लिये और न ही किसी भोग विलास के निमित्त ऐसा कर रहे हैं। आप तो संसार में धर्म को पुष्ट करने के लिये मुझे बेच रहे हैं।

चौ.- पुनि तव धरम अहहि सब मोरे। आपु मैं प्रस्तुत दोष न तोरे॥
तिय प्रेरित परिछित एहिंभाँती। कहेउ राउँ पाहन धरि छाती॥

फिर आपके सारे धर्म मेरे ही है और मैं स्वयं ही इस कार्य के लिये प्रस्तुत हूँ, आपको इसमें कुछ भी दोष नहीं है। हे परीक्षित! इस प्रकार पत्नि से प्रेरित हुए राजा हरिश्चन्द्र अपनी छाती पर पत्थर रखकर बोले-

प्रिये क्रूरतम नर जे काजा। करइ न सोइ करौं मैं आजा॥
अस कहि दृग धरि तरल निरासा। पुरजन हित जहँ होइ तमासा॥

हे प्रिये! क्रूर से क्रूर मनुष्य भी जिस कार्य को नहीं करता, वही कार्य आज मैं करूँगा। ऐसा कहकर अपने नेत्रों में तरल निराशा (के अश्रु) लिये जहाँ नगरनिवासियों के लिये तमाशा होता था,

सोइ मंच चढ़ि कुसमउँ मारा। रुद्ध कंठ हरिचंद पुकारा॥
हे सुखधाम सम्भुपुर बासी। जा कहुँ अह अभीष्ट केउँ दासी॥

उसी मञ्च पर चढ़कर दुर्भाग्य के मारे राजा हरिश्चन्द्र रुँधे हुए कण्ठ से पुकारने लगे- हे सुखों के धाम शिवजी की नगरी के निवासियों! तुममें से जिस किसी को भी कोई दासी चाहिये

सुजन सो मम सन देइ उचारी। मैं तिन्ह बेचि देउँ निज नारी॥
पुनि जेतनउँ धन चहुँ मैं भाई। चेरि पाइ मोहि देहुँ चुकाई॥

वह सज्जन मुझसे आकर कहे, मैं उसे अपनी स्त्री बेच दूँगा और हे भाईयों! जितना धन मैं चाहूँ, दासी के बदले आप मुझे दे देना।

दोहा- सुनि अस पुरजन चकित भए केउ पूछा तुम कौन।
पुनि निज नारिहि बेचि किउँ चह उजारि निज भौन॥१७५॥

ऐसा सुनकर नगर निवासी चकित हो गए, किसी ने पूछा- हे भाई! तुम कौन हो? और अपनी स्त्री को बेचकर अपना घर क्यों उजाड़ना चाहते हो?

चौ.- तैं किउँ पूछ कौन मैं भाई। मैं नर नहिं सजीव अधमाई॥
अथवा भयद क्रूर मैं राच्छस। तबहि त उद्यत भा पातक अस॥

हरिश्चन्द्र ने कहा- हे भाई! तुम मुझसे पूछते क्यों हो कि मैं कौन हूँ? मैं मनुष्य नहीं बल्कि जीवन्त नीचता हूँ, अथवा मैं कोई भयानक राक्षस हूँ; तभी तो इस महापाप के लिये तैयार हुआ हूँ।

सुनि अस कासिहि द्विज तनु लाई। कौसिक कहा निकट उन्ह जाई॥
मोहिं देहुँ क्रयि चहु मैं दासी। देउँ एहि हित इच्छित रासी॥

यह सुनकर विश्वामित्रजी ने काशी के एक ब्राह्मण का वेष धर लिया और राजा के पास जाकर कहा कि मैं एक दासी खरीदना चाहता हूँ; अतः मुझे दे दो, मैं इसके बदले तुम्हें इच्छित धन दूँगा।

बंधु नारि मम अति मृदुगाता। गृह कारज तेहिं तें जनि जाता॥
तातें तिन्ह हित किए सुभीता। चहउँ दासि एक हृदय पुनीता॥

हे भाई! मेरी स्त्री अत्यन्त सुकुमारी है, उससे घर के काम नहीं हो पाते। अतः उसकी सुविधा करने के लिये मैं एक पवित्र हृदयवाली दासी रखना चाहता हूँ।

एहिं लहिबे अब मोहि बतावौ। केतनउँ धन मैं तोहि पुरावौं॥
सुनि बच नृपहि बज्र सम लागा। चुपहि रहे भै उर सत भागा॥

अब बताओ कि इसे पाने के लिये मैं तुम्हें कितना धन चुकाऊँ? सुनते ही यह वचन राजा को वज्र के समान लगा, वे चुप होकर रह गये; उनके हृदय के सैकड़ों टुकड़े हो गए।

निठुर बिप्र देखेहुँ उन्ह मौना। बोला अस घाउन्ह दइ लोना॥
इहिं दासिउँ हित सकउँ मैं दई। एक कोटि मुद्रा कंचन कई॥

जब उस निष्ठुर ब्राह्मण ने उनके मौन को देखा तो वह उनके घावों पर नमक रगड़ता हुआ इस प्रकार बोला- इस दासी के लिये मैं स्वर्ण की एक करोड़ मुद्राएँ दे सकता हूँ।

सुनि अस हृदय तासु दुख डोला। दृग सन तम मुख उपज न बोला॥

यह सुनकर राजा हरिश्चन्द्र का हृदय दुःख से विचलित हो उठा, उनके नेत्रों के सन्मुख अन्धकार छाने लगा और मुख से शब्द नहीं निकलता।

दोहा- **राउ समुख तब बसन पर मुद्रा बिप्र धरेहुँ।**
रानिहिं कच गहि खल पुनि खींचन अरँभ करेहुँ॥१७६॥

तब ब्राह्मण ने (राजा के मौन को उनकी हाँ समझकर) उनके सामने एक वस्त्र पर स्वर्ण मुद्राएँ रख दी और फिर उस दुष्ट ने केशों से पकड़कर रानी को खींचना आरम्भ किया।

चौ.- **जननि दसा लखि धीर बिहाई। रोहित रोइ लाग बिलखाई॥**
सुत दुख द्रवित जोरि जुग पानी। द्विज सन कह ममता अकुलानी॥

माता की यह दशा देखकर धैर्य का त्याग करके रोहित बिलखकर रोने लगा। पुत्र के दुःख से द्रवित हो दोनों हाथ जोड़कर व्याकुल हुई ममता की मूर्तिस्वरूपा माता विप्र से बोली-

सुत बिधुबदनु देखु मैं जब लौ। द्विजबर थोबु थोर तैं तब लौ॥
अज गत कबु एहि सकउँ निहारी। द्रवहुँ तनक अस हृदय बिचारी॥

हे विप्रश्रेष्ठ! मैं जब तक अपने पुत्र के चन्द्रमुख को देखूँ, तब तक आप थोड़ी प्रतीक्षा कीजिये। आज के उपरान्त मैं पुनः कब इसे देख पाऊँगी; अपने हृदय में यही सोचकर तनिक दया कीजिये।

निठुर किन्तु दीन्ह न अवकासा। लखि हरिचंदहिं धीर बिनासा॥
सोइ दसा सुत दिसि मुख लाई। जननि लाग कहि अस बिलखाई॥

किन्तु उस निर्दयी ने इसके लिये रानी को अवकाश नहीं दिया, यह देखकर राजा हरिश्चन्द्र का धैर्य जाता रहा। तब उसी दशा में अपने पुत्र की ओर मुख किये माता बिलखकर इस प्रकार बोलीं-

चेरि भई निज जननिउँ ओरा। तनक देखु सुत परिहरि सोरा॥
सत्य सुधाकर तुम एहिंभाँती। देखि जुड़ान परिहि अब छाती॥

हे पुत्र! इस कृंदन को त्यागकर दासी हो चुकी अपनी माता की ओर तनिक देखो तो! तुम सचमुच ही अमृतमय चन्द्रमा हो, अब आगे इसी प्रकार तुम्हें दूर ही से देखकर मुझे छाती ठण्डी करनी पड़ेगी।

दोहा- **परसेसु मोहि न राजसुत तव जननि न मैं चेरि।**
सुनि रोहितहि नयन अमल काई फिरी घनेरी॥१७७॥

हे राजपुत्र! अब तुम मेरा स्पर्श न करना, क्योंकि मैं तुम्हारी मैय्या नहीं, वरन एक दासी हूँ। यह सुनकर रोहित के निर्मल नेत्रों में निराशारूपी काई छा गई।

चौ.- इहिबिच बिप्र चलाँ गृह ओरी। रानिहिं केस गहे बरजोरी॥
मयहि चलत लखि ससि कुलपालक। मातु मातु कहि धावा बालक॥

इतनें में वह ब्राह्मण रानी को बलपूर्वक केशों से पकड़कर अपने घर की ओर चल पड़ा। हे चन्द्रकुलपालक! अपनी माता को जाते हुए देखकर वह बालक मैय्या-मैय्या कहता हुआ उसके पीछे दौड़ा और

पटु गहि घिसत जननि सँग लागा। देखि बिप्र हिय रिस अति जागा॥
दयाहीन तब लागेसि मारा। जननिहिं अंचलु तेहिं न छारा॥

माँ का आँचल पकड़कर वह गिरकर घिसटते हुए उनके साथ हो चला, यह देखकर ब्राह्मण के मन में बड़ा क्रोध हुआ। तब वह निर्दयी उसे पीटने लगा, किन्तु फिर भी उसने माँ का वस्त्र नहीं छोड़ा।

द्रवित जननि तब कह द्विजराऊ। इहि दासिहि पर करिअ पसाऊ॥
एहि बिनु करि न पाउँ तव सेवा। एहि अपि मोल लेहुँ महिदेवा॥

तब द्रवित हुई माता कहने लगी- हे द्विजराज! इस दासी पर कृपा कीजिये। मैं अपने पुत्र के बिना आपकी सेवा नहीं कर पाऊँगी; अतः हे पृथ्वी के देवता! आप इसे भी खरीद लीजिये।

तब नँदरत द्विज मोल चुकाई। उभयन्ह बाँधि चला अतुराई॥
जात देखि उन्ह सिरु कर लाई। राजराज कहि लग अकुलाई॥

तब न चाहते हुए भी रोहित का मूल्य चुकाकर वह उन दोनों को बाँधकर शीघ्रता से चल पड़ा। उन्हें जाते हुए देखकर राजाधिराज हरिश्चन्द्र अपने शीश को हाथों से पकड़कर व्याकुल होकर कहने लगे-

दोहा- सीलवंति सति पुनि ससुत प्रिये तोर सम त्यागि।
श्रीबिहीन भयऊ अजहुँ यह हरिचँद हतभागि॥१७८॥

तुम्हारे समान उत्तम आचरणवाली, पतिव्रता और पुत्रवती पत्नि को त्यागकर आज यह अभागा हरिश्चन्द्र 'श्री' विहीन हो गया।

चौ.- मुअँ सम सकल बिभव सम्पन्ना। पुनि पबित्र रबिकुल उत्पन्ना॥
पतिहि पाइ भइ हा तैं दासी। तदपि जिअत मैं कलिमल रासी॥

सब प्रकार के वैभव से सम्पन्न और पवित्र सूर्यकुल में उत्पन्न हुआ मुझ जैसा पति पाकर भी हा प्रिये! तुम दासी हो गई, यह देखकर भी कलि के अवगुणों का प्रतीक मैं जीवित हूँ।

रबि ससि वात मुखु न जिन्हँ देखा। सति सो दुखु लहँ आजु बिसेषा॥
काकपिच्छ सम जिन्हँ कच रंगा। खेलत रहेउ जे मोर उछंगा॥

सूर्य, चन्द्रमा व पवन ने भी जिसका मुख न देखा हो, वही सती स्त्री आज विशेष दुःख पा रही है। जिसके केशों का रङ्ग कौए के पङ्ख के समान काला है और जो मेरी गोदी में खेला करता था,

सोइ सुत मोर सुगुन आगारू। हा बिकेहुँ अज पूर बजारू॥
तदपि न निकसहि प्रान अभागे। मूढ़ कवन सुख अह तनु लागे॥

हा! उत्तम लक्षणों का धाम मेरा वही पुत्र आज भरे बाजार में बिक गया। इतना कुछ होने पर भी मेरे अभागे प्राण नहीं निकले;न जाने किस सुख की आशा में ये मूढ़ शरीर में बने हुए हैं।

हा सुत हा मम प्रानपिआरी। मम अनीति तहि कीन्ह दुखारी॥
धिग धिग मम पुरुषत्व अपारा। सचत देखु तव पर अतिचारा॥

हा पुत्र! हा प्राणप्रिये! मेरी अनीति ने तुम्हें दुःखी कर दिया। मेरे अपार पुरुषत्व को धिक्कार है, धिक्कार है, जो मैं सचेत होकर भी तुम पर होनेवाला यह अत्याचार देख रहा हूँ।

दोहा- मरि मरि जिउँ तव बिनु धरनि दंड एहि भल मोहिं।
अस कहि राउर धरनि खसे दुसह दाह हिय होहि॥१७९॥

तुम्हारे बिना इस पृथ्वी पर मैं इसी प्रकार मर-मरकर जीता रहूँ, मेरे लिये यही दण्ड उचित है। ऐसा कहकर राजा पृथ्वी पर गिर पड़े और उनके हृदय में असहनीय दुःख होने लगा।

चौ.- सो द्विज बालक रानि समेता। नृपतिहिं देखत गयउ निकेता॥
तदुप किए सिष जूथ घनेरा। बिसरि बेषु कासिहि द्विज केरा॥

वह विप्र राजा के देखते हुए ही रोहित व तारा के साथ अपने घर चला गया। तदुपरान्त काशी के उस ब्राह्मण का वेश त्यागकर शिष्यों का अपार समूह अपने साथ लिये

गाधिसूनु पुनि नृप समुहाने। बोले बचन उराहनु साने॥
नृप तैं राजसूय मख कीन्हा। भाग मोहि अब लौ नहिं दीन्हा॥

गाधिनन्दन विश्वामित्र पुनः राजा के सम्मुख गये और उलाहना देते हुए इस प्रकार बोले- हे राजन! तुमने राजसूय-यज्ञ कर लिया और अब तक मुझे (यज्ञ का) भाग नहीं दिया।

तातें देहुँ मोहि मम भागा। अथवा समुझु मोर रिस जागा॥

अतः तुम मुझे मेरा भाग दे दो, अन्यथा मेरा क्रोध जागा ही समझो।

सुनि हरिचंद परे मुनि चरना। पुनि बिनीत बोले अस बचना॥
नवउँ पदाम्बुज बारहि बारा। यह रहेउ मख भाग तुम्हारा॥

यह सुनते ही राजा मुनि के चरणों पर गिर पड़े और विनयपूर्वक यह वचन बोले- हे मुनिराज! मैं आपके चरणकमलों को बार-बार नमन करता हूँ, यह रहा आपका यज्ञभाग।

अस कहि धन सो मुनि पद डारा। कौसिक कह तब उन्ह फटकारा॥
राउर धन ऐतनउँ कत पावा। सत्य कहहु जनि देहुँ भुलावा॥

ऐसा कहकर उन्होंने स्वर्णमुद्राएँ महर्षि के चरणों में डाल दी, तब विश्वामित्रजी ने उन्हें फटकारकर कहा- हे राजन! इतना धन तुमने कहाँ से पाया? सत्य-सत्य कहो, मुझे भ्रमित न करना।

होन रहा सो होइहि बीता। अब दुराइ करुँ कवन सुभीता॥
पुनि सुनि जरिहि तुम्हारिउँ छाती। तातें गहु एहि गनि निज थाती॥

(तब राजा ने कहा-) जो होना था वह तो होकर ही रहा, अब छिपाकर (अपने लिये) क्या सुविधा करूँ और (उस होनी को) सुनने पर आपकी भी छाती ही जलेगी। अतः (बिना कुछ पूछे) आप यह धन अपनी धरोहर समझकर ग्रहण कर लीजिये।

दोहा- **मैं केवलु धनु अमल गहुँ अघजुत धन भवकूप।**
तातें ऐहि जुड़ान कस मोहि बुझावहुँ भूप॥१८०॥

मैं केवल पवित्र रीति से अर्जित धन ही ग्रहण करता हूँ। पापकर्मों से अर्जित धन भवरूपी कुएँ के समान होता है। अतः हे राजन! मुझे समझाकर कहो! तुमने इसे किस प्रकार प्राप्त किया है?

चौ.- **मुनि यह मोर रानि सुत मोला। बेचे हाट जेन्ह पसु तोला॥**
सुनतहिं कौसिक कह रिस पागे। जानइ मोहि न नृपति अभागे॥

हे मुनिराज! यह मेरी रानी व मेरे पुत्र का मूल्य है, जिन्हें मैंने बाजार में पशुओं के समान बेच दिया। यह सुनते ही विश्वामित्रजी ने कुपित होकर कहा- अरे अभागे राजा! तू मूझे जानता नहीं!

धन मलीन पुनि कमु परिमाना। एइहिं जग्यभाग मम जाना॥
सुनि पद गहि होइ नृपति गभीरा। कह मुनिराज न होउँ अधीरा॥

एक तो यह अधर्मपूर्वक अर्जित है; ऊपर से कम है। क्या तू इसे ही मेरा यज्ञभाग मानता है? यह सुनकर उनके चरण पकड़ते हुए राजा गम्भीर हो कहने लगे- हे मुनिराज! अधीर न होइये।

अबुहि अबुहि तिय तनय अबोधा। बेचे मैं दुख दारुन सोधा॥
तातें करु अरु कछुक प्रतीछा। पुरवउँ अवसि तोर यह ईछा॥

मैंने अभी-अभी ही अपनी स्त्री और अपने अबोध बालक को बेचकर भीषण दुःख पाया है। इसलिये आप कुछ समय और प्रतिक्षा करें, मैं आपकी यह इच्छा अवश्य पूर्ण करूँगा।

सुनि नृपतिहि अस बचन महीसा। गै तहँ तें सिष सहित मुनीषा॥
उमगि नृपहिं तब कठिन निरासा। कह पुनि पुनि गहि दीरघ स्वासा॥

हे परीक्षित! राजा के ऐसे वचन सुनकर महर्षि विश्वामित्रजी शिष्यों के साथ वहाँ से चले गए। तब राजा हरिश्चन्द्र घोर निराशा में डूब गए और बार-बार दीर्घ श्वास लेकर कहने लगे कि

दोहा- **मैं पिसाच धन हित बिकन इहि सवँ तत्पर भाइ।**
मोहिं तें सधि सक जासु हित बेगि कहइ सो आइ॥१८१॥

हे भाई! मैं (नररूपधारी) पिशाच इस समय धन के लिये बिकने को तत्पर हूँ। मुझे पाकर (आप में से) जिस किसी का भी हित सिद्ध हो सके, वह शीघ्र आकर मुझे कहे।

चौ.- धरमराज सुनि उन्ह अस बानी। आए बपु चाँडालहिं ठानी॥
रद मलीन सो लख चख काढ़ी। मुखहुँ दुर्बचन दीरघु दाढ़ी॥

उनकी ऐसी वाणी सुनकर धर्मराज चाण्डाल का शरीर धरकर उनके पास आए। मैले दाँतोंवाला वह चाण्डाल उन्हें आँखे फाड़कर देख रहा था। उसके मुख में दुर्वचन और लम्बी दाढ़ी थी।

कचजुत बपुष तासु अति कारा। चहुँदिसि करइ कुवास प्रसारा॥
नाभि बिबर अरु उदर बिसाला। वच्छ भयानक मृतकन्हि माला॥

उसका रोमयुक्त शरीर अत्यंत काला था, जिससे चहुँओर दुर्गन्ध फैल रही थी। उसकी नाभी का विवर गहरा व उदर विशाल था तथा उसकी भयानक छाती पर मुर्दों से उतारी गई मालाएँ थी।

अस अबिनीत निठुर चाँडाला। अस कहि लग नृप सन सो काला॥
सेवक चहिअ मोहि एक भाई। कहुँ केतनौ धन परिहि चुकाई॥

ऐसा अविनीत और निष्ठुर चाण्डाल उस समय राजा के सम्मुख होकर इस प्रकार कहने लगा- हे भाई! मुझे एक सेवक की आवश्यकता है, तुम कहो! इसके लिये मुझे कितना धन चुकाना पड़ेगा।

मृतक पट गहनु एहि तव कामा। होइहि पुनि मसान तव धामा॥
बेषु देखि तेहिं तरकि चँडालू। सबिनय कहन लाग महिपालू॥

"मुर्दों के वस्त्र ग्रहण करना" यही तुम्हारा काम रहेगा और श्मसान में ही तुम्हारा निवास होगा। उसका वेष देखकर और उसे चाण्डाल समझकर राजा हरिश्चन्द्र विनयपूर्वक कहने लगे-

बंधु बिचार मोर अस अहही। छत्रि आथवा द्विज मोहि गहही॥
प्रबुध कहइ रह धरम निरंतर। उत्तम संग पुरुष उत्तम कर॥

हे भाई! मेरा यह विचार है कि कोई क्षत्रिय-पुरुष अथवा ब्राह्मण ही मुझे ग्रहण करे। प्रबुद्धजन कहते हैं कि उत्तम मनुष्य का धर्म किसी अन्य उत्तम मनुष्य के साथ निरन्तर बना रहता है

दोहा- अधमहिं संगति अधम कर सुखमय होइ निबाह।
एहि बिलोम कहिअत कुसँग सब दुख कूप अथाह॥१९२॥

और अधम मनुष्य का निर्वाह भी सुखपूर्वक किसी अन्य अधम मनुष्य के साथ ही होता है और जो इसके विपरीत होता है, वह कुसंग कहलाता है, जो समस्त दुःखों का अथाह कूप है।

चौ.- तेहिं समउँ कौसिक तहँ आए। तीछ कोप लोचन उमगाए॥
ते कह ए जब चह तोहिं पाई। रहे चरन पग किउँ पाछ फिराई॥

उसी समय वहाँ विश्वामित्रजी आ गए, उनके नेत्रों में तीक्ष्ण क्रोध उमड़ रहा था। वे बोले- जब यह चाण्डाल तुम्हें खरीदना चाहता है, तो तुम क्यों अपने पैर पीछे हटा रहे हो?

मुनिवर भानुबंसि मैं राऊ। कस दासत्व सूद्र कर पाऊ॥
महिपति एहि समउ धनदायक। इहाँ निपट यह पोचन्हँ नायक॥

तब राजा ने कहा- हे मुनिवर! मैं एक सूर्यवंशी राजा हूँ, किसी चाण्डाल का दासत्व कैसे स्वीकार कर लूँ? तब मुनि ने कहा- हे राजन! इस समय तुम्हें धन देनेवाला यहाँ तो केवल चाण्डालों का यह सरदार ही है।

पुनि नृप श्रव उघारि सुनि लेहूँ। धन बिनु अज न फिरब मैं गेहू॥
तातें तुम एहि हाथ बिकाई। तुरत देहुँ मम द्रब्य चुकाइ॥

और फिर हे राजन! तुम कान खोलकर सुन लो कि आज मैं धन लिये बिना घर नहीं लौटूँगा। इसलिये तुम इसी के हाथों बिककर तुरन्त मेरा धन चुका दो।

न त मैं साप देत तोहिं आजा। अवसि जारिहउँ सहित समाजा॥
स्वजनपाल सुनि अति भय पाई। दीन्ह अधम पद स्वत्व चढ़ाई॥

अन्यथा श्राप देकर आज मैं तुम्हें समाज सहित निश्चय ही भस्म कर दूँगा। यह सुनकर स्वजनों से प्रेम करनेवाले राजा हरिश्चन्द्र ने अत्यन्त भयभीत होकर अपना आत्मगौरव उस अधम ही के चरणों पर डाल दिया।

मुनिहिं देत तब द्रब्य बिसाला। हृदय परम हरषेहुँ चंडाला॥
तेहिं सवँ भइ सहसा नभबानी। हरिचँदु सुनि लग अचरज मानी॥

तब मुनि को बहुत-सा द्रव्य देकर वह चाण्डाल मन में अत्यधिक प्रसन्न हुआ। उसी समय अचानक आकाशवाणी हुई जिसे हरिश्चन्द्र चकित होकर सुनने लगे।

दोहा- **जोइ दछिना हित बिपिन महुँ पनु ठानेहुँ तुम भूप।**
पाइ सो मैं अब तुम उरिन लहुँ जग कीति अनूप॥१८३॥

हे राजन! जिस दक्षिणा के निमित्त वन में तुमने ब्राह्मण के सन्मुख प्रतिज्ञा की थी, वह मैंने पा ली। अब मुझसे उऋण हुए तुम इस संसार में अनुपम कीर्ति प्राप्त करो।

चौ.- **सुनि पनु पूरन आपन जाना। नृप न फूर हरिचंदु समाना॥**
बिबुध तेहिं सवँ अति हरषाई। सुमन लाग उन्ह सिरु बरिसाई॥

हे परीक्षित! यह सुनकर और अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण हुआ जानकर राजा हरिश्चन्द्र फूले नहीं समाये। उस समय देवता अत्यधिक हर्षित होकर उनके सिर पर पुष्प बरसाने लगे।

तदुप मुनिहिं पद सीस नवाई। गै चाँडाल संग नरराई॥
मलिनकरमि मरघटु उन्ह राखा। मृतन्हँ बसन गहु एहिंबिधि भाषा॥

तदुपरान्त मुनि के चरणों में सिर नवाकर राजा हरिश्चन्द्र चाण्डाल के साथ चले गए। फिर उस मलिनकर्मा चाण्डाल ने यह कहते हुए उन्हें श्मसान में लाकर छोड़ दिया कि (अब से तुम) मुर्दों के वस्त्र ग्रहण करना।

मरघटु सो पुर दच्छिन आसा। भयउँ तहाँ हरिचंद निवासा॥
दारुन धूम उठहि चहुँ ओरा। माँस पूय कइ धरि गँध घोरा॥

वह मरघट काशी की दक्षिण दिशा में स्थित था, वहीं पर राजा हरिश्चन्द्र को निवास प्राप्त हुआ। वहाँ चारों ओर माँस और पीब की भयानक दुर्गन्ध से भरा हुआ दारुण धुआँ उठता रहता था।

गीध स्वान बहु भोजन लागी। अनख करत बस तहँ रिस पागी॥
कट्ट कट्ट कर अगनित स्यारा। सी सी धुनि तरु करइ कसारा॥

भोजन के लिये एक-दूसरे से होड़ लगाते हुए क्रोधयुक्त बहुत से गिद्ध और कुत्ते वहाँ बसते थे। अनेक सियार कट्-कट् का शब्द करते थे और वृक्षों (के तनों) पर बसनेवाले 'कसार' नामक कीड़े 'सी-सी' की' ध्वनि किया करते थे।

दोहा- **हँसत जानि पर अधजरित सवन्हँ दंतजुत मुंड।**
कत दुहुँ हाथ पसारही जरत चिता महुँ रुंड॥१८४॥

अधजले मुर्दों के दाँतयुक्त मुण्ड हँसते हुए से जान पड़ते थे और कहीं पर चिता में जलते हुए धड़ अपने हाथों को ऊपर की ओर (उठाते हुए) फैला रहे थे।

चौ.- **जरत माँस अरु मेदहुँ केरी। साँय साँय धुनि होति घनेरी॥**
चट चट चटकहि कत जरि हाड़ा। ढाबर भरेहुँ रकत कत गाढ़ा॥

चिता में जलते हुए माँस व मज्जा से साँय-साँय की भयानक ध्वनि हो रही थी। कहीं पर जलती हुई हड्डियाँ चट-चट का शब्द करके चटक रही थी और कहीं-कहीं गड्ढों में गाढ़ा रक्त पड़ा था।

हा सुत हा पितु आरत नादा। करत करइ मृत स्वजन बिषादा॥
इत उत बिहरि हाड़ सवमाला। करइ तहाँ भय परम बिसाला॥

वहाँ 'हा पुत्र! हा पिता!' ऐसा आर्त्तनाद करते हुए मृतकों के स्वजन विषाद कर रहे थे। इधर-उधर बिखरी हुई हड्डियाँ और मुर्दों की मालाएँ वहाँ बड़ा भारी भय उत्पन्न करती थी।

स्यार रुदन धुनिजुत सो मसाना। एहिबिधि लखि पर नरक समाना॥
नृप उत्क्रांति दुसह अरु घोरा। रहति छाइ तहँ नित चहुँ ओरा॥

इस प्रकार सियारों के रुदन से युक्त वह श्मसान साक्षात् नर्क-सा जान पड़ता था। हे परीक्षित! उस श्मसान में निरन्तर चारों ओर मरण से पूर्व का घोर व असहनीय सन्नाटा छाया रहता था।

तहाँ बसत नृप अति दुख पागे। करत बिषाद कहन अस लागे॥
हा सुत हा सुखबाढ़निहारी। तुम कत मैं अति भयउँ दुखारी॥

वहाँ रहते हुए हरिश्चन्द्र अत्यन्त दुःखी होकर विषाद करके इस प्रकार कहने लगे- हा पुत्र! हा सुखों को बढ़ानेवाली प्रियतमा! तुम कहाँ हो? (तुम्हारे बिना) मैं अत्यन्त दुःखी हो गया हूँ।

तव बिनु प्रति थल नरक समाना। जिउँ कस पुनि यह प्रगट मसाना॥
बिगत सुरति एहिंबिधि उर लाई। प्रतिछन अति दुख लहँ नरराई॥

तुम्हारे बिना तो मेरे लिये प्रत्येक स्थान ही नर्कतुल्य है, फिर यह तो साक्षात् श्मसान ही है, अब मैं किस प्रकार जीवित रहूँ? इस प्रकार मन में (सुख के समय की) बीती बातों का स्मरण करके राजा प्रतिक्षण अत्यंत दुःख पाने लगे।

धरे ग्रंथिजुत बसन मलीना। बपुष भयउँ उन्ह अतिसय खीना॥

उन्होंने गाँठयुक्त, मैले वस्त्र पहन रखे थे, तथा उनका शरीर अत्यन्त क्षीण हो चुका था।

दोहा- मुख कर उदर चरन उन्ह भरे चिता कइ छार।
मृतन्हँ पिंड हित बनहिं जोइ जिअहि सो भात अधार॥१८५॥ (क)

उनका मुख, उदर, हाथ और चरण चिता की राख से सने हुए थे तथा मृतकों के लिये पिण्डदान के निमित्त जो भात बनता था, उसी को खाकर वे जीवित रहते थे।

बसन सहित कछु द्रब्य गहि सवन्हँ करावहि दाह।
परिछित एहिबिधि दानप्रिय दुरगति पाइ अगाह॥१८५॥ (ख)

वस्त्रों के साथ-ही कुछ द्रव्य लेकर वे मृतकों का दाहसंस्कार करवाते थे। हे परीक्षित! इस प्रकार दूसरों को दान देने में अनुराग रखनेवाले राजा हरिश्चन्द्र घोर दुर्दशा को प्राप्त हो गए।

चौ.- राउ गवाएहुँ कलप समाना। सवँ सम्बत भर सोइ मसाना॥
इत तारा निज तनय समेता। सेव करत बस बिप्र निकेता॥

उन राजा ने उसी श्मसान में वर्षभर का समय कल्प के समान व्यतीत किया। इधर तारा भी अपने पुत्र के साथ सेवा करते हुए काशी के उस ब्राह्मण के घर निवास करने लगी।

अकसर द्विज आयसु गहि रोहित। गयउ राजबन मख समिहा हित॥
तेहिं समउँ खेलत कछु बालक। रहे संग तिन्ह ससिकुलपालक॥

एक बार ब्राह्मण की आज्ञा पाकर रोहित राजवाटिका में यज्ञ के लिये समिधा लेने गया। हे चन्द्रवंश के पालक राजा परीक्षित! उस समय खेलते हुए कुछ बालक उसके साथ थे।

घरि लौ रोहित उन्ह सँग खेली। समिहा जोरि लाग निज थैली॥
तेहिं भलि बिधि बर लच्छन देखी। समिहा मख हित चैनि बिसेषी॥

घड़ीभर उनके साथ खेलकर रोहित अपनी झोली में समिधा एकत्र करने लगा। उसने भली-भाँति देख-परखकर उत्तम लक्षणोंवाली विशेष समिधा यज्ञ के लिये इकट्ठी की।

पूजन हित समेत अनुरागा। तदुप कुसुम तें तोरन लागा॥
कौसिक प्रेरित नृप तेहिं काला। सोइ थलहु उपजा एक ब्याला॥

तदुपरान्त पूजन के लिये वह बड़े प्रेम से पुष्प तोड़ने लगा। हे परीक्षित! उसी समय महर्षि विश्वामित्रजी की प्रेरणा से उस स्थान पर एक सर्प प्रकट हुआ।

बैठा तें पुनि घात लगाई। कुसुम पल्लवन्हिं निजउँ दुराई॥
सोइ पुष्पन्हँ बिधिबस बर जानी। रोहित तोरन बाढ़ेहुँ पानी॥

फिर वह सर्प घात लगाकर पुष्पों व पत्तों के मध्य स्वयं को छिपाकर बैठ गया। होनहार के वशीभूत हो उन्हीं पुष्पों को उत्तम समझकर रोहित ने उन्हें तोड़ने के लिये हाथ बढ़ाया।

तब निज संधि तासु कर पाई। लपकेहुँ बिषधर फनहुँ चढ़ाई॥

तब उसके हाथ को अपनी पहुँच के भीतर पाकर वह विषैला सर्प फण चढ़ाकर लपका और

दोहा- **मृदु अंगुरि नस पाछि अहिं गाड़े निज बिषदंत।**
जातें मैय्या कहि भँवत तें भुवि खसेहुँ तुरंत॥१८६॥

फिर उसकी कोमल अँगुली की शिरा को लक्ष्य करके सर्प ने उसमें अपने विषैले दाँत गड़ा दिए, जिससे वह बालक (उच्च स्वर से) 'मैय्या' इस प्रकार पुकारकर चक्कर खाता हुआ तुरन्त ही पृथ्वी पर गिर पड़ा।

चौ.- **तासु पीरजुत रव सुनि पाए। आतुर हहरि सखा सब धाए॥**
पुनि तेहिं पुनि पुनि लाग जगाई। जथा सकति बहु जतन जुड़ाई॥

सखाओं ने जैसे ही पीड़ा से भरी हुई उसकी पुकार सुनी, वैसे ही वे घबराकर बड़ी उतावली से उसकी ओर दौड़े। फिर अपनी शक्ति के अनुसार अनेक प्रकार के यत्न करके वे बार-बार उसे जगाने लगे।

लील्यों पान ऐहि जब जाना। चले पराहिं सबन्हिं भय माना॥
कछुक गए तिन्ह जननिहिं पासा। कहन लाग अस उमगत स्वासा॥

जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि इसे तो सर्प ने काटा है, तब वे सभी भयभीत होकर भाग छूटे। उनमें से कुछ बालक उसकी माता तारा के पास गए और उमड़ती हुई श्वास से इस प्रकार कहने लगे-

बिप्रदासि तव सुत कहँ बागा। कछु सवँ पूरब बिषधर लागा॥
सो उड़ेहुँ तिन्ह प्रान पखेरू। तुम धरि धीर जाइ तिन्ह हेरू॥

हे विप्रदासी! तुम्हारे पुत्र को उपवन में कुछ ही समय पूर्व एक विषैले सर्प ने काट लिया है, जिससे उसके प्राण-पखेरू उड़ गए, अब तुम धैर्य धारण करके जाकर उसकी सुध लो।

हृदय बिदारक सुनतहि बानी। खसि खंडित लतिका सम रानी॥
कठिन पीर जब चलि लग प्राना। मुरुछा उमगि नारि दुख जाना॥

हृदय को विदीर्ण कर देनेवाली ऐसी वाणी सुनते ही तारा वृक्ष से कटी हुई किसी लता के समान गिर पड़ीं। इस कठोर पीड़ा से जब उसके प्राण निकलने लगे, तब स्त्रीरूपिणी मूर्छा ने आकर उस नारी के दुःख को समझा।

दोहा- **द्विज रहेहुँ सो तब निकट दासिहि मुरुछित देखि।**
जल छींटत भा उन्ह बदन हिय करि कोप बिसेषि॥१८७॥

उस समय वह ब्राह्मण उसके निकट ही खड़ा था, जो अपनी दासी को मूर्छित हुई देखकर मन-ही मन विशेष कुपित होकर उसके मुख पर जल छिड़कने लगा।

चौ.- **कछु छिनु माँझ चेति जब रानी। तब दयहीन कही कटु बानी॥**
दुष्टे रुदन साँझ एहि भाँती। निंदित दरिददाइ सुखघाती॥

कुछ क्षणों के पश्चात् जब रानी को चेतना हुई तब उस निर्दयी ने कठोर वाणी में कहा- री दुष्टा! संध्या के समय इस प्रकार रुदन करना निन्दित, दारिद्र्यदायक और सुख का नाश करनेवाला होता है।

जान तदपि चुप धर तैं नाहीं। लाज कि तनक न तव उर माहीं॥
परुष बचन सुनि द्विजकर रानी। कहि चाहा दुख निकस न बानी॥

यह जानकर भी तुम चुप नहीं हो रही हो, क्या तुम्हारे मन में तनिक भी लज्जा नहीं है? विप्र के कठोर वचन सुनकर रानी ने उसे अपना दुःख कहना चाहा, किन्तु उनके मुख से वाणी ही नहीं निकलती।

पुनि पुनि सुतहिं चहेहुँ उन्ह टेरी। रव न फूट उर पीर घनेरी॥
पुत्र सोक कर भीषन भारा। ममता तें जब गा न सँभारा॥

उन्होंने बार-बार अपने पुत्र को पुकारना चाहा, किन्तु हृदय में व्याप्त भीषण वेदना के कारण उनके मुख से शब्द ही नहीं निकलता था। पुत्रशोक का ऐसा भीषण भार जब उनकी ममता से सम्भाला न गया,

तलफत पीर धीर सब त्यागी। तब जननी महि लोटन लागी॥
भरि भरि दृग करुना उमगाने। मुख दुतिहीन केस अरुझाने॥

तब पीड़ा के कारण छटपटाती हुई माता सब प्रकार से धैर्य त्यागकर भूमि पर लोटने लगी। उनके नेत्र करुणा से भर-भरकर उमड़ने लगे, उनका मुख कान्तिहीन हो गया और केश उलझ गये।

कंपहि गात भरे अति छारा। हृदय गयउ जनु अम्मल जारा॥
दसा देखि उन्ह अस द्विजराऊ। बोला लोनु देत उन्ह घाऊ॥

उनके काँपते हुए अङ्गों पर अत्यधिक धूल छा गई और उनके हृदय की दशा ऐसी हो गई, मानो वह अम्ल से जल गया हो। उनकी ऐसी दशा देखकर वह ब्राह्मण उनके घाव पर नमक रगड़ता हुआ इस प्रकार बोला-

धिग दुष्टा तोहिं बारहि बारा। मोल पाइ मम काज बिसारा॥

री दुष्टा! तुझे बार-बार धिक्कार है, जो अपना मूल्य पाकर भी तूने मेरा कार्य त्याग दिया।

दोहा- **बनहिं न तुअँ तें काज जब प्रथमहिं किउँ न बुझान।**
मौन धरे एहिंभाँति अब किउँ करि रहसि बहान॥१९८॥

जब तुमसे काम होता ही नहीं, तो पहले ही क्यों नहीं कहा। अब इस प्रकार मौन धारण करके बहाना क्यों कर रही हो?

चौ.- **द्विज कठोर बच जब फटकारी। हृदय धरे तब पाहन भारी॥**
रोदत कहेउ जोरि कर दोऊ। द्रवउ बिप्रवर कुपित न होऊँ॥

जब ब्राह्मण ने ऐसे कठोर वचनों से उसे फटकारा; तब अपनी छाती पर पत्थर रखकर दोनों हाथ जोड़कर रोते हुए रानी ने कहा- हे विप्रवर! दया कीजिये, क्रोधित न होइये।

तव कृत गयउ मोर सुत बागा। किंतु मुएहुँ तहँ तेहिं अहि लागा॥
तातें चहुँ तेहिं देखन जाई। समुझि मोर दुख देहुँ रजाई॥

मेरा पुत्र आपके कार्य से उपवन गया था, किन्तु वहाँ सर्प के काटनें से उसकी मृत्यु हो गई। इसलिये मैं उसे देखने जाना चाहती हूँ, मेरा दुःख समझकर, आप मुझे जाने की आज्ञा दीजिये।

जिअत दरस हा गुन अगारा। अब त असम्भव मोहि तिहारा॥
टेरि सुतहि अस जननि दुखारी। द्विज पद परि बिनबत भइ भारी॥

हा गुणवान पुत्र! जीवित अवस्था में तुम्हारा दर्शन पाना अब तो मेरे लिये असम्भव ही है। इस प्रकार पुत्र को पुकारकर शोक से व्याकुल माता विप्र के चरणों पर गिरकर अत्यधिक विनय करने लगी।

जम कठिनत्व गराविनिहारी। जननि पुकार करुन अति भारी॥
सुनत बिप्र जनि दया देखाई। फिरि खल सास्त्र लागेउ सुनाई॥

यम की कठोरता को भी गला देनेवाली माता की ऐसी करुण पुकार सुनकर भी उस ब्राह्मण को दया नहीं आई, उलटा वह पलटकर उसे ही शास्त्र सुनाने लगा।

दोहा– **द्रब्य पाइ पुनि परिहरहि पतिहिं काज नर जोइ।**
परहि कलप भरि रौरव पुनि जग कुक्कुट होइ॥१८९॥

जो मनुष्य अपने स्वामी से मूल्य पाकर भी (उसके प्रति) अपने कार्य को त्याग देता है, वह कल्पभर तक रौरव नर्क में रहकर फिर संसार में मुर्गे का शरीर पाता है।

मासपारायण छठा विश्राम

चौ.– **पुनि सुत तव मम कवन प्रयोजन। मैं किउँ बहउँ भार तिन्ह मरन॥**
सो गृह काज बेगि लगु जाई। देहुँ द्रब्य न त मोर फिराई॥

और फिर पुत्र तो तुम्हारा है, मुझे उससे क्या प्रयोजन? उसके मरण का भार मैं क्यों उठाऊँ? अतः शीघ्र ही तुम अपने कार्य में लग जाओ, अन्यथा मेरे द्वारा चुकाया हुआ द्रव्य लौटा दो।

सुनि पतिधरमरच्छिका नारी। ममतहि दीन्ह धरम पर वारी॥
पुनि धरि धीर प्रकंपित गाता। लगि गृह काज भई अधराता॥

यह सुनकर पति के धर्म की रक्षा करनेवाली उस पतिव्रता ने नारी ने अपनी ममता को धर्म पर न्योछावर कर दिया। फिर वह धैर्य धरकर काँपते हुए शरीर से गृहकार्य में जा लगी, जिससे आधी रात बीत गई।

जब सब कृत तेहिं बिधिवत सारे। तब द्विज तेहिं अस बचन उचारे॥
तनय दाह करु अब तैं जाई। पुनि फिरु तुरत काज अधिकाई॥

जब उसने सारे कार्य भली प्रकार कर दिये, तब विप्र ने उससे इस प्रकार कहा- अब तुम जाकर अपने पुत्र का दाह संस्कार करो और (दाह संस्कार करके) तुरन्त लौट आना, घर में बहुत काम है।

मातु चली तब धीर बिसारी। खोजन आपन दृग अँधकारी॥
परिछित दृग धरि तरल निरासा। जननि गवनि तनयहि अति पासा॥

तब धैर्य का त्याग करके वह माता अपने उस पुत्र को खोजनें चली जो उसके नेत्रों के अन्धकार को हरनेवाला होकर भी उसके नेत्रों में अन्धेरा करके चला गया था। हे राजन! अपने नेत्रों में निराशा से युक्त अश्रु लिये, वह माता अपने पुत्र के अत्यधिक निकट जा पहुँची।

दोहा- **तहँ देखा सुत रंक सम मृत परेउँ महि छारि।**
बिलखेउँ तब उन्हँ हृदय अस तनयहि सकि न पुकारि॥१९०॥

वहाँ उन्होंने देखा कि उनका पुत्र (राजकुमार रोहित) कङ्गालों के समान धूल में सना हुआ पृथ्वी पर मृत पड़ा है, तब उनका हृदय इस प्रकार बिलख उठो कि वे अपने पुत्र को पुकार तक न सकी।

चौ.- **जीवनधन निज प्रानबिहीना। देखि लागि जननी होइ दीना॥**
अधर सुतहि सुन्दर अरुनारे। माहुर ज्वाल भए जरि कारे॥

प्राणहीन हो चुके अपने जीवन के धन (रोहित) को माता दीन होकर देखने लगी। पुत्र के लाल-लाल सुन्दर अधर विष की ज्वाला से दग्ध होकर काले पड़ गए।

मुख कपोल जवि फेन सुखाना। एक लहरिअहि देत प्रमाना॥
गौर प्रफुल्लित दुतिमय गाता। परे नील अति माहुरघाता॥

उसके मुख व गालों पर सूखकर जम चुका फेन उस सर्प के एक लहरिया (नाग) होने का प्रमाण दे रहा था। उसके गोरे व खिले हुए कान्तियुक्त अङ्ग विष के आघात से अत्यधिक नीले पड़ गये।

करतल पदतल चारु ललाई। छाइ सघन जम मेचकताई॥
चपल नयन अधमिल जिवहीना। बिधुमुख भयउँ तासु अब दीना॥

हथेली व पैर के तलवों की सुन्दर लालिमा पर मृत्यु की गहन कालिख छा गई। उसके चञ्चल और अधखुले नेत्र निष्प्राण हो चुके थे और उसका मुख जो चन्द्रमा के समान सुन्दर था, अब वह दीन हो चुका था।

जिन्हँ हित सपुन सँजोएहुँ नाना। दुखद तासु अस लखि अउसाना॥
घुटुरुन्हँ परि मुख दुहुँ कर लाई। करुना करि अतिरव रर माई॥

जिसके लिये बहुत सारे स्वप्न सँजोकर रखे थे, अपने उसी पुत्र का ऐसा दुःखद अवसान देखकर मैय्या करुणा करके दोनों हाथों से अपने मुख को ढँककर घुटनों के बल आ गिरीं और उच्च श्वर से रोने लगी।

जननि केर भरि आइसि छाती। महासोक तब नृप अकुलाती॥

हे परीक्षित! (पुत्र की इस दशा पर) जब माता का हृदय भर आया, तब महाशोक से व्याकुल होकर

दोहा- सुतहि सवैंटेहुँ निज भुजन्हिं पुनि पुनि तेहिं उर लाइ।
भाल चूँबि मुख लखि जननि बोली अस बिलखाइ॥१९१॥

उसने पुत्र को अपनी भुजाओं में समेंटकर लिया, फिर उसे बार-बार हृदय से लगाकर उसके ललाट को चूमकर उसके मुख निहारती हुई वह मैय्या बिलखकर इस प्रकार बोली-

चौ.- हा सुत देखु तोर सुधि लागी। आइ मातु तव यह हतभागी॥
नींद अचल तजि यह एक बारू। मैआँ कहि सुत मोहि पुकारू॥

हा पुत्र देखो! तुम्हारी यह अभागिनी माता तुम्हारी सुधि लेने के लिये आई है। हे पुत्र! इस अचल निद्रा का त्याग करके मुझे एक बार माता कहकर पुकारो!

तव बिनु बुझत प्रान दिअ मोरा। कछु छिनु लौ अरु करि सक जोरा॥
प्रथम त तुम मोहि आवत जानी। उठत रहेउ जोरत दुहुँ पानी॥

कि तुम्हारे वियोग में बुझता हुआ मेरा यह प्राणरूपी दीपक कुछ क्षण के लिये और धैर्य धर सके। पहले तो मुझे आती हुई जानकर तुम दोनों हाथ जोड़कर खड़े हो जाया करते थे;

अब सोइ उत्तम बिसरि सुभाऊ। ढीठ भयउँ अस कस समुझाऊ॥
जिअत तनय अस जननि बिचारी। पुनि पुनि लगि सुत बदनु निहारी॥

मुझे समझाओ कि अब अपने उसी उत्तम स्वभाव को त्यागकर तुम इस प्रकार से ढीठ कैसे हो गये? मेरा पुत्र जीवित है यह विचारकर माता बार-बार अपने पुत्र का मुख को देखने लगी।

हरचरि रहित किंतु तेहिं देखी। जननि कहा पुनि बिलपि बिसेषी॥
हा सिसु बत्स सुगुन आगारा। छबिनिधि रोहित नाउँ कुमारा॥

किन्तु उसे चेतनारहित देखकर माता ने पुनः अत्यधिक विलाप करके इस प्रकार कहा- हा शिशो! हा वत्स! हा उत्तम गुणों के धाम, सुन्दरता के समुद्र और 'रोहित' नामवाले कुमार

दुखद नींद तव मोहि इहि त्यागे। उठि किन चलत जननि सँग लागे॥
देखु सखा तव सब निसि पाई। फिरे सदन निज निज अतुराई॥

तुम्हारी यह निद्रा मुझे अत्यन्त दुःख दे रही है, इसे त्यागकर तुम उठकर अपनी माता के साथ क्यों नहीं चलते? देखो तो! रात्रि का समय पाकर तुम्हारे सब सखा भी उतावली से अपने-अपने घरों को लौट गये हैं।

तब तुम कस अकेल इहँ रहेउँ। तव बिनु उर मम चिंतउँ दहेउँ॥
भूत प्रेत डाकिनि चहुँओरा। सुनु रव करइ भयावन घोरा॥

फिर तुम यहाँ अकेले कैसे रह गये? तुम्हारे बिना मेरा हृदय चिन्ता से जल गया। हे पुत्र! सुनों! भूत, प्रेत और डाकिनियाँ चारों ओर अत्यन्त भयानक शब्द कर रहे हैं।

चलु अब बेगि नींद यह त्यागी। कहत जगावन पुनि पुनि लागी॥
रोहित उठेहुँ किन्तु जब नाहीं। खसी भूमि जननी अकुलाही॥

इसलिये अब तुम शीघ्र ही इस निद्रा को त्यागकर चलो, इस प्रकार कहते हुए माता बार-बार उसे जगाने लगी। किन्तु जब रोहित न उठा, तब माता व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी।

परिछित चेत भई पुनि जबहीं। महि सिरु हति तारा कह तबहीं॥
सुत तव बिनु मम गति कस होहीं। उठि किन धीर बँधावसि मोहीं॥

हे परीक्षित! जब पुनः चेतना हुई, तब भूमि पर सिर पटककर महारानी तारा ने कहा- हे पुत्र! तुम्हारे न रहने से मेरी क्या दशा हो चुकी है; तुम उठकर मुझे धैर्य क्यों नहीं बँधाते?

रहा तुअँ त मम आग्याकारी। तब किउँ चुप अस दारुन धारी॥

तू तो मेरा आज्ञाकारी पुत्र हुआ करता था, फिर तुमने यह कठोर चुप क्यों धारण कर लिया?

दोहा- **हा सुत जीवन जोत मम रतन मोर अनमोल।**
आयसु अंतिम पालि अरु छिनु भरि मोहि सन बोल॥१९२॥

हा पुत्र! हा मेरी जीवन-ज्योति व मेरे अनमोल रत्न! मेरी इस अंतिम आज्ञा का पालन कर और क्षणभर के लिये ही सहीं मुझसे पुनः बात कर।

चौ.- **सुनत तासु रव अचरज पागे। परिछित बन रच्छक तहँ लागे॥**
मृत सिसु सहित देखि एक नारी। लगे परसपर कहन बिचारी॥

हे परीक्षित! उनका शब्द सुनकर आश्चर्यचकित हुए वनरक्षक तुरन्त ही वहाँ आ गए और मृत बालक के साथ एक स्त्री को देखकर वे परस्पर विचार करके कहने लगे कि,

अवसि अहहि यह राच्छसि कोऊ। भच्छहि सिसुन्ह राति तम जोऊ॥
एहि सँवपि केउ बालक मारी। भच्छन हित आनेहुँ तम भारी॥

यह अवश्य ही कोई राक्षसी है, जो रात्रि के अन्धकार में शिशुओं का भक्षण करती है और इस समय भी किसी बालक को मारकर खाने के लिये ही यह इस घोर अन्धकार में लाई है।

सजतन बधिअ एहि धरि भाई। अस कहि गहे तेन्हँ कच धाई॥
आनिसि पुनि सोइ मेतर गेहू। सुनु चाँडाल राच्छसी एहूँ॥

हे भाई! इसे पकड़कर यत्नपूर्वक मार डालना चाहिये, यह कहते हुए दौड़कर उन्होंने रानी के केश पकड़ लिये और उसी चाण्डाल के घर लाकर बोले- हे चाण्डाल! यह एक राक्षसी है,

निसि जे जात सिसुन्ह गहि खाई। तातें बधहुँ एहि तुम भाई॥
सुनि चाँडाल परम रिस पागा। रानिहिं सुटुकहुँ मारन लागा॥

जो रात्रि में बालकों को पकड़कर खा जाती है। इसलिये हे भाई! तुम इसका वध कर दो। यह सुनकर चाण्डाल अत्यन्त क्रोधित होकर रानी को कोड़े से मारने लगा।

निज दासहि पुनि निकट बोलाई। कहन लाग अस अति निठुराई॥
दास निसाचरि यह सिसुघाती। बेगि देहुँ तुम एहि निपाती॥

फिर अपने दास (राजा हरिश्चन्द्र) को निकट बुलाकर अत्यन्त निष्ठुरतापूर्वक इस प्रकार कहने लगा- हे दास! यह बालघातिनी राक्षसी है, तुम शीघ्र ही इसका वध कर दो।

दोहा- **तियबध अघ निज सिरु कलपि आतम उन्ह कंपानि।**
धरमधुरंधर कहेहु तब पतिहि जोरि जुग पानि॥१९३॥

अपने सिर पर स्त्रीवध के पाप की कल्पना करके राजा की आत्मा काँप उठी। तब धर्म की धुरी को धारण करनेवाले उन राजा हरिश्चन्द्र ने अपने स्वामी से दोनों हाथ जोड़कर कहा-

चौ.- **गौ द्विज रुजि सिसु जरठ समाना। नाथ नारि बध पाप महाना॥**
इन्ह कर बधिक अजसु महि पाई। नरकु महारौरव पर जाई॥

हे नाथ! गौ, ब्राह्मण, रोगी, बालक और वृद्ध के समान ही स्त्री का वध करने पर भी महापाप होता है। इनकी हत्या करनेवाला पृथ्वी पर अपयश का भागी होकर फिर घोर रौरव नर्क में पड़ता है।

पुनि मैं तिय अबधन ब्रत ठाना। तातें कहिअ काज कछु आना॥
बलिउँ बली अरि देहुँ देखाई। एकउँ सर तेहिं देब नसाई॥

और फिर मैंने तो स्त्री को न मारने का व्रत ले रखा है, अतः आप कोई अन्य कार्य बता दीजिये। आप अपने बलि से बलि शत्रु को दिखा दीजिये, मैं अपने एक ही बाण से उसे नष्ट कर दूँगा।

भूमि तेन्ह पुनि अरपउँ तोही। तिय बध करन कहिअ नहिं मोही॥
निज दासहि सुनि हँसि चंडाला। कह सठ तैं कि कवन भूपाला॥

और उसकी भूमि आपको समर्पित कर दूँगा, किन्तु आप मुझे स्त्री का वध करने के लिये न कहिये। अपने दास के ऐसे वचन सुनकर चाण्डाल हँसकर बोला- रे शठ! तू क्या कोई राजा है?

जे निज बल अरु नीति सुनाई। बिमुख होइ चह मोहि भरमाई॥
परिछित जतन कीन्ह नृप नाना। मेथर निठुर परन्तु न माना॥

जो अपना बल व नीति सुनाकर मुझे भ्रमित करके अपने कर्त्तव्य से विमुख होना चाहता है? हे परीक्षित्! राजा ने अनेक यत्न किये किन्तु वह निष्ठुर चाण्डाल फिर भी नहीं माना।

पुनि हठि असि उन्ह हाथ थँवाई। कह मम प्रति निज कृत उर लाई॥
तरकु बिसरि सब मारेसु ऐहूँ। अस कहि गयउ सूद्र निज गेहू॥

फिर हठपूर्वक उनके हाथ में तलवार थमाकर वह बोला- मेरे प्रति अपने कर्त्तव्य का स्मरण करके समस्त तर्कों को त्यागकर तू इसका वध कर। ऐसा कहकर वह नीच अपने घर को चला गया।

दुसह दाह आतुर रव मंदा। तब कहि लग तिय सन हरिचंदा॥

तब भयङ्कर दाह से अधीर हुए राजा हरिश्चन्द्र धीरे से उस स्त्री से कहने लगे-

दोहा- **देबि बैठु मम अधम सन उठि सक जे कर मोर।**
काटि तोर सिरु जोरउँ तिय बध कुकृत कठोर॥१९४॥

हे देवी! तुम मुझ अधम के सम्मुख आकर बैठ जाओ, जो यदि मेरा हाथ उठ सका, तो तुम्हारा सिर काटकर मैं स्त्री वध का कठोर पापकर्म भी कमा लूँगा।

चौ.- नयन तिमिर उर धरि अति त्रासा। अस कहि राउ गए तेहिं पासा॥
एहि अघ तम नृप भए अधीरा। पुनि रानिहिं सुत सोक गभीरा॥

यह कहकर मन में अत्यन्त भयभीत हो नेत्रों में निराशा लिये हरिश्चन्द्र उसके पास गए। स्त्रीवध के पाप के अंधकार से राजा अधीर हो उठे, इधर रानी तारा को भी महान पुत्रशोक प्राप्त था,

सो लखि एक दूजन्ह सुनि बानी। सके परसपर नहिं पहिचानी॥
सोकातुर मरनिच्छा ठानी। कहन लागि दासहि अस रानी॥

अतः देख लेने और वाणी सुन लेने के उपरान्त भी वे एक-दूसरे को पहचान न सके। पुत्रशोक से आतुर हुई रानी मरने का निश्चय करके चाण्डाल के दास से इस प्रकार कहने लगी-

हे चाँडाल उचित जे जानू। दय करि बात एक मम मानू॥
पुर बाहेर कछुकही दूरी। मम सुत मृत परेहुँ पथ धूरी॥

हे चाण्डाल! यदि तुम उचित समझो तो दया करके मेरी एक बात मानो। नगर के बाहर कुछ ही दूरी पर मेरा पुत्र रास्ते की धूल में मृत पड़ा है।

आनि तासु करि चहुँ मैं दाहा। तदुप करेसु तुम धरम निबाहा॥
कछु छिनु लौ तिय बध अघ टरेऊ। प्रथम त अस गनि नृप सुख भरेऊ॥

मैं उसे लाकर उसका दाह संस्कार करना चाहती हूँ, तदुपरान्त तुम धर्म का निर्वाह कर लेना। कुछ क्षण के लिये ही सहीं किन्तु "स्त्रीवध का पाप टला" यह जानकर पहले तो राजा मन-ही मन सुखी हो उठे।

तिय सुत मरनु किन्तु जब जाना। अबलउँ दुख राउर अकुलाना॥
पठइसि जब दय करि मनु माहीं। रोदत रानि आइ सुत पाहीं॥

किन्तु उसके पुत्र की मृत्यु हुई जानकर अबला के दुःख से द्रवित हुए राजा अकुला उठे। जब मन-ही मन दया करके उन्होंने उसे भेज दिया, तब रानी रोती हुई अपने पुत्र के पास आई।

पुनि मृत तनु तिन्ह गोद उठाई। तें सोउ मरघटु पुनि फिरि आई॥

फिर उसके मृत शरीर को अपनी गोद में उठाकर वह पुनः उसी श्मसान में लौट आई।

दोहा- धरनि डासि सुत बपुष पुनि बिलखि कहन अस लागि।
मातु होइ अज दाहु तोहि सुत मैं कस हतभागि॥१९५॥

अपने पुत्र के शव को पृथ्वी पर लिटाकर फिर बिलखकर वह इस प्रकार बोलीं- हे पुत्र! मैं कितनी अभागिनी हूँ कि माता होकर भी आज मैं तुम्हारा दाह संस्कार करूँगी।

चौ.- हा पिय प्रजापाल नरराई। तव बिनु मैं कस दुरगति पाई॥
रहा एक सुत गुनि अरु जोगा। किन्तु कुभाग अजहुँ तेहिं भोगा॥

हा प्रियतम! हा प्रजापालक नरराज! आपके साथ न होने से मेरी कैसी दुर्दशा हो गई। गुणवान व योग्य मेरा यह एक ही पुत्र था किन्तु आज दुर्भाग्य ने उसे भी खा लिया।

जिअ भरि देखि लेहुँ पिय आई। अंतिम बार प्रान अधिकाई॥

यह बिधुमुख एहि सीतल छाहीं। अज गत खोजि मिलिहिं पुनि नाहीं॥

हे नाथ! आज आकर अपने प्राणों से भी अधिक प्यारे पुत्र को अंतिम बार देख लो, क्योंकि यह चन्द्रमुख और इसकी शीतल छाया आज के उपरान्त आपको खोजनें पर भी पुनः नहीं मिलेगी।

सुनत ससंक राउ गै पासा। उर प्रकंप अनपेच्छित त्रासा॥
जब उन्हँ रानिहिं रव पहिचाना। भयबस हठि कर बाधेहुँ काना॥

यह सुनकर आशङ्कित हुए राजा उसके निकट गए, उनका हृदय किसी अनपेक्षित भय से काँप रहा था। जब अपनी रानी का स्वर पहचान लिया तब भय के मारे उन्होंने हाथों से बलपूर्वक अपने कान बाँध लिये।

बुधि नयनाश्रय साहसु पाई। बालकु बपुष निरखि लगि जाई॥
पाइ छत्रि लच्छन पुनि गाता। सहमे नृप जनु भा पबिपाता॥

किन्तु उनकी बुद्धि उनके नेत्रों की सहायता लेकर उस बालक के शरीर का निरीक्षण करने लगी। फिर उसके अङ्गों पर क्षत्रिय के लक्षण पाकर राजा सहम गये, मानों उन पर वज्रपात हो गया हो।

एतनेहु निज दुहुँ हाथ उठाई। रानि कहा सुत दुख अकुलाई॥
रबिकुलपालक कत महि माहीं। हे सुत मोहि बिदित कछु नाहीं॥

इतने ही में रानी ने अपने दोनों हाथ उठाकर पुत्रशोक से व्याकुल होकर कहा- हे पुत्र! सूर्यकुल के पालक (तेरे पिता) इस समय पृथ्वी पर कहाँ है; मुझे कुछ भी ज्ञात नहीं।

बहुरि तुअँपि अहि दंस प्रतारा। बिसरि मोहि सुरलोक सिधारा॥
बारक देअँ आइ लखि जावौ। केतौ गहन दीन्ह तुअ घावौ॥

और सर्पदंश का मारा तू भी मुझे त्यागकर देवलोक सिधार गया। हे विधाता! एक बार आकर देख तो लो! कि तुमने मुझे यह घाव, कितना गहरा दिया है।

चलत मोहिं आतम सुखदाई। कारन एक त देहुँ बताई॥
जिन्हँ आश्रय तव जननि दुखारी। जिअँ धरि सक लखि गोद उजारी॥

हे आत्मा को सुख देनेवाले पुत्र! जाते-जाते मुझे कोई एक कारण तो बता दो, जिसके आश्रित हो तुम्हारी यह दुःखी माता अपनी उजड़ी हुई गोद देखकर भी अपने प्राण रख सके?

दोहा- बूझे नृप सुनि अबलउँ बच अस पीर प्रसूत।
ममहि नारि यह देबि पुनि बालक यह मम पूत॥१९६॥

पीड़ा से उत्पन्न अबला के ऐसे शोकयुक्त वचन सुनकर राजा हरिश्चन्द्र यह समझ गए कि यह देवी तो मेरी ही पत्नि है और यह बालक मेरा पुत्र है।

चौ.- उर उन्ह अस निस्चय कर तापा। अहि बिष दुसह लहर सम ब्यापा॥
तिमिर घिरेहुँ उन्हँ आँखिन्ह आगे। मुख रव निकस न कम्पहिं ठागे॥

इस बात के निश्चय से उत्पन्न जलन उनके हृदय में सर्प के विष की दुःसह लहर के समान छा गई। उनके नेत्रों के आगे अन्धेरा छा गया, वे कुछ बोल नहीं पाये, केवल ठगे से खड़े होकर काँपते रहे।

लहिं जब उन्हँपि पुत्रदुख घाई। धीरधि अवनि खसे चकराई॥
सचत भए कछु छिनु गत जबही। धाइ भरेहुँ सुतहिं भुज तबही॥

फिर जब उन्हें भी पुत्रशोक का आघात लगा, तब धैर्यसिन्धु राजा हरिश्चंद्र चक्कर खाकर भूमि पर गिर पड़े। फिर कुछ क्षण पश्चात् जब उन्हें चेतना हुई, तब दौड़कर उन्होंने पुत्र को अपनी भुजाओं में भर लिया।

कसि प्रबंध पुनि पुनि उर लाए। तात कहा दुहुँ हाथ उठाए॥
हे बिरंचि तैं कीन्हि न दाया। दिनु कठोर कस मोहि देखाया॥

फिर प्रगाढ़ आलिङ्गन में कसकर उन पिता ने उसे बार-बार हृदय से लगाया और दोनों हाथ उठाकर बोले- हे विधाता! तूने दया नहीं की, मुझे यह कैसा कठोर दिन दिखलाया है?

हे अज कहुँ त मोर अपराधा। फूटेहुँ भाग धरम जे साधा॥
राज गयउ मम तिय भइ दासी। पदगत मैं स्वपाक भा कासी॥

हे विधाता! मेरा अपराध तो कहो! जो धर्म करते हुए भी मेरे भाग्य फूटे। मेरा राज्य चला गया, मेरी पत्नि दासी हो गई और पद के चले जाने से मैं काशी में चाण्डाल बना।

अगनित घाउ खाइ कर तोरे। सदा रहा चुप मैं कर जोरे॥

तुम्हारे हाथों ऐसे अनगिनत घाव खाकर भी मैं हाथ जोड़े हुए सदैव चुप ही रहा।

रहा एक नग अज मम पाही। किन्तु लूटि खाएहुँ तुम ताही॥
हा सुत सुगुनि सुपातर मोरा। काहँ तुअँ न मुअँ तम सब ओरा॥

आज मेरे पास केवल एक ही रत्न शेष रह गया था, किन्तु तुमने उसे भी मुझसे लूटकर खा लिया। हा उत्तम गुणों से सम्पन्न मेरे सुयोग्य पुत्र! तुम कहाँ हो; तुम्हारे न होने से मेरे लिये सब ओर अंधकार ही है।

अस कहि नृप पुनि धीर बिहाई। रुदन सघन करि लग हिचुकाई॥

ऐसा कहते हुए पुनः धैर्य का त्याग करके राजा हिचकियाँ ले-लेकर अत्यधिक रुदन करने लगे।

दोहा- रानि पतिहि पहिचानि तब लिपटि तासु उर धाइ।
धीर बँधात परसपर निज निज बीति सुनाइ॥१९७॥

तब रानी तारा ने अपनी पति को पहचान लिया और दौड़कर वे उनकी छाती से लिपट गई। फिर परस्पर धैर्य बँधाकर उन्होंने एक-दूसरे को अपनी-अपनी आप-बीती कह सुनाई।

चौ.- रोहित मरनु भयउँ जेहिं भाँती। सुनत आइ भरि पितु कइ छाती॥
नृप निज गोद सुतहि तब लाई। मुख लखि तिन्ह कह अस अकुलाई॥

रोहित का मरण जिस प्रकार हुआ था वह वृत्तान्त सुनते-ही पिता का हृदय भर आया। तब राजा ने रोहित को अपनी गोद में ले लिया और उसका मुख देखकर व्याकुल होकर इस प्रकार बोले-

हा सुत दीन बदनु लखि तोरा। दरकि जात किन उर यह मोरा॥
तात तात मृदु रव अस तोरे। पुनि सुखि कबु करिहहि श्रव मोरे॥

हा पुत्र! तुम्हारा यह दीन मुख देखकर मेरा हृदय फट क्यों नहीं जाता? 'तात' 'तात' इस प्रकार से तुम्हारे मुख से निकली हुई कोमल वाणी पुनः कब मेरे कानों को सुखी करेगी?

तात मातु उर अति सुखकारी। तव सम सुत गुनि आग्याकारी॥
अब एहि निरस जगत निठुराई। पुनि मैं सकउँ कहा तें पाई॥

माता-पिता के हृदय को अत्यन्त सुख देनेवाला तुम्हारे समान गुणवान और आज्ञाकारी पुत्र, इस नीरस संसार की निष्ठुरता में मैं पुनः कहाँ से पा सकूँगा?

पूरब जब बालक यह उयहूँ। हा गुरदेव मोहि तैं कयहूँ॥
बालक होइ चिरायू ऐहा। तात मात गुर पद कर नेहा॥

पूर्व में जब यह बालक उत्पन्न हुआ था उस समय हे गुरुदेव! आपने मुझसे कहा था कि यह बालक चिरञ्जीवी होगा और माता-पिता व गुरुजनों के चरणों में प्रीति रखेगा।

सक्र समान पराक्रमि होई। अरि दलि प्रजहि पाल छल खोई॥
गोपति पुनि पितु सम सतभाषक। होइहि गुर सुर बिप्र उपासक॥

इन्द्र तुल्य पराक्रमी होकर यह बालक शत्रुओं को जीतकर निष्कपट भाव से प्रजा का पालन करेगा। यह अपने पिता ही के समान सत्यवादी व जितेन्द्रीय होकर अपने गुरु, विप्र तथा देवताओं का उपासक होगा।

तब मैं बचन तोर हिय जाना। अचल ब्रह्म बरदान समाना॥
देखिअ आज परन्तु सुजाना। दसा काह भइ सो बरदाना॥

उस समय मैंने अपने मन में आपके इस वचन को ब्रह्मा के वरदान के समान अचल माना था, किन्तु हे सुजान! देखिए! आपके उस वरदान की क्या दशा हो गई है?

दोहा- चक्र कलस झख स्वस्तिक सुभ चिन्ह करतल तोर।
तदपि मरनु तव भयउँ सुत अज गति कुटिल कठोर॥१९८॥

चक्र, कलश, मत्स्य और स्वास्तिक आदि शुभ चिह्न तुम्हारी हथेलियों में विद्यमान है, फिर भी हे पुत्र! तुम्हारा मरण हुआ, विधाता की गति बड़ी ही कठोर व टेढ़ी है।

चौ.- परिछित नृपति तदुप अकुलाई। सुतहि चिता करि दीन्ह सुवाई॥
ताड़ित अस दृस्यउँ जमदंडा। अति चिकारि जननिहिं उर खंडा॥

हे परीक्षित! तदुपरान्त राजा हरिश्चन्द्र ने व्याकुल होकर चिता बनाई और रोहित को उस पर लिटा दिया। इस दृश्यरूपी यमदण्ड से आहत होकर माता का हृदय अत्यधिक चीत्कार करके टूट गया।

चख आतुर सुत सोक अगाहा। कंत न लखि सक अब तिन्ह दाहा॥
तातें निज पति बच उर लाई। बधि मोहि दुखु तें देहुँ छराई॥

(तब रानी ने कहा-) हे नाथ! अगाध पुत्रशोक से अधीर हो रहे मेरे ये नेत्र अब उसका दाह नहीं देख सकते। इसलिये अपने स्वामी की आज्ञा मानकर आप मेरा वध करके मुझे इस दुःख से छुड़ा दीजिये।

सुनि तिय बचन सुष्क एहिंभाँती। खसे राउ जरि लगि उन्ह छाती॥
चूक अवसि कछु रहि मम नेहा। जे जड़ देव सुनाएसि ऐहा॥

पत्नि के ऐसे निराशायुक्त वचन सुनकर हरिश्चन्द्र भूमि पर गिर पड़े और उनकी छाती जलने लगी। (वे बोले-) अवश्य ही मेरे प्रेम में कोई त्रुटि रह गई होगी, जो जड़ विधाता ने मुझे यह बात सुनाई।

मुख तें कहि न जाइ जे बाता। करौं ताहि किमि आपन हाता॥
जदपि पतिहि आयसु बिनु पाए। पापहि मोहि प्रान बिसराए॥

जिस बात को मुख से कहा भी नहीं जा सकता, उसे ही मैं अपने हाथों से कैसे करूँ? यद्यपि स्वामी की आज्ञा पाये बिना प्राण त्याग देनें पर मुझे पाप ही लगेगा;

तदपि न नरक माँझ दुख सोऊ। लागहि पुत्रसोक महुँ जोऊ॥
तातें पारन अब एहि पीरा। अवसि तजौं दुखमूल सरीरा॥

तथापि नर्क में वैसा दुःख नहीं, जैसा पुत्रशोक में होता है। इसलिये अब मैं इस पीड़ा का पार पाने के लिये दुःख के मूल इस शरीर को अवश्य ही त्याग दूँगा।

दुसह दाह यह मोर बिचारी। करेसु छमा मोहि प्रानपिआरी॥
बहुरि फिरेसु तैं सोउ द्विज गेहा। तोहि अंतिम आयसु मम ऐहा॥

हे प्राणप्रिये! मेरी इस भयङ्कर पीड़ा को समझकर तुम मुझे क्षमा कर देना और स्वयं उसी ब्राह्मण के घर लौट जाना, तुम्हें मेरी यही अंतिम आज्ञा है।

जे मैं सत्य निबाहेउ दाना। मख कीन्हें गुर आयसु माना॥
तो सुत अरु तुअँ तें गत सोका। पुनि मैं मिलब अवसि परलोका॥

जो यदि मैंने सचमुच दान के धर्म का निर्वाह किया है और यज्ञ करके गुरु की आज्ञा का पालन किया है, तो सब प्रकार के शोकों से मुक्त होकर मैं अपने पुत्र से व तुमसे पुनः स्वर्ग में अवश्य मिलूँगा।

एहि भूतल कुभाग कर मारा। सम्भव कत अब मिलन हमारा॥
अस कहि दुसह दाह उर पाई। परे नृपति महितल मुरुछाई॥

दुर्भाग्य की मार से आहत हुआ हमारा पुनर्मिलन इस भूमि पर अब कहाँ सम्भव है? ऐसा कहते हुए हृदय में दुःसह दाह पाकर वे राजा मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़े।

भई चेत तब धरि अति धीरा। धर्मि कहे अस बचन गभीरा॥
अहो सोक अति भीषन पाई। मैं चहेउ निज धरम बिहाई॥

फिर कुछ क्षण उपरान्त जब उन्हें चेतना हुई, तब अत्यन्त धैर्य धरकर उन धर्मज्ञ राजा ने यह गम्भीर वचन कहे- अहो! अत्यन्त भीषण शोक से आहत होकर मैंने अपने धर्म को त्याग देना चाहा।

जेइ धरम पालत दुरभागा। तनय मोर प्रिय सुरपुर लागा॥
तजौं ताहिं किमि दुख अति पाई। कहि पुनि पुनि लागे पछिताई॥

जिस धर्म का पालन करते दुर्भाग्यवश मेरा प्रिय पुत्र स्वर्ग सिधार गया, भीषण दुःख पाकर भी मैं अपने उसी धर्म को कैसे त्याग दूँ? इस प्रकार कहकर वे बार-बार पछतानें लगे।

अब मोहि देअँ जिआवहि जैसे। धरम साधि मैं जीउब तैसे॥
पै रजाइ पति देइ न जब लौ। जिअत जाउँ तनु तजौ न तब लौ॥

अब विधाता मुझे जैसे भी जिलावे धर्म की रक्षा करता हुआ मैं उसी प्रकार जीऊँगा। किन्तु जब तक मेरे स्वामी आज्ञा नहीं देते, तब तक मैं शरीर नहीं त्यागूँगा, बस जीता चला जाऊँगा।

दोहा- प्रिये कहा पति मोहि अस इहँ सव आवइ जेइ।
तासु दाह कृत तबुहि करु जन तिन्ह पट जब देइ॥१९९॥

हे प्रिये! मुझे मेरे स्वामी ने कहा है कि यहाँ जो भी शव आए उसका दाह-संस्कार तुम तभी करना, जब उसके परिजन तुम्हें (उस पर चढ़े हुए) वस्त्र अर्पित कर दे।

चौ.- तातें करन हेतु सुत दाहा। बसन देहु होइ धरम निबाहा॥
बिदित नाथ तोहि अब मम पाही। मृत सुत अछत अहहि कछु नाहीं॥

इसलिये पुत्र का दाहसंस्कार करने के लिये तुम वस्त्र दो, जिससे मेरे धर्म का निर्वाह हो सके। हे नाथ! आप जानते ही हैं, अब मेरे पास मेरे इस मृत पुत्र के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

पियतम बसन काँह तें लाऊँ। धरमी एक सुनि न पै राऊ॥
तब तारा कह अह तनु सारी। देउँ अरधि एहि महुँ तें फारी॥

हे प्रिय! मैं वस्त्र कहाँ से लाऊँ? किन्तु हे परीक्षित्! उन धर्मज्ञ राजा ने उनकी एक न सुनी। तब तारा ने कहा- मेरे शरीर पर यह साड़ी है, इसी में से फाड़कर आधी मैं आपको दे देती हूँ और

अरध तें पुनि निज लाज निबारी। होउ धरमरच्छिका तुम्हारी॥
अस कहि मृत सुत बदनु निहारी। तारा जसहि फारि लगि सारी॥

और जो आधी बचेगी उससे मैं अपनी लज्जा का निवारण करके आपके धर्म की रक्षिका होऊँगी। ऐसा कहकर अपने मृत पुत्र का मुख देखते हुए तारा जैसे ही अपनी साड़ी फाड़नें लगी,

तसहि पूर नभ सघन प्रकासा। धन्य धन्य धुनि भइ सब आसा॥
अज हरि हर इंद्रादि समेता। नृप सन प्रगटे धरम निकेता॥

वैसे ही आकाश तीव्र प्रकाश से भर गया और सब दिशाओं में धन्य हो, धन्य हो यह शब्द हुआ। ब्रह्माजी, शिवजी, श्रीहरि और इन्द्रादि देवों के साथ स्वयं धर्मराज हरिश्चन्द्र के सम्मुख प्रकट हुए।

कौसिक संग रहे तेहिं काला। किए संग मुनिबृंद बिसाला॥
अस लखि तिय समेत सतधामा। चकित नाइ सिरु कीन्ह प्रनामा॥

उस समय विश्वामित्रजी भी मुनियों का विशाल समूह अपने साथ लिये उनके साथ उपस्थित थे। यह देखकर सत्य के धाम राजा हरिश्चन्द्र ने रानी सहित चकित होकर उन्हें सिर नवाकर प्रणाम किया।

आसिस दइ सुर दुंदुभि दीन्ही। पुष्पबृष्टि उन्ह पर मुनि कीन्ही॥
तेहिं सवँ धरम देत उन्ह धीरा। कहन लाग अस बचन गभीरा॥

देवताओं ने उन्हें आशीर्वाद देते हुए दुन्दुभियाँ बजाई और मुनियों ने उन पर पुष्पवर्षा की। उस समय धैर्य बँधाते हुए धर्मराज उन्हें गम्भीर वाणी में इस प्रकार कहने लगे-

धन्य तोर औदारज दाना। धन्य सत्यरति तोर महाना॥
धन्य धीरता राउ तुम्हारी। धन्य धरमनिष्ठा तव भारी॥

तुम्हारी उदारता और तुम्हारी दानशीलता धन्य है, सत्य में तुम्हारा महान प्रेम धन्य है। हे राजन! तुम्हारी धीरता धन्य है और धर्म में तुम्हारी महान निष्ठा भी धन्य है।

धीर उदार बीर जग जेते। निज आदरस गनिहिं तोहि तेते॥
देखु त्रिदेव सहित सुरराजा। इहाँ उपस्थित सहित समाजा॥

इस संसार में जितनें भी धीर, वीर और उदार पुरुष हैं, वे सब तुम्हें ही अपना आदर्श मानेंगे। ये देखो! त्रिदेवों व समस्त देवताओं सहित देवराज इन्द्र, यहाँ उपस्थित हुए हैं।

अस कठोर परिखेहुँ तोहि जेई। अए छमा हित कौसिक तेई॥
बिस्वामित्र तदुप अगुआए। बिनय लाग करि सिरु निज ढाए॥

जिन्होंने आपकी इतनी कठिन परीक्षा ली है वे महर्षि विश्वामित्र भी तुमसे क्षमा माँगनें आए हैं। तदुपरान्त विश्वामित्रजी आगे आए और लज्जित होकर उनसे विनती करने लगे।

दोहा- पुनि कह कारन मोर नृप भयउँ तोहि अति कष्ट।
छमिअ मोर अपराध पुनि करिअ ताप मम नष्ट॥२००॥

फिर उन्होंने कहा- हे राजन! मेरे कारण आपको महान कष्ट प्राप्त हुआ, आप मेरे इस अपराध को क्षमा करके मेरा संताप दूर कीजिये।

चौ.- पूरब जे तव बाग नसाया। रहा सो सूकर मोरिहि माया॥
कपट रहा मम कुमर कुमारी। जेहिं मिस मैं हरि निधि तव भारी॥

पूर्वकाल में जिसने आपका उपवन उजाड़ा था, वह शूकर मेरी ही माया थी। वे कुमार-कुमारी भी मेरा ही कपट थे, जिनके बहानें मैंने आपकी महान सम्पत्ति हर ली थी।

मैंहि बिप्र होइ तव सुत नारी। क्रयी देत संपत्ति तोहि भारी॥
रहा बहोरि मैंहि सो नागा। रोहित कहँ काटेहुँ जे बागा॥

मैंने ही विप्र का वेष धरकर आपको बहुत-सा धन देकर आपसे आपकी स्त्री व बालक को खरीदा था। वह सर्प भी मैं ही था जिसनें वाटिका में राजकुमार रोहित को काटा था।

धरम रहे पुनि मेथर सोई। मरघटु तोहि नियोजेहुँ जोई॥
दुख अकथ्य मम कारन लागा। नृपति धरम तुम तदपि न त्यागा॥

फिर वे चाण्डाल स्वयं धर्मराज थे जिन्होंने आपको श्मसान में रखा था। हे राजन! आपको मेरे कारण अकथनीय दुःख सहना पड़ा और फिर भी आपने अपने धर्म को नहीं छोड़ा।

सत्यबादि जग तोर समाना। भा न अहहि अरु होइ न आना॥
तेहिं सवँ इंद्र अमिअ बरषाई। रोहित कहँ पुनि दीन्ह जिआई॥

आप जैसा सत्यवादी इस संसार में न हुआ है, न (इस समय) है और न आगे ही कोई हो पायेगा। उस समय देवराज इन्द्र ने अमृत की वर्षा करके रोहित को पुनः जीवित कर दिया।

छन्द- जीवित भयउँ रोहित निरखि अस मात पितु प्रमुदित भए।
करि सुत तिलक नृप तिय सहित धरि दिब्य तनु सुरपुर गए॥
यह राजराजहिं गाथ निर्मल भाँति सब मंगलप्रदा।
तातें कही रामेस बिस्तृत रुचि लहहिं हरिजन सदा॥

रोहित जीवित हो चुका है यह देखकर माता-पिता को महान आनन्द प्राप्त हुआ। तदुपरान्त! पुत्र का तिलक करके रानी सहित राजा हरिश्चन्द्र दिव्य शरीर धारण करके देवलोक को चले गए। राजाधिराज महाराज हरिश्चन्द्र की यह निर्मल कथा सब प्रकार के मङ्गलों को देनेंवाली है। रामेश्वर ने इसे विस्तारपूर्वक कहा है, क्योंकि श्रीहरि के भक्त सदैव-से ही इसमें रुचि लिया करते हैं।

दोहा- परिछित रोहित बंस पुनि भै बाहुक महिपाल।
रही रानि बहु तदपि उन्ह भा न तनय बहुकाल॥२०१॥

हे परीक्षित! फिर (हरिश्चन्द्रनन्दन) रोहित के वंश में बाहुक नाम के एक राजा हुए, जिनकी बहुत-सी रानियाँ थी, किन्तु बहुत समय बीतने पर भी उनके यहाँ कोई पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ।

चौ.- एहि दुख नृप नित रहइ उदासा। अकसर गै सुररिषि उन्ह पासा॥
तब नृप निज दुख मुनिहिं जनावा। सुत हित पुनि उन्ह तें बर पावा॥

अपने इसी दुःख के कारण वे राजा सदैव निराश रहा करते थे। एक बार देवर्षि नारद उनके पास गए, तब राजा ने अपना दुःख उन्हें कह सुनाया और उनसे पुत्र प्राप्ति का वर पा लिया।

एहिबिच अरि करि उन्ह अनि नासू। नगर बिभव सब छीनेहुँ तासू॥
रानिन्हँ संग किए तब राऊ। मुनिन्ह निकट बन कीन्हेंसि ठाऊँ॥

इसी बीच शत्रुओं ने उनकी सेना को नष्ट करके नगर सहित उनका सारा वैभव छीन लिया। तब अपनी रानियों को साथ लेकर राजा वन में जाकर मुनियों के आश्रमों के निकट रहनें लगे।

तहँ सुतहीन अरिन्हँ परतारे। नृप सहसा सुरलोक सिधारे॥
लखि उन्ह संग उन्हउँ बड़ि रानी। सती होन लागिसि दुख मानी॥

शत्रुओं से पीड़ित वे पुत्रहीन राजा वहाँ रहते हुए अचानक स्वर्ग सिधार गए, यह देखकर उनके साथ ही उनकी बड़ी रानी दुःखी होकर सती होने लगी।

तब मुनि और्ब गरभजुत सोधी। रोकि तेहिं बहुभाँति प्रबोधी॥

सौतन्हि जानि बात जब ऐही। दीन्ह गरान्न डाह बस तेहीं॥

तब महर्षि और्व ने उसे गर्भवती जानकर बहुत प्रकार से समझाकर रोक लिया। जब उसकी सौतों को यह बात पता चली तब उन्होंने ईर्ष्यावश रानी को विषयुक्त भोजन खिला दिया।

बूझि मुनिन्हँ समेत सो रानी। चिंता बस्य परम अकुलानी॥
जद्यपि गर उतरेहुँ उन्ह गरभा। किन्तु न भा प्रभाउ तिन्ह अरभा॥

सौतों की करतूत को जानकर मुनिगणों सहित वह रानी चिन्ता से अत्यन्त व्याकुल हो उठी। यद्यपि भोजन में मिला हुआ वह विष उसके गर्भ में उतर चुका था, किन्तु फिर भी गर्भस्थ शिशु पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

दोहा- **सोइ गर धरि एक बालक जनमेहुँ जब नरराउ।**
गर संजुत लखि तिन्ह सगर राखेहुँ मुनिगन नाउ॥२०२॥

हे परीक्षित! उसी विष को धारण किये हुए जब एक बालक का जन्म हुआ, तब ब्राह्मणों ने उसे विष को धारण किये हुए देखकर उसका नाम 'सगर' रख दिया।

चौ.- **तरुन भए तेहिं सेन जुड़ावा। और्बहुँ मत पितु राज फिरावा॥**
जीति नृसंस नृपन्हँ रनु भारे। करि बिरूप सब जीअत छारे॥

तरुण होने पर उसने महर्षि और्व की सम्मति से सेना एकत्र की और अपने पिता का राज्य पुनः पा लिया। निर्मम राजाओं को घोर युद्ध में जीतकर उन्होंने उन सबको कुरूप बनाकर जीवित छोड़ दिया।

केसिनि रहि सगरहि बड़ि रानी। असमंजस भा सुत जिन्हँ ग्यानी॥
सुमति रही पुनि लघु तिय तेहीं। जाइ बिचित्र तूँबि एक जेही॥

महाराज सगर की बड़ी रानी का नाम केशिनी था, जिसका असमञ्जस नाम का एक ज्ञानवान पुत्र था। उन राजा की छोटी रानी का नाम सुमति था, जिसने एक विचित्र तूँबी को जन्म दिया।

षटदस सहस अरभु तिल जैसे। रहे सोउ तूँबरि बिच बैसे॥
अरभन्हँ बिगसत नृप जब चीन्हे। काढ़ि तूँबि तें बाहेर कीन्हें॥

उस तूँबी के मध्य भाग में तिल के आकार के साठ हजार भ्रूण विद्यमान थे, जब राजा ने उन भ्रूणों को बढ़ते हुए देखा तब उन्होंने उन्हें तूँबी से बाहर निकाल लिया

पृथक पृथक पुनि घृत घट माहीं। सजतन दीन्ह अरभु सो बाही॥
तदुप रही घट संख्या जेती। तिन्ह पहि धायँ राखि नृप तेती॥

और घी के अलग-अलग घड़ों में उन अर्भकों को यत्नपूर्वक स्थापित करवा दिया। तदुपरान्त जितनी संख्या घड़ों की थी, राजा ने उतनी ही शिशु-परिचारिकाएँ उनके पास नियुक्त कर दी।

सोउ कुंभन्हँ तें गत दस मासा। पितु कर अधर बढ़ावन हासा॥
उपजन लागेसि बहुतक बारे। कष्ट रहित उत्तम गुन धारे॥

फिर दस माह बीतने के उपरान्त उन घड़ों से पिता के अधरों की मुस्कान को बढ़ानेवाले और उत्तम लक्षणों से सम्पन्न बहुत-से बालक बिना किसी कष्ट के उत्पन्न होने लगे।

षटदस सहस सो सुत नृप केरे। भै जुजुत्सु बलवंत घनेरे॥
असमंजस मनु भइ जब बिरती। निजहि देखाइ लाग ते जड़ मति॥

सगर के वे साठ हजार पुत्र युद्ध के लिये तत्पर रहनेवाले और अत्यन्त बलि हुए। बड़ी रानी के पुत्र असमञ्जस के मन में जब वैराग्य हुआ, तब वह स्वयं को जड़बुद्धि प्रदर्शित करनें लगा।

दोहा- **उधम कीन्ह तेहिं भाँति बहु नृप त्यागेहुँ तब ताहिं।**
अंसुमान सुत तासु पुनि उन्ह राखेहुँ निज पाहि॥२०३॥

उसने बहुत प्रकार के उत्पात किये, तब राजा सगर ने उसे त्याग दिया और उसके पुत्र अंशुमान को अपने पास ही रख लिया।

चौ.- **अकसर और्ब रजायसु पाई। मख हयमेध कीन्ह नरराई॥**
अस लखि सरगनाथ भय पावा। जाइ जग्य हय सछल चुरावा॥

एक बार अपने गुरू महर्षि और्व की अनुमति पाकर राजा सगर ने अश्वमेध यज्ञ किया। यह देखकर स्वर्गाधिपति इन्द्र को भय हुआ और उन्होंने छल से उस यज्ञ के अश्व को चुरा लिया।

पुनि मुनि कपिल रहे जहँ साधी। हय उन्ह पाछ दीन्ह तेहिं बाँधी॥
हयहुँ न पाइ चिंत इत पागे। राजकुँअर सब खोजन लागे॥

फिर जहाँ महर्षि कपिल साधना कर रहे थे, वहाँ जाकर इन्द्र ने उस अश्व को उनके पीछे बाँध दिया। इधर अश्व को न पाकर चिन्तित हुए सब राजकुमार उसे खोजने लगे।

तेहिं सवँ भुजबल उन्ह गरुआए। खनि भुवि नीरधि सात बनाए॥
सगर सुतन्हँ प्रताप अस पाए। सागर सर सो सात कहाए॥

उस समय अपनी भुजाओं के बल से गर्वित होकर उन्होंने पृथ्वी को खोदकर उस पर सात समुद्र बना दिये। सगरपुत्रों का ऐसा प्रताप पाकर वे सात जलाशय ही सागर कहलाये।

एहिबिधि खोजत सकल कुमारा। कपिल मुनिहिं आश्रमु पगु धारा॥
सुरपति सबन्हि राखि मति फेरी। तनक न उन्ह मुनि महिमा हेरी॥

इस प्रकार अश्व को खोजते हुए सारे राजपुत्रों ने कपिलमुनि के आश्रम में प्रवेश किया। देवराज इन्द्र ने पहले ही सबकी मति हर रखी थी, जिससे उन्हें मुनि की महिमा का तनिक भी ध्यान न रहा।

पुनि मुनि पाछ देखि मख बाजी। तें बिमुग्ध सायुध कह गाजी॥

और मुनि के पीछे बँधे यज्ञाश्व को देखते ही मोह के वशीभूत हुए वे राजकुमार शस्त्र धारण करके गरजते हुए बोले-

दोहा- **ऐहि बाजिहर देखु सठ कस बग ध्यान लगाइ।**
बैठेहुँ परिहरि चिंत इहँ धरि बधु भागि न जाइ॥२०४॥

अश्व को चुरानेवाला यही है, देखो तो! यह सठ कैसा बगुले के समान ध्यान लगाए निश्चिन्त हुआ-सा यहाँ बैठा है। यह भाग न जाय, इसे पकड़कर मार डालो।

चौ.- **परिछित कपिल उग्र तपु राता। रहे तेहिं सवँ जे न कहाता॥**

खरभर सहित कुबच सुनि ऐसे। उघरे उन्ह दुहुँ लोचन जैसे॥

हे परीक्षित! उस समय महर्षि कपिल ऐसी उग्र तपस्या में लीन थे, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। कोलाहल के साथ ऐसे दुर्वचनों को सुनकर जैसे ही उन महर्षि कपिल के नेत्र खुले,

तैसेहि उमगि नयन उन्ह ज्वाला। जरे राजसुत सब ततकाला॥
जब दुरघटनि सवउँ अति बीता। सुत सुधि बिनु पितु हृदय असीता॥

वैसे ही उनके नेत्रों से ज्वाला उमड़ने लगी, जिसमें सारे राजपुत्र तत्क्षण जलकर भस्म हो गए। जब इस दुर्घटना को बहुत समय बीत गया, तब पुत्रों का कोई समाचार न मिलने से सगर का मन अशान्त हो उठा।

तब उन्ह अंसुमान कहँ प्रेरा। खोजत जेहिं मुनि आश्रमु हेरा॥
मुनि उन्ह सब बृतांत बखाना। अंसुमान सुनि अति दुख माना॥

तब उन्होंने अपने पौत्र अंशुमान को भेजा, जो खोजते हुए कपिल के आश्रम पर गये। मुनि ने उन राजपुत्रों का सारा वृत्तान्त बता दिया, जिसे सुनकर अंशुमान को अत्यन्त दुःख हुआ।

दग्धन्हँ अघ पुनि छमा कराई। पूछि मुकुति तिन्ह उन्ह सिरु नाई॥
बाजि देत तब देत असीसा। एहिंभाँति कहि लाग मुनीसा॥

फिर भस्म हुए राजपुत्रों का अपराध क्षमा करा कर अंशुमान ने सिर नवाकर मुनि से उनकी मुक्ति का उपाय पूछा। तब यज्ञ का अश्व लौटाकर आशीर्वाद देते हुए महर्षि कपिल इस प्रकार बोले-

अंसुमान गंगा महि आवहि। सुचि जल परस मुकुति सब पावहिं॥
हय समेत तब तें पुर आवा। निज पितुमह सन मरमु बुझावा॥

हे अंशुमान! यदि गङ्गाजी पृथ्वी पर आ सकें, तो उनके पवित्र जल का स्पर्श पाकर सभी राजपुत्र मुक्त हो जायेंगे। तब अश्व सहित अपने नगर में लौटकर उन्होंने सब वृत्तान्त अपने पितामह से कह दिया।

दोहा- **तब मख पूरन करि सगर पौतहि तिलक कराइ।**
तप हित बेगि चले बिपिन जग प्रति मोह बिहाइ॥२०५॥(क)

तब अपना यज्ञ पूर्ण करके पौत्र अंसुमान का राजतिलक करवाकर महाराज सगर संसार से विरक्त हो तप हेतू शीघ्र-ही वन को चल दिये।

गतपृहबंधन तहँ सगर औरब मत अनुहार।
धरे हृदय हरिपद कमल भै भवबारिधि पार॥२०५॥(ख)

वहाँ महर्षि और्व के मतानुसार कामनाओं के बन्धन से मुक्त हुए महाराज सगर भगवान श्रीहरि के चरण-कमलों को अपने हृदय में धारण करके भवसागर से तर गये।

चौ.- **अंसुमान इत श्रुति अनुहारा। करि सुराज बहु समउँ गुजारा॥**
इहिबिच दग्धन्हँ दुरगति ताहीं। निसि दिनु रहति सतत बिचलाही॥

इधर अंशुमान ने वेदों के अनुसार उत्तम रीति से राज्य करते हुए दीर्घ समय बिता दिया। इस बीच उनके भस्मीभूत चाचाओं की दुर्गति (की स्मृति) उन्हें निरंतर विचलित किया करती थी।

परिछित सुत उन्ह रहा दिलीपा। जोग पाइ तेहिं करि अवनीपा॥
आपु हेरि जन मुकुति प्रसंगा। बन गै साधि लाग तहँ गंगा॥

हे परीक्षित! उन अंशुमान का दिलीप नामक एक पुत्र था, जिसे योग्य पाकर उन्होंने राजपद दे दिया और स्वयं स्वजनों की मुक्ति का प्रसङ्ग याद करके, वन में जाकर गङ्गाजी की तपस्या करने लगे।

जद्यपि कीन्ह महातपु तेहीं। सुफल न भए तरे तजि देही॥
गुर अनुदित बिधि तप करि भारी। उन्हँ पाए हरिपद सुखकारी॥

यद्यपि उन्होंने घोर तप किया, किन्तु सफल न हो सके और शरीर त्यागकर मुक्त हो गये। गुरु के द्वारा निर्देशित विधि के अनुसार महान तप करके, उन्होंने श्रीहरि के सुखदायक चरणों को प्राप्त कर लिया।

तदुप दिलीप पितर उद्धारा। पितु समान तपु कीन्ह अपारा॥
पै न तेपि सुरसरि पद पाए। गै बैकुंठ सरीर बिहाए॥

तदुपरान्त पितृों के उद्धार के निमित्त महाराज दिलीप ने भी पिता के समान ही अपार तपस्या की; किन्तु उन्हें भी गङ्गाजी के चरणों का दर्शन प्राप्त न हुआ, तब वे शरीर त्यागकर वैकुण्ठ को चले गये।

दोहा- **तेहिं सव नाउँ भगीरथ रहेउ दिलीपकुमार।**
लीन्ह तेहिं कँध आपन पितु संकल्प प्रभार॥२०६॥

उस समय महाराज दिलीप का भगीरथ नाम का एक पुत्र था, उसने पिता के सङ्कल्प का महान भार अपने कन्धों पर ले लिया।

चौ.- **नृपति तेन्हँ तप दारुन कीन्हा। गंग प्रतुष्ट दरसु तब दीन्हा॥**
माँगु माँगु सुनि अस मृदु बानी। करि परिकम्म जोरि जुग पानी॥

फिर उन्होंने कठोर तप किया; तब परम सन्तुष्ट हुई गङ्गाजी ने उन्हें दर्शन दिया। (गङ्गाजी की) 'माँगो-माँगो' इस प्रकार कोमल वाणी सुनते ही भगीरथ ने दोनों हाथ जोड़कर उनकी परिक्रमा की।

कहा भगीरथ हे अघनासिनि। हे जगदीस पदाम्बुज वासिनि॥
कपिल मुनिहि प्रति करि अपकारा। स्वरिस पितर मम भै जरि छारा॥

फिर भगीरथ ने कहा- हे पापनाशिनी! हे श्रीहरि के चरणकमलों में निवास करनेवाली! महर्षि कपिल के प्रति अपराध करके, मेरे पितृ अपनी ही क्रोधाग्नि में जलकर भस्म हो चुके हैं।

अमर परस उन्ह मिल जे तिहारा। होइहि मातु तेन्ह उद्धारा॥
तातें महितल मातु पधारिअ। निज जलु दीन पितर मम तारिअ॥

यदि उन्हें आपका अमृतमय स्पर्श मिल जाय, तो हे माता! उनका उद्धार हो जायेगा। अतः हे मैय्या! आप पृथ्वी पर पधारिये और अपने जल से मेरे दीन पितृों का उद्धार कीजिये।

तनय प्रचंड बेग मम अहही। खसहि रसातल भुवि जनि सहही॥
पुनि जे सहइ धरा मम बेगा। तदहि मोहिं अह संसय ऐगा॥
तहँ नर अधम मोर जल न्हाई। देहि मोहि आपन अधमाई॥

हे पुत्र! मेरा का वेग प्रचण्ड है, पृथ्वी उसे सह नहीं सकेगी और रसातल को चली जाएगी। और यदि धरणी मेरा वेग सह भी ले, तब भी मुझे एक बात का संशय है; (वह यह कि) वहाँ पापकर्मा मनुष्य मेरे जल में नहाकर अपनी अधमता मुझे दे देंगे।

दुबिधा यह जे मोर मेटावौ। तब मैं अवसि धरनि तल आवौं॥
सुनत भगीरथ पुनि सिरु नाई। कह एहिंभाँति गंगहि मनाई॥

यदि तुम मेरी यह दुविधा मिटा सको, तब मैं अवश्य ही धरातल पर आ जाऊँगी। यह सुनकर भगीरथ ने पुनः सिर नवाकर माता गङ्गा को मनाते हुए इस प्रकार कहा-

हरि पद नित्य हृदय धर जोई। बेग प्रचंड तोर सह सोई॥
उन्ह उदार सिव कहँ मैं साधी। बेगि मनाइ लेउँ कर बाँधी॥

श्रीहरि के चरणों को जो नित्य अपने हृदय में धारण करते हैं, वे (भगवान शिव) ही आपके प्रचण्ड वेग को सहेंगे। उन उदार शिवजी की साधना करके मैं करबद्ध होकर उन्हें शीघ्र ही मना लूँगा।

दोहा- **अहहि बात पापिन्ह कइ मानिअ नहिं तिन्ह त्रास।**
हरिजन न्हाइहि तव सलिल होब आपु मँ नास॥२०७॥

रही बात पापियों की, तो आप उनसे भयभीत न होईये, क्योंकि श्रीहरि के भक्त आपके जल में स्नान करेंगे, जिससे आपकी मलिनता स्वतः नष्ट हो जायेगी।

चौ.- **सुनि कह गंग अवसि तब आवौं। बेगि जाइ तै सिवहि मनावौ॥**
सुनि अस बचन सहित अनुरागा। जाइ भगीरथ पुनि तपु लागा॥

यह सुनकर गङ्गाजी ने कहा कि तब मैं अवश्य ही आऊँगी। अब तुम शीघ्र जाकर शिवजी को प्रसन्न करो। यह वचन सुनकर भगीरथ पुनः जाकर प्रेमपूर्वक तपस्या करने लगे।

परिछित देखि तासु तपु भारी। प्रगटे सम्भु भगत हितकारी॥
जानि भगत पृह सम्भु उदारा। एवमस्तु एहिंभाँति उचारा॥

हे परीक्षित! उनकी महान तपस्या देखकर भक्तों का हित करनेवाले शिवजी प्रकट हुए। फिर अपने भक्त की इच्छा जानकर उन उदार शिवजी ने 'एवमस्तु' इस प्रकार कहा।

महि परि लागि गंग जल होई। तब सिव उन्ह निज जटा समोई॥
परिछित हरि चरनामृत जानी। महादेव अतिसय सुख मानी॥

फिर जब जलरूप होकर गङ्गाजी पृथ्वी पर गिरने लगी, तब शिवजी ने उन्हें अपनी जटाओं में समाहित कर लिया। हे परीक्षित! भगवान श्रीहरि का चरणामृत जानकर शिवजी ने अत्यन्त सुख मानकर
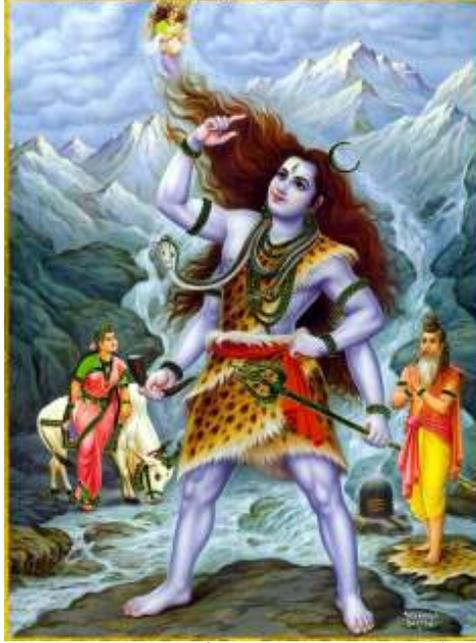
सादर गंगहिं सीस चढ़ाई। गंगाधर भै जग सुखदाई॥
तदुप भगीरथ चलेउँ तहवाँ। रही छार उन्ह पितरन्हि जहवाँ॥

सम्मानपूर्वक गङ्गाजी को अपने शीश पर चढ़ा लिया और संसार को सुख देनेवाले 'गङ्गाधर' नाम से अलंकृत हुए। तदुपरान्त भगीरथ वहाँ चले, जहाँ उनके भस्मीभूत पितृों की राख पड़ी हुई थी।

उन्ह अनुहरत गंग होइ धारा। जाइ महामनरथ उन्ह सारा॥

जल की धारा होकर गङ्गाजी ने उनका अनुशरण करते हुए जाकर उनका महामनोरथ पूर्ण कर दिया।

दोहा- **छार मात्र जे रहे नृपति तेपि तरे जिन्हँ पाइ।**
उन्ह हरिपदबासिनि महिम मुख तें कस कहि जाइ॥२०८॥

हे परीक्षित! जो रजमात्र ही रह गये थे, वे भी जिनका स्पर्श पाकर मुक्त हो गए; भगवान श्रीहरि के चरणों में निवास करनेवाली उन गङ्गाजी की महिमा (इस छोटे) मुख से कैसे कही जायँ?

चौ.- **एहिबिधि आपन पितरन्हँ तारी। भयउँ बंसधर परम सुखारी॥**
उन्ह प्रताप सुरसरि महि आई। भागीरथि इहि हेत कहाई॥

इस प्रकार अपने पितृों का उद्धार करके, अपने वंश का पालन करनेवाले भगीरथजी अत्यन्त सुखी हुए। देवनदी गङ्गा उनके प्रताप से पृथ्वी पर आई थीं, इसी कारण वे भागीरथी कहलाईं।

बिगत पीढ़ि कछु भगिरथ बंसा। रघु भै जाहिं पुरान प्रसंसा॥

रघु सुत अज अज सुत भै दसरथ। बलु प्रताप जिन्हँ रहेहु अकथ॥

कुछ पीढ़ी पश्चात् भगीरथ के वंश में रघु नामक पुराणप्रशंसित राजा हुए। उन रघु के पुत्र अज हुए और अज के पुत्र महाराज दशरथ हुए, जिनका बल और प्रताप अकथनीय था।

परब्रह्म निज अंस समेता। उए होइ सुत तासु निकेता॥
राम लखन अरु भरत अरिदवन। रहे नाउँ जिन्हँ कर जगपावन॥

स्वयं परब्रह्म परमात्मा अपने अंशों सहित उनके घर पुत्र रूप में उत्पन्न हुए थे, उस समय जगत को पवित्र करनेवाले उनके नाम राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न हुए।

परिछित रामचरित सुखखाना। श्रुति पुरान बहुभाँति बखाना॥
बहुरि सुना तुम्ह तेहिं बहुबारा। तातें करुँ न अधिक बिस्तारा॥

हे राजन! भगवान श्रीराम का चरित्र सुख की खान है, वेदो व पुराणों ने जिसे अनेक प्रकार से गाया है और आपने भी उसे बहुत बार सुना है, अतः मैं अधिक विस्तार नहीं करूँगा।

कौसिक जब दसरथ सन माँगे। राम लखन तब मुनि सँग लागे॥
दंडक बन ताड़का सँहारी। पंथ रामु गौतम तिय तारी॥

जब विश्वामित्रजी ने दशरथजी से याचना की, तब राम और लक्ष्मण उनके साथ हो लिये। दण्डक वन में ताड़का को मारकर मार्ग में श्रीरामजी ने गौतमपत्नि अहिल्या का उद्धार किया।

सुभुज राम मख रच्छत मारा। लंका महुँ मारीच पबारा॥
सानुज मुनि सँग मिथिला जाई। रामु भए पुरजन सुखदाई॥

फिर यज्ञ की रक्षा करते हुए सुबाहु का वध करके, श्रीरामजी ने (अपने बाण से) मारीच को लङ्का में फेंक दिया। फिर लक्ष्मण सहित जनकपुर जाकर उन्होंने पुरवासियों को सुख दिया।

तहँ उन्ह सहज सम्भु धनु तोरा। ब्याहि सीय भूपन्ह मदु मोरा॥
सिवधनु भंजन श्रव सुनि पाए। प्रथम परसुधर बहुत रिसाए॥

वहाँ उन्होंने सहज ही में शिवधनुष तोड़कर सीताजी को ब्याहा और उपस्थित राजाओं का मान भङ्ग किया। धनुष टूटने की ध्वनि सुनकर परसुरामजी आए और पहले अत्यन्त क्रुद्ध हुए।

पाछ राम कर बूझि प्रभाऊ। भै प्रसन्न गै आपन ठाऊँ॥

पीछे श्रीराम का प्रभाव समझकर प्रसन्न होकर वे अपने स्थान को लौट गये।

दोहा- **तदुप सुता आपन अनत रामानुजन्हँ बिआहि।**
जनक दीन्ह दाइज अकथ स्वमुख स्वभाग सिहाहि॥२०९॥

श्रीरामसीता विवाह के पश्चात् अपनी अन्य पुत्रियों का विवाह उनके छोटे भाईयों से करके, राजा जनक ने अपने मुख से अपने सौभाग्य की सराहना करते हुए अकथनीय दहेज दिया।

चौ.- **तदुप पितहि बच राखन माना। रघुपति सहज राजु बिसराना॥**
संग किए सौमित्र सिया पुनि। कानन गै तें धरे बेषु मुनि॥

तदुपरान्त पिता के वचन का मान रखने के लिये श्रीरामजी ने सहज ही में राज्य त्याग दिया और लक्ष्मणजी तथा सीताजी को साथ करके, मुनि का वेष धारण कर वे वन को चले गये।

बन सुख देत मुनिन्ह बहुभाँती। राम बधे बहु नर आराती॥
सूपनखा एक बार लोभाई। प्रनय हेतु सियपति सन आई॥

वन में मुनियों को अनेक सुख देते हुए श्रीरामजी ने अनेक मनुष्यभक्षी राक्षसों का वध किया। एक बार सूर्पनखा लुब्ध होकर उन सीतापति के सन्मुख विवाह का प्रस्ताव लेकर आई।

नृप परन्तु एकतिय ब्रतधारी। अनुचित कहि तेहिं अस्वीकारी॥
राच्छसि सियहिं दीन्ह तब त्रासा। क्रुद्ध लखन काटे श्रुति नासा॥

किन्तु हे परीक्षित! एकपत्निव्रती श्रीराम ने इसे अनुचित कहकर सूर्पनखा को अस्वीकार कर दिया। तब उस राक्षसी ने सीताजी को कष्ट दिया, जिससे कुपित होकर लक्ष्मण ने उसके नाक-कान काट लिये।

सुनि चढ़े खरदूषन बलसाली। चौदह सहस सुभट सँग घाली॥
रामु अकेल सहज सब मारे। लखि सुरमुनि भए परम सुखारे॥

यह सुनकर महाबली खर व दूषण ने चौदह हजार दैत्यों के साथ प्रभु पर आक्रमण किया। किन्तु उन्होंने अकेले ही सबको मार डाला। यह देखकर देवता और मुनि अत्यन्त सुखी हुए।

सूपनखा तब रावन पासा। जाइ कही सब आपन त्रासा॥
खर दूषन बध बहुरि बखाना। सुनत बीसभुज अति अचराना॥

तब सूर्पनखा ने रावण से जाकर अपना सारा दुःख कह सुनाया। फिर खरदूषण के मारे जाने का समाचार भी कहा; जिसे सुनकर बीस भुजाओंवाला रावण अत्यन्त चकित हुआ।

दोहा– **करि मारीचहि संग तेहिं सछल सियहरन कीन्ह।**
पंथ परेहुँ जटायु जब रावनु तेहिं बधि दीन्ह॥२१०॥

फिर उसने मारीच को साथ करके, छल से सीताजी को हर लिया और जब जटायु ने उसका मार्ग रोका, तो रावण ने उसका वध कर दिया।

चौ.– **राम समुख खग बिसरत प्राना। जातुधानपति पाप बखाना॥**
तब सुकंठ तें साधि मिताई। उन्ह सब दिसि सिय खोज कराई॥

प्राण त्यागते समय जटायु ने श्रीराम से असुरराज रावण का पाप कह सुनाया। तब उन्होंने वानरराज सुग्रीव से मित्रता करके, सब दिशाओं में सीताजी की खोज करवाई।

एहिबिच लंक जाइ हनुमाना। जारि गढ़हिं सिय सैन जुड़ाना॥
हनुमदादि अंगद रनधीरा। संग किए कपि कटकु गभीरा॥

इसी बीच हनुमान लङ्का में गये और (रावण के) किले को जला दिया तथा सीताजी का पता लगाया। फिर हनुमान, अङ्गद आदि रणधीर योद्धाओं सहित वानरों की विशाल सेना लेकर

कपिपति सहित रामु तहँ आए। अगम नीरधी जहँ उमगाए॥
तब नल नील सिंधु सो बाँधा। तहहिं राम रामेस्वर साधा॥

सुग्रीव समेत श्रीरामजी वहाँ आये, जहाँ दुर्लंघ्य समुद्र उमड़ रहा था। तब नल व नील नाम के दो वानरों ने समुद्र पर सेतु बाँधा और वहीं श्रीरामजी ने भगवान रामेश्वर की साधना की।

लंक आइ प्रभु अरि हित लावा। अंगद कहँ करि दूत पठावा॥
बीसबाहुँ तद्यपि जनि माना। रघुबर समुख समर तेहिं ठाना॥

लङ्का आकर प्रभु ने शत्रु का हित विचारकर, अङ्गद को दूत बनाकर उसके पास भेजा। किन्तु बीसबाहु रावण फिर भी नहीं माना और उसने भगवान श्रीराम के विरुद्ध युद्ध आरम्भ कर दिया।

तब असुरारि रजायसु पाई। गढ़ पर करि कपि भालु चढ़ाई॥
लखि दसभाल सुभट निज प्रेरे। बलि निसंक रनु घोर घनेरे॥

तब असुरनिकन्दन श्रीराम की आज्ञा से वानर-भालुओं ने लङ्का के किले पर चढ़ाई कर दी। यह देख दसमुख ने अपने योद्धाओं को भेजा, जो अत्यन्त बली, निडर और प्रबल युद्धाकाङ्क्षी थे।

कुमुख अकम्पन बलि अतिकाया। प्रभुज महोदर पंडित माया॥
मकर धूम बिरुपाख सुरारी। महापारसव अरु मनुजारी॥
इन्ह समेत सँग करि अति धारी। अनिप अमित निकसे बल भारी॥

दुर्मुख, अकम्पन, बलवान अतिकाय, प्रहस्त, मायाविषारद महोदर, मकराक्ष, धूम्राक्ष, विरूपाक्ष, देवान्तक, महापार्श्व और नरान्तकादि इन सबके साथ बहुत भारी सेना लेकर (अन्य) अनेकानेक बलवान सेनापति युद्ध के लिये निकले।

किन्तु प्रबल कपि सबन्हँ पचारे। गनि गनि कछु दिनु माँझ सँघारे॥

किन्तु प्रबल वानरों ने उन सबको ललकारा और गिन-गिनकर कुछ ही दिनों में मार डाला।

दोहा– **दसमुख प्रेरित घटकरन तब आवा रनु माहिं।**
दुर्दम सो अति जूझेहुँ दीन्ह कपिन्हँ बिचलाहि॥२११॥

तब रावण की प्रेरणा से कुम्भकर्ण युद्धभूमि में आया। उस दुर्दमनीय महायोद्धा ने भयङ्कर युद्ध किया और वानर-भालुओं को विचलित कर दिया।

चौ.– **देखि राम तेहिं मर्देहुँ जुद्धा। तब सक्रारि चढ़ेहुँ सक्रुद्धा॥**
तेहिं सकति लछिमन उर मारी। बंधुनेहि भै देखि दुखारी॥

यह देख श्रीरामचन्द्रजी ने युद्ध में उसका वध कर दिया। तब इंद्रशत्रु मेघनाद क्रोधपूर्वक चढ़ आया। उसने लक्ष्मण की छाती पर शक्ति का आघात किया; यह देख भ्रातृवत्सल श्रीराम दुःखी हो गये।

तब सँजुअनि आनिसि हनुमाना। लछिमन केर उबारेसि प्राना॥
तदुप समर करि कोप अपारा। इंद्रजीत दुर्दम उन्ह मारा॥

तब हनुमानजी सञ्जीवनी नामक औषध लाये और लक्ष्मणजी के प्राणों की रक्षा की। तदुपरान्त युद्ध में महान क्रोध करके, उन लक्ष्मणजी ने दुर्दमनीय इन्द्रजीत का वध कर दिया।

धुआँ देखि सुत भट हिय हारी। समर माँझ आवा बिवुधारी॥
अरि बध जतन कीन्ह तेहिं नाना। किंतु बधाएहुँ रघुपति बाना॥

अपने पुत्रों व योद्धाओं का विध्वंश देखकर देवताओं का शत्रु रावण विचलित मन से स्वयं युद्ध में आया। उसने शत्रुवध के लिये अनेक यत्न किये, किन्तु श्रीरामजी के बाण से मारा गया।

पितु बच साँच किए एहिंभाँती। फिरे अवध प्रभु असुर निपाती॥
लखि पुरजन सब भए असोका। द्विज मुनि बिबुध सहित तिहुँलोका॥

इस प्रकार पिता का वचन सत्य करके, असुरों को मारकर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी अयोध्या लौट आये। यह देखकर देवता, विप्र, मुनि और तीनों लोकों सहित समस्त अयोध्यावासी शोक रहित हो गये।

अकसर सिय प्रति सुनि अपबादा। उन्ह बिसारि प्रभु परम बिषादा॥
बिपिन रामसुत दुइ सिय जाए। बालमीक मुनि जेन्ह सिखाए॥

एक बार सीता के प्रति अपवाद सुनकर श्रीरामजी ने अत्यन्त विषादपूर्वक उन्हें त्याग दिया। वन में सीताजी ने श्रीरामजी के दो पुत्रों को जन्म दिया, जिन्हें महर्षि वाल्मिकी ने शिक्षा दी।

रहे तासु लव कुस अस नाऊँ। पितहि सरिस जिन्हँ रहेउ प्रभाऊ॥

उनके नाम 'लव' व 'कुश' थे, जिनका प्रभाव उनके पिता श्रीराम के ही समान था।

दोहा- पतिहि देत उन्ह बहुरि सिय पति सन धरनि समानि।
प्रभु तब कीन्ह बिषाद अस जे सबबिधि गत बानि॥२१२॥

फिर अपने उन पुत्रों को अपने पति श्रीरामजी को सौंपकर श्रीसीताजी उनके सन्मुख पृथ्वी में समा गई। उस समय प्रभु श्रीरामजी ने ऐसा विषाद किया जो सब प्रकार से वाणी के परे है।

चौ.- सुतन्हँ तिलक करि अंसन्ह साथा। गै बैकुंठ तदुप सिअनाथा॥
परिछित रामचरित सो सागर। हर बिरंचि हित पार न जाकर॥

तत्पश्चात् पुत्रों को राज्य देकर अपने अंशों सहित श्रीसीतापति वैकुण्ठ चले गये। हे राजन! श्रीरामजी का चरित्र उस समुद्र के समान है, जिसका पार पाना स्वयं शिवजी व ब्रह्माजी के लिये भी सम्भव नहीं।

भूलि राम कह जे एक बारा। तेपि होत भव बारिधि पारा॥
राउ जानि अस भय सब त्यागे। सुनु निमि चरित सुखद अब आगे॥

जो मनुष्य भूले से भी मात्र एक बार ही अपने मुख से राम कह देता है, वह भी भवसागर से तर जाता है। हे राजन! यह जानकर सम्पूर्ण भय का त्याग करके, अब आप राजा निमि का सुखद चरित्र सुनिये।

इच्छबाकु सुत निमि एक बारा। गुर बसिष्ठ सन जाइ उचारा॥
होम करै चहुँ मैं मुनिराई। रितिज मोर होइअ मख आई॥

इक्ष्वाकु के पुत्र राजा निमि ने एक बार अपने गुरु वशिष्ठजी के पास जाकर कहा कि हे-मुनिराज! मैं एक यज्ञ करना चाहता हूँ। अतः मेरे यज्ञ में आकर आप मेरे रित्विज होइये।

कह बसिष्ठ नृप पूरब तोरे। सुरपति दीन्ह निमंत्रनु मोरे॥
तातें मख उन्ह प्रथम करावौं। तहँ तें फिरि पृह तोर सरावौं॥

तब वशिष्ठजी ने कहा- हे राजन! इन्द्र ने मुझे तुमसे पहले यज्ञ का निमन्त्रण दिया है। अतः मैं पहले उनका यज्ञ करवाऊँगा, फिर वहाँ से लौटकर तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा।

तब लौ जोहुँ मोहि नरराई। अस कहि गै सुरपुर मुनिराई॥

हे राजन! तब तक मेरी प्रतिक्षा करो, ऐसा कहकर महर्षि वशिष्ठजी स्वर्ग को चले गए।

दोहा- **प्रबुध हृदय तब सोचेहुँ बपुष भरोष न थोर।**
तातें मख मैं लेउँ करि प्रोहित करि केउ और॥२१३॥

तब परम बुद्धिमान राजा निमि ने विचार किया कि इस शरीर का थोड़ा भी भरोसा नहीं है, इसलिये मैं किसी अन्य को पुरोहित बनाकर यज्ञ करवा लूँ।

चौ.- **अस बिचारि गौतमहि बोलाई। प्रोहित करि मख लाग कराई॥**
इत कछु सवहि सक्र मख सारे। मुनि मख हित निमि समुख पधारे॥

यह विचारकर उन्होंने महर्षि गौतम को बुलवाकर उन्हें अपना पुरोहित बनाया और उनसे यज्ञ करवाने लगे। इधर कुछ ही समय में इन्द्र का यज्ञ करवाकर वशिष्ठजी यज्ञ हेतू निमि के सन्मुख लौटे।

पुनि देखा प्रोहित करि आना। मख कर सिष भा क्रोध महाना॥
तब उन्ह कहेउ देत अस सापा। निज पंडितपनु तोहि अति दापा॥

और उन्होंने देखा कि उनका शिष्य दूसरे को पुरोहित बनाकर यज्ञ करवा रहा है, तो उन्हें बड़ा क्रोध आया। तब उन्होंने निमि को श्राप देते हुए कहा कि तुझे अपने पाण्डित्य का बड़ा मान है।

एहिं हित तुम निदरेहुँ बच मोरा। सो एहि समउ खसहि तनु तोरा॥
गुरहिं कोप निमि अनुचित जाना। भयउँ हृदय उन्ह छोभु महाना॥

इसी कारण तूने मेरे वचन का निरादर किया है, अतः इसी समय तेरा शरीरपात हो जाय। गुरु के द्वारा किया गया क्रोध निमि को अनुचित लगा और उनके मन में बड़ा क्षोभ हुआ।

तातें तेपि साप अस दीन्हा। गुरुबर तुअपि लोभ हिय कीन्हा॥
मख बहोरि मुअ सिष्यहि त्यागे। तुम सुरनाथ केर मख लागे॥

अतः उन्होंने भी यह श्राप दिया कि हे गुरुदेव! आपने भी अपने हृदय में लोभ किया है और इसी कारण आप मुझ शिष्य का यज्ञ छोड़कर देवराज इन्द्र के यज्ञ में चले गए।

एहि तें तवपि होइ तनुपाता। तदुप दुहुँन्ह तजे निज निज गाता॥

इसलिये आपका भी शरीरपात हो जाय, तदुपरान्त दोनों ने अपने-अपने शरीर त्याग दिये।

दोहा- **मखदीच्छित मुनि तेहिं समउँ निमि तनु सनरच्छेहुँ।**
मख पुरबत तहँ मुनिन्हँ सन बिवुध बृंद प्रगटेहुँ॥२१४॥

उस समय यज्ञ में दीक्षित अन्य मुनियों ने राजा निमि के शरीर को संरक्षित कर लिया और यज्ञ के पूर्ण होते ही वहाँ उन मुनियों के सन्मुख देवतागण प्रकट हुए।

चौ.- **मुनिगन तब समेत अनुरागा। उन्ह सन निमि कर जीवनु माँगा॥**

नृप सुर तेहिं सवँ निमिहि जिआवा। हरष परन्तु न उन्ह कछु पावा॥

तब मुनिगणों ने प्रेम सहित उनसे राजा निमि के लिये जीवन माँगा। हे राजन! देवताओं ने उसी समय निमि को जीवित कर दिया, किन्तु इससे उन्हें कुछ भी प्रसन्नता नहीं हुई।

ते कह चरन बंदि अस ताहीं। चहब सरीर बंध मैं नाहीं॥
रहहि मीचु भय बपु कर मूला। भगतिहि पंथ सूल समतूला॥

उन्होंने देवताओं की चरण वन्दना करके कहा कि मुझे शरीर का बंधन नहीं चाहिये। शरीर के मूल में मृत्यु का भय सदैव बना रहता है, जो भक्ति के मार्ग में शूल के तुल्य होता है।

तातें सुर अस करिअ उपाऊ। हरि चिंतन मैं अतनु करि पाऊँ॥
तब सुर कह अब ते तनु त्यागे। रहुँ तैं जीवन्हँ पलकन्हि लागे॥

अतः हे देवताओं! आप वह उपाय कीजिये, जिससे कि मैं शरीर के बिना भी भगवान का चिन्तन कर सकूँ। तब देवों ने कहा- अब से आप शरीर त्यागकर जीवों की पलकों पर निवास कीजिये।

पलक निमेष जनावहि तोहीं। अस कहि सुर स्वधाम गै ज्योंही॥
त्योंहि राउ पुनि बपुष बिसारा। भए अमर सूच्छम तनु धारा॥

पलकों के गिरने से तुम्हारे होने का बोध होगा, ऐसा कहकर जैसे ही देवता अपने-अपने धाम को गए, त्योंही राजा निमि ने पुनः शरीर त्याग दिया और सुक्ष्म शरीर धारण कर अमर हो गये।

मुनिगन अस लखि कीन्ह बिचारा। नृप बिनु बढ़िहहि चोर जुआरा॥
तब निमि तनु मथि उन्हँ तेहिं काला। उपजानेहुँ सदगुनि एक बाला॥

यह देखकर मुनियों ने विचार किया कि राजा के बिना नगर में चोर और जुँआरी बढ़ जायेंगे। तब मुनियों ने उसी समय निमि के शरीर को मथकर एक सद्गुण सम्पन्न बालक उत्पन्न किया।

केवल पितहि जनम तेहिं दीन्हा। तातें जनक नाउँ मुनि कीन्हा॥

उसे केवल पिता ने ही जन्म दिया था, इसी कारण मुनियों ने उसका नाम जनक रख दिया।

दोहा- **प्रानरहित तनु तें उएहुँ जगत माँझ सो बाल।**
तातें नाउँ बिदेह धरि भा प्रसिद्ध नरपाल॥२१५॥

वह बालक इस संसार में प्राणरहित शरीर से उत्पन्न हुआ था, इसी कारण 'विदेह' के नाम से वह प्रसिद्ध नरेश हुआ।

चौ.- **मंथन तें उपजेहुँ एहि कारन। मिथिल नाउँ एक भा कलिताड़न॥**
उन्ह सबदिसि श्रुति धरम सराई। मिथिला सब सुखधाम बसाई॥

हे परीक्षित! मन्थन से उत्पन्न होने के कारण उस बालक का एक नाम मिथिल भी हुआ। उन्होंने सब दिशाओं में वेदोक्त धर्म की स्थापना करके सुखों की धाम मिथिला नगरी बसाई।

उन्हहि सुबंस नृपति जे ज्याए। तेपि जनक बैदेह कहाए॥
भए सीरधुज पुनि कुल तेऊ। भुवि तें पाइ सुता सिय जेऊ॥

उनके उत्तम वंश में जितने भी राजा उत्पन्न हुए, वे सब भी जनक और विदेह ही कहलाए। फिर उसी वंश में सीरध्वज नाम के जनक हुए, जिन्होंने पृथ्वी से सीता नाम की कन्या प्राप्त की थी।

सोउ कुल नृप सब भए बिरागी। धरमातम अरु प्रज अनुरागी॥
अब ससिबंस चरित सुखखाना। बरनउँ परिछित सुनु धरि ध्याना॥

उस कुल के सारे राजा वैराग्यवान, धर्मात्मा और प्रजा से प्रेम करनेवाले हुए। हे परीक्षित! अब मैं तुमसे चन्द्रवंश का चरित्र कहता हूँ, जो सुखों की खान है। आप ध्यानपूर्वक सुनिये।

हरिहि नाभिसर सुन्दर कंजा। उए बिरंचि महातपपुंजा॥
अत्रि महामुनि सुत भए तिन्ह के। उयउँ सुधामय ससि दृग जिन्हँ के॥

भगवान श्रीहरि के नाभिरूपी सरोवर के सुन्दर कमल से महान तप के पुञ्ज ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। उनके पुत्र महामुनि अत्रिजी थे, जिनके नेत्रों से अमृतमय चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई।

अज सुजोग जब ससि कहँ चीन्हा। उड़ द्विज भेषज पति करि दीन्हा॥
अकसर राजसूय ससि सारा। एहि तें भा तेहिं गरुअ अपारा॥

जब ब्रह्माजी ने चन्द्रमा को सब प्रकार से योग्य देखा, तब उन्होंने उन्हें नक्षत्रों, ब्राह्मणों और औषधियों का स्वामी बना दिया। एकबार चन्द्रमा ने राजसूय यज्ञ सम्पन्न किया, जिससे उन्हें अपार गर्व हो आया।

दोहा- **तेहिं सवँ मद उनमत्त ससि आपन गुर गृह जाइ।**
उन्ह तिय तारा हरी हठि निज गृह राखि दुराइ॥२१६॥ (क)

उस समय अहङ्कार से उन्मत्त हो चन्द्रमा ने अपने गुरु के घर जाकर उनकी स्त्री तारा का बलपूर्वक हरण करके उसे अपने घर लाकर छिपा लिया।

निज तिय पुनि पुनि माँगि गुर ससि तद्यपि न फिरानि।
सुरन्हँ जोरि तब कुपित गुर दंड देन उन्ह ठानि॥२१६॥ (ख)

बृहस्पति ने उनसे बार-बार अपनी पत्नि की याचना की, किन्तु चन्द्रमा ने फिर भी (उनकी पत्नि उन्हें) नहीं दी। तब देवगुरु ने कुपित हो देवताओं से मिलकर चन्द्रमा को दण्ड देने का निश्चय किया।

रहे अंगिरा सिवहि गुर तनय बृहस्पति जेन्ह।
सो नातउँ गनि प्रमथ करि पच्छ लीन्ह सिव तेन्ह॥२१६॥ (ग)

महर्षि अङ्गिरा भगवान शिवजी के विद्यागुरु थे, जिनके पुत्र देवगुरु बृहस्पति हैं। उस नाते का स्मरण करके प्रमथों के साथ शिवजी ने उन वृहस्पति का पक्ष लिया।

बृहस्पतिहि प्रति द्वेषबस सुक्र असुर करि साथ।
बिधुहि पच्छ भै देखि अस हरषेहु अति उड़नाथ॥२१६॥ (घ)

वृहस्पति के प्रति द्वेष होने के कारण शुक्राचार्य दैत्यों को साथ लेकर चन्द्रमा के पक्ष में हो गये। यह देखकर नक्षत्रों के स्वामी चन्द्रमा अत्यन्त प्रसन्न हुए।

चौ.- सुर अरु असुर हेतु करि तारा। तदुप लाग करि समर अपारा॥
उभय दलन्ह तब तरकि बिनासा। मुनि अंगिरा गए अज पासा॥

तदुपरान्त तारा को कारण बनाकर देवता और दैत्य भयङ्कर युद्ध करने लगे। तब दोनों ही पक्षों के सम्भावित विनाश का अनुमान करके महर्षि अङ्गिरा ब्रह्माजी के पास गये।

तासु बिनय अज समर निबारा। ससिहि बोलि बहुबिधि फटकारा॥
गरुअ गरेहु तब परम खिसाई। इंदु दीन्ह गुर नारि फिराई॥

उनकी प्रार्थना पर ब्रह्माजी ने युद्ध रुकवा दिया और चन्द्रमा को बुलवाकर बहुत फटकारा। तब अहङ्कार के नष्ट होने पर चन्द्रमा ने लज्जित हो अपने गुरु की स्त्री उन्हें वापस लौटा दी।

ससि तें गरभवंति भइ तारा। बूझि जीव कृत कोप अपारा॥
तारा देखि परम भय माना। पुनि दुख करि सो गरभु खसाना॥

"तारा चन्द्रमा से गर्भवती हो चुकी है" यह जानकर बृहस्पति ने अत्यधिक क्रोध किया। यह देखकर तारा अत्यधिक भयभीत हो गई और उसने अत्यन्त दुःख के साथ उस गर्भ को गिरा दिया।

तेहिं सवँ सिसुहि तेज छबि पागे। ससि अरु सुरगुर दुहुँ अनुरागे॥
लेन बहोरि उभय सो बालक। करि लग कलह अनख नरपालक॥

उस समय उस उत्पन्न हुए बालक के तेज और सुन्दरता को देखकर चन्द्रमा और देवगुरु दोनों को अनुराग हो आया। फिर वे दोनों ही उस बालक को पाने के लिये परस्पर स्पर्धा और कलह करने लगे।

तब बिरंचि तारा सन पूछा। सिसु किन्ह सुत कहु परिहरि छूछा॥

तब ब्रह्माजी ने तारा से पूछा कि सङ्कोच त्यागकर कहो! यह बालक किसका पुत्र है।

दोहा- सुनि तारा कह ससिहि अह एहि बालक कर तात।
अज आयसु तब सोउ सिसु पाइ गयउ द्विजजात॥२१७॥

यह सुनकर तारा ने कहा कि चन्द्रमा ही इस बालक के पिता हैं। तब ब्रह्माजी की आज्ञा से उस बालक को चन्द्रमा ने प्राप्त कर लिया।

चौ.- धीरबुद्धि अति सिसु सो चीन्हा। बुध अस नाउँ तेहिं अज दीन्हा॥
इला नाउँ तिय तें पुनि पावा। सो बुध सुत सुभ लच्छन ठावा॥

उस बालक को अत्यन्त गम्भीर बुद्धि से युक्त देखकर ब्रह्माजी ने उसका नाम 'बुध' रख दिया। फिर अपनी 'इला' नाम की स्त्री से उस बुध को शुभलक्षण सम्पन्न एक पुत्र प्राप्त हुआ।

पितु तेहिं नाउँ पुरुरवा सारा। उरबसि सँग जेहिं कीन्ह बिहारा॥
आगे षट् सुत अपछरि जाए। चंद्रबंसि जे जगत कहाए॥

पिता बुध ने उसका नाम पुरुरवा रखा, जिसने उर्वसी नामक अप्सरा के साथ विहार किया। आगे चलकर उस अप्सरा ने (पुरुरवा के) छः पुत्रों को जन्म दिया, जो संसार में चन्द्रवंशी कहलाए।

बिजय रहा पंचम सुत जेऊ। जह्नु नाउँ नृप भा कुल तेऊँ॥
सुरसरि गरुअ देखि एक बारा। भयउँ जह्नु हिय कोप अपारा॥

उनका 'विजय' नाम का जो पाँचवाँ पुत्र था, उसके वंश में जह्नु नाम का एक राजा हुआ। एक बार देवनदी गङ्गा का गर्व देखकर उन महाराज जह्नु के हृदय में अत्यन्त क्रोध हुआ।

तब ते हरन गंग अभिमाना। अंजुलि भरि तेहिं करि गै पाना॥
पुनि जब बिबुध तासु पग लागी। सनय सरग श्री उन्ह सन माँगी॥

तब गङ्गा का अभिमान नष्ट करने के लिये वे उन्हें अञ्जुली में भरकर पी गये। फिर जब देवताओं ने उनके चरणों में गिरकर उनसे विनयपूर्वक स्वर्ग की शोभा (गङ्गा) को वापस माँगा,

दोहा- **जह्नु हरषि तब गोद निज गंग सुता करि जाइ।**
परिछित तब जगपावनी जाह्नबि जगत कहाइ॥२१८॥ (क)

तब पुनः महाराज जह्नु ने अपनी गोद से पुत्री रूप में गङ्गाजी को प्रकट कर दिया। हे परीक्षित! जगत को पवित्र करनेवाली वे गङ्गाजी तभी जाह्नवी कहलाई।

जह्नुबंस पुनि कुसिक भए गाधि तनय भै तेन्ह।
रही सुता गुनवंति उन्ह नाउँ सत्यवति जेन्ह॥२१८॥ (ख)

फिर जह्नु के वंश में कुशिक नाम के राजा हुए, जिनके पुत्र गाधि हुए। उन गाधि की एक अत्यन्त गुणवती कन्या थी, जिसका नाम सत्यवती था।

चौ.- **मुनि रिचीक अति जतन जुड़ाई। पतिनि रूप तेहिं नृप तें पाई॥**
अकसर मुनिहिं सास अरु नारी। सुत हित उन्ह सन पूहा उचारी॥

महर्षि रिचिक ने अत्यधिक यत्न करके महाराज गाधि से उसे पत्निरूप में पा लिया। एक बार महर्षि रिचिक की सास व उनकी पत्नि सत्यवती ने मुनि के सन्मुख पुत्रप्राप्ति की अपनी कामना कही।

मुनि तब मंत्र पुत्र पृह साधा। दुहुँ हित पृथक पृथक चरु राँधा॥
गै बहोरि न्हावन सरि तीरा। भई सास तब हबिहि अधीरा॥

तब मुनि ने मन्त्र में पुत्र की कामना लिये, उन दोनों के लिये अलग-अलग चरु पकाया। फिर वे नदीतट की ओर स्नान के निमित्त निकल गये, तभी उनकी सास हविष्यान्न पाने के लिये अधीर हो उठीं और

चरु निज तुरत सुता सन माँगा। तेहिं दीन्ह भ्रमबस निज भागा॥
जननिहिं भाग आपु पुनि खावा। बूझि भूल मुनि खेद जनावा॥

उन्होंने तुरन्त सत्यवती से अपना भाग माँग लिया, तब सत्यवती ने भ्रमवश उन्हें अपना भाग दे दिया और अपनी माँ का भाग स्वयं खा गई। उनकी भूल समझकर मुनि ने खेद व्यक्त किया-

कीन्ह प्रिये तैं अनरथ जेई। सुनु आगिल कस फरिहहि तेई॥
बंधु होइ अब तउ मुनिराऊ। ब्रह्मबेत सब मंगल ठाऊँ॥

हे प्रिये! तुमने जो अनर्थ किया है, वह आगे चलकर किस प्रकार फलेगा; वह सुनो! अब तुम्हारी माता के गर्भ से) जो तुम्हारा भाई होगा, वह महान मुनि, ब्रह्मवेत्ता और समस्त मङ्गलों का धाम होगा।

सुत परन्तु तउ छत्रियद्रोही। होइहि रनुपिपासु अति कोही॥
सुनत सत्यवति कह अकुलाई। होनि दुखद यह हरु मुनिराई॥

किन्तु तुम्हारा पुत्र क्षत्रियों से द्रोह करनेवाला, युयुत्सु (युद्ध-पिपासु) और अत्यन्त क्रोधी होगा। यह सुनते-ही सत्यवती ने व्याकुल होकर कहा कि हे मुनिवर! आप इस दुःखद् भवितव्यता को टाल दीजिये।

एवमस्तु अस कहि मुनि ग्यानी। पुनि बोले एहिंबिधि मृदु बानी॥

तब 'एवमस्तु' इस प्रकार कहकर वे ज्ञानी मुनि पुनः कोमलवाणी में बोले-

दोहा- **होइ पौत अब तोर तस जस मैं प्रथम कहेउ।**
सत्यवतिहि तें सवँ बिगत तब जमदग्नि उएउँ॥२१९॥

अब तुम्हारा (पुत्र नहीं) पौत्र वैसा होगा, जैसा मैंने पहले कहा था। तब समय बीतने पर सत्यवती के गर्भ से महर्षि जमदग्नि का जन्म हुआ।

मासपारायण सातवाँ विश्राम

चौ.- **तस धरि प्रकृति रिचिक जस कयऊ। बिस्वामित्र गाधिसुत भयऊ॥**
नृप मैं चरित कछुक उन्ह पूरब। कहा चरित जमदग्निहिं सुनु अब॥

मुनि रिचिक ने जैसा कहा था, वैसा ही स्वभाव लिये, विश्वामित्र गाधि के पुत्र हुए। हे राजन! उनका कुछ चरित्र मैंने आपसे पूर्व में कहा था। अब आप महर्षि जमदग्नि का चरित्र सुनिए।

रही रेनुका उन्ह कइ नारी। भै जिन्हँ तेजवंत सुत चारी॥
कठिन सुभायँ रिचिक जस गावा। लघुतम मुनि सुत तैसेउँ पावा॥

जमदग्नि की रेणुका नाम की पत्नि थी, जिनसे उन्हें चार तेजस्वी पुत्र हुए। महर्षि रिचिक ने सत्यवती से उनके पौत्र की जो प्रकृति कही थी, मुनि के सबसे छोटे पुत्र ने वैसी ही प्रकृति पाई।

परसुराम पाएहुँ उन्ह नामा। महाकोहि अतुलित बलधामा॥
हेहयबंसि छत्रि सोउ काला। भुजबल बाढ़ेहु राजु बिसाला॥

उनका नाम परसुराम हुआ, वे महाक्रोधी और अतुलनीय बल के धाम थे। उस समय हेहयवंशी क्षत्रियों ने अपनी भुजाओं के बल पर विशाल साम्राज्य स्थापित कर लिया था।

सोउ अभिमान बिबेकु बिहाई। लगे करन सब दिसि अधमाई॥
तब महि भार हरन हरि आए। परसुराम कर बपुष जुड़ाए॥

उसी अभिमान में विवेक त्यागकर वे सब दिशाओं में पापकर्म करने लगे। तब पृथ्वी का भार हरने के लिये परसुराम नामक ब्राह्मण का शरीर धरकर भगवान श्रीहरि अवतरित हुए।

दोहा- अरजुन हैहयपति रहेहुँ तेहिं समउँ भूपाल।
दत्त सेव जेहिं पाएहुँ भुजबल अकथ बिसाल॥२२०॥

हे परीक्षित! उस समय हैहयवंशी क्षत्रियों का राजा अर्जुन हुआ था, जिसने दत्तात्रेयजी की सेवा करके अकथनीय व विशाल बाहुबल प्राप्त किया था।

चौ.- जीति न सक केउ रिपु रनु माहीं। बरु दत्तात्रय तें अस पाहीं॥
संपति अखय अतुल बल देही। पाइसि सहस भुजा पुनि तेहीं॥

'कोई भी शत्रु (मुझे) युद्ध में जीत न सके' ऐसा वर दत्तात्रेयजी से पाकर, उसने उनसे अक्षय ऐश्वर्य, शरीर में अतुलनीय बल और एक हजार भुजाएँ भी प्राप्त कर ली।

अष्टसिद्धि नित बस रह ताके। तें भा कामरूप बल जाके॥
पवन सरिस पुनि बिनु ब्यवधाना। मन गति धरि चर सकल जहाना॥

आठों सिद्धियाँ निरन्तर उसके वश में रहती थी, जिसके बल पर वह अपनी इच्छानुसार रूप धारण करनेवाला हो गया था और पवन के समान बिना किसी बाधा के, मन की गति से समस्त संसार में विचरण किया करता था।

पैठि सिंधु सो जब भुज पारा। बिकल होत तब तें भय मारा॥
सोउ नरबदा जलु एक बारा। करि रहेहुँ तिय संग बिहारा॥

समुद्र उतरकर जब वह जल में अपनी भुजाएँ पटकता था, तब समुद्र भी भय से अकुला उठता था। वही सहस्रबाहु एक बार अपनी स्त्रियों के साथ नर्मदाजी के जल में विहार कर रहा था।

तब पसारि तेहिं आपन बाहू। सगरुअ रुद्धेहुँ सरित प्रबाहू॥
परिछित सिविर किए तेहिं काला। सोउ थल निकट रहा दसभाला॥

तभी उसने अपनी भुजाएँ फैलाकर अभिमानपूर्व नर्मदाजी की धारा को रोक लिया। हे परीक्षित! उस समय दसमौलि रावण भी अपना शिविर डालकर उसी स्थान के निकट ठहरा हुआ था।

उलटि सरित सोउ दिसि उमगाई। सिविर रावनहि लागि बुड़ाई॥

रोके जाने से उलटी हुई नर्मदाजी उसी दिशा में वेगपूर्वक बह निकली और रावण के शिविर को डुबोने लगी।

दोहा- गनतोहि भट्ट त रावन आपुन कहँ अति भारि।
सहि पावा न पराक्रम सरि जब उलटि निहारि॥२२१॥

रावण अपने-आप को बड़ा भारी योद्धा तो समझता ही था, इस पर उसने नर्मदा को उलटी बहते देखा, तो उससे कर्ता का यह पराक्रम सहन न हुआ।

चौ.- तब तें जाइ कोप करि भारी। सहसबाहुँ कहँ लाग पचारी॥
अरजुन किंतु धाइ धरि ताही। लै आवा आपन पुर माहीं॥

तब वह जाकर अत्यन्त क्रोध करके सहस्रबाहु को ललकारने लगा। किन्तु सहस्रार्जुन ने दौड़कर उसे पकड़ लिया और अपने नगर में ले आया।

मर्कट सम पुनि कर पग बाँधी। दीन्ह तेहिं कारागृह साँधी॥
छब्बउँ होन नृपति गै चौबे। होइ परन्तु रहे तें दोबे॥

फिर उसने बन्दर के समान उसके हाथ-पैर बाँधकर उसे कारागृह में डाल दिया। हे परीक्षित! रावणरूपी चौबेजी गये थे छब्बे होने, किन्तु दुबे होकर रह गये।

कहहिं एहि हित प्रबुध समाजा। बूझे बिनु न करिअ केउ काजा॥
जब पुलस्ति गै अरजुन पाही। तेहीं मुकुत कीन्ह तब ताही॥

इसी कारण प्रबुद्धजनों ने कहा है कि "सोचे-समझे बिना कोई भी कार्य नहीं करना चाहिये।" फिर जब महर्षि पुलस्त्य अर्जुन के पास गये, तब उसने रावण को मुक्त कर दिया।

अरजुन अकसर करत सिकारा। जमदग्निहिं आश्रमु पइसारा॥
धेनु कामदा पुनि तहँ देखी। भयउँ तासु उर लोभ बिसेषी॥

एक बार शिकार करता हुआ अर्जुन महर्षि जमदग्नि के आश्रम पर आ पहुँचा और वहाँ उपस्थित कामधेनु को देखकर उसके हृदय में विशेष लोभ हो आया।

तब अभिमान बिबस बिनु माँगे। हठि हरि धेनु चला करि आगे॥
जद्यपि मुनि तेहिं बहुत प्रबोधा। किन्तु कीन्ह तेहिं केवलु क्रोधा॥

तब अभिमान के वश हो वह बिना माँगे ही कामधेनु को हरकर बलपूर्वक उसे अपने आगे करके चल दिया। यद्यपि मुनि ने उसे बहुत प्रकार से समझाया, किन्तु उसने केवल क्रोध ही किया।

परसुराम जब आश्रमु आए। खलहुँ कुकृत सुनि परम रिसाए॥

जब परसुरामजी आश्रम में आए, तो उस दुष्ट का कुकृत्य सुनकर अत्यन्त क्रुद्ध हुए।

दोहा- **पुनि धनु कठिन कुठार गहि बिषम बिसिख कसि त्रोन।**
गरजि तड़ित सम धाएहुँ पदन्ह बेग धरि पौन॥२२२॥

फिर अपना कठोर फरसा व धनुष उठाकर और कठिन बाणों से युक्त तरकश कमर में कसकर, बिजली के समान कड़कते हुए वे अपने पैरों में पवन का वेग लिये दौड़े।

चौ.- **गढ़हि निकट अरजुन इत आवा। देखा राम आव अति धावा॥**
भृकुटि बिकट दृग धधकहि ज्वाला। तनु आबृत्त मृग चरम काला॥

इधर अर्जुन किले के निकट ही आ पाया था कि उसने देखा परसुराम बड़े वेग से उसकी आ रहे हैं। उनकी भौहें तनी हुई थी, नेत्रों में ज्वाला धधक रही थी और उनका शरीर कृष्णमृगचर्म से ढँका हुआ था।

सठ उन्ह कोप बूझि गरुआई। उन्ह बिरुद्ध निज कटकु पठाई॥
किंतु परसुधर रिस करि भारी। सहज अकेल कटकु सब मारी॥

मूर्ख अर्जुन ने उन्हें क्रोधित जानकर भी अहङ्कार के वश हो उनके विरुद्ध सेना भेजी। किन्तु परसुरामजी ने प्रचण्ड क्रोध करके, अकेले ही उसकी सारी सेना का संहार कर दिया।

ते जहँ जहँ कर परसु प्रहारा। तहँ तहँ कटि मर सुभट अपारा॥
मन समान उन्ह बेग प्रचंडा। बल पुनि भुजन्हि रहेउ अखंडा॥

वे जहाँ-जहाँ भी अपने फरसे का प्रहार करते थे, वहाँ-वहाँ अनेक योद्धा कट मरते थे। उनका वेग मन की गति के समान प्रचण्ड और उनकी भुजाओं में अखण्ड बल था।

अरजुन दलन देखि निज धारी। उन्ह सनमुख भा रिस करि भारी॥
सहस भुजन्हि पुनि तेहिं अतुराए। धनुष पंचसत बिसिख चढ़ाए॥

अपनी सेना का संहार हुआ देखकर अत्यन्त क्रोध करके अर्जुन उनके सन्मुख पहुँचा। फिर उसने उतावली से अपनी हजार भुजाओं में पाँच सौ धनुष लेकर उन पर बाण चढ़ाए और

कोपि परसुधर ऊपर छारे। समरमर्मि पै सहज निबारे॥

क्रुद्ध होकर परसुरामजी पर छोड़े, किन्तु युद्धविशारद उन परसुरामजी ने उन्हें सरलता से काट दिया।

दोहा- पुनि भृगुनंदन बार एक बान पंच सत मारि।
सरन्ह सहित धनु तिन्ह सकल छिनु महुँ दीन्ह निबारि॥२२३॥

फिर भृगुनन्दन ने एक ही बार में पाँच सौ बाण मारकर बाणों सहित क्षण भर में उसके सारे धनुषों को काटकर गिरा दिया।

चौ.- आयुध भंजि बिरथ करि ताही। रामु गरजि लागे रनु माहीं॥
धरि भुज तब बहु तरु गिरि खंडा। सठ झपटेहुँ उन्ह प्रति गति चंडा॥

इस प्रकार उसके शस्त्र काटकर और उसे रथहीन करके परसुरामजी युद्धभूमि में गरजने लगे। तब वह मूर्ख अपनी भुजाओं में बहुत से वृक्ष और पर्वत शिखर लेकर बड़े वेग से उनकी ओर झपटा।

पै भुवि पटकि बैठि खल छाती। रामु सहज सब भुजा निपाती॥
पुनि महिभार तेहिं अति चीन्हा। रामु तासु सिर छेदन कीन्हा॥

किन्तु उस दुष्ट को भूमि पर पटककर और उसकी छाती पर बैठकर परसुरामजी ने सहज ही में उसकी सारी भुजाएँ काट दी। फिर उसे पृथ्वी के लिये महान भाररूप विचारकर उन्होंने उसका सिर काट दिया।

दस सहस्त्र सुत नृप खल केरे। तेहिं सवँ भजि छूटे भय प्रेरे॥
तदुप राम गौ बत्स समेता। आगे करि पुनि फिरे निकेता॥

हे परीक्षित! दुष्ट सहस्रबाहु के दस हजार पुत्र उस समय परसुरामजी से भयभीत होकर भाग छूटे। तदुपरान्त परसुरामजी बछड़े सहित गाय को अपने आगे करके आश्रम पर लौट आये।

जब जमदग्नि बात यह जानी। कहन लाग उन्ह अस दुख मानी॥
सर्बदेअँमय नर तुम मारी। पातक तनय कीन्ह अति भारी॥

जब महर्षि जमदग्नि को यह बात पता चली, तब वे दुःखी होकर उनसे कहने लगे- हे पुत्र! सर्वदेवमय मनुष्य को मारकर तुमने बड़ा भारी पाप किया है।

बिप्रोचित न काज तुम कीन्हा। बिसरि छमा तुअ दुख मोहि दीन्हा॥
अब सिव सुमिरि तीर्थ रजु पाई। महापाप यह मेटहुँ जाई॥

तुमने जो कार्य किया है वह एक ब्राह्मण के लिये उचित नहीं था। क्षमाधर्म को भुलाकर तुमने मुझे दुःख दिया है। अतः अब शिवजी का स्मरण करके, तुम जाकर तीर्थों की रज का सेवन करो और इस महान पाप से मुक्त होओ।

सम्बत भर करि तीरथ बासा। तब भै सुद्ध फिरे खलनासा॥

तब वर्षभर तीर्थों में निवास करके शुद्ध होकर दुष्टहन्ता परसुरामजी (पिता के पास) लौट आए।

दोहा- **गई रेनुका एक दिनु गंगा तट जल लागि।**
तहाँ गंधरब चित्ररथ रहा सतिय मुद पागि॥२२४॥

एक बार उनकी माता रेणुका जल लेने के लिये गङ्गाजी के तट पर गई। वहाँ पर चित्ररथ नामक गन्धर्व अपनी स्त्रियों सहित आनन्द मनाता हुआ उपस्थित था।

चौ.- **तेहिं सवँ लखि तिन्ह बारि बिहारा। भा मुनितिय हिय मोह अपारा॥**
भा बिलंब पुनि हृदय बिचारी। आतुर आश्रम फिरि भय भारी॥

उस समय उसका जलविहार देखकर जमदग्नि की स्त्री रेणुका के हृदय में अत्यन्त मोह हो गया। फिर विलम्ब हुआ जानकर भयभीत हुई वे बड़ी ही शीघ्रता से आश्रम पर लौट आई।

जब बिलंब कारनु मुनि जाना। भयउँ हृदय उन्ह कोप महाना॥
मुनि तब सुतन्ह कहा एहि भाँती। देहु एहि पापिनिहिं निपाती॥

जब महर्षि जमदग्नि को विलम्ब होने का कारण ज्ञात हुआ तो उनके हृदय में अत्यन्त क्रोध हुआ। तब उन्होंने अपने पुत्रों से इस प्रकार कहा कि “इस पापिनी का वध कर दो”।

पै पितु बचन कोउ नहिं लहेहूँ। तब उन्ह सोउ राम सन कहेहूँ॥
पितही तप प्रभाउ भल जाना। एहि कारन उन्ह पितु बच माना॥

किन्तु किसी ने भी पिता के वचन को शिरोधार्य नहीं किया। तब यही बात उन्होंने परसुरामजी से भी कही। वे अपने पिता के तपोबल को अच्छी तरह जानते थे, इस कारण उन्होंने उनकी बात मान ली।

बंधु सहित जननिहिं सिरु काटी। पुनि उन्ह लीन्ह हृदय दुख पाटी॥
तदुप बिनय पितु सन करि आई। उन्ह तें सब कहँ लीन्ह जिआई॥

फिर उन्होंने भाईयों सहित अपनी माता का सिर काटकर अपने हृदय को इस महापाप के दुःख से भर लिया। तदुपरान्त पिता के सन्मुख आकर विनय करके उन्होंने सबको पुनः जीवित करवा लिया।

उहाँ पराजित सहसबाहुँ सुत। पितु बध हेरि हेरि जर संतत॥

अकसर राम किए सब भाई। गए रहे बन काठ जुड़ाई॥

उधर सहस्रबाहु के पराजित पुत्र अपने पिता के वध का स्मरण कर-करके निरन्तर जल रहे थे। (इस बीच) एक बार परसुरामजी अपने भाईयों को साथ लेकर वन में लकड़ियाँ इकट्ठी करने गये हुए थे।

सोउ अवधि बरु अवसर पाई। कीन्ह खलसुतन्हँ आश्रमु घाई॥
पुनि सब मिलि जमदग्निहिं मारा। लै गै हठि मुनि सीस उतारा॥

उसी अवधी में उत्तम अवसर पाकर दुष्ट सहस्रबाहु के पुत्रों ने उनके आश्रम पर आक्रमण कर दिया। फिर उन सबने मिलकर जमदग्नि को मार डाला और हठपूर्वक उनका सिर काटकर ले गए।

छाति पीटि तब इकबिस बारा। बिलपि रेनुका राम पुकारा॥
जननिहिं करुन नाद सुनि पाए। आतुर हँहरि राम तहँ आए॥

तब मुनिपत्नि रेणुका ने विलाप करते हुए इक्कीस बार छाती पीटकर अपने पुत्र परसुराम को पुकारा। परसुरामजी ने जैसे-ही माता का आर्त्तनाद सुना, वे घबराकर उतावली से वहाँ पहुँचे।

दोहा- **पितु बध भा पुनि जानि अस भा दुख तेहिं अपार।**
पुनि रिस हृदय प्रचंड धरि उन्ह गहि लीन्ह कुठार॥२२५॥

फिर यह जानकर कि "पिता की हत्या हो गई है, उन्हें अपार दुःख हुआ और उन्होंने हृदय में प्रचण्ड क्रोध लेकर अपना फरसा उठा लिया।

चौ.- **छत्रिहीन करु महि अस ठानी। तें गै सहसबाहु रजधानी॥**
तहँ पितु बधिकन्ह सीस उतारी। पुर बिच कीन्ह सिरन्ह गिरि भारी॥

"मैं पृथ्वी को क्षत्रियहीन कर दूँगा", ऐसा निश्चय करके फिर वे सहस्रबाहु की राजधानी में गए। वहाँ अपने पितृवधिकों के सिर काटकर उन्होंने नगर के बीचों-बीच शिरों-ही का एक बड़ा पहाड़ खड़ा कर दिया।

पुनि पितु सिर गहि आश्रमु आई। पितुहि रुंड तेहिं दीन्ह लगाई॥
तदुप हृदय धरि धीर अगाहा। कीन्हेंसि राम तात कर दाहा॥

फिर पिता के सिर को लेकर वे अपने आश्रम पर आए और उसे पिता के धड़ से जोड़ दिया। तदुपरान्त हृदय में अगाध धैर्य धरकर परसुरामजी ने अपने पिता का दाहसंस्कार किया।

एहिबिधि छत्रिन्ह लखि अतिचारा। इकबिस बार कीन्ह संघारा॥
पुनि उन्ह कीन्ह द्विजन्ह महि दाना। गै महेन्द्र गिरि तपु पुनि ठाना॥

इस प्रकार क्षत्रियों का अत्याचार देखकर उन्होंने इक्कीस बार उनका संहार किया और उनसे जीती हुई पृथ्वी ब्राह्मणों को दान करके वे महेन्द्र पर्वत पर जाकर तपस्या में लीन हो गये।

इंद्रि होत षट तनु नृप जैसे। षट सुत रहे नघुषु कर तैसे॥
नघुषु सापबस भा फनि जबही। सुत जजाति भयऊ नृप तबही॥

हे परीक्षित! जिस प्रकार शरीर में छः इन्द्रियाँ होती है, उसी प्रकार राजा नहुष के भी छः पुत्र थे। जब नहुष ब्राह्मणों के श्राप से सर्प हो गया, तब उसका जयेष्ठ पुत्र ययाति उनके स्थान पर राजा हुआ।

देबयानि रहि सुक्र सुता जेइ। भई जजातिहि रानी तेई॥
सरमिषठा अस नामहुँ केरी। रहि सो रानि केर एक चेरी॥

दैत्यगुरु शुक्राचार्य की पुत्री जिसका नाम देव्यानी था, वह ययाति की रानी हुई। उस रानी की शर्मिष्ठा नाम की एक दासी थी।

पुत्रवंति भइ देवयानि जब। सरमिषठा अपि तनय चहेहु तब॥
सो दुरि नृप सँग किए बिआवा। तेपि गरभु सवँ पाइ जुड़ावा॥

जब देव्यानी पुत्रवती हुई, तब दासी शर्मिष्ठा को भी पुत्र प्रप्ति की कामना हुई। अतः उसने छिपकर राजा ययाति से विवाह करके समय पाकर गर्भ-धारण कर लिया।

सुत दुइ भए सुक्रसुति केरे। जदु तुरबसु तनु आभ घनेरे॥
एहिबिधि जाए असुरकुमारी। त्रयसुत पितु सम लच्छन धारी॥

देव्यानी के यदु और तुर्वसु नामक दो पुत्र हुए, जिनके शरीर में महान कान्ति थी। वैसे ही वृषपर्वा (नामक दैत्य) की पुत्री शर्मिष्ठा के तीन पुत्र हुए, जो ययाति के समान ही (उत्तम) लक्षणों से युक्त थे।

दुरहजु अनु अरु पुरु अस नामा। रहे पितहि हित सब सुखधामा॥
एहिबिधि बीतेहु समय बहूता। लायक जुबा भए सब पूता॥

द्रुह्यु, अनु और पूरु यह उनके नाम थे, जो पिता ययाति के लिये सब सुखों के धाम थे। इस प्रकार बहुत-सा समय बीत गया और वे पाँचों ययातिपुत्र योग्य और युवा हो गए।

भेद सुक्र सुति जब यह जाना। चेरि तें रउरेहि अह संताना॥
तब तिन्ह हृदय परम रिस लागा। पितु पहि आइ पतिहि गृहत्यागा॥

जब देव्यानी को यह बात ज्ञात हुई कि राजा को दासी शर्मिष्ठा से भी सन्तान है, तब उसके हृदय में बड़ा क्रोध हुआ और वह पति का घर छोड़कर अपने पिता के घर चली आई।

तेहि पितु सन सब मरमु सुनावा। जब जजाति अए तेहिं मनावा॥

फिर उसने पिता शुक्राचार्य को सारी बात बता दी और जब ययाति उसे मनाने के लिये आए,

दोहा- **सुक्र साप तब दीन्ह उन्ह जरा मार तोहि राउ।**
तेहिं छिनु ब्यापि जरा कठिन उन्ह तनु साप प्रभाउ॥२२६॥

तब शुक्राचार्य ने उन्हें श्राप दे दिया कि हे राजन! "तुम्हे बुढ़ापा मार जायँ।" उसी क्षण श्राप के प्रभाव से ययाति के शरीर में कठोर बुढ़ापा व्याप्त हो गया।

चौ.- **लखि जजाति अति बिनय देखाई। खोरि लीन्हि निज छमा कराई॥**
धीर देत तब सुक्र उचारा। गहत तुम्हार जरठपनु भारा॥

यह देखकर ययाति ने अत्यधिक विनय करके उनसे अपना अपराध क्षमा करा लिया। तब शुक्राचार्य ने उन्हें धैर्य बँधाकर कहा कि तुम्हारी वृद्धावस्था का भार उठाते हुए

सुत सहरष जे निज तरुनाई। देहि ताहि तें लेहुँ फिराई॥
तब जजाति फिरि निज रजधानी। जेठे सुतहि बात समुझानी॥

तुम्हारा जो भी पुत्र तुम्हे सहर्ष अपना यौवन दे दे, उसी से तुम यौवन पुनः प्राप्त कर लो। तब ययाति ने अपनी राजधानी में लौटकर अपने ज्येष्ठ पुत्र यदु को सब बात समझाकर कह दी।

जदु तुम लेहु जरठपनु मोरा। देहुँ मोहि पुनि जौबनु तोरा॥
तब सादर पितु पद सिरु नाई। कहन लाग जदु खेद जताई॥

(ययाति बोले-) हे यदु! तुम मुझसे मेरी वृद्धावस्था ले लो और अपना यौवन मुझे दे दो। तब अपने पिता के चरणों में आदरपूर्वक सिर नवाकर खेद जताते हुए यदु कहने लगे कि,

मैं एक द्विजहि बचन दै राखा। देब सोइ जे जाइहि भाखा॥
बिदित न मोहि द्विज माँगिहि काही। सो निज धन दै पाउब नाहीं॥

(हे तात!) मैने एक ब्राह्मण को वचन दे रखा है कि वे मुझसे जो भी माँगेंगे, मैं उन्हें वही दूँगा और मुझे यह ज्ञात नहीं है कि वे विप्र मुझसे क्या माँगेंगे? अतः मैं अपना यौवन आपको नहीं दे पाऊँगा।

सुनत जजाति देत कह सापा। सठहु तोहि निज बच अति दापा॥
पदबंचित नित तव संताना। रहिहहि सेवत नरपति आना॥

यह सुनते ही यदु को श्राप देते हुए ययाति ने कहा- जा रे शठ! तुझे अपने वचन का बड़ा मान है। अतः तेरी सन्तान सदैव पद से वञ्चित रहकर अन्य राजाओं की सेवा करती रहेगी।

दोहा- **तुरबसु दुरहजु अनु समुख तदुप जजाति गएउ।**
नाहिं तेपि पुनि जब कहेह नृप अति कुपित भएउ॥२२७॥

तदुपरान्त ययाति वहाँ से चलकर तुर्वसु, द्रुह्यु और अनु के सन्मुख गए; किन्तु जब उन्होंने भी अपना यौवन देने से मना कर दिया, तब ययाति अत्यन्त कुपित हुए।

चौ.- **साप बहोरि तिन्हपि दीन्हा सोइ। पूरब जदुहि दीन्ह उन्ह जोई॥**
तहँ तें नृपति पूरु सन जाई। बाँछा आपन ताहि जनाई॥

फिर उन्होंने उन्हें भी वही श्राप दे दिया, जो पहले उन्होंने यदु को दिया था। वहाँ से वे अपने सबसे छोटे पुत्र राजकुमार पूरु के पास गये और उसे अपनी कामना के विषय में बताया।

तात अवसि मैं पृह तव सारूँ। बपुष यह त मोहि तव उपहारू॥
पुत्र त तेइ आव पितु कामा। पितहि परम गुर हरि सुखधामा॥

(पूरु ने कहा-) हे तात! मैं आपकी इच्छा अवश्य पूरी करूँगा, यह शरीर तो आप ही का दिया उपहार है। पुत्र तो वही है, जो पिता के काम आये। पिता ही परमगुरु और सुखधाम श्रीहरि हैं।

अस पितु बिमुख जगत जे होई। परहि कलप लौ जमपुर सोई॥

पितु कह तेहिं तें पूरब जेई। पृहा सार उत्तम सुत तेई॥

संसार में जो ऐसे पिता से विमुख हो जाता है, वह कल्पभर के लिये यमलोक में पड़ता है। पिता आज्ञा दे, उससे पहले ही जो उनकी इच्छा पूर्ण कर दे, वही पुत्र उत्तम होता है।

श्रद्धा सहित कहे पर सारा। सुत मध्यम अस बेद उचारा॥
अधम पुत्र सो जे मनु मारी। श्रद्धागत पितु आयसु सारी॥

"आदेश पाकर जो श्रद्धापूर्वक पिता की इच्छा पूरी करे, वह मध्यम श्रेणी का पुत्र होता है", ऐसा वेद कहते हैं और वह पुत्र अधम होता है, जो मन मारकर अश्रद्धा से पिता की आज्ञा पूर्ण करे।

दोहा- **पुनि जे सबबिधि पितु बिमुख पाप कहे तेहिं पुत्र।**
होत नराधम सो निपट तात केर मलमुत्र॥२२८॥

इनके अतिरिक्त जो सब प्रकार से अपने पिता के विमुख ही आचरण करता है, उसे तो पुत्र कहना ही पाप है। वह नराधम तो अपने पिता का मलमूत्र मात्र होता है।

चौ.- **तात मात जग जाकर रोगा। रहहिं न वदनु देखावन जोगा॥**
महापापि सो सुत महिं भारा। सुरति मात्र तिन्ह पाप अधारा॥

इस संसार में जिसके दुष्कर्मों के कारण माता-पिता कहीं मुख दिखाने के योग्य नहीं रह जाते, ऐसा महापापी पुत्र पृथ्वी पर भाररूप होता है और उसका स्मरणमात्र भी पाप का कारण होता है।

धन्य बहुरि सो तनय सुपातर। धरम अनुहरत कृत जिन्हँ सुन्दर॥
समय पाइ पितु मातहिं केरा। परिचय बन सृजि सुजसु घनेरा॥

और वह पुत्र धन्य है, जो योग्य होता है और धर्म का अनुशरण करते हुए, जिसके सत्कार्य समय पाकर सुन्दर कीर्ति का सृजन करके संसार में माता-पिता का परिचय बनते हैं।

प्रमुदित पूरु तदुप नरराई। पितहि जरा गै निज तनु पाई॥
इत जजाति गहि सुत तरुनाई। भोग पंक बूड़े पुनि जाई॥

हे परीक्षित! (ऐसा कहकर) तदुपरान्त राजकुमार पूरु ने आनन्दपूर्वक पिता का बुढ़ापा अपने शरीर में प्राप्त कर लिया। इधर ययाति अपने पुत्र से उसका यौवन पाकर पुनः भोग विलास के दलदल में जा डूबे।

समय नघुषुनंदन बहु नासा। किंतु नाहिं मिटि तेन्ह पिपासा॥
होत पतनु आपन अवलोका। भा जजाति उर दारुन सोका॥

नहुषनन्दन ययाति ने बहुत सारा समय नष्ट कर दिया, किन्तु भोगों के प्रति उनकी तृष्णा नहीं मिटी। (विलासिता के कारण) अपना पतन होते हुए देखकर उनके हृदय में महान शोक उत्पन्न हुआ।

एहि प्रकार जब भयउँ बिरागा। सतिय कीन्ह तब उन्ह गृहत्यागा॥
पृथक पृथक दिसि चलती बारा। तिलक सबनि पुत्रन्ह उन्ह सारा॥

इस प्रकार जब उन्हें विषयों से विरक्ति हो गई, तब उन्होंने रानियों सहित घर त्याग दिया। चलते समय उन्होंने अलग-अलग दिशाओं (में स्थित नगरों) के लिये अपने पुत्रों का राजतिलक कर दिया।

फेरि पुरु कहँ तिन्ह तरुनाई। दीन्ह राउ निज पद बैठाई॥
तदुप गए बन भै गतरागा। हरिहि चित्त धरि तनु उन्ह त्यागा॥

फिर पूरु को उसका यौवन लौटाकर ययाति ने उसे अपने स्थान पर राजा बना दिया। तत्पश्चात् वे वीतराग हो वन में गए और श्रीहरि को चित्त में धरकर उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया।

सुनु नृप अब जदुबंस उदारा। परब्रह्म जहँ नर तनु धारा॥
किए बहोरि चरित उन्ह नाना। हरेहुँ धरनि कर भार महाना॥

हे परीक्षित! अब आप राजा यदु के उदार वंश की कथा सुनिये, जिसमें स्वयं परब्रह्म ने शरीर धारण किया और अनेक प्रकार की लीलाएँ करते हुए पृथ्वी के महान भार का हरण किया था।

कथा जगतपावनि यह राऊ। देति भवोदधि पोत प्रभाऊ॥
सुचि जदुकुल पिरि बिगत बहूता। भै मधु बृष्नि रहे जिन्हँ पूता॥

हे राजन! यह जगत्पावनी कथा भवरूपी सागर में जहाज के जैसा प्रभाव देती है। पवित्र यदुकुल में अनेक पीढ़ियों के उपरान्त मधु (नामक एक राजा) हुए, जिनके पुत्र का नाम वृष्णि था।

दोहा- **द्वापरान्त पुनि बृष्निकुल सूर भए गुन धाम।**
मथुरापति रहे सखा उन्ह उग्रसेन अस नाम॥२२९॥

फिर द्वापर युग के अंत में वृष्णि के वंश में गुणों के धाम सूर नामक एक राजा हुए, मथुरा राज्य के अधिपति राजा उग्रसेन जिनके मित्र थे।

चौ.- **पवनरेख सो उग्रहि नारी। रही परम गुनवति छबि भारी॥**
ते पति आयसु गहि एक बारा। गई सखिन्ह सँग बिपिन बिहारा॥

उन राजा उग्रसेन की पवनरेखा नाम की पत्नि गुणवती व अत्यन्त सुन्दर थी। एक बार पति की आज्ञा पाकर वह अपनी सखियों के साथ वन विहार करने गई।

बिपिन भाबि बस रानि भुलानी। खोजत भइ मग अति पछितानी॥
भा अरन्य रोदन श्रमु तासू। भ्रम बस सूझ न कछुक सुपासू॥

होनहार वश रानी वन में भटक गई और अत्यधिक पश्चाताप करती हुई मार्ग खोजने लगी; किन्तु उनका श्रम अरण्यरोदन (व्यर्थ) सिद्ध हुआ, भ्रम के कारण उन्हें कुछ भी उचित प्रबन्ध नहीं सूझ पड़ा।

इत सुषमा कइ धार नहाई। बिपिन केर कटु निरजनताई॥
सबद कसारन्ह कर्र कर्र धरि। लागिसि भय अबलहि अंतर भरि॥

इधर सुन्दरता की धारा में नहाकर वन की कड़वी निर्जनता कीड़ों की कर्र-कर्र ध्वनि धारण करके उस अबला के हृदय में भय उत्पन्न करने लगी।

सोइ भय चोट कठिन अति खाई। उठि चिंता सापिनि फन लाई॥
बहुरि दुख गरल उगरि फुँकारा। धीर रानि कर सबबिधि जारा॥

उसी भय की कठोर चोट खाकर उनके हृदय में चिन्तारूपी सर्पिणी फन चढ़ाकर उठ पड़ी और अपनी फुफकार से दु:खरूपी विष उगलकर, उसने रानी का धैर्य सब प्रकार से जला दिया।

चढ़ि बिमान बन नभ तेहिं काला। निकसेउँ एक दानव बिकराला॥
धनिकदास सो द्रुमलिक नाऊँ। कामरूप अस जासु प्रभाऊ॥

उस समय विमान में चढ़कर वन के आकाश पर से होता हुआ एक विकराल राक्षस निकला। कुबेर के उस सेवक का नाम द्रुमलिक था, जो अपनी इच्छानुसार रूप धारण करनेवाला था।

तिय लालम देखेउँ पुनि सूना। काम उएउँ लंपट उर दूना॥
निकट आइ रानिहिं पहिचानी। तेहिं हृदय एक जुगुति जुड़ानी॥

सुन्दर स्त्री और उस पर भी सूनापन! यह देखकर उस लम्पट के मन में काम का वेग दुगुना हो गया। पास जाकर वह रानी को पहचान गया और उसने अपने मन में एक उपाय सोचा।

दोहा- उग्रसेन तन कपट धरि अभय रानि कहँ दीन्ह।
बहुरि काम प्रेरित सठ धरम भंग उन्ह कीन्ह॥२३०॥

उसने छल से उग्रसेन का शरीर धरकर रानी को अभय कर दिया और फिर कामप्रेरित होकर उस शठ ने रानी का पातिव्रत धर्म भङ्ग कर दिया।

चौ.- तासु कपट रानि न पहिचाना। पर जब चलत दनुज तन ठाना॥
छुब्ध सती सिरु धुनि पछितानी। कहन लागि अस परम रिसानी॥

उसके कपट को रानी पहचान न सकीं, किन्तु चलते समय जब उसने अपना आसुरी स्वरूप धारण किया, तब क्षुब्ध हो वह पतिव्रता सिर धुनकर पछताती हुई अत्यन्त क्रुद्ध हो इस प्रकार कहनें लगी-

रे कामी रँचि प्रपंच घोरा। तैं मम पतिब्रत सुधरम तोरा॥
तव गुर मातु पितहि धिक्कारा। धिग धिग तोर जनमु बहु बारा॥

रे कामी! तुमने भयङ्कर प्रपञ्च रचकर मेरा उत्तम पतिव्रत धर्म नष्ट कर दिया। तुम्हारे गुरु और माता -पिता को धिक्कार है, तुम्हारे जन्म को भी अनेक बार धिक्कार है, धिक्कार है।

रानिहिं उग्र बचन सुनि काना। द्रुमलिक उर अतिसय भय माना॥
पुनि कछु कहि सठ भवन सिधारा। सुनि भइ रानिहिं पीर अपारा॥

रानी के ऐसे उग्र वचन सुनकर द्रुमलिक मन-ही मन अत्यन्त भयभीत हो उठा और कुछ (विशिष्ट) कथन करके वह शठ अपने घर को चला गया। उसकी बात सुनकर रानी को अपार पीड़ा हुई।

परिछित सोइ दनुज कर अंसा। उग्रसेन गृह भयऊ कंसा॥

पूरब रहा असुर सो भारी। बधेहुँ समर जेहिं हरि असुरारी॥

हे परीक्षित! उसी दैत्य का अंश राजा उग्रसेन के घर कंस नामक पुत्र होकर जन्मा। वह कंस पूर्वजन्म में कालनेमि नाम का एक विकराल राक्षस था, जिसे युद्ध में असुरान्तक भगवान श्रीहरि ने मारा था।

दोहा- **सूरसेन गृह उन्हहि दिनु कस्यप भै सुत रूप।**
बसुद्यौ भयऊ नाउँ जिन्हँ बदनु प्रसान्ति अनूप॥२३१॥ (क)

महर्षि कश्यप उन्हीं दिनों वृष्णिवंशी सूरसेन के घर पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए, जिनका नाम वसुदेव हुआ। उनके मुख पर अनुपमेय शान्ति विद्यमान रहती थी।

उग्रसेन कर अनुज एक देवक देव प्रभाउ।
कस्यप तिय भइ सुता तिन्ह देअकि जाकर नाउ॥२३१॥ (ख)

राजा उग्रसेन का देवक नाम का एक छोटा भाई था, जिनका प्रभाव देवताओं के समान था। महर्षि कश्यप की स्त्री अदिति उनकी पुत्री होकर उत्पन्न हुई; जिनका नाम देवकी हुआ।

चौ.- **इत जब कंस पाइ तरुनाई। तप करि लीन्ह बिरंचि मनाई॥**
बहुरि पाइ उन्ह तें बरदाना। कीन्ह अधीन तमीचर नाना॥

इधर जब कंस युवावस्था को प्राप्त हुआ, तब उसने तपस्या करके ब्रह्माजी को प्रसन्न कर लिया और उनसे वरदान पाकर, उसने अनेक राक्षसों को अपने अधीन कर लिया।

जरासंध तेहिं बलनिधि पाई। उभय सुता निज तेहिं परनाई॥
कीन्ह कंस जब दिसिजय राऊ। राजसभहिं तिन्ह बढ़ेउँ प्रभाऊ॥

जरासंध ने बल का सागर जानकर उसे अपनी दोनों पुत्रियाँ (अस्ती व प्राप्ती) ब्याह दी। हे परीक्षित! जब कंस ने समस्त दिशाओं को जीत लिया, तब महाराज उग्रसेन की राजसभा में उसका प्रभाव (और अधिक) बढ़ गया।

बसुद्यौ सँग तिहि रही मिताई। सुमिरि राउ अरु तिन्ह मत पाई॥
देवक हरषि महूरत पाई। बसुद्यौ कहँ देअकि परनाई॥

वसुदेवजी के साथ उसकी मित्रता थी, इस बात का स्मरण करके और उसका मत पाकर देवक ने प्रसन्नतापूर्वक शुभमुहूर्त पाकर वसुदेवजी को अपनी पुत्री देवकी ब्याह दी।

बहुरि कंस धरि सारथि बाना। स्यंदनु लीन्ह बोलाइ महाना॥
रथु चढ़ाइ भगिनी बहनोई। चला कंस निज खलता खोई॥

फिर (विदाई के समय) कंस ने सारथी का वेष धरकर, एक भव्य रथ मँगवा लिया और उसमें बहन देवकी व बहनोई वसुदेव को चढ़ाकर, अपनी दुष्टता से परे वह उन्हें विदा करने चला।

जब रथु गढ़ तैं बाहेर आवा। होनिहार निज बल प्रगटावा॥
गगन घिरे घन घुर्मित घोरा। तड़ित दमंकत भइ चहुँ ओरा॥

जब वह रथ किले से बाहर आया, उसी समय होनी ने अपना प्रभाव प्रकट किया। आकाश में चारों ओर घुमड़ते हुए घने बादल छा गये और चारों ओर बिजली चमकने लगी।

मेघ प्रभंजन रव दुखदाता। सुनि अति डरपत भइ बरिआता॥
सबन्हँ सुनत भइ अस नभबानी। रे सठ कंस मंद मति मानी॥

बादलों व वायु के संयोजित वेग से उत्पन्न दुःखद ध्वनि सुनकर सम्पूर्ण बारात अत्यंत भयभीत होने लगी। फिर सबके सुनते हुए इस प्रकार आकाशवाणी हुई- रे शठ! नीच व अभिमानी कंस!

स्वकर किए तैं परम सुपासू। अनुजा गनि रथु हाँकहिं जासू॥
होब जे ताकर आठम बालक। अवसि तुम्हार होइ सो घालक॥

अपने हाथों से सब प्रकार से उत्तम प्रबन्ध करके बहन समझकर जिसका रथ तू हाँक रहा है, उसका जो आठवाँ पुत्र होगा, वह अवश्य ही तुम्हारा काल होगा।

होब तुम्हार तासु सुत द्रोही। मारिहि सहित सहायक तोही॥
बार बार सुनि अस नभबानी। बिहँसेउँ कंस महा अभिमानी॥

इसका पुत्र तुमसे द्रोह करनेवाला होगा और सहायकों सहित तुम्हारा वध करेगा। बार-बार हो रही यह आकाशवाणी सुनकर महाअभिमानी कंस हँसा।

अहो हास कइ कस यह बाता। सिसु कर सुभट कंस कर घाता॥
जिहिं पद धमक प्रतारन पाई। महि खसि परहिं बिबुध समुदाई॥

(कंस बोला) अहो! यह कैसी हास्यास्पद बात है कि महाबलि कंस एक बालक के हाथों मारा जाएगा! जिसके पैरों की धमक से प्रताड़ित हुए देवता आकाश से पृथ्वी पर आ गिरते हैं।

आवत देखि जाहिं दिसिपाला। भजि छूटहि भयबस ततकाला॥
एक लघु बाल काल तिन्ह होई। सुनि अस सत्य मान कस कोई॥

जिसे आता हुआ देखकर दिक्पाल भय के मारे उसी समय भाग छूटते हैं, उसी कंस का काल एक बालक होगा! इस बात को सुनकर भी कोई सत्य कैसे मानेगा?

थविं बिचारि कह सठ एहिंभाँती। जब लौ रह एकउँ आराती॥

फिर वह दुष्ट रुककर विचार करके इस प्रकार बोला- जब तक एक भी शत्रु जीवित हो,

दोहा- **तब लौ नृपतिहि प्रान पर संकट रह अति भारि।**
पूरब एहि तैं प्रतापरबि सकुल मरेउ रनु हारि॥२३२॥

तब तक राजा के प्राणों पर महान सङ्कट बना रहता है, पूर्वकाल में राजा प्रतापभानु भी कुल सहित इसी कारण युद्ध में पराजित होकर मारा गया था।

चौ.- **निज जीवनु रच्छा बड़ धरमा। बधे अरिहि जनि कवन अधरमा॥**
भलेहि होइ रिपु मृग सिसु नारी। जरठ माँद अथवा तपधारी॥

अपने जीवन की रक्षा ही सबसे बड़ा धर्म है और शत्रु को मारने में कुछ भी अधर्म नहीं होता। फिर भले ही वैरी पशु, बालक, स्त्री, वृद्ध, रोगी अथवा कोई तपस्वी हो।

प्रति परिथिति मारिअ आराती। राजनीति उत्तम सब भाँती॥
अस कहि खल निज खड़ग उठावा। धरे भगिनि कच धरनि गिरावा॥

प्रत्येक परिस्थिति में शत्रु को मार डाला जायँ, यही राजनीति सब प्रकार से उत्तम है। ऐसा कहकर उस दुष्ट ने खड्ग उठाकर देवकी को केशों से पकड़ लिया और खींचकर पृथ्वी पर गिरा दिया।

हाहाकार करत कह लोगा। बिधि यह कवन रचेउँ दुरजोगा॥
लखि मुद ससिहि चरम उतकरषा। कंस कुग्रह चह अबहि तिन्ह ग्रसा॥

यह देख बाराती हाहाकार करके कहने लगे- हे विधाता! तुमने यह कैसा बुरा योग रचा कि आनन्दरूपी चन्द्रमा को चरम उत्कर्ष पाते देखकर कंसरूपी राहु इसी क्षण उसे खाना चाहता है।

निज तिय बध तत्पर तेहिं देखी। बुध बसुद्यौ कह बिनय बिसेषी॥
हे रनधीर सुभट सरदारा। तुअँहिं सुहात न यह कृत कारा॥

सुजान वसुदेवजी ने अपनी पत्नि के वध के लिये कंश को उद्यत देखकर विशेषरूप से विनय करते हुए कहा कि हे रणधीर! हे उत्तम योद्धाओं के नायक! यह कुकर्म तुम्हें शोभा नहीं देता।

नव दुलहिनि अबला यह नारी। पुनि अतिसय प्रिय भगिनि तिहारी॥
सुभट होइ अपि तेहिं चह मारी। कहु कि नसिहिं न तोर जसु भारी॥

यह नारी अबला व नवविवाहिता है और तुम्हारी अत्यन्त प्रिय बहिन भी है। तुम उत्तम योद्धा होकर भी इसे मारना चाहते हो? कहो! क्या इससे तुम्हारा सुन्दर यश नष्ट नहीं होगा?

दोहा- **जतन पतन निज टारन करत आजु भरमाइ।**
पै कि न जानत सत्य ध्रुव जगत केर यह भाइ॥२३३॥

आज तुम भ्रम के वशीभूत होकर अपने पतन को टालने का यत्न कर रहे हो। किन्तु हे भाई! क्या तुम संसार के इस अटल सत्य को नहीं जानते कि

चौ.- **जीव जनम जगतिहुँ जब जाता। तबहि लिखहि तिन्ह मीचु बिधाता॥**
तव भुजबल सब जग प्रख्याता। करहु न तापर निज कर घाता॥

जब पृथ्वी पर किसी प्राणी का जन्म होता है, तभी विधाता उसकी मृत्यु भी लिख देते हैं। तुम्हारी भुजाओं का बल तो संसारभर में प्रसिद्ध है, इसलिये अपने ही हाथों उसे नष्ट न करो।

प्रबलन्ह सोनित जे असि लेही। अबलहि रक्त रँगाउ न तेहीं॥
कुकृत करिहि यह तव जसु नासा। सुभट समाज करिहि उपहासा॥

जो तलवार महाबलि योद्धाओं का रक्त पीती रही है, उसे ही एक अबला के रक्त से न रङ्गो। तुम्हारा यह कुकर्म तुम्हारे यश को नष्ट कर देगा और योद्धाओं का समाज (स्त्रीवध के कारण) तुम्हारी हँसी करेगा।

बिगरहि तोर सरग बलवाना। सुनत कहहिं सठ बिहँसि गुमाना॥
भटन्हँ निंद तें मैं जनि भीता। उन्ह समाज अति पहिलेहुँ जीता॥

हे महाबलि! तुम्हारा स्वर्ग भी बिगड़ जायेगा। यह सुनकर मूर्ख कंस हँसते हुए दर्पपूर्वक बोला- योद्धाओं द्वारा की गई निन्दा से मैं नहीं डरता, क्योंकि उन्हें तो मैं बहुत पहले जीत चुका हूँ।

जीति तज्यो पुनि लघु गनि ताहीं। पुनि पुनि कहत सुधारन जाहीं॥
अब कारन अस एक न जाहीं। हिय बिचारि एहि मारउँ नाहीं॥

उस स्वर्ग को भी पहले ही जीतकर तुच्छ समझकर मैं छोड़ चुका हूँ, जिसे तुम बार-बार सुधारने के लिये कह रहे हो। अब ऐसा कोई एक भी कारण शेष नहीं है, मन में जिसे विचारकर मैं इसे न मारूँ।

बहुबिधि बसुद्यौ ताहिं बुझावा। पै उदंड कछु कान न लावा॥

वसुदेवजी ने उसे बहुत प्रकार से समझाया, किन्तु किसी का भी भय न माननेवाले उस दुष्ट ने उनकी बात पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया।

दोहा- मोहि हेतु बिष बेल यह एहि तें फलु जे होइ।
नभबानी अनुहार रनु अवसि बधिहि मोहि सोइ॥२३४॥

(वह पुनः बोला-) यह स्त्री मेरे लिये विषैली लता के समान है, इस पर जो फल उत्पन्न होगा, आकाशवाणी के अनुसार वह मुझे अवश्य ही युद्ध में मारेगा।

चौ.- बहुरि देखाइ खड़ग कह कोपी। देहुँ देअकिहि मम कर सौंपी॥
जतन अरन्य रुदन लखि आपन। कह बसुदेव हृदय धरि पाहन॥

फिर खड्ग दिखाकर वह क्रुद्ध होकर बोला- हे वसुदेव! तुम देवकी को मेरे हाथों में सौंप दो। यह सुनकर अपने प्रयत्न को व्यर्थ हुआ जानकर वसुदेवजी अपने हृदय पर पत्थर रखकर बोले-

इहि न बधहुँ सुनु बिनती मोरी। मम सन्तान होइ रिपु तोरी॥
सो जेते सुत होहिं हमारे। पठवउँ होतहि पास तुम्हारे॥

(हे कंस!) मैं विनती करता हूँ, तुम इसे मत मारो, तुम्हारी शत्रु तो मेरी सन्तान होगी। अतः हमारे जितने भी पुत्र होंगे उन्हें उत्पन्न होते ही मैं तुम्हारे पास पहुँचा दिया करूँगा।

मोर सत्यब्रत जग प्रख्याता। सो भरोष मानहुँ मम भ्राता॥
न त राखन आपन तिय प्राना। अवसि बिमुख तव धरु धनु बाना॥

मेरा सत्यपालन संसारभर में प्रसिद्ध है, इसलिये हे भाई! तुम मेरा विश्वास करो। अन्यथा अपनी स्त्री के प्राणों की रक्षा के निमित्त मैं तुम्हारे विरुद्ध अवश्य ही शस्त्र उठाऊँगा।

तब बिचार खल यह मत चारू। मरिहिं ब्याल जनि टूटिहिं दारू॥
प्रगट मानि पुनि सो अस बोला। सुत मुख लखि जे तउँ उर डोला॥

तब वह दुष्ट सोचने लगा कि यह मत उत्तम है। इससे साँप भी मर जाएगा और लाठी भी न टूटेगी। फिर प्रकट में उनकी बात मानकर वह बोला- यदि पुत्र का मुख देखकर तुम्हारा मन विचलित हुआ,

तब मैं गहि निज कठिन कृपाना। हरउँ खेद बिनु उभयन्ह प्राना॥

अब सुतंत्र तुम जैहउँ गेहा। अस कहि चला जदपि संदेहा॥

तब मैं अपनी कठोर तलवार से बिना खेद किये तुम दोनों के प्राण हर लूँगा। अब तुम स्वतंत्र हो, अपने घर जाओ, ऐसा कहकर वह अपने महल को चला। यद्यपि उसके मन में सन्देह था।

उग्रसेन जब यह सुनि पावा। कंस देअकिहुँ मारन धावा॥
तब तिन्ह बोलि कीन्ह नृप क्रोधा। सुन खल सचुप न कीन्ह बिरोधा॥

जब उग्रसेन ने सुना कि कंस ने देवकी का वध करना चाहा था, तब उन्होंने उसे बुलाकर बहुत क्रोध किया; किन्तु वह दुष्ट चुपचाप सुनता रहा, उसने विरोध नहीं किया।

अवसि राउ मोहि दंडित करही। सकल सेन उन्ह आयसु चरही॥
मैं अनीप पै अनि उन्ह दासा। तासु बिमुख जनि मोर बिकासा॥

(कंस ने मन में विचार किया कि) महाराज मुझे अवश्य ही दण्डित करेंगे। सारी सेना भी उन्हीं की आज्ञानुसार चलती है। यद्यपि मैं सेनापति हूँ, किन्तु सेना उन्ही की दास है। अतः उनके विमुख होने में मेरा कल्याण नहीं है।

अस बिचारि नृप आयसु मानी। हृदय दाबि रिस फिरेहुँ गुमानी॥
चिंत देत भइ जब उर फेरे। आवा मगध दुरत तेहिं प्रेरे॥

ऐसा विचारकर, राजा की आज्ञा मानकर, अपने क्रोध को मन-ही में ही दबाए वह अहङ्कारी लौट गया। जब उसके मन में अत्यधिक चिन्ता होने लगी, तब उससे व्याकुल हुआ वह छिपता हुआ मगध में आ गया।

तेहिं सब कथा ससुर सन गाई। लाग बिबसता निज समुझाई॥
प्रजातंत्र मोहि तनक न भावहि। श्रुति पुरान मत मोहि न सुहावहि॥

वहाँ उसने सारा वृत्तान्त अपने ससुर जरासंध को बताया और अपनी विवशता समझाते हुए कहने लगा कि मुझे प्रजातंत्र तनिक भी अच्छा नहीं लगता और न ही वेद पुराणों का मत मुझे सुहाता है।

तै मोहि सेन देत कछु ताता। होहु मोर जीवनु परित्राता॥
गुपुत सो सेन भवन प्रबिसाई। बाँधउँ बूढ़हि मैं बरिआई॥

अतः हे तात! आप मुझे अपनी थोड़ी सेना देकर मेरे जीवन की रक्षा कीजिये। उस सेना को गुप्तरूप से राजमहल में प्रवेश करवाकर मैं बलपूर्वक उस बूढ़े (उग्रसेन) को बाँध लूँगा।

जरासंध अस सुनि तेहिं कहई। प्रगट मथुर पर काहु न चढ़ई॥
चौंकि कंस कह ताहि बुझाई। ता महुँ एक परम कठिनाई॥

यह सुनकर जरासंध बोला कि तुम प्रकटरूप से मथुरा पर आक्रमण क्यों नहीं करते? यह सुनते-ही कंस चौक उठा और उसे समझाकर कहने लगा कि उसमें एक महान कठिनाई है,

जादव निज एक राजकुमारी। ब्याहि पाँडु कहँ जे बलि भारी॥

यादवों ने अपनी एक राजकुमारी (कुंती) उस महाराज पाण्डु को ब्याही हुई है, जो बड़ा बलवान है।

दोहा- बहुरि हस्तिनापुर कटकु दुराधरष अबिजीत।
भीष्म पाँडु कृप सुभटजुत काल नवहि जिन्ह भीत॥२३५॥

और फिर हस्तिनापुर की सेना भी दुराधर्ष व अजेय है, जो उन भीष्म, पाण्डु और कृपाचार्य से रक्षित है, जिन्हें स्वयं काल भी भयभीत होकर सिर नवाता है।

चौ.- जे मथुरहि तें होब सहाई। तब हमार कछु चल न चलाई॥
एहि कारन सब काज हमारा। प्रारम्भहुँ होइहिं निरधारा॥

जो यदि वे मथुरा की सहायता में आ गये, तब तो उन पर हमारा कुछ भी वश नहीं चलेगा। इस कारण हमारा सारा उद्यम प्रारम्भ में ही निराधार हो जायेगा।

अस सुनि जरासंध मन मारी। कीन्ह संग लघु सेन सँभारी॥
गुपुत रूप जे मथुरा आई। प्रबिसि राजगृह सब दिसि छाई॥

यह सुनकर जरासंध ने मन मारकर बड़ी सावधानी से सेना की एक साधारण-सी टुकड़ी उसके साथ कर दी, जो गुप्तरूप से मथुरा में आ गई और राजमहल में प्रविष्ट हो सब ओर फैल गई।

समउँ बिगत देअकि सुत जायउँ। कीर्तिमान जिन्हँ नाउँ धरायउँ॥
अनुभव कीन्ह तात महतारी। हरष बिषाद दुंद उर भारी॥

समय बीतने पर देवकी ने एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम कीर्तिमान हुआ। पुत्रजन्म पर देवकीजी व वसुदेवजी ने अपने मन में हर्ष और विषाद के मध्य महान द्वन्द्व अनुभव किया।

राजन बसुद्यौ अति पछिताई। बचन सुमिरि गै खल समुहाई॥
दया देखात कंस सिसु फेरा। लखि सुररिषि करि सोच घनेरा॥

हे परीक्षित! वसुदेवजी अपने वचन का स्मरणकर अत्यंत पछताते हुए दुष्ट के पास गये। किन्तु कंस ने दया दिखाते हुए बालक को जीवित ही लौटा दिया। यह देखकर अत्यन्त चिन्ता करते हुए नारदजी

धाइ जाइ खल सन तेहिं काला। हरिहि माय भय दीन्ह बिसाला॥
तब खल सत्य हितू उन्ह जानी। मर्दि सिसुहि निज छाति जुड़ानी॥

दौड़कर उसी समय उस दुष्ट के पास गये और उसे श्रीहरि की माया का बड़ा भय दिखलाया। तब उन्हें अपना सच्चा हितैषी समझकर उसने देवकी के बालक की हत्या करके अपनी छाती ठण्डी कर ली।

भाबि प्रबल लखि उर धरि धीरा। बसुद्यौ फिरे नयन अति पीरा॥
देअकि पूछेहुँ तब अकुलाई। कत सुत मोर हृदय सुखदाई॥

भावि को प्रबल जानकर हृदय में धैर्य धरे वसुदेवजी नेत्रों में अश्रुरूपी पीड़ा लिये लौट आए। तब देवकी ने व्याकुल होकर पूछा कि हृदय को सुख देनेवाला मेरा पुत्र कहाँ है?

खलहिं प्रथम सुत जिअत फिराना। पै परसुखारि जब अस जाना॥
तब तैं धाइ भरे खल काना। एतनउ कहि उन्ह रोदनु ठाना॥

(तब वसुदेवजी ने कहा कि) पहले तो कंस ने बालक को जीवित ही लौटा दिया था। किन्तु पराये सुख के शत्रु नारद ने जब यह जाना, तो उन्होंने दौड़कर कंस को भड़का दिया। इतना कहकर वे रोने लगे।

दोहा- **खल उन्ह तेहिं दिनु बाँधि पुनि पठए कारागार।**
यह घटना राउर समुख बरनि चेरि दुख भार॥२३६॥

हे परीक्षित! उसी दिन दुष्ट कंस ने वहाँ आकर उनको बन्दी बना लिया और कारागार में डाल दिया। एक दासी ने जाकर यह घटना महाराज उग्रसेन के सन्मुख अत्यन्त दुःख के साथ कह सुनाई।

चौ.- **नृप जाएहु देअकि नवजाता। कंस जाहिं महि पटकि निपाता॥**
पुनि देअकि बसुद्यौ कहँ बाँधी। अघनिधि दीन्ह कारगृह साँधी॥

(दासी बोली-) हे राजन! देवकी ने एक शिशु को जन्म दिया था, जिसे कंस ने पृथ्वी पर पटककर मार डाला। फिर उस पापराशी ने देवकी और वसुदेव को बन्दी बनाकर बन्दीगृह में डाल दिया।

अस सुनि उग्रसेन उर दहेऊँ। अति सकोप सैनिक तैं कहेऊँ॥
सद्य कंस कहँ बाँधेसु जाई। आनु घसींटि मोर समुहाई॥

यह सुनकर महाराज उग्रसेन का हृदय जल उठा। उन्होंने अत्यन्त क्रुद्ध होकर सैनिक से कहा कि शीघ्र ही कंस को बन्दी बनाकर घसींटते हुए मेरे सन्मुख लेकर आओ।

नाउ लेत हाजिर सैताना। ठाढ़ भयउँ नृप सन अभिमाना॥
भय दुख चिंत मुख न कछु तासू। मनहुँ जितेउँ जम अरु निज नासू॥

नाम लेते-ही वह दुष्ट वहाँ उपस्थित होकर राजा के सम्मुख गर्वपूर्वक खड़ा हो गया। उसके मुख पर भय, दुःख, चिन्ता आदि कुछ भी नहीं था, मानो उसने यम और अपनी मृत्यु दोनों को जीत लिया।

राउ ताहिं जब सहज निहारा। भै अंगार उगर अंगारा॥
रे सठ अधम भंगि कुलघाती। भयउँ कमलबन उपलउँ भाँती॥

जब राजा ने उसे सहज खड़ा देखा, तो क्रोध के मारे वे लाल हो गये और क्रोधरूपी अङ्गारे बरसाने लगे। रे मूर्ख! पापी! चाण्डाल! कुलघातक! तू मेरे वंशरूपी कमलवन के लिये ओले जैसा हुआ है।

सिसुबध निस्चय कीन्हेंउ जबहीं। रे खल भइ न मीचु तव तबहीं॥
जेइ उर यह अघ धरेउँ बिचारा। तेहिं छिनु किन सो हृदय दरारा॥

तूने जब बालक की हत्या करने का निश्चय किया था, रे दुष्ट! उसी समय तेरी मृत्यु क्यों नहीं हो गई? जिस हृदय में तूने इस पाप का विचार धारण किया था, वह उसी समय फट क्यों नहीं गया?

कहइ न्याउ भय लोभ दुरासा। जे अबोध कर करहिं बिनासा॥
नरपिसाच अस कहँ बरिआई। देइअ जिअतहिं अगिनि जराई॥

न्याय कहता है कि भयवश, लोभवश अथवा अनुचित आशा से जो किसी अबोध बालक की हत्या करता है; उस नरपिशाच को बलपूर्वक पकड़कर जीवित ही अग्नि में जला देना चाहिये।

अस सुनि कंस कहेउ मुसुकाई। जम मुख जरठ रहा श्रुति गाई॥

यह सुनकर कंस मुस्कुराकर बोला कि यम के मुख में पहुँचकर भी बूढ़ा शास्त्र सुना रहा है।

दोहा- **करत भोग नाना जिवन जरठ भए अब राउ।**
भयउँ दृगन्ह महुँ तम सघन अब जनि प्रथम प्रभाउ॥२३७॥

जीवन में अनेक प्रकार के भोग-भोगते हुए महाराज अब बूढ़े हो चुके हैं। आँखों में अन्धकार भी अत्यधिक गहरा गया है, अब (आपमें) वह पहलेवाला प्रभाव नहीं रहा है।

चौ.- **अब निज सिंघासनु नरराई। देहुँ मोहि सादर हरषाई॥**
बिंग्य करत एहि भाँति अभागा। पितु उर मूँग दरन जब लागा॥

हे नरराज! अब आप प्रसन्नता से आदरपूर्वक अपना राजसिंहासन मुझे सौंप दो। इस प्रकार व्यंग्य करते हुए वह आभागा जब अपने पिता की छाती पर मूँग दलने लगा,

तबहि दंडपति परम रिसाए। असि गहि खल कहँ मारन धाए॥
लखि खल निज अनुचरन्ह बोलावा। घेरि तुरत उन्हँ बंदि बनावा॥

तब तो दण्डाधिपति राजा उग्रसेन अत्यन्त क्रुद्ध हो गए और खड्ग लेकर उसे मारने के लिये दौड़े। यह देखकर उस दुष्ट ने अपने अनुचर सैनिकों को बुलाया और घेरकर उन्हें तुरंत बन्दी बनवा लिया।

कारागार तपोबन तोरा। तहहिं करिअ अब ईस निहोरा॥
बहुरि मंत्र निज सचिवन्ह पाई। मगध सेन पुर माँझ पठाई॥

कारागृह ही आपका तपोवन है, अब से वहीं रहकर आप ईश्वर का भजन कीजिये। फिर अपने मन्त्रियों का मत पाकर उसने मगध की सेना नगर में भेज दी।

धरेउँ मुकुट सिरु सासन काँधे। प्रमुख प्रमुख नृप सचिवन्ह बाँधे॥
दृष्टिबद्ध कछुकन्ह गृह कीन्हा। मीचुदंड बिद्रोहिन्ह दीन्हा॥

फिर उसने पिता का राजमुकुट अपने शीश पर धारण करके शासन स्वयं सँभाल लिया और महाराज उग्रसेन के प्रमुख-प्रमुख मन्त्रियों को बन्दी बना लिया। उनमें भी कुछ को उनके ही घरों में दृष्टिबद्ध कर दिया और जिन्होंने विद्रोह किया, उन्हें उसने मृत्युदण्ड दे दिया।

जदुबंसिन्ह खल जहँ जहँ पाए। सहित सहायक सबन्हँ बधाए॥

उस दुष्ट ने जहाँ भी यदुवंशियों को पाया, उन्हें उनके सहायकों सहित मरवा डाला।

दोहा- कछु जादव मथुरा बिसरि निज परिवार समेत।
मित्रन्ह पुर भागे दुरत गोकुल कछुक सचेत॥२३८॥ (क)

कुछ यादव मथुरा छोड़कर परिवार सहित छिपते हुए अन्य मित्र राजाओं के देशों में भाग गये और कुछ सचेत होकर गोकुल में जा बसे।

अपर नारि बसुदेव कइ रोहिनि पतिब्रत धारि।
दुरत ताहिं गोकुल पठइ अक्रूर कुसँव बिचारि॥२३८॥ (ख)

वसुदेवजी की दूसरी रानी पतिव्रता रोहिणी देवी को प्रतिकूल समय का विचार करके अक्रूरजी ने छिपते हुए गोकुल पहुँचा दिया।

चौ.- साधुन्ह धरि धरि बंदि बनाए। खल हरि भगतन्ह बहु धमकाए॥
बहुरि नगर अस डोंडि पिटाई। मैंहि तोर प्रभु अरु नरराई॥

कंस ने सत्पुरुषों को पकड़-पकड़कर बन्दी बना लिया और हरिभक्तों को बहुत आक्रान्त कर दिया। फिर उसने सारे नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि तुम्हारा भगवान और नरेश केवल मैं हूँ।

मोर राज करिहइ जे दाना। सुरन्हँ हेतु जप तप मख नाना॥
जे सुमिरहिं तनकहुँ जगदीसा। निज कर कटिहउँ तिन्ह कर सीसा॥

मेरे राज्य में देवताओं के निमित्त, जो कोई भी दान, जप, तप और अनेक प्रकार के यज्ञादि करेगा और जो कोई तनिक भी नारायण का स्मरण करेगा; मैं स्वयं उसका सिर काट दूँगा।

अघ प्रलंब पूतना भभूरा। सकट केसि बक अरु चानूरा॥
पावतही खल कंस रजाई। धाए निज निज जूथ बनाई॥

अघासुर, प्रलम्बासुर, पूतना, तृणावर्त्त, उत्कच, केशि, बकासुर और चाणूर आदि दैत्य कंस की आज्ञा पाते ही अपने-अपने दल बनाकर दौड़े।

खल सो लख जहँ साधु समाजा। बाँधि करावत निज अप काजा॥
होत जहाँ जग हित मख नाना। टूटि परत तहँ केत समाना॥

वे दुष्ट जहाँ भी सत्पुरुषों का समुदाय देखते थे, उन्हें बन्दी बनाकर वे उनसे अपनी निकृष्ट सेवा करवाते थे। वे जहाँ भी संसार के हित के लिये यज्ञ होता देखते, वहीं केतु के समान टूट पड़ते थे।

मखपेमिन्हँ खल देत निपाती। जजमानन्हँ पीरहि बहुभाँती॥
आग लगावत सो पुर ग्रामहिं। भगति होत देखत जहँ रामहिं॥

यज्ञ में आस्था रखनेवालों को पकड़कर वे दुष्ट मार डालते थे और यजमानों को बहुत प्रकार से प्रताड़ित करते थे। वे उस नगर अथवा गाँव में आग लगा देते थे, जहाँ भगवान श्रीहरि की भक्ति होते देखते थे।

मुनिन्ह लेत खल धरि धरि खाई। जे सुमिरहि तिहुँपुर सुखदाई॥
सो रसना खल लेत उपारी। लगहि जे तारनहार पुकारी॥

वे दुष्ट उन मुनियों को पकड़-पकड़कर खा जाते थे, जो तीनों-लोकों को सुख देनेवाले भगवान श्रीहरि का स्मरण करते थे। वे उस जीभ को भी खींच लेते थे, जो 'तारणहार' इस प्रकार पुकारती थी।

दोहा- **परिछित एहि बिधि कंस कर अघ घट गयउ भराइ।**
तब परिपाटि दरन तेहिं दीन्ह बिरंचि सराइ॥२३९॥

हे परीक्षित! इस प्रकार कंस के पापों का घड़ा भर गया और तब ब्रह्माजी ने भी उसके फूटने की व्यवस्था कर दी।

चौ.- **तदुप सेष गोधाम पधारे। हरि सन कहन लाग कर जोरे॥**
बाढ़ेउँ जब त्रेता महि भारा। नाथ भए तब रामु उदारा॥

तदुपरान्त शेषजी गोलोक धाम में पधारे और भगवान श्रीहरि से हाथ जोड़कर कहने लगे- हे प्रभु! जब त्रेतायुग में पृथ्वी पर पाप बढ़ गया था, तब आप उदारमना भगवान श्रीरामचन्द्र हुए थे।

सो सवँ अनुज कीन्हँ मोहि साई। जातें भइ मोहि अति कठिनाई॥
तव अनुसासन बस भगवाना। अहित तुम्हार सहा चुप ठाना॥

उस समय स्वामी (आप) ने मुझे अपना अनुज बनाया था; जिससे मुझे अत्यधिक कठिनाई हुई थी और हे प्रभु! आपके अनुशासन के वशीभूत होकर, मैंने आपके प्रति हुए अहित को भी चुप रहकर सहा।

तब तैं चलन दीन्ह मम नाहीं। एहि तें आवा मैं प्रभु पाही॥
अब मोहिं देहुँ इहइ बरदाना। होउँ तोर अग्रज भगवाना॥

उस समय आपने मेरी कुछ भी चलने नहीं दी; इसी कारण मैं प्रभु के पास आया हूँ। हे भगवन्! अब आप मुझे यही वरदान दीजिये कि मैं आपका ज्येष्ठ भ्राता होऊँ।

अमल प्रीति उन्हँ लखि भगवंता। एवमस्तु अस कहा तुरंता॥
हरषि शेष तब पद सिरु नाई। सभया दिसि चलेउँ अतुराई॥

उनके निर्मल प्रेम को देखकर भगवान ने तुरंत 'एवमस्तु' इस प्रकार कह दिया। तब हर्षित होकर शेषजी भगवान के चरणों में शीश नवाँकर, आतुरतापूर्वक (पापपीड़ित) भयग्रस्त पृथ्वी की ओर चले।

दोहा- **जोतिपुंज करि रूप पुनि देअकि गरभु समाइ।**
तेज करत भै अकथ तहँ निज प्रभाउ प्रगटाइ॥२४०॥

फिर (पृथ्वी पर आकर) वे एक ज्योतिपुञ्ज का रूप धारण करके माता देवकी के गर्भ में समा गये और वहाँ (कारागार में) अपने प्रभाव को प्रकट करके अकथनीय तेज उत्पन्न करने लगे।

चौ.- **आभहि खबरि कंस जब पावा। फूरे कर पग प्रगट रिसावा॥**
असि गहि सचिवन्ह संग बनाई। आवा कारागृह अतुराई॥

जब (कारागृह में व्याप्त) उस तेज की सूचना कंश को मिली, तो प्रत्यक्ष में वह क्रोधित हुआ, किन्तु (भीतर-ही भीतर) भय से उसके हाथ-पैर फूल गये। फिर मन्त्रियों को साथ लेकर खड्ग उठाये वह उतावली से कारागार में आ पहुँचा।

पुनि सोवतहि देअकिहिं ज्यों ही। हतन हेत सठ असि करि त्यों ही॥
दीख परेउँ देअकि सिरु पाहीं। क्रोधवंत बिषधर एक ताहीं॥

फिर उस मूर्ख ने शयन करती हुई माता देवकी को मारने के लिये ज्यों-ही अपना खड्ग ऊपर किया, त्यों-ही उसे उनके सिर के निकट एक अत्यन्त क्रुद्ध सर्प दिखाई दिया।

तब खसि असि सो सभय पराना। नाग नाग एहिंभाँति चचाना॥
इत गोपुर हरि भृकुटि चलाई। जोगमाय तब प्रभु पहि आई॥

तब उसके हाथ से तलवार गिर पड़ी और भयभीत हुआ वह 'सर्प-सर्प' इस प्रकार चिल्लाता हुआ वहाँ से भाग छूटा। इधर गोलोकधाम में भगवान श्रीहरि ने अपनी भृकुटि से सङ्केत किया, तब योगमाया उनके सम्मुख प्रकट हुई।

मथुरा माय बेगि तैं जैहहुँ। देअकि उदर गरभु पुनि खैहहुँ॥
बहुरि ताहिं गोकुल लै जाई। देहुँ रोहिनिहिं गरभु बसाई॥

(भगवान ने कहा-) हे योगमाया! तुम शीघ्र-ही मथुरा जाओ और माता देवकी के उदर से उनके गर्भ को खींच लो। फिर उसे गोकुल ले जाकर (वसुदेवजी की दूसरी पत्नि) रोहिणी के गर्भ में स्थापित कर दो।

किए भाँति एहि गरभु अकरषन। कहहिं शेष कहँ जग संकरषन॥
देअकि तनय होब मैं माया। होहुँ जाइ तुम जसुदहिं छाया॥

गर्भ को इस प्रकार आकर्षित किये जाने के कारण गर्भस्थ शेषजी को यह संसार संकर्षण कहकर पुकारेगा। हे योगमाया! मैं माता देवकी का पुत्र होकर अवतरित होऊँगा और तुम जाकर मैय्या यशोदा की छायास्वरूपा (पुत्री) होओ।

दोहा- **एहि कारन यह जगत तोहि दुर्गा अंब भवानि।**
उमा चंडिका आदि कहि पूजिहिं सुगुन बखानि॥२४१॥

इसी कारण यह संसार तुम्हें दुर्गा, अम्बा, भवानी, उमा, चण्डिका आदि नामों से पुकारकर तुम्हारा पूजन और तुम्हारे सुन्दर गुणों का बखान करेगा।

चौ.- **हरि मायहि जस आयसु दीन्ही। जाइ हरषि उन्हँ तहँ तस कीन्ही॥**
देअकि गरभु खसन निज जाना। भा उन्ह उर परिताप महाना॥

भगवान ने योगमाया को जिस प्रकार आज्ञा दी थी, उन्होंने हर्षपूर्वक जाकर वहाँ वैसा-ही कर दिया। जब देवकीजी को अपने गर्भ का गिरना ज्ञात हुआ, तो उनके हृदय में अत्यधिक संताप हुआ।

पुनि सुमिरतहि कंस निठुराई। धीर किरन उरतल उमगाई॥
कहे द्वारपति यह सवँचारा। भयउँ कंस उर गरुअ अपारा॥

फिर कंस की निर्दयता का स्मरण करते ही उनके हृदयपटल पर धैर्यरूपी किरण उमड़ आई। द्वारपाल ने (गर्भपातसम्बन्धी) यह समाचार (जाकर) कंस को दिया, तो उसके हृदय में अत्यन्त अभिमान हो आया।

निज भुजदंड निरखि सठ बोला। तरकि अवसि इन्ह हरि मनु डोला॥
तबहि त सवँ पूरब महि आवा। पुनि भजेउ जब मम भय पावा॥

वह मूर्ख अपनी भुजाओं को देखकर बोला- अवश्य ही इनका (बल) अनुमानकर विष्णु का मन विचलित हो गया है, तभी तो वह समय से पूर्व (अष्टम के स्थान पर सप्तम गर्भ में) ही (पृथ्वी पर) आ गया और फिर जब मुझसे भय लगा, तो वह (गर्भ से) भाग गया।

एहिबिधि मूढ़ बाजि लग गाला। जदपि परम भय तेहिं निज काला॥
महिमा निज कह आपु बखानी। पै न सोव निसि अहि भय मानी॥

वह मूर्ख इस प्रकार गाल बजाने लगा; यद्यपि उसके मन में अपने काल का बड़ा भय था। वह अपनी महिमा का बखान आप-ही किया करता था; किन्तु रात्रि में सर्प के भय से सो नहीं पाता था।

बिवुधन्ह केर सवारन काजा। नृप इत सुघरि सोधि अहिराजा॥
भादौ मास सुक्ल पखुआरा। छठ तिथि लगन तुलउँ बुधवारा॥

हे परीक्षित! इधर देवताओं के कल्याण के निमित्त, उत्तम समय निश्चित करके सर्पों के स्वामी शेषजी, भादौ माह के शुक्ल पक्ष की षष्ठी को, बुधवार के दिन, तुला लग्न पाकर,

लीन्ह अरध दिनु महि अवतारा। देत रोहिनिहिं मोद अपारा॥

मध्यान्हकाल में पुत्ररूप में रोहिणीजी को परम आनन्द देते हुए पृथ्वी पर अवतरित हुए।

दोहा- **बिगत काल कछु देअकि आठँव गरभु धरेउँ।**
गरभु बास लखि हरिहि कर त्रिपुर प्रमोद भरेउँ॥२४२॥

फिर कुछ समय बीतने के उपरान्त माता देवकी ने आठवाँ गर्भ धारण किया। उनके गर्भ में भगवान श्रीहरि का निवास हुआ देखकर तीनों लोक महान आनन्द से भर गये।

चौ.- **कारागृह भइ आभा ऐसे। परहितु उर ब्यापहि दय जैसे॥**
आभ सुनत पुनि कंस डेराना। पहरउँ अति घन तेहिं बढ़ाना॥

भगवान की उपस्थिति के कारण कारागृह इस प्रकार प्रकाश से भर गया, जैसे परोपकारी के मन में दया व्याप्त रहती है। उस तेज की सूचना मिलते ही कंश पुनः भयभीत हो गया और उसने (कारागृह में) पहरा बढ़ाकर और भी अधिक घना कर दिया।

पुनि बसुदेवहुँ कह चेताई। सुरति रखहुँ जे सौंह उठाई॥
प्रथम तें छटउँ गरभु जनि ऐसा। रहा तेज सातउँ कर जैसा॥

फिर वह वसुदेवजी को चेताकर कहने लगा कि तुमने जो सौगन्ध उठाई है, उसे स्मरण रखना। पहले से लेकर छठे गर्भ तक वैसा तेज नहीं था, जैसा सातवें गर्भ का था।

जद्यपि सो मम बल भय पाई। प्रान मोह करि गयउ पराई॥

अब यह आठउँ तेज बिसाला। निस्चय एहि अहहि मम काला॥

यद्यपि वह मेरे बल से भयभीत होकर अपने प्राणों का मोह करके गर्भ से भाग गया था। अब यह आठवाँ गर्भ है, जो अत्यधिक तेजस्वी है, निश्चय ही यही मेरा काल होगा।

अब जनमतहिं देहुँ मोहि याहीं। सुमिरि बचन आपन उर माहीं॥
नृप इत सुभ निसि सो निअराई। रहा निखित जब जनम कन्हाई॥

अब तुम अपने द्वारा दिये वचन का मन में स्मरण करके जन्म लेते-ही इसे मुझे सौंप देना। हे परीक्षित! इधर वह शुभ रात्रि भी निकट आ गई, जिसमें भगवान श्रीकृष्ण का उत्पन्न होना निश्चित हुआ था।

अज हर अरु सब सुरन्हँ समाजा। निरखि बंदिगृह आइ बिराजा॥
बहुरि सकल परमानँद पागे। बिनय सुमन बरषावन लागे॥

यह देखकर ब्रह्माजी व शिवजी सहित देवताओं का समस्त समुदाय बन्दीगृह में आ पहुँचा। फिर वे सभी परम आनन्दित होकर भगवान पर विनयरूपी पुष्प बरसाने लगे।

तदुप जोरि कर अज सिरु नाई। अस्तुति कीन्हि परम हरषाई॥

तदुपरान्त हाथ जोड़कर और सिर नवाकर ब्रह्माजी ने महान हर्ष से भगवान की स्तुति की।

सो.- हरषेउँ बिबुध समाज बिधि कीन्हिसि अस्तुति गरभ।
संख सघन धुनि बाज कलप सुमन भै बरषत॥१॥

ब्रह्माजी ने गर्भ में स्थित भगवान श्रीहरि की स्तुति की, यह देखकर सारा देवसमाज हर्षित हुआ। उनके शङ्ख सघन ध्वनि से बजने लगे और कल्पवृक्ष के पुष्पों की वर्षा होने लगी।

दोहा- परिछित तेहिं सवँ बंदिगृह प्रसून नाना जाति।
छाए करत सुगंध सुचि छबि जनि जासु कहाति॥२४३॥

हे परीक्षित! उस समय बन्दीगृह में पवित्र सुगन्ध करते हुए अनेक प्रकार के पुष्प चारों ओर छा गये, जिनकी सुन्दरता कही नहीं जा सकती।

चौ.- सुमन निरखि खल भयउँ सभीता। कहि लग प्रगट हृदय बिपरीता॥
कुसुम न यह सब हाटक पानी। हरिकृत काठ उलुक मोहि जानी॥

उन पुष्पों को देखकर दुष्ट कंस भयभीत हो उठा और अपनी इस मनःस्थिति के विपरीत इस प्रकार बोला- ये सब पुष्प नहीं अपितु सोने का पानी है, जो मुझे काठ का उल्लू समझकर विष्णु के द्वारा चढ़ाया गया है।

ते सजतन मोहि चहहिं डेराई। तेहिं भय होत मोर समुहाई॥
कंस भयातुर होइ न कबहूँ। कोटि बिष्नु जतनहिं जनि तबहूँ॥

वह यत्नपूर्वक मुझे भयभीत करना चाहता है, क्योंकि उसे मेरे सम्मुख होने में भय लगता है। किन्तु कंस कभी भी भय से अकुला नहीं सकता; करोड़ों विष्णु मिलकर प्रयत्न करें, तब भी नहीं।

इहिबिधि डींग मार बहुभाँती। दिनु न चैन पर नींद न राती॥

अहि अहि कहि सोवत उठि भागहि। जहँ तहँ हरिहि बिलोकन लागहि॥

इस प्रकार वह बहुत तरह से डींगें मारता था, किन्तु न तो उसे दिन में शांति मिलती थी और न ही रात में नींद आती थी। वह 'सर्प-सर्प' कहता हुआ नींद से उठकर भाग छूटता था और जहाँ-तहाँ श्रीहरि को ही देखने लगता था।

जल महँ चितइ चक्र परिछाहीं। सभय चिक्क तेहिं पीबत नाहीं॥
ते उर धरि अरि भाउ महाना। प्रतिछिन हेरि लाग भगवाना॥

जल में भगवान के चक्र की परछाई देखकर वह भय के मारे चीख पड़ता था और उसे पीता नहीं था। (इस प्रकार) वह अपने हृदय में घोर शत्रुभाव लिये प्रतिक्षण भगवान का स्मरण करने लगा।

सोइ प्रताप प्रभु लखि पर ताहीं। पै हतभागि जरहि उर माहीं॥
परिछित फलजुत तरु जगनाथा। फल ते भर पाहन जेइ हाथा॥

उसी के प्रताप से उसे भगवान के दर्शन होते थे, किन्तु वह अभागा मन-ही मन जला जाता था। हे परीक्षित! भगवान श्रीहरि उस फलदार वृक्ष के समान (उदार) हैं, जो उस हाथ को भी फलों से भर देते हैं, जिनमें पत्थर होता है।

एहिं भाँति सब सुसगुन छाई। प्रभु अवतार घरी निअराई॥

इस प्रकार प्रभु के अवतार की समस्त शुभ शकुनों से सम्पन्न घड़ी निकट आ पहुँची।

छन्द- **घाती खलन्हँ अवतरिहिं जब घरि सुभ सो परम निकट अई।**
भइ सकल दिसि उज्वल मधुर स्वर कोकिला बोलत भई॥
अनुकूल भै सब असुभ ग्रह अरु अधम घन नभ दुरि गए।
रोहिनि नखत पर ससि चलेउँ सब जोग सुभ फलप्रद भए॥

दुष्टनिकन्दन जब अवतरित होनेवाले थे, वह शुभ घड़ी अत्यन्त निकट आ गई। सारी दिशाएँ उज्जवल हो गई और कोयल कोमलवाणी से बोलने लगी। सारे अमङ्गलकारी ग्रह शुभ अवस्था में आ गये और पापी ग्रह घने आकाश में जा छिपे। जब चन्द्रमा रोहिणी नक्षत्र में भ्रमण करने लगा, तब सारे योग शुभफलदायक हो गये।

छन्द- **सब सरित भइ मृदु सलिल कल कल करत निज निज दिसि बहे।**
सोभित सकल तरु बाग कानन फूल फल बिनु रितु लहै॥
निज बछुन्हँ लखि सब धेनु अयनन्हि नेह अमिय बहावही।
सब साक आमिष भोजि तजि निज बैर प्रीति बढ़ावही॥

सारी नदियाँ मृदुल जल से पूरित हो कल-कल ध्वनि से अपनी-अपनी दिशाओं में बहने लगी। वन व उद्यानों के समस्त (ऋतुव्रती) वृक्ष बिना-ही ऋतु के फूलों व फलों से लद गये। अपने बछड़ों को देखकर गायें अपने स्तनों से स्नेहरूपी अमृत बहाने लगी। समस्त शाक एवं माँस खानेवाले जीव वैर त्यागकर परस्पर प्रेम बढ़ाने लगे।

छन्द- **गावहि मधुर धुनि हरषि चहुँ दिसि सुमनमय अति मोहही।**

सुर नाग किंनर जच्छ अरु गंधर्व नाचत सोहही॥
सिवसम्भु अज प्रमुदित करहिं अस्तुति जगत आधार की।
मनु सकल सुभ लच्छन करहि अगवानि प्रभु अवतार की॥

पुष्पों से आच्छादित होकर अत्यन्त मनोहर हुई चारों दिशाएँ हर्ष से भरकर मधुरध्वनि से गाने लगी। देवता, नाग, किन्नर, यक्ष और गन्धर्व नाचते हुए शोभा पाने लगे हैं। शिवजी और ब्रह्माजी बड़े आनन्द से भगवान की स्तुति करने लगे; मानों ये सब शुभशकुन भगवान के अवतार की अगवानी कर रहे हों।

भादौ बदि आठवँ दिवस बुध कर सुभद रहेउँ।
उदित प्राचि बृष रोहिनि नखत इन्दु पैठेउँ॥२४४॥ (क)

भादौ माह के कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि को, जब बुध का शुभदायक वार था, उस समय पूर्व दिशा में वृष राशि उदित हो रही थी, जिसके रोहिणी नक्षत्र में चन्द्रमा ने प्रवेश किया।

रिद्धि सिद्धि महि प्रगटि नृप बरषहिं जलद प्रधार।
रही अरध निसि बंदिगृह प्रगटे तारनहार॥२४४॥ (ख)

हे परीक्षित! पृथ्वी पर रिद्धि-सिद्धि प्रकट हो गई और मेघ जल की मोटी-मोटी धाराएँ बरसाने लगे। वह अर्धरात्रि का समय था, जब बन्दीगृह में संसार को तारनेवाले भगवान श्रीकृष्ण प्रकट हुए।

चौ.- जननिहिं भइ न प्रसव के पीरा। प्रगटे सहज सुखद जदुबीरा॥
गुर प्रति जिमि उपजइ सनमानू। तिमि प्रगटे निकेत कल्यानू॥

माता को प्रसव की कोई पीड़ा नहीं हुई, सुखदायक यदुवीर श्रीकृष्ण सहज ही में प्रकट हो गये। जिस प्रकार गुरु के प्रति (शिष्य के मन में) सम्मान प्रकट होता है, ठीक उसी प्रकार कल्याण के धाम भगवान श्रीकृष्ण प्रकट हुए।

सिव बरषहिं सुचि श्रद्धउँ फूला। बेद पढ़हिं बिधि मंगलमूला॥
एहि बिच उर भरि मातु प्रमोदा। सतनु सुकृतहिं उठानेउँ गोदा॥

उस समय शिवजी श्रद्धारूपी पुष्प बरसाने लगे और ब्रह्माजी मङ्गलमय वेदध्वनि करने लगे। इसी बीच हृदय में अत्यन्त आनन्दित होकर माता देवकी ने अपने पुण्यों के मूर्तरूप अपने पुत्र को गोद में ले लिया।

ते सिसु मुख लखि दुख सब भूली। मृदु बात्सल्य हिंडोलन्हि झूली॥
बहुरि पतिहि अति निकट बोलाई। लागिसि सुत कर बदनु देखाई॥

वे बालक के मुख को देखकर पिछला सब दुःख भूल गई और कोमल वात्सल्य के झूले पर झूलने लगी। फिर अपने पति वसुदेवजी को अत्यन्त निकट बुलाकर वे पुत्र का मुख दिखाने लगी।

देखहुँ नाथ नैकु सुत आनन। नव छबि पंकज जे इहि कानन॥
जिन्हँ अमिताभ परसि उर मोरा। नेह उदधि लहँ मधुर झकोरा॥

हे नाथ! तनिक अपने पुत्र का मुख तो देखो! जो मानों इस (कारागृहरूपी) वन का नवीन सुन्दरता से युक्त कमलपुष्प है; जिसकी महान आभा का स्पर्श पाकर मेरे मन में ममता का समुद्र मधुर-मधुर झकोरे ले रहा है।

बपुष बरन जनु स्याम तमाला। निज छबि महिमहिं हर उर काला॥
पुंढरीक छबि जुत दृग नीके। ताल बिसाल मानहुँ अमी के॥

इसके शरीर का रङ्ग जैसे तमालवृक्ष के समान श्याम है, जो अपनी सुन्दरता के प्रभाव से काल के भी हृदय को हरनेवाला है। नीलकमल की शोभा से युक्त इसके सुन्दर नेत्र, मानों अमृत के विशाल सरोवर हों।

कीर चोंच छबि ताहिं बिहाई। बसि इहि नाकु सुजसु चित लाई॥
पाहन उर उमगावनिहारे। भ्रुअ कच उभय कुटिल अरु कारे॥

तोते की चोंच का सौन्दर्य तोते को त्यागकर सुयश की कामना लिये इसकी नाक पर आ बसा है। कठोर हृदय को भी द्रवित कर देनेवाली इसकी भौहें व बाल दोनों ही कुटिल और काले हैं।

नवजीवन रितुपति बल पाई। उमगि जानु दिसि बाहु लताई॥
भृगुपद उर तल सोहत कैसे। नेह बसहिं जननिहिं हिय जैसे॥

नवीन जीवनरूपी वसन्त-ऋतु का बल पाकर बढ़ती हुई इसकी भुजारूपी लताएँ घुटनों तक जा रही हैं। छाती पर महर्षि भृगु का चरण चिह्न कैसा शोभित हो रहा है, जैसे माँ के हृदय में वात्सल्य निवास करता है।

चक्र पदुम पद चिन्ह बिलोकी। मातु सोच कर पलकन्हि रोकी॥
अवचट सुमिरि बैरि करतूती। भइ मुद मानस कंप प्रसूती॥

शिशु के चरणतलों पर चक्र व पद्म के चिह्न देखकर माता अपनी पलकों का गिरना रोककर विचार करने लगीं। फिर सहसा-ही दुष्ट कंस की करतूतों का स्मरण करके उनके आनन्दरूपी शान्त सरोवर में (भयरूपी) कम्पन उत्पन्न हो गया।

जनु पय मधुर अमियमय माहीं। बिष उढेरि केउ दीन्हँ नसाहीं॥
प्रमुद तरनि भय अउसनु पाई। चिंत बुढ़उनउँ गयउ समाई॥

मानों मधुर और अमृतमय दुग्ध में किसी ने विष उढ़ेलकर उसे नष्ट कर दिया हो। उनका आनन्दरूपी सूर्य भयरूपी अवसान को पाकर चिन्तारूपी पश्चिम में जा डूबा।

दोहा- अमित तेज मम तनय कर कोठरि यह अति छोटि।
जानि प्रतिच्छित खबरि खल करहिं न पिय कछु खोटि॥२४५॥

तब देवकीजी बोलीं- हे प्रियतम! मेरे पुत्र का तेज अपार है और यह कोठरी अत्यन्त छोटी है; कहीं वह दुष्ट अपने इस प्रतिच्छित शत्रु के जन्म का समाचार पाकर कुछ अनहोनी न कर दे!

चौ.- अस सुनि हरन चिंत उन्ह भारी। दीन्ह दरस हरि बपु भुजचारी॥
निरगुन ब्रह्म सृष्टि हित लागी। भै नृप मीचु लोक अनुरागी॥

ऐसा सुनकर उनकी इस महान चिन्ता को हरने के लिये भगवान ने उन्हें चतुर्भुज रूप में दर्शन दिए। हे परीक्षित! जो ब्रह्म निर्गुण है, वे ही सृष्टि के हित के लिये मृत्युलोक से अनुराग रखनेवाले हो गये।

जगपति सभय मातु पितु चीन्हें। दिब्य बिलोचन उन्ह कहु दीन्हें॥
उघरे हिय पट अम्बर देखा। दंपति निज तप सतनु सुबेषा॥

जगत्पति भगवान ने अपने माता-पिता को भयभीत देखा, तो उन्होंने उन्हें दिव्य नेत्र प्रदान किये; जिससे उनके हृदय के पट खुल गए और उन्होंने आकाश में अपने तप को सुन्दर वेष धारण किये साकार देखा।

तब बिस्मित कछु भए अधीरा। बचन न आव मुखनि दृग नीरा॥
प्रमुद परिधि बढ़ि हिय उन्ह घेरा। रहा प्रथम जहँ घन दुख डेरा॥

तब वे दोनों थोड़े विस्मित और थोड़े अधीर हो गये। उनके नेत्रों में अश्रु थे और मुख से वचन नहीं निकलता था। आनन्दरूपी परिधि ने बढ़कर उनके हृदय को घेर लिया, जहाँ पहले घने दुःख का डेरा था।

दसा जानि हरि कह मुसुकाई। पुन्यपुंज दुख देहुँ बिहाई॥
खबरि लेन मैं खलन्ह समाजा। तोर उछंगहुँ आइ बिराजा॥

उनकी अंतर्दशा को समझकर भगवान श्रीहरि मुस्कुराकर बोले कि हे पुण्यों के पुञ्जस्वरूप (वसुदेव-देवकी)! आप दुःख का त्याग कर दीजिये। दुष्टों के समूह को दण्ड देने के लिये मैं आपकी गोद में आ पहुँचा हूँ।

दोहा- **अब सुनु बिगत जनम निज जेहिं तें तजि निज लोक।**
मैं भा तउ सुत एहि जनम करन अभय तिहुँलोक॥२४६॥

अब आप अपने बीते हुए जन्म का वृतान्त सुनिए! जिसके कारण अपना धाम छोड़कर तीनों-लोकों को भय से मुक्त करने के लिये मैं इस जन्म में आपका पुत्र हुआ हूँ।

चौ.- स्वायंभुअ मनबंतर माहीं। भए प्रजापति तुम जग माहीं॥
रहा सुत्तपा तब तउ नामा। पृस्नि नाउँ रहि देअकि बामा॥

हे वसुदेवजी! स्वायम्भु मनवन्तर में आप इस संसार में प्रजापति हुए थे। उस समय आपका नाम सुत्तपा था और माता देवकी पृश्नि नाम से आपकी पत्नि हुई थीं।

मोर चतुर्भुज दरसन लागी। तब तुम भै तजि राज बिरागी॥
बहुरि मोर तप करि तैं भारी। पाएहुँ दरस रूप भुज चारी॥

मेरे चतुर्भुज स्वरूप के दर्शन पाने के लिये तब आप अपने राज्य का त्याग करके वैरागी हो गये थे। फिर मेरे निमित्त महान तप करके आपने मेरे चतुर्भुज स्वरूप का दर्शन पाया था।

जब मैं कहा माँगु बरु कोऊँ। मम सम सुत माँगेहुँ तुम दोऊँ॥
एवमस्तु कहि मैं त्रय बारा। पुनि आपन उर कीन्ह बिचारा॥

जब मैंने कहा कि कोई वर माँग लो, तो आप दोनों ने मेरे ही समान एक पुत्र माँगा था। तब मैंने आपको तीन बार 'एवमस्तु' कहकर, फिर अपने हृदय में विचार किया कि,

मैं अद्वितीय न मो सम आना। अब किमि पुरवउँ निज बरदाना॥
एहि ते भयउँ आपु सुत तोरा। पृस्निगर्भ भा परिचौ मोरा॥

मैं तो अद्वितीय हूँ, मेरे समान अन्य कोई नहीं है, अब मैं अपना वरदान किस प्रकार पूर्ण करूँ? इसी कारण मैं स्वयं-ही आपका पुत्र हो गया और (उस समय) मेरा नाम पृश्निगर्भ पड़ा।

दूसर जनम तोर श्रुति ख्याता। कस्यप अदिति बिबुध पितु माता॥
तब उपेन्द्र अस भा तव ढोटा। बामन कह सब लखि बपु छोटा॥

आपका दूसरा जन्म देवताओं के माता-पिता कश्यप व अदिति के रूप में हुआ, जो पुराण-प्रसिद्ध है। तब मैं उपेन्द्र नाम से आपका पुत्र हुआ था और मेरे छोटे शरीर को देखकर सब मुझे वामन कहते थे।

दोहा- सोउ जनम बलि मान मथि कीन्ह मैं तिन्ह उद्धार।
अब भै तुम देअकि बसुद्यौ उन्हहिं अंस अवतार॥२४७॥

उस जन्म में मैंने बलि के गर्व का हरण करके उसका उद्धार किया था। उन्हीं कश्यप व अदिति के अंश अवतार होकर अब आप इस जन्म में देवकी व वसुदेव हुए हैं।

चौ.- पुनि मैं निरगुन नर तनु लाई। भयउँ तुम्हार तनय महिं आई॥
अब मैं कहउँ सुखद निरबाना। तात मात सुनु सो धरि ध्याना॥

मैं निर्गुण ब्रह्म इस धरा पर आकर मनुष्य का शरीर धारण करके आपका पुत्र हुआ हूँ। अब मैं तुमसे सुख देनेवाले निर्वाण को कहता हूँ; हे माता-पिता आप उसे ध्यानपूर्वक सुनिये!

लाहु लेन चह जे मोहि पाई। तो मम प्रति सब मोह बिहाई॥
भजेसु मोर परमातम रूपा। जातें मिल तोहि मुकुति अनूपा॥

यदि आप मुझे प्राप्त करने का लाभ पाना चाहते हैं, तो मेरे प्रति समस्त प्रकार के मोह का त्याग करके मेरे परमात्म स्वरूप का भजन कीजियेगा; जिससे आपको अनुपम मुक्ति प्राप्त हो।

हरि जे मुकुति चाह हिय होती। अवसर प्रथम काह मैं खोती॥
मोहिं प्रिय मातु सुतहि सो नाता। जे मृदु पीर सहित सुखदाता॥

(तब देवकीजी ने कहा-) हे प्रभु! यदि मुक्ति की ही इच्छा होती, तो मैं पहले अवसर को ही क्यों जाने देती? मुझे तो माँ और पुत्र का वह नाता प्रिय है, जो मधुर पीड़ा के साथ सुख देनेवाला है।

जननिहिं मोह सुबंध बढ़ाई। बाँधि चहउँ गोपर सुखदाई॥
इहई जीवनु लच्छ हमारा। पुनि तुम एहि कर पुरवनिहारा॥

माता की ममता के सुन्दर बन्धन के बल पर, मैं आप इन्द्रियों से परे सुखदायक परमात्मा को बाँध लेना चाहती हूँ। यही हमारे जीवन का लक्ष्य है और आप इसे पूर्ण करनेवाले भगवान है।

दोहा- बहुरि जुगल कह जोरि कर कारनुपर भगवान।
हम त चहहिं निज अजिर तोहि प्राकृत सिसुहि समान॥२४८॥

फिर हाथ जोड़कर वे दोनों कहने लगे कि- हे कारण से परे परमात्मा! हम तो आपको अपने घर के आँगन में एक साधारण सांसारिक बालक के समान प्राप्त करना चाहते हैं।

चौ.- जुगल बचन सुनि हरि मुसुकाए। एवमस्तु कहि लाग बुझाए॥
अब मम लीलहिं होउ सहाई। जातें तिहुँपुर सुखि ह्वै जाई॥

उन दोनों के ऐसे वचन सुनकर भगवान श्रीहरि मुस्कुराएँ और 'एवमस्तु' इस प्रकार कहकर उन्हें समझाते हुए बोले- अब आप मेरी लीला में मेरे सहायक बनिये; जिससे कि तीनों लोक सुखी हो जायँ।

मम सिसु तन कहँ सूप सुवाई। गोकुलपति गृह देहुँ पठाई॥
बहुरि आनु इहँ तनुजा तासू। मैं सब कृत कर कीन्ह सुपासू॥

आप मेरे इस बालरूप को सूप में सुलाकर आप गोकुल के स्वामी नन्दरायजी के घर पहुँचा दीजिये। फिर उनकी पुत्री को यहाँ ले आइये; इस कार्य के लिये मैंने सारा प्रबन्ध कर दिया है।

ते कन्या कंसहिं तुम दीजौ। पुनि न चिंत ताकइ कछु कीजौ॥
नंद सतिय अपि मम तप कीन्हा। बाल चरित देखन बरु लीन्हा॥

वह कन्या आप कंस को दे दीजियेगा और उसकी कोई चिन्ता न करियेगा। नन्दरायजी ने भी अपनी पत्निसहित (पूर्वजन्म) में मेरा तप किया था और मुझसे मेरे बालचरित्रों को देखने का वर लिया था।

एहि कारनु कछु सवँ तहँ जाई। करब चरित उन्ह हित सुखदाई॥
पुनि मथुरा फिरि कंसहि मारी। करउँ मात पितु सबन्हँ सुखारी॥

इसी कारण वहाँ जाकर मैं कुछ समय तक उनके लिये सुख देनेवाली लीलाएँ करूँगा। फिर हे माता-पिता! वहाँ से मथुरा लौटकर कंस का वध करके मैं सभी को सुखी कर दूँगा।

अस कहि हरि आए सिसु रूपा। कहहिं मातु लखि बदनु अनूपा॥
भयउँ भाग मम आज बिसाला। भए मोर सुत जग प्रतिपाला॥

ऐसा कहकर भगवान पुनः शिशुरूप में आ गये। तब उनका अनुपम मुख देखकर माता ने कहा- आज मेरा भाग्य विशाल हो गया, जो जगत के पालनकर्ता भगवान मेरे पुत्र हुए।

होत खेद उर एकहिं बाता। हम अति बिबस कंस के घाता॥
तातें सयन अजोग धरनि पर। सए अहहिं जिन्हँ तोषक महिधर॥

अब मन में केवल एक ही बात का खेद होता है कि कंस के अत्याचार के कारण हम अत्यन्त विवश है। इसी कारण वे प्रभु जिनकी शैया स्वयं शेषजी हैं, वे ही इस शयन के अयोग्य भूमि पर लेटे हैं।

हा बिधि जे सब समरथ मूला। समउँ भयउँ तिन्ह अपि प्रतिकूला॥
हम परतंत्रिन्ह कर कछु नाहीं। किए जाहिं मुद उग उर माहीं॥

हा विधाता! जो समस्त सामर्थ्यों के मूल हैं, आज समय उनके भी प्रतिकूल हो गया। हा! हम परतंत्र माता-पिता के वश में कुछ भी नहीं है, जिसे करके हमारे हृदय में आनन्द उत्पन्न हो सके।

हरिमय होत दृस्य यह चारू। पाइ मोर दुरभाग प्रहारू॥
दुखद मोर जुग लोचन कैसे। स्वजन सुरति बियोग महुँ जैसे॥

यह सुन्दर दृश्य साक्षात् श्रीहरि से युक्त होकर भी, मेरे दुर्भाग्य की चोट से आहत होकर मेरे इन दोनों नेत्रों को किस प्रकार से दुःख दे रहा है; जिस प्रकार वियोग में स्वजनों की स्मृति दुःख देती है।

प्रभु तव हिय सब जाननिहारा। नमन भायजुत लेहुँ हमारा॥
तात मात दुख हृदय बिचारी। हरिहि ग्लानि भइ निज भुजचारी॥

हे प्रभु! आपका मन तो सब जाननेवाला है, अतः हमारा (निरा) भावयुक्त नमन स्वीकार कीजिये। अपने माता-पिता की इस पीड़ा का मन-ही मन विचार करके भगवान को अपनी चारों भुजाओं पर ग्लानी हो आई।

सहसा कह संकित महतारी। प्रभु यह तेज दुरावहुँ भारी॥

फिर अनायास ही आशङ्कित हुई माता बोली- हे प्रभु! आप अपना यह विशाल तेज छिपा लीजिये।

दोहा- जे प्रभु घन चर अचर जग धर निज बदनु प्रकास।
बसे सो कस देअकि गरभु जगत करिहिं उपहास॥२४९॥

क्योंकि जो प्रभु इस विशाल चराचर जगत को मात्र अपने मुखमण्डल के प्रकाश में धारण करते हैं, वे देवकी के गर्भ में किस प्रकार समा गये, ऐसा सोचकर यह संसार उपहास करेगा।

चौ.- सुनि निस्छल महतारिहि बैना। नेह भरे श्री राजिवनैना॥
कीन्ह माय तब अस उच्चाटन। सजग प्रहरि सब गै निदरासन॥

माता के ऐसे निष्कपट वचन सुनकर कमलनयन भगवान स्नेह से भर गये। तभी योगमाया ने ऐसा उच्चाटन कर दिया कि जिससे जागते हुए समस्त प्रहरी निद्रारूपी आसन पर चले गए।

जनु उड़ रबि कहुँ सनमुख पाई। दुरे प्रकास चदरि तनु छाई॥
सुदृढ़ कुलिस सम कोठरि द्वारा। रहे प्रबद्ध जंत्रितन्हँ भारा॥

मानो सूर्य को अपने सम्मुख पाकर तारों का समूह उसके प्रकाश की चादर अपने शरीर पर लपेटकर छिप गया हो। उस बन्दीगृह के द्वार वज्र समान सुदृढ़ थे, जो तालों के भार से भली प्रकार बंद किये गए थे।

पै हरि माय तोरि महि पारे। उघरे द्वार आपु गुर भारे॥
पुनि सब बंधन बसुद्यौ केरे। टूटेउ आपु मायपति प्रेरे॥

किन्तु भगवान की माया ने उन्हें तोड़कर पृथ्वी पर पटक दिया और वे भारी व विशाल द्वार स्वयं ही खुल गए। फिर उन मायापति की प्रेरणा से वसुदेवजी के भी सब बन्धन स्वतः ही टूट गए।

ते तब सिसु कहँ सूप सुवाई। लगे चलन गोकुल अतुराई॥
मातु बिकल तब उठि गहि सूपा। सकरुन बोली बचन अनूपा॥

तब वे बालक को एक सूप में सुलाकर उतावली से गोकुल के लिये चलने लगे। तब माता व्याकुल होकर उठी और जाते हुए उस सूप को पकड़कर करुणा के साथ यह अनुपम वचन बोली-

हा अनमोल रतन मम नाथा। चला अकेल बिसरि मम साथा॥

हा नाथ! मेरा यह अनमोल रत्न आज मेरा साथ छोड़कर अकेले ही चल दिया।

दोहा- **कंठ पूर जलजुत नयन दुख तें कछु न कहात।**
हृदय कलपतरु ऊपर होत महा पबिपात॥२५०॥

(इतना कहकर) उनका गला भर आया, नेत्रों में अश्रु आ गये और दुःख के कारण उनसे कुछ भी कहते न बना। उनके हृदयरूपी कल्पवृक्ष पर कठोर वज्रपात होने लगा।

चौ.- **कवन पाप फलु दीन्ह बिधाता। स्वकर तनय पराउ कर माता॥**
बिदा होत सुत नयनन्हँ आगे। रोकि सक न पितु मात अभागे॥

(देवकीजी पुनः बोलीं-) विधाता ने यह किस पाप का दण्ड दिया है; जो माँ होकर भी मैं अपने हाथों से अपने पुत्र को पराया कर रही हूँ। पुत्र नेत्रों के सामने से विदा हो रहा है, किन्तु हम अभागे माता-पिता उसे रोक भी नहीं सकते।

पितु सुत कहँ मातुहि तें हाँखी। बिलगानहिं जनु पय के माखी॥
निज धन चोरन्हँ भाँति दुराई। पर पुर पठवन अति दुखदाई॥

पिता अपने ही पुत्र को उसकी माता से छीनकर अलग कर रहा है, जैसे वह दूध में पड़ी हुई मक्खी हो। हे नाथ! अपने ही धन को चोरों की भाँति छिपाकर पराये नगर में भेजना बड़ा ही दुःखद अनुभव है।

कंस हतहिं भल मोहि रिसाई। देउँ न तनय प्रान सुखदाई॥
मोहिं न तनक सोच निज घाता। पै सुत बिरहु दुसह दुखदाता॥

भले ही कंस क्रुद्ध होकर मुझे मार डाले, किन्तु मैं प्राणों को सुख देनेवाले अपने पुत्र को नहीं दूँगी। मुझे अपने मरने की चिन्ता नहीं है, किन्तु पुत्र का वियोग असहनीय दुःख देनेवाला होता है।

ताहिं सहब कस एहि उर सोचा। बहुरि तजे उर एक सँकोचा॥
मिलनि आस उर तजतहिं जागे। तब तनु तजिहि न प्रान अभागे॥

उसे मैं किस प्रकार सहूँगी; मेरे मन में इसी बात की चिन्ता है। फिर इसे छोड़ने में एक (बात का) सङ्कोच यह भी है कि इसे छोड़ते ही हृदय में (इससे) पुनः मिलने की आशा बस जाएगी; तब मेरे अभागे प्राण इस शरीर नहीं छोड़ेंगे।

दुसह उभय थिति कस धरुँ प्राना। जिअनि मरनु अब गरल समाना॥
बसुद्यौ चह उन्ह धीर बधाई। कहि न पाव पुनि पुनि सकुचाई॥

दोनों ही स्थितियाँ असह्य है, मैं अपने प्राण किस प्रकार रखूँ? अब मेरे लिये जीना-मरना दोनों ही विषतुल्य हो गया है। वसुदेवजी उन्हें धैर्य बँधाना चाहते हैं, किन्तु बार-बार होनेवाले सङ्कोच के कारण कुछ कह नहीं पाते।

उन्ह प्रति सुमिरि देव निठुराई। कहन लाग अस धीर बिहाई॥
हा कस कहु दृग श्रवहुँ न नारी। रोइ लेहुँ अज हृदय उघारी॥

उनके प्रति विधाता की निष्ठुरता का स्मरण करके वे अधीर हो उठे और इस प्रकार बोले- हा! मैं कैसे कहूँ कि हे नारी! तुम अश्रु न बहाओं। (नहीं-नहीं) आज तुम जी-भरकर रो ही लो।

प्रथम ब्याह फलु बंधनु पाए। तनय भए उन्हँ अग्रज खाए॥
तात मात धन उन्ह संताना। उन्ह कछु प्रिय नहिं ताहि समाना॥

विवाह के फलस्वरूप पहले बंदी बनना पड़ा, पुत्र उत्पन्न हुए, तो उन्हें भाई ने मार डाला। माता-पिता के लिये सन्तान ही उनका धन होती है, उसके समान उन्हें कुछ भी प्रिय नहीं होता।

हम सो तात मात जग केरे। जे तज स्वकर सो निधि भय प्रेरे॥
कठिन सिथिलपनु भा उन्ह गाता। तब पुनि बोलि ऐहिबिधि माता॥

किन्तु हम संसार के वे (अभागे) माता-पिता है, जो भय के मारे अपनी उसी सम्पदा को त्याग रहे हैं। (इतना कहकर) वसुदेवजी के शरीर में कठोर शिथिलता छा गई। तब माता देवकी पुनः इस प्रकार बोलीं-

नाथ जे दुख दरि सक पाषाना। पाइ ताहि मम निकस न प्राना॥
जिवन अधार जे मोर महाना। हा मैं आपु ताहिं बिलगाना॥

हे नाथ! जिस दुःख में पत्थर भी टूट सकता है, उस दुःख को पाकर भी मेरे प्राण नहीं निकलते। जो मेरे जीवन का सबसे महान आधार है, हा! मैंने स्वयं उसे त्याग दिया।

कंस तही मिलेउ मोहि भ्राता। कवन जनम कर पुरवहि घाता॥

इहि अबलहि सब निधि तैं खाई। तदपि न आतम तोर अघाई॥

हे कंस! भाई तो मुझे तू ही मिला है; यह किस जन्म का वैर निकाल रहा है? इस अबला की सम्पूर्ण सम्पत्ति तूने खा ली; फिर भी (अब तक) तुम्हारी आत्मा तृप्त नहीं हुई?

सब लहँ दुख लखि जनम सुता कर। सुत सम आदरु नेह न तापर॥
पाइ सयानि तात परनावहि। सपति होतही अस दुख आवहि॥

पुत्री का जन्म हुआ देखकर सब दुःखी हो जाते हैं, पुत्र के समान न तो उसे स्नेह मिलता है और न ही आदर। फिर सयानी हुई देखकर पिता उसका विवाह कर देता है और सुहागिन होने के उपरान्त उस पर ऐसा दुःख आ पड़ता है।

बिरचि बिरंचि असुचिता दीन्ही। भा न तोष तब पर धन कीन्ही॥
मातु होत तेइ हृदय जुड़ाई। सकि न सुतहि अज नेह पिबाई॥

(स्त्रीरूप में) रचकर जिसे विधाता ने (रजोधर्म की) अपवित्रता दे दी और जब इस पर भी उसे संतोष न हुआ, तो उसे पराया धन बना दिया। फिर माता होकर आज वही (नारी) अपने पुत्र को छाती से लगाकर दूध भी न पिला सकी।

हा बिधि तैं निठुर अस काहू। पावा जग तिय रचि का लाहू॥
बसुद्यौ निरखि कठिन उन्ह पीरा। कह धरु प्रिये तनक उर धीरा॥

हा विधाता! तू इतना निष्ठुर क्यों है? इस संसार में नारी को रचकर तुम्हें क्या मिल गया? वसुदेवजी उनके इस कठोर दुःख को देखकर बोले-हे प्रिये हृदय में तनिक धैर्य धारण करो।

दोहा- अस अवसर पुनि मिल न मिल हृदय ध्यानु दुख रोकि।
सुत अनूप बिधुवदनु प्रिये दृग भरि लेहुँ बिलोकि॥२५१॥

हे प्रिये! इस दुःख को त्यागकर अपने हृदय में इस बात का ध्यान करो कि ऐसा अवसर फिर मिले न मिले! इसलिये अपने पुत्र का यह अनुपम चन्द्रमुख नेत्र भरकर देख लो।

चौ.- हमहिं दुसह दुख दीन्ह बिधाता। किए सोक कछु आव न हाता॥
रुदन परा जे तव केउ काना। बृथा उपजिहहिं बिपति महाना॥

विधाता ने हमें यह दुःसह दुःख दिया है, अब शोक करके कुछ भी हाथ नहीं आयेगा। यदि तुम्हारा रुदन किसी के कानों में पड़ गया, तो व्यर्थ ही में कोई महान विपत्ति आ पड़ेगी।

प्रिये प्रगट ए हरि जगदीसा। पुनि मिलिहहिं करि खल बल खीसा॥
सुनि पाहन उर धरि महतारी। मौन भई किमि कुभाग मारी॥

हे प्रिये! ये जगत के स्वामी साक्षात् श्रीहरि हैं, जो उस दुष्ट के बल को नष्ट करके पुनः हमसे आ मिलेंगे। यह सुनकर दुर्भाग्य से पीड़ित माता अपने हृदय पर पत्थर रखकर किस प्रकार मौन हो गई;

राम लखन जिमि बन मग लागे। लखि चुप भै दसरथ दुख पागे॥
बसुद्यौ तब सिरु सूप उठाई। चले तमधि तजि अति अतुराई॥

जिस प्रकार श्रीराम-लक्ष्मण को वन जाते देखकर दुःख के मारे दशरथजी चुप हो गये थे। तब सूप को सिर पर उठाकर वसुदेवजी बन्दीगृहरूपी अन्धकार के समुद्र को त्यागकर शीघ्र ही चले।

जात सुतहि कस निरखहिं माता। जिवहि जात जस जीवहि गाता॥
एहिबिधि परिहरि कारागारा। ते चलेउँ अस जस सरि धारा॥

उस समय माता अपने जाते हुए पुत्र को कैसे देखने लगी; जैसे (परलोक) जाते हुए प्राणों को जीव का शरीर देखता है। इस प्रकार कारागृह से निकलकर वे ऐसे चल पड़े, जैसे नदी की धारा (शीघ्रता से चलती है)।

दोहा- प्रभु पयान इत निरखि सुर सपदि जुरै मग माहिं।
कहत करहु प्रभु सेव सब पुनि मिल अवसर नाहिं॥२५२॥

इधर प्रभु को गोकुल प्रस्थान करते हुए देखकर समस्त देवता शीघ्र-ही मार्ग में आ जुटे और परस्पर कहने लगे कि सब कोई प्रभु की सेवा कर लो, यह अवसर पुनः नहीं मिलेगा।

मासपारायण आठवाँ विश्राम

चौ.- बह्नि सबन्हँ तें आगिल धाई। चलहिं पंथ कर पंक सुखाई॥
बरुन समीर धनद उन्हँ पाछे। पथ कुस काकरि हर अति आछे॥

अग्निदेव सबसे आगे दौड़कर (अपने तेज से) मार्ग का कीचड़ सुखाते हुए चलने लगे। फिर उनके पीछे-पीछे वरुणदेव, वायुदेव व कुबेर भली प्रकार देखकर मार्ग के काँटे व कङ्कर हटा रहे थे।

सुरतरु सुमन डास मग सुन्दर। प्रभु अभिषेक करहिं नव जलधर॥
तेन्हँ असितपनु लहि निसि केरा। पथाभास भा सतम घनेरा॥

कल्पवृक्ष अपने सुन्दर पुष्प पथ पर बिछाने लगा और नवीन मेघ जल बरसाकर प्रभु का अभिषेक कर रहे थे। उनकी श्यामता को पाकर मार्ग का आभासित होना अन्धकारयुक्त हो गया।

ससिसेखर लखि पथ अति तममय। लगि तहँ करन लाग जोतिरमय॥
गनपति आगिल बढ़ि आतुरि ते। प्रभु अगुआइ करइ चातुरि ते॥

मार्ग को इस प्रकार सघन अन्धकारयुक्त देखकर चन्द्रशेखर भगवान शिव वहाँ उपस्थित होकर उसे प्रकाशित करने लगे। गणेशजी बड़ी उतावली से आगे बढ़कर चतुराईपूर्वक भगवान की अगवानी कर रहे थे।

बसुद्यौ केरे चरन सँभारी। मग धरात सेनप सुर धारी॥
लोकप गहि गहि आयुध भारी। मग महुँ चलहि करत रखवारी॥

देवताओं के सेनाध्यक्ष स्वामी कार्तिकेयजी वसुदेवजी के चरणों को यत्नपूर्वक मार्ग पर रखवाते थे और लोकपाल विकराल शस्त्र ले-लेकर मार्ग में उनकी रक्षा करते हुए चल रहे थे।

निरखि निहोरत दिसिपति आए। हमहि सेव केउ देउ बताए॥

सुनि तद्यपि सब तेन्हँ बिहाई। निज निज काज रहे चुप लाई॥

उनकी सेवा देखकर दिक्पाल वहाँ निहोरा करते हुए आए कि हमें भी कोई सेवा बतला दो। उनकी बात सबने सुनी, किन्तु उन पर ध्यान न देकर सभी चुपचाप अपने-अपने कामों में लगे रहे।

बपुषहीन सो छिन गनि आपू। भयउँ मनोभव हिय संतापू॥

उस क्षण स्वयं को शरीरहीन अनुभव करके कामदेव के हृदय में सन्ताप उत्पन्न हो गया।

छन्द- **संताप मनसिज हिय भयउँ अति प्रभुहि सेव न करि सक्यो।**
करि जोति प्रभु पथ अरधबपु तें ससि हृदय कछु निज रख्यो॥
हरिजान सिद्ध समाज सहित डुरात चाँमर सुख लहै।
सुररिषि हरषि बीना बजावहि हरि सुजसु सरिता बहै॥

कामदेव के हृदय में इस बात का अत्यंत दुःख हुआ कि मैं प्रभु की सेवा न कर सका। किन्तु चंद्रमा ने अपने अर्द्धक्षीण शरीर से भगवान के मार्ग पर प्रकाश करके अपने मन को कुछ बहला लिया। सिद्धों के समूह के साथ होकर गरुड़जी प्रभु पर चँवर डुलाते हुए सुख प्राप्त कर रहे थे और देवर्षि नारद हर्षपूर्वक वीणा बजा रहे थे, जिससे भगवान की सुयशरूपी सरिता बह रही थी।

दोहा- **आनंदित गंधर्ब गन रहे मृदंग बजाइ।**
मंगल गान सुमधुर धुनि किन्नरि रहि सुख गाइ॥२५३॥

गन्धर्वगण आनन्दित होकर मृदङ्ग बजा रहे थे और किन्नरियाँ इस सुख को अत्यन्त मधुर ध्वनि से अपने मङ्गलगीतों में गा रही थी।

चौ.- **बसुद्यौ कौतुक भेद न जाना। बुधि प्रसुप्त उन्ह मोह महाना॥**
कंस त्रास कर हृदयँ अधीरा। तापर बरिषहिं जलद गभीरा॥

वसुदेवजी इस कौतुक का भेद नहीं जान सके; क्योंकि उनकी बुद्धि गहन मोहनिद्रा में सो चुकी थी। कंस का भय उनके मन को अधीर कर रहा था और उस पर मेघ प्रबल वर्षा कर रहे थे।

आए डरपत जमुनहिं कूला। उतरौं कस अस उर भा सूला॥
बहुरि धीर धरि सुत हिय लाई। प्रबिसे प्रबल धार अतुराई॥

वे डरते हुए यमुनातट आए, तो उनके हृदय में यह चिन्ता उठने लगी कि पार कैसे उतरूँ? फिर वे धैर्यपर्वूक पुत्र को हृदय से लगाकर शीघ्र यमुना की प्रबल धारा में उतर गये।

बरिषहि सघन जलद घन नादा। लखि बसुद्यौ उर उएहुँ बिषादा॥
सरित प्रबाह प्रबल अस भारी। मनहुँ चहहि गिरि अचल उपारी॥

सघन मेघ भयङ्कर शब्द करके बरस रहे थे, जिसे देखकर वसुदेवजी के मन में विषाद हो आया। हे राजन! यमुना का प्रवाह इतना प्रबल था, जो मानों अचल पर्वतों को भी उखाड़ देना चाहता था।

जल नभ दिसि अति बेग उछारा। मनहुँ भींजि चहँ गगन अपारा॥

सेष बिषम घन बरषत देखा। प्रभु सिरु तदपि न छाह बिसेषा॥

वह जल आकाश की ओर बड़े वेग से उछल रहा था, मानों वह अनंत आकाश को भिगो देना चाहता था। शेषजी ने देखा कि कठोर मेघ बरस रहे हैं, किन्तु फिर भी प्रभु पर कोई विशेष छाया नहीं है।

ते तब बिकल बिसरि पाताला। जमुन माँझ प्रगटे ततकाला॥
पुनि बिराट फन सहस चढ़ाई। फेरि लाग जलु प्रभु सिरु छाई॥

तब वे अकुलाकर पाताल से निकले और उसी क्षण यमुना में प्रकट हो गये। फिर उन्होंने अपने विराट सहस्र फणों को उठाया और प्रभु के सिर पर छाया करके बरसते हुए जल को रोकनें लगे।

दोहा- निज गृह पति आगवन लखि रबितनुजा हरषानि।
परसन उन्हँ पद अंबुज किये बेग उमगानि॥२५४॥

प्रियतम का अपने घर आगमन हुआ देखकर सूर्यपुत्री यमुनाजी हर्षित हो उठीं और उनके चरणारविन्दों का स्पर्श पाने के लिये वेगपूर्वक उमड़ी।

चौ.- जे नित निरव मृदुल चित अहई। तेइ उमंग अज आतुर बहई॥
दारुन भँवर परिधि अस झागा। करहि भयहुँ कहँ जे भय पागा॥

जो सदैव से ध्वनिरहित व शान्तचित्त थी, वे ही आज (प्रिय से मिलने की) उमङ्ग में आतुर हो बहने लगीं। जल में पड़नेवाली कठोर भँवरों की परिधियों पर ऐसा झाग था, जो भय को भी भयभीत कर सकता था।

अगनित लहर अहिनि उमगाई। रही तात हिय चिंत बढ़ाई॥
चरन हरे चह सरित प्रबाहा। जस हर धीर कुभाग अगाहा॥

अनगिनत लहररूपी सर्पिणियाँ उमड़-उमड़कर उन पिता के हृदय की चिन्ता को बढ़ा रही थी। नदी का प्रवाह पैर उखाड़ लेना चाहता था, जैसे भयानक दुर्भाग्य धैर्य को हर लेता है।

रच्छहिं बिबुध जतन करि भारी। हरिप्रेयसि जनि जात सँभारी॥
बसुद्यौ बूड़े उन्हँ उनमादा। निरखि बिबुध करि लाग बिषादा॥

यद्यपि देवता प्रयत्न करके उनकी रक्षा कर रहे थे; किन्तु हरिप्रिया यमुनाजी सम्हाले नहीं सम्हल रही थीं। इस प्रकार वसुदेवजी उनके उन्माद में डूब गये; यह देखकर देवता विषाद करने लगे।

छिनु छिनु पितुहि धीर खस कैसे। जिअनि आस भीषन रुज जैसे॥
जमुना काल होन चह स्वामी। पितु हिय समुझिअ अंतरजामी॥

पिता का धैर्य क्षण-क्षण छूटता जा रहा था; जैसे असाध्य रोग में जीने की आशा छूटती जाती है। (तब वसुदेवजी ने मन-ही मन कहा-) हे स्वामी! यमानुजा काल होना चाहती है; हे सर्वज्ञ! इस पिता के मन की दशा समझिये।

सतिय मोहि दुख जाहिं सहाए। सोइ कुभाग इहँ पुनि मुख बाए॥

जिसने स्त्री सहित मुझे दुःख सहाए, वही दुर्भाग्य आज पुनः यहाँ मुख फैलाए खड़ा है।

दोहा- प्रेयसि रस उनमाद कहँ पितु भय कारनु पाइ।
बिहँसि चरन बाहेर निज दीन्ह कान्हँ लहराइ॥२५५॥

अपनी प्रियतमा के प्रेमरूपी उन्माद को अपने पिता के भय का कारण पाकर हँसते हुए भगवान श्रीकृष्ण ने अपने चरण सूप से बाहर की ओर लटका दिये।

चौ.- पाइ सुराज जमुन उमगानी। परसि पदहि जनि फूरि समानी॥
पद पंकज पराग सिरु लाई। पद पखारि लगि अस्तुति गाई॥

अपनी-ही अपनी चलती पाकर यमुनाजी उमड़ी और स्वामी के चरण छूकर फूली नहीं समाईं। फिर भगवान की चरणरज को अपने सिर पर चढ़ाकर; उनके चरण पखारते हुए वे उनकी स्तुति करने लगीं।

तदुप सांतचित जमुना घटि कस। रिस कृषानु घट मौन सलिल जस॥
घुटुरुन्हँ लगि उन्हँ जल घटि गयऊ। बसुद्यौ हिय लखि सीतल भयऊँ॥

तदुपरान्त शान्तचित्त हुई यमुनाजी किस प्रकार घट गईं; जैसे मौनरूपी जल से क्रोधरूपी अग्नि घट जाती है। उनका जल घटकर घुटनों तक आ गया, यह देखकर वसुदेवजी का हृदय चिन्तामुक्त हो गया।

चिंत नाघि जब गोकुल आए। गोपन्ह गहन नींदबस पाए॥
तब अतुरान नंदगृह जाई। गवने ते जसुदा समुहाई॥

यमुनारूपी चिन्ता को पार करके वसुदेवजी जब गोकुल पहुँचे, तो उन्होंने सब गोपों को गहन निद्रा के वशीभूत पाया। तब उतावली से नन्दरायजी के घर पहुँचकर, वे यशोदाजी के समक्ष गए।

बहुरि तेन्ह उन्ह सोवत जानी। सुतहि मेलि उन्ह सुता उठानी॥
तबहि बिषाद करत एहिंभाँती। कहन लाग बसुद्यौ भरि छाती॥

फिर उन्हें सोती हुई जानकर उन्होंने अपने पुत्र को उनके निकट सुलाया और उनकी पुत्री को उठा लिया। तभी वसुदेवजी की छाती भर आई और विषाद करते हुए वे इस प्रकार कहने लगे-

आपन सुत कइ किए बचाई। सुति पराय मैं रहा चुराई॥
ए दारिका निरीह बेचारी। स्वारथि मम कर जात प्रतारी॥

अपने पुत्र को बचाने के लिये, मैं किसी परायी पुत्री को चुरा रहा हूँ। यह निरपराध निर्बल बालिका मुझ स्वार्थी के हाथों दण्डित की जा रही है।

जग नट देव नचावनिहारा। अनहित होइ न एहि मम द्वारा॥
इहिबिधि मनहिं माँझ पछिताते। कहि अस बचन फिरे अतुराते॥
बेगि आइ सुधि लीजहुँ नाथा। तन मधुपुर मन तुम्हरेउँ साथा॥

संसार नट है और देव उसका सूत्रधार; किन्तु मेरे द्वार पर जाने के कारण इसका (कुछ) अहित न हो जायँ! इस प्रकार मन-ही मन अत्यधिक पश्चाताप करते हुए और यह वचन कहते

हुए उतावली से लौट चले कि हे नाथ! आप शीघ्र आकर हमारी सुधि लीजियेगा; (इस अवधि में) हमारा शरीर मथुरा में रहेगा, किन्तु मन आप ही के साथ है।

फिरि जब ते बंदीगृह आए। हरिहि मायबस पट पुनि छाए॥
बहुरि सबनि पर जंत्रित लागे। प्रहरि जथावत जहँ तहँ जागे॥

जब वे बन्दीगृह में लौट आए, तब श्रीहरि की माया से (बन्दीगृह के) द्वार पुनः बन्द हो गए। फिर उन द्वारों पर ताले लग गए और सारे प्रहरी भी जहाँ-तहाँ पहले ही की भाँति जाग गये।

दोहा- **माय दंपतिहि मोहेहुँ नींद गहन पुनि दीन्ह।**
तदुप चतावन कंस कहँ कन्या रोदनु कीन्ह॥२५६॥ (क)

योगमाया ने वसुदेवजी व देवकीजी की बुद्धि को मोहित करके उन्हें गहरी निद्रा में सुला दिया। तदुपरान्त कंस को चेतावनी देने के लिये मायारूपिणी उस कन्या ने रुदन किया।

सुनि सचिंत आतुर प्रहरि धाइ गए खल पासु।
उएहुँ सो अधिक प्रतिच्छित तोर मीचु कर जासु॥२५६॥ (ख)

उस रुदन को सुनकर चिन्तित हुए प्रहरी शीघ्र दौड़कर दुष्ट कंस के पास गए और बोले कि आपका वह बहु-प्रतिक्षित शत्रु उत्पन्न हो चुका है, जिसके हाथों आपकी मृत्यु कही गई है।

चौ.- **सुनतहि भीरु नींद बिहरावा। असि गहि सपदि पयादेहिं धावा॥**
असुभ भए बहु तब एहिंभाँती। जे कह उएहु तोर आराती॥

यह सुनते-ही निद्रा त्यागकर तलवार उठाए वह कायर शीघ्रता से बिना जूतियाँ पहने ही बन्दीगृह की ओर दौड़ा। तभी अनेक अपशकुन ऐसे हुए, जो मानों कह रहे थे कि तुम्हारा शत्रु जन्म ले चुका है।

केउँ पर ताहिं न रहा भरोषा। जहँ तहँ करन लाग बृथ रोषा॥
चलत छींक भइ रोवइ स्वाना। भिगिर भिगिर कर सुन अघखाना॥

किसी पर भी उसे भरोषा नहीं रहा और वह जहाँ-तहाँ अकारण ही क्रोध करने लगा। उसके चलते समय कोई छींका व कुत्ते रोनें लगे, जिसे वह पापराशि आशङ्कितचित्त हो सुनने लगा।

धावत लरखरात महि खसेऊँ। चिंत वात तिन्ह गातन्हँ ग्रसेऊँ॥
उरुझे कच तिहि भुज बिकरारा। सहि न पाइ लघु असि कर भारा॥

दौड़ते समय वह लड़खड़ाकर गिर पड़ा और चिंतारूपी पवन ने उसके अङ्गों को कम्पित कर दिया। उसके केश भी उलझ गये और उसकी विकराल भुजा एक क्षुद्र तलवार का भार भी न सह सकी।

पुनि सम्भारि उठा अघखाना। गयउ उपजि जहँ मीचु महाना॥
अति रोदनु लखि कन्यहि केरा। करहिं मात पितु जतन घनेरा॥

फिर वह पापी पुनः सम्भलकर उठा और वहाँ पहुँचा, जहाँ उसके निमित्त घोर मृत्यु उत्पन्न हुई थी। कन्या को अत्यधिक रोती हुई देखकर वे माता-पिता उसे चुप कराने के लिये अनेक यत्न करते थे।

होति परन्तु न ते चुप कैसे। घट न तड़ित दमकनि घन जैसे॥
एतनेहुँ गर्जत खल तहँ आवा। तेहिं लखि दंपति अति भय पावा॥

किन्तु वह कैसे चुप नहीं होती थी; जैसे मेघों में बिजली का दमकना कम नहीं होता। इतने में ही वह दुष्ट गरजता हुआ वहाँ आ पहुँचा; उसे देखकर वसुदेव व देवकी अत्यन्त भयभीत हो उठे।

कत अरि सद्य देहुँ देखराई। चिंत ताहिं बधि लेउँ मेटाई॥
सुनि देअकि तिन्ह गर्जन भारी। रोपेहु अंचलु कहा पुकारी॥

शत्रु कहाँ है, मुझे शीघ्र दिखला दो; ताकि उसका वध करके मैं अपनी चिंता मिटा सकूँ। उसका भयङ्कर गर्जन सुनकर माता देवकी ने अपना आँचल फैलाया और पुकारकर उससे इस प्रकार कहा-

बंधु सुता यह अबला भोरी। कस करि सकहि कवन छति तोरी॥

हे भाई! मेरी यह निर्बल व निष्पाप बालिका, तुम्हारी कोई क्षति कैसे कर सकती है?

दोहा- **छाड़ि देहु एहि जीअति चरन परौं मैं तोर।**
हेउहुँ मैं तव सोइ भगिनि जिन्हँ तुअ पालि निहोर॥२५७॥

मैं तुम्हारे चरण पड़ती हूँ, इसे जीवित छोड़ दो। स्मरण करो! मैं तुम्हारी वहीं प्रिय बहिन हूँ, जिसका तुमने निहोरा करके पालन किया है।

चौ.- **मम लघु बिनय सुनहुँ यह भ्राता। ए न करिहिं तुम्हार केउ घाता॥**
अनल सरिस दुति तव मुख झरही। रनु तुम्ह सन को धीरज धरही॥

हे भाई! मेरी यह छोटी-सी विनती सुन लो; यह तुम्हारा कुछ भी अहित नहीं करेगी। तुम्हारे मुख से अग्नि की-सी कान्ति झरती रहती है और युद्ध में तुम्हारे सम्मुख कौन धैर्य धर सकता है।

जानइ तव भुज सुजसु त्रिलोका। कालहि करि सक आकुल सोका॥
पवन अनल अहि धनिक सुरेसा। आवत लखि तोहिं बिसरत देसा॥

तीनों लोक तुम्हारे बाहुबल का सुन्दर यश जानते हैं, जो स्वयं काल को भी शोक से व्याकुल कर सकता है। पवन, अग्नि, कुबेर, इन्द्र और सर्प तुम्हें आते देखकर अपना देश छोड़कर भाग जाते हैं।

तहिं तें भिरै न साहस ताहीं। अस बल तुअ धरेहुँ भुज माहीं॥
तो पुनि यह नवजन्मा भोरी। कहु केतिक छति करि सक तोरी॥

उनमें तुमसे युद्ध करने का साहस नहीं है, ऐसा बल तुमने अपनी भुजाओं में धारण कर रक्खा है। तो फिर अभी-अभी जन्मी हुई यह अबोध बालिका कहो! तुम्हारी कितनी क्षति कर सकती है।

मम सुत निधि तैं पहिलेहि खाई। अब इहि सुति पर करहु न घाई॥
यह कन्या न अपितु जग माहीं। अज सुन्दरतम कृति नर पाहीं॥

मेरी पुत्ररूपी सम्पत्ति तो तुम पहले ही खा चुके हो, अब इस कन्या पर घात न करो। यह कन्या नहीं, अपितु संसार में मनुष्य को विधाता की दी हुई उनकी 'सुन्दरतम कृति' है।

झाँकि देखु तुम एकौ बारा। इन्ह नयनन्हँ आलोक प्रसारा॥
प्रीति दया करुना तें भाई। यह परिचय तव देइ कराई॥

हे भाई! तुम एक बार इसके नेत्रों के प्रकाश के विस्तार में झाँककर देख लो! यह प्रेम, दया व करुणा से तुम्हारा परिचय करा देगी।

एक एक कन एहि मुसुकाना। धरे जिवन प्रति जोति महाना॥
देखु हरषि एहि हृदय लगाई। मधु घोरहि तव हिय गहराई॥

इसकी मुस्कान का एक-एक कण जीवन के प्रति महान विश्वास लिये हुए है। इसे हर्षपूर्वक हृदय से लगाकर तो देखो! यह तुम्हारे हृदय की गहराईयों में शहद घोल देगी।

हरि नर नरइ धरिहिं तें देही। तिय तनु धरिहहि कारनु केही॥
एहि तें यह जनि तव आरातिन। द्रवहुँ कठोर बनहु एहिंभाँति न॥

श्रीहरि तो पुरुष हैं और पुरुष-शरीर ही धारण करेंगे। भला वे स्त्री का शरीर क्यों धरेंगे? इस कारण यह तुम्हारी शत्रु नहीं है, अतः दया करो और इस प्रकार कठोर न बनो।

दोहा- **चतुर सिरोमनि भगिनि प्रिय तैं चह मोहि भुलान।**
पै हरि जलधि मथन समउँ कहु कि भए अबला न॥२५८॥

हे चतुर सिरोमणि प्रिय बहिन! तुम मुझे भ्रमित करना चाहती हो। किन्तु तुम ही कहो! क्या समुद्र मन्थन के समय स्वयं विष्णु ही एक नारी नहीं बने थे?

चौ.- **मोहि प्रबोध तव बुद्धि महाना। तैं कि दीन्ह नभबानि न काना॥**
तजि प्रलाप एहि बैगिहि दैऊँ। जाँचत मोहि समउ अति भेऊँ॥

मैं तुम्हारी महान बुद्धिमत्ता को भली-भाँति जानता हूँ; किन्तु क्या तुमने आकाशवाणी नहीं सुनी? अब प्रलाप छोड़कर शीघ्र ही इसे मुझे सौंप दो; क्योंकि मुझे याचना करते हुए बहुत समय हो गया।

जनि जगाहुँ मम रिस अहि आजू। अवसि होइ न त कवन अकाजू॥
तिहुँ पुर मो सम अपर न जोधा। जे अज अज हर करिहि बिरोधा॥

आज मेरे क्रोधरूपी सर्प को न जगाओ; अन्यथा निश्चय ही कोई अनिष्ट हो जायगा। तीनों-लोकों में मुझ जैसा अन्य योद्धा नहीं है। जो यदि आज ब्रह्मा व शिव भी विरोध करेंगे,

तेपि सकहि नहिं एहि बचाई। सुनि सभीत अति भै पितु माई॥
बरुन कुबेर अगिनि जम वाता। सहित सक्र जे करिहि प्रघाता॥

तो वे भी इसे मुझसे बचा नहीं पायेंगे। यह सुनकर देवकी व वसुदेवजी अत्यन्त भयभीत हो उठे। वरुण, कुबेर, अग्नि, यम, वायु आदि के साथ यदि स्वयं इन्द्र भी मेरा विरोध करेगा,

बरबस धरि तेहिं भुजन्हि मरोरी। मारि मारि मुख अरु सिरु फोरी॥
अवसि हतहुँ ऐहीं जनि छोरू। हठ करि धीर मोर जनि तोरू॥

तो उसे भी बलपूर्वक पकड़कर मैं उसकी भुजाएँ मरोड़ दूँगा और मार-मारकर उनका मुख व सिर फोड़कर भी इसे अवश्य मारूँगा, छोड़ूँगा नहीं; इसलिये हठ करके, मेरा धैर्य न तोड़ो।

छन्द– तोरहुँ न धीरज सेतु मम रिस बाढ़ ब्यरथ बढ़ाइकै।
एहि मर्दि चिंतउ मेटि सान्ति तें सोइ चहु मैं जाइकै॥
अस कहि महाखल सपदि कन्या छीनि भगिनिहिं गोद ते।
धरि चरन तिन्ह बिहँसेहुँ अधम निरदय पिसाच बिनोद ते॥

तुम व्यर्थ ही मेरी क्रोधरूपी बाढ़ को बढ़ाकर मेरे धैर्यरूपी सेतु को न तोड़ो। इसे मारकर अपनी समस्त चिन्ताओं को मिटाता हुआ मैं जाकर शान्ति से सोना चाहता हूँ। ऐसा कहकर उस महादुष्ट ने अपनी बहन देवकी की गोद से शीघ्र ही उस बालिका को छीन लिया। फिर वह निर्दयी पिशाचरूप पापी उस कन्या के चरण पकड़कर परिहासपूर्वक हँसा।

दोहा– अम्बर झींकहि रजक जस तस झींकत भा ताहिं।
किन्तु सुता सो झिटकि चलि किलकति नभ अतुराहिं॥२५९॥ (क)

फिर जैसे धोबी वस्त्रों को धोते समय पटकता है, वैसे ही वह उसे पटकने लगा; किन्तु वह कन्या उसके हाथ से छिटककर किलकारी मारती हुई उतावलीपूर्वक आकाश में चली गई।

सन्न साचरज भयउँ सठ निरख फारि निज नैन।
डरपत कंपहि गात तिन्ह अटकि कंठ महुँ बैन॥२५९॥ (ख)

वह मूर्ख आश्चर्य से सन्न रह गया और अपनी आँखें फाड़कर उसे देखने लगा। भय के मारे उसका शरीर काँपने लगा और उसकी वाणी उसकी कण्ठ में ही अटककर रह गई।

चौ.– गगन जाइ लगि बिज्जु छटा सी। सपदि छाइ तहँ सघन घटा सी॥
प्रगटि सबित सौं सुदुति अपारा। दिब्य रूप सो कन्यहि धारा॥

वह बालिका कड़ककर बिजली की छटा के समान आकाश से जा लगी और शीघ्र ही वहाँ सघन मेघों के समान व्याप्त हो गई। फिर सूर्य के समान सुन्दर और अपार तेज प्रकट करके उस कन्या दिव्य रूप धर लिया।

अष्टबाहु धरि आयुध नाना। तदुप संखधुनि कीन्हिं महाना॥
धुनि सो कंस असुभ जनु गावा। जेहिं सुनि भय दारुन खल पावा॥

तदुपरान्त अपनी आठों भुजाओं में बहुत-से शस्त्र धारण किये उसने महान शङ्खध्वनि की। उस ध्वनि ने मानों कंस के भावी अशुभ की सूचना दी थी, जिसे सुनकर उस दुष्ट ने अत्यधिक भय प्राप्त किया।

रक्ताम्बर मूरति अति पावनि। कंठ कुसुम मालिका सुहावनि॥
रतन जटित किरीट सिरु हाटक। देख भयातुर खल जिन्ह एकटक॥

लाल वस्त्रयुक्त अत्यन्त पवित्र विग्रहवाली उन देवी के कण्ठ में सुहावनी पुष्पमाला और सिर पर रत्नजड़ित स्वर्णमुकुट था; जिन्हें दुष्ट कंश भयभीत हुआ-सा एकटक देख रहा था।

अंग अंग उन्ह भूषन छाए। रहे बिबुध बहु भाँति मनाए॥

वदनुकांति ममतामय ऐसे। सुत हित मातु हृदय मृदु जैसे॥

उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग में आभूषण सुशोभित थे और देवता उन्हें बहुत प्रकार मना रहे थे। उनके मुख की कान्ति ऐसे ममता से युक्त थी; जैसे पुत्र के लिये माता का हृदय कोमलता से युक्त होता है।

दोहा- जे ममतामय मूरति दायक तिहुँपुर सीत।
खल अघ कारन नृपति सोइ करत भई तेहिं भीत॥२६०॥ (क)

हे परीक्षित! जो ममतामयी मूर्ति तीनों लोकों को शीतलता प्रदान करने वाली थी;वही उस दुष्ट के पाप के कारण उसे भयभीत करने लगी।

माय कोपि बलकारि कह सठ का मारसि मोहि।
तोर काल जग जनमेउँ बधिहि एक दिनु तोहि॥२६०॥ (ख)

फिर कुपित हुई योगमाया ने ललकारकर कहा कि रे मूर्ख! तू मुझे क्या मारता है? तेरा काल इस संसार में जन्म ले चुका है; जो एक तेरा वध कर देगा।

चौ.- यह ललकार दसहुँ दिसि गूँजी। भइ खल श्रवन केर भय पूँजी॥
हक्क बक्क तब ठाढ़ेउँ कैसे। भुजबल भ्रम टूटत भट जैसे॥

यह ललकार दसों दिशाओं में गूँज उठी और उस दुष्ट के कानों के लिये भयरूपी पूँजी हो गई। तब चकित व घबराया-सा वह कैसे खड़ा रह गया; जैसे बाहुबल का भ्रम टूटने पर योद्धा।

परिछित जे जग जननि भवानी। संतन्ह हित तेइ महि उमगानी॥
बिनसि कंस कइ श्री दइ सापा। बिनसत बिबुधन्ह हिय संतापा॥

हे परीक्षित! जो भवानी सम्पूर्ण जगत की जननी है, वे ही संतों के हित के लिये पृथ्वी पर उत्पन्न हुई और कंस को श्राप देकर उसकी 'श्री' नष्ट करके, देवताओं का सारा सन्ताप दूर करती हुई

दिब्य बदनु सब तेज अवेरी। भई लुपुत नभ घटा घनेरी॥
सठ ताकतहि ठाढ़ रहि गयऊ। दृग चलाइ पुनि खोजत भयऊँ॥

वह अपने दिव्य मुखमण्डल में सम्पूर्ण तेज समेटकर आकाश में छाए घने मेघों के मध्य विलीन हो गई। मूर्ख कंस खड़ा देखता ही रह गया और आँखें घुमाकर पुनः उन्हें खोजने लगा।

खन जे कूप पर छति नरराई। खनति आपु तिन्ह के हित खाई॥
खल उर सोच कीन्ह घर कैसे। प्रेत निवास होत तनु जैसे॥

हे परीक्षित! जो दूसरों के अहित के लिये कुआँ खोदते हैं, उनके लिये खाई अपने-आप खुद जाती है। उस दुष्ट के हृदय में चिन्ता कैसे घर कर गई; जैसे शरीर में प्रेत का निवास हो जाता है।

मकर अश्रु धरि नयनन्हि माहीं। गयउ नराधम देअकि पाहीं॥
बहुरि जोरि कर बिनवहि ऐसे। भयउँ सुजन कोउँ बंचक जैसे॥

तब वह नराधम अपने नेत्रों में घड़ियाली अश्रु लिये देवकीजी के पास गया और हाथ जोड़कर इस प्रकार विनय करने लगा; जैसे कोई ठग मनुष्य साधु हो गया हो।

दोहा- **भगिनि लाग मोहि लाज अति छमहुँ मोर अघ भारि।**
सत्य मानि नभबचन बृथा मैं तोहि सपति प्रतारि॥२६१॥

हे बहिन! मुझे अत्यन्त लज्जा आती है, तुम मेरे इस महान अपराध को क्षमा कर दो। आकाशवाणी को सत्य मानकर मैंने व्यर्थ ही में पति सहित तुम्हें कष्ट दिया।

चौ.- **मैं अति निरदय अधम सुभाऊ। त्रिपुर न अब कत मम हित ठाऊँ॥**
अब लौ होत रहा नर झूठा। नभ बच परत लखा अज ठूठा॥

मैं अत्यन्त निर्दयी व अधमप्रकृति हूँ, तीनों लोकों में अब मेरे लिये कोई स्थान नहीं बचा है। अब तक तो केवल मनुष्य ही झूठ बोलता आया था, किन्तु आज आकाशवाणी को भी व्यर्थ होते हुए देखा है;

जेहिं सत्य गनि मैं अघ कीन्हा। बृथा भाँज बध निज सिरु लीन्हा॥
छमा जोग मैं अग्रज तोरा। हृदयँ न धरु कछु पातक मोरा॥

जिसे सत्य मानकर मैंने पाप किया और व्यर्थ ही में भाँजों के वध का दोष अपने सिर पर लिया। मैं तुम्हारा बड़ा भाई हूँ, इसलिये क्षमा के योग्य हूँ। तुम मेरे पापों को तनिक भी मन में न रखना।

अब तैं जाइ बसहु निज गेहा। धरे मोर प्रति हृदयँ सनेहा॥
सुतन्ह सोच करि होउ न दीना। लाभ हानि सब भाग अधीना॥

अब तुम अपने हृदय में मेरे प्रति स्नेह धारण करके जाकर अपने घर ही निवास करो और अपने पुत्रों के विषय में सोचकर दुःखी न होना; क्योंकि लाभ और हानि सब भाग्य के अधीन है।

सुभ अरु असुभ करम जस होई। तैसेउँ फलु लहँ जग सब कोई॥
जिवन मरनु सब भाग प्रभाऊ। अस बिचारि हिय धीरज लाऊ॥

अच्छे-बुरे जैसे भी कर्म होते हैं, संसार में सब कोई उन्हीं के अनुरूप फल पाते हैं। जीवन-मरण सब भाग्य का ही प्रभाव है, ऐसा विचारकर तुम हृदय में धैर्य धारण करना।

दोहा- **परिछित धीर बँधान खल हिय कहुँ कस न सुहात।**
हठि पुरजारनिहार जस सोह न ताहिं बुझात॥२६२॥

हे परीक्षित! दुष्ट कंस का इस प्रकार धैर्य बँधाना हृदय को कैसे नहीं सुहाता; जैसे नगर को हठपूर्वक जलानेवाला, स्वयं उसे बुझाते हुए अच्छा नहीं लगता।

चौ.- **एहिबिधि आपन छमा कराई। गृह गयऊ खल चिंत दुराई॥**
तब बसुद्यौ देअकि धरि धीरा। गै गृह आपन हिय गत पीरा॥

इस प्रकार उनसे अपना अपराध क्षमा कराकर, वह दुष्ट चिन्ता छिपाकर अपने महल को चला गया। पिछले दुःख की पीड़ा से आहत देवकी और वसुदेवजी भी धैर्य धरकर घर लौट गये।

इत गोकुल महुँ नींद बिहाई। उठि रोहिनि खग कलरउ पाई॥

लखेउँ जात जसुदा कख पासा। तिन्ह गवाख झर आल प्रकासा॥

इधर गोकुल में पक्षियों का कलरव सुनकर वसुदेवपत्नि रोहिणीजी नींद से जागीं। उन्होंने यशोदाजी के कक्ष के निकट से निकलते हुए देखा कि उनकी खिड़की से विचित्र प्रकाश झर रहा है।

जिन्हँ प्रकांति कइ धार नहाई। प्रात लाग अतिसय सुखदाई॥
मंद होत तम आश्रय सोई। पैठेउँ तिन्ह हिय अचरज होई॥

जिसकी सुन्दर आभा की धारा में नहाया हुआ प्रभात अत्यन्त सुखदायक लग रहा है। मन्द होता हुआ अन्धकार उषा की उसी सुन्दरता के आश्रय से रोहिणीजी के हृदय में आश्चर्य होकर प्रविष्ट हुआ।

लगि गवाख तब देखेउँ काहा। तोषक सिसु छबि जासु अगाहा॥
तासु निकट बिलोकि महतारी। बाजि बेचि सइ जे सुख भारी॥

तब वे उस कक्ष की खिड़की के निकट गई और उन्होंने (भीतर) क्या देखा कि यशोदाजी के पलङ्ग पर एक बालक है, जिसकी शोभा अगाध है। उसके निकट ही उसकी मैया को भी देखा, जो निश्चिंत हो बड़े सुख से गहरी निद्रा में मग्न थीं।

पुनि देखा सिसुबदन मनोहर। हरहि समन मनु जे छबि जौहर॥
तब ते तहँहि थकित भई ठारी। सिसु सुषमा लगि सतत निहारी॥

फिर उन्होंने शिशु का मनोहर मुख देखा, जो अपनी शोभा के पराक्रम से यम के हृदय को भी हरे लेता था। तब वे थकित होकर वहीं खड़ी रह गई और निरंतर शिशु की सुन्दरता को देखने लगी।

चेत भई तब देव मनाई। हरषि सबन्हँ तें लागि जगाई॥
उठु जसुदा सुख दिनु अब आए। सवँ न जोग यह नींद गवाँए॥

फिर जब चेतना हुई, तब देवताओं को मनाकर वे प्रसन्नतापूर्वक सभी को जगाने लगी। री यशोदा उठो! अब सुख के दिन आ चुके हैं, यह समय सोकर गवाँ देने का नहीं है।

पुरट थार आरती सजावहुँ। सुख स्वागत हित मंगल गावहुँ॥
हिय चिर पृहा फरहि जेहिं भाँती। लखु तस सुख सरिता अति आती॥

सोने की थाली में आरती सजाओ और सुख के स्वागत के लिये मङ्गलगीत गाओ। जैसे हृदय की बहुप्रतीक्षित इच्छा फलित होती है, ठीक वैसे ही देखो! सुख की नदी बड़े वेग से आ रही है।

कठिन खरुड़ जस पुनि जल पाई। नव गति पर जस ससि उमगाई॥
सोइ बिकास कर धरि आलोका। भयउँ तनय तोहि करन असोका॥

जैसे वर्षाकाल के मध्य में पड़नेवाले कठोर सूखे में पुनः जल पाकर कृषि नवीन शक्ति के साथ बढ़ने लगती है, उसी उत्कर्ष का आलोक धारण किये शोकरहित करने हेतू तुम्हारे पुत्र उत्पन्न हुआ है।

दोहा– **जसुमति मींझत उभय दृग उन्ह पुकार सुनि जागि।**

सुत भा मोहि अस जानि नृप अकथ प्रमोदहि पागि॥२६३॥

हे परीक्षित! रोहिणीजी की पुकार सुनकर यशोदाजी अपने दोनों नेत्रों को मलती हुई निद्रा से जागी और "मेरे पुत्र हुआ है" यह जानकर अकथनीय आनन्द से भर गई।

चौ.- मुद सो परसि उरहि गहनाई। किमि उमगेउँ जननिहिं दृग आई॥
जिमि सुगंध सब बंध बिहाई। आश्रय तें वातहि मिल आई॥

फिर हृदय की गहराईयों को स्पर्श करके वह आनंद उन मैया नेत्रों में किस प्रकार उमड़ आया; जिस प्रकार समस्त बंधनों को त्यागकर सुगंध अपने आश्रयरूप पुष्प से छूटकर वायु में आ मिलती है।

पुष्ट होत सोइ मुद सितलाई। पुलक धार भइ गातन्ह छाई॥
जब सधीर उठि द्वार उघारा। रोहिनि उमगि जथा सरि धारा॥

फिर आनन्द की वही शीतलता पुष्ट हो पुलक की धारा के रूप में यशोदजी के अङ्गों पर छा गई। जब उन्होंने धैर्यपूर्वक उठकर द्वार खोला, तो रोहिणीजी नदी की धारा जैसी भीतर की ओर उमड़ पड़ी।

जाइ निकट सिसु बदनु निहारी। देव मनावइ जुग महतारी॥
भइ बिदेह कछु कह न जसोमति। हिय बात्सल्य पयोधि उमग अति॥

फिर निकट जाकर शिशु के मुख को देखते हुए वे दोनों माताएँ विधाता को मनाने लगी। विदेह हुई यशोदाजी अपने मुख से कुछ नहीं कहती। उनके हृदय में वात्सल्य का सागर अत्यधिक उमड़ने लगा।

बार बार सुत कहुँ उर लाई। हरषि लागि पय जननि पिबाई॥
सुर दुरलभ यह अमरित सोई। दीन्ह निपट महितल अज जोई॥

फिर पुत्र को बार-बार हृदय से लगाकर वे मैया हर्ष से दुग्धपान कराने लगीं। देवताओं को भी दुर्लभ यह वह अमृत था, जिसे विधाता ने केवल पृथ्वीवासियों को ही दे रक्खा है।

रोहिनि चलि इत आनँद पागी। गोकुलपतिहि जगावन लागी॥

इधर रोहिणीजी आनन्दित हो वहाँ से चली और आकर नंदरायजी को जगाने लगी।

दोहा- गोकुलपति गोपेस सुनु सुनहुँ जसोदाकंत।
रहा सून्य जोइ सघन तम भयउ तासु अज अंत॥२६४॥

हे गोकुलपति! हे गोपेश्वर सुनिये! हे यशोदावल्लभ सुनिये! आपके हृदयरूप शून्य में जो महान निराशा व्याप्त थी, आज उसका अंत हो चुका है।

चौ.- जसुमति पूरब दिसि अति सुन्दर। जहँ तें उपजेउ तनय दिवाकर॥
मानस मानस सपुन कमलबन। कछु दिनु माँझ होइ बन नंदन॥

यशोदा अत्यन्त सुन्दर पूर्व दिशा है, जिससे पुत्ररूपी सूर्य उदित हुआ है। अब आपके मनरूपी सरोवर में स्थित (पुत्रसम्बन्धी) स्वप्नों का कमलवन, कुछ ही समय में (फल-फूलकर) नन्दनवन हो जायेगा।

तम निपूत सोउ तरनि प्रकासा। भयउँ तोर हित अब इतिहासा॥
ठाढ़ अजिर तव नव भिनुसारा। तर उछाह कलरव कइ धारा॥

उसी सूर्य के प्रकाश में पुत्रहीनता का अन्धकार अब आपके लिये बीती बात हो चुका है। उत्साहरूपी कलरव की धारा से भीगा हुआ नवीन प्रभात आपके आँगन में खड़ा है।

प्रतिछा निसि अति दीरघ बीती। लखु सधीर हिय धरि परतीती॥
भै निरास मग जाकर जोही। प्रगटेउ अति सुंदर सुख सोही॥

प्रतीक्षा की अत्यंत दीर्घ रात्रि बीत चुकी है; आप अपने मन में विश्वास रखकर धैर्यपूर्वक स्वयं देख लीजिये। जिसकी राह देखते हुए आप निराश हो चुके थे, आज वही अत्यन्त सुन्दर सुख प्रत्यक्ष हुआ है।

जिन्हँ छबि लोभ नयन पथराने। अजिर ठाढ़ सुख सोइ सिर ताने॥
सोक सबनि अब देहुँ बिसराई। तोरे भयउँ तनय सुखदाई॥

जिसकी छवि के लोभ में प्रतीक्षारत आपके नेत्र पथरा गये थे, वही सुख आपके आँगन में सिर ऊँचा किये खड़ा है। अब आप समस्त शोक का त्याग कर दीजिये; क्योंकि आपके सुखदायक पुत्र जन्मा है।

बेगि उठहुँ कुलकृत करु भाई। मंगल घरि यहि जीवनु आई॥
बार बार मैं देहुँ बधाई। जागिअ जागिअ गोकुलराई॥

हे भाई! शीघ्र उठिये और अपने कुल की रीति कीजिये; यही मङ्गलमय घड़ी आपके जीवन में आई है। मैं आपको बार-बार बधाई देती हूँ; हे गोकुलेश! उठिये, उठिये!

दोहा- **सुनि बाँवर सम झूमत नंद परे तहँ धाइ।**
सत्य कि यह परिहास तव सपदि कहहुँ भौजाइ॥२६५॥

यह सुनते-ही नन्दरायजी बावले हो झूमते हुए दौड़कर वहाँ आ गये और पूछने लगे कि हे भौजी! शीघ्र ही बताईये कि यह सत्य है या आपके द्वारा किया गया विनोद है?

चौ.- **यह सो सत्य जाहिं मैं देखा। मृषा न मम मुख मुद के रेखा॥**
भाग बिपिन तव अवसर पाई। महामरिचि लतिका पुषपाई॥

तब रोहिणीजी ने कहा कि ये वो सत्य है, जिसे मैंने स्वयं देखा है; मेरे मुखमण्डल पर आनन्द की यह रेखा झूठी नहीं है। अवसर मिलते ही आपके भाग्यरूपी उपवन में आपकी महामनोकामनारूपी लता पुष्पित हुई है;

उठि सकारु जिन्ह मधुर सुबासा। आनि मैं इहँ धरि निज उल्लासा॥
काया पलट भई सुनि तासू। रोम रोम पुनि भयउँ प्रकासू॥

जिसकी मधुर सुगन्ध अपने उत्साह में धारण किये बहुत सवेरे उठकर मैं यहाँ लेकर आई हूँ। यह सुनते-ही आनन्द से नन्दरायजी का तो जैसे कायाकल्प ही हो गया और उनका रोम-रोम उत्साह से भर उठा।

तनय जनम आनंद जुड़ाई। बूढ़ बपुष फिरि मनु तरुनाई॥

सुख उनमाद चरम जब गयऊ। नंद हरषि तब नाचत भयऊँ॥

मानों पुत्र जन्म के आनन्द को पाकर उनके बूढ़े शरीर में फिर से तरुणता लौट आई हो। जब उनके इस सुख का उन्माद अपने चरम पर पहुँचा, तब नन्दरायजी प्रसन्न से नाचने लगे।

पुनि कह मो सम को बड़भागी। देवकृपा जेहिं ब्यापन जागी॥
जप तप कीन्ह न हरि अनुरागा। धरेउँ न छिन भरि हृदय बिरागा॥

फिर उन्होंने कहा कि मेरे समान बड़भागी कौन होगा, जिस पर विधाता की कृपा स्वयं होने आई है। मैंने न जप-तप किया है, न श्रीहरि के प्रति कोई प्रीति की और न ही क्षणभर को वैराग्य धारण किया है।

गोसुख बीतेउँ जनम हमारा। पाइ जरा तद्यपि न सँवारा॥
पै त्रिलोकपति सदय हमेसा। अगुन मोर जिन्ह लखेहुँ न लेसा॥

मेरा सम्पूर्ण जीवन ही भौतिक सुखों को भोगते हुए बीत गया और अब बूढ़ा हो चला हूँ, किन्तु फिर भी मैंने उसे सँवारा नहीं। किन्तु त्रिलोकपति भगवान श्रीहरि मेरे प्रति सदैव से दयावान रहे हैं; जिन्होंने मेरे अवगुणों पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया।

दोहा- **भयउँ तनय मोहि चौथपन मोदक मम कर दोइ।**
मति मुदाति मम होत जड़ कहिअ भौजि करु सोइ॥२६६॥

मुझे चौथेपन में पुत्र प्राप्त हुआ है, मेरे दोनों हाथों में लड्डु हैं। आनन्द की अधिकता के कारण मेरी बुद्धि जड़ होती जा रही है। हे भाभी! आप कहिये! मैं वही करूँगा।

चौ.- **तब रोहिनि बोली तुअ भाई। सुतहिं सधीर प्रथम लखु जाई॥**
सुनत हृदय बस करि तें आपन। चले सँभारत गातन्ह कम्पन॥

तब रोहिणीजी बोली- हे भाई! पहले आप जाकर धैर्यपूर्वक अपने पुत्र का मुख देखिये। यह सुनते-ही वे अपने हृदय को वश में करके शरीर में व्याप्त (हर्षप्रसूत) कम्पन को सँभालकर चले।

प्रान असर बर औषध पाई। परे मनहुँ जीवन दिसि धाई॥
ते निजहीं मुख निज सौभागा। जात सराहत अति अनुरागा॥

मानों (निकलते हुए) प्राण औषधि का उत्तम प्रभाव पाकर पुनः जीवन की ओर लौट पड़े हों। वे अपने ही मुख से अपने सौभाग्य की अत्यंत प्रेमपूर्वक सराहना करते हुए चले जा रहे हैं।

डग डग चलहि कबहुँ सिथिलाई। कबु मुदबस पर आतुर धाई॥
तासु दसा जनि जात बखानी। अनुभवि एक ताहि सक जानी॥

शिथिलता के मारे कभी वे डग-डग करके चलते हैं और कभी आनन्द से आतुर हो दौड़ पड़ते हैं। उनकी दशा का वर्णन नहीं किया जाता; जिन्हें (इस प्रकार की प्रसन्नता का) अनुभव है, केवल वे ही उसे समझ सकते हैं।

जस जस बढ़हि प्रसव गृह ओरा। तस तस लहँ घट धीर झकोरा॥
कल्पि तनय मुख मानस पाटा। कबहुँ नंद चल औकट घाटा॥

वे जैसे-जैसे प्रसवकक्ष की ओर बढ़ते जाते हैं, वैसे-वैसे उनके धैर्य का घड़ा भी छलकता जाता है। अपने मानस पटल पर पुत्र के मुख की कल्पना करके कभी नन्दरायजी औकट घाट चलने लगते हैं।

खसहिं जे आतुर ठोकर खाई। सँभरि सपदि पर गंतउँ धाई॥
परत उठत सँभरत एहिंभाँती। किए हेतु सीतल निज छाती॥

जब उतावली के कारण ठोकर खाकर वे गिर पड़ते हैं, तो भी शीघ्र सम्भलकर पुनः गंतव्य की ओर दौड़ पड़ते हैं। गिरते-उठते और सम्भलते हुए इस प्रकार अपनी छाती को शीतल करने के लिये,

आए प्रसव भवन समुहाई। रही सुनंदा तहँ मुसुकाई॥
तेहिं बढ़ि पंथ निषेधेउँ जबही। नंद जोरि कर कह अस तबही॥

वे प्रसवकक्ष के द्वार के सम्मुख आ पहुँचे; वहाँ सुनन्दा नामक एक गोपी मुस्कुराती हुई उपस्थित थी। उसने आगे बढ़कर जब मार्ग रोक लिया, तब नंदरायजी हाथ जोड़कर इस प्रकार बोले-

दोहा- मैं बाँवरपनु गगन तें खसा परम कठिनाइ।
भगिनि न होउँ खजूर अब चहुँ सुख भुवि परसाइ॥२६७॥

हे बहिन! मैं बाँवलेपन के आकाश से बड़ी ही कठिनाई से गिरा हूँ; अब तू मेरे लिये अधर न बन, मैं सुखरूपी भूमि को छू लेना चाहता हूँ।

चौ.- सहज चहत तुम सुत मुख देखा। तातें कह अस बचन बिसेषा॥
किन्तु पटहिं पालन मम हाथा। कछु दीन्हें बिनु बनिहिं न बाता॥

(तब सुनन्दा ने कहा-) आप अपने पुत्र का मुख सहज ही में देख लेना चाहते हैं और इसी कारण यह विशेष वचन कह रहे हैं। किन्तु द्वार की रक्षा करना मेरे हाथ है; बिना कुछ दिये बात नहीं बनेगी।

नेग अधार नेह नँदराई। तेहिं पाए बिनु देउ न जाई॥
एतनेहुँ सिसु रोदन सुखकारी। पैठेउँ हृदयँ श्रवन पइसारी॥

हे नन्दजी! नेग तो प्रेम का आधार है, उसे पाए बिना मैं आपको जाने नहीं दूँगी। इतने में ही बालक के रोने की सुखदायक ध्वनि कानों के मार्ग से नन्दरायजी के हृदय में आ उतरी।

हिय कन कन उतसुकतहिं बोरा। करि लागे तिन्ह परम निहोरा॥
मम प्रिय भगिनि न करहु बिनोदा। बेगि पाइ चहुँ सुत कहुँ गोदा॥

जिससे उनके हृदय का कण-कण उत्सुकता में डूब गया और वे उससे अत्यधिक निहोरा करने लगे- मेरी प्रिय बहन! ठठौल न करो; मैं अपने पुत्र को शीघ्र अपनी गोद में पाना चाहता हूँ।

कहत कंठ मालिका उतारी। दीन्हि ताहिं उन्ह बिनवत भारी॥
एहि छिनु एहि गहि होहु प्रसन्ना। बहुरि बहुत देउँब धन अन्ना॥

ऐसा कहते हुए उन्होंने अपनी कण्ठी उतारकर सुनन्दा को अत्यधिक विनय करते हुए दे दी और पुनः कहा- हे बहिन! इस समय इसे ही लेकर संतोष कर लो, आगे और भी बहुत-सा धन व अन्न दूँगा।

एहिबिधि लघुहँ प्रतोषि सुनंदा। जसुमति पहि गवने तब नंदा॥
नृप निज तिय मुख जब लखि पाएँ। हरि हर पुनि पुनि लाग मनाए॥

इस प्रकार सुनन्दा को थोड़े ही में परम सन्तुष्ट करके तत्पश्चात् नन्दरायजी यशोदाजी के पास गये। हे परीक्षित! उन्होंने जैसे ही अपनी पत्नि का मुख देखा; वैसे ही वे बार-बार श्रीहरि व शिवजी को मनाने लगे।

पुनि मृदु रोदनु सुनि निज लालहिं। नयन मूँदि बैठे ततकालहिं॥
प्रिये कहहुँ मोहि तुम समुझाई। केहि बिधि सहुँ यह प्रमोद घाई॥

फिर अपने पुत्र का कोमल रुदन सुनकर वे नेत्र बन्द करके उसी क्षण नीचे बैठ गये और बोले- हे प्रिये! तुम ही मुझे समझाकर कहो कि महान आनन्द के इस उन्माद को मैं कैसे सहूँ?

तब जसुदा गहि कर पति केरा। कह यह अवसर सुखद घनेरा॥
एहि समउँ जनि सुमिरहुँ धीरा। केवल बूड़हुँ मुदधि गभीरा॥

तब यशोदाजी ने नन्दजी का हाथ पकड़कर कहा कि यह अवसर महान सुख का है। इस समय धैर्य का स्मरण न कीजिये; केवल आनन्द के इस महासागर में डूब जाईये।

निज आतम लघु सींव पसारी। करहु नाथ अज ऐतनहुँ भारी॥
जहँ संचित बिषाद निज आपा। खोजि सक न दायक संतापा॥

हे नाथ! अपनी आत्मा की छोटी-सी सीमा को बढ़ाकर इतनी विशाल कर लीजिये कि जिसमें पुत्रहीनता का पूर्वसञ्चित विषाद, जो हमें दुःख देता रहता था, अपनी सत्ता ही न खोज सके

लखि पर केवलु सो सुख बरषा। ब्रह्मसुखहि जिहिं प्रति कर इरषा॥
सुनत नंद जनि जड़ता त्यागी। निरखि जसोदा अति अनुरागी॥

और (उसमें) सुख की केवल वही वर्षा दिखाई पड़े, जिससे ब्रह्मप्राप्ति का सुख भी ईर्ष्या करता है। यह सुनकर भी नन्दजी ने जड़ता नहीं त्यागी, यह देखकर यशोदाजी अत्यंत प्रेममग्न हो गई।

कह पुनि नंद सुतहिं मुख जैसा। तहहिं तें बरनहुँ ताकहँ तैसा॥
तब लौ मैं उनमाद तरंगा। करौं जतन करि आपन अंगा॥

फिर नंदरायजी ने कहा कि पुत्र का मुख जैसा है, तुम मुझे वहीं से उसे वैसा ही समझाकर कहो; तब तक मैं आनन्दोन्माद की इन तरङ्गों को यत्नपूर्वक अपने वश में करता हूँ।

लेत बलैय्या तब महतारी। बरनत भइ सुत सुषमा भारी॥
नाथ लखु त सुत मुख एक बारा। पाबस बिभव अकथ जेहिं धारा॥

तब बलैया लेकर मैय्या अपने पुत्र की महान सुन्दरता का वर्णन करने लगी- हे नाथ! एक-बार अपने पुत्र का मुख देखो तो! जिसने वर्षा काल के अकथनीय वैभव को धारण कर रखा है।

जगत बिमोहन प्रतिछिन उद्यत। खगन्ह पंख सम मृदु पलकावृत॥
बपु सम धरे नीलपनु लोचन। मनहुँ सोम सर मीचु बिमोचन॥

संसार को मोहने के लिये प्रतिक्षण तत्पर; पक्षियों के पङ्खों के समान कोमल पलकों से आवृत्त और अपने शरीर के ही समान वर्णवाले इसके नेत्र नीले हैं, जो मानों मृत्यु का नाश करनेवाले अमृत के सरोवर हैं।

जासु दानपनु आश्रय पाई। रबि प्रकास कर प्रतिदिनु आई॥
भ्रुअ अरु कचन्हँ केर कुटिलाई। मनहुँ राखि हिय अहिनि बसाई॥

जिसकी दानशीलता के बल पर ही प्रतिदिन उदय होकर सूर्य इस संसार में प्रकाश करते हैं। इसकी भौहों व केशों की कुटिलता ने मानों अपने हृदय में किसी सर्पिणी को बसा रखा है।

रोदत कबहुँक नाक सकोरा। मान करहि जनु होत निहोरा॥
अधर कपोलन्ह कइ मृदुताई। कलिकन्हि उर तें मनहुँ चुराई॥

कभी तो रोते हुए यह अपनी नाक सिकोड़ लेता है, जैसे मनाए जाने पर अधिक मान कर रहा हो। इसके अधरों व गालों की कोमलता, मानों कलियों के हृदय से चुराई गई है।

मालति लतिका इव पद बाहू। दृग प्रति कर जनु धरम निबाहू॥
छातिहि परिधि धरे पै दापा। जिग्यासा कर किन्ह पद छापा॥

मालतीलता-सी इसकी सुन्दर भुजाएँ व चरण, जैसे देखनेवाले के नेत्रों के प्रति अपने (आनन्ददाता होने के) धर्म का निर्वाह कर रहे हैं। किन्तु इसकी छाती की परिधि में गर्वित होता हुआ यह चरणचिह्न किसका है, जो जिज्ञासा उत्पन्न कर रहा है।

महि पर प्रथम बृष्टि जिमि पाई। सौरभ उमगत अति सुखदाई॥
दसहुँ दिसिहि कर प्रमुद जुड़ाई। हरिआरिहि कइ कर अगुआई॥

जिस प्रकार प्रथम वर्षा के कारण पृथ्वी पर अत्यन्त सुखदायक सुगन्ध उमड़ आती है और दसों-दिशाओं में बसे हुए आनन्द को अपने साथ करके वह हरियाली का स्वागत करती है;

तिमि पति तैं करि मोहि सँघाता। जिवन सुफलतहि सुख धरि गाता॥
नव जीवन कर स्वागत करहूँ। चिंत आन हिय तें परिहरहूँ॥

वैसे ही हे नाथ! आप मुझे अपने साथ करके जीवन की इस सार्थकता के सुख को अपने अङ्गों में धारण किये नवीन जीवन का स्वागत कीजिये और हृदय से अन्य समस्त चिन्ताओं को त्याग दीजिये।

सुनत सान्ति भइ उन्ह हिय कैसे। सरित सलिल फिरि कौमुदि जैसे॥
तनय दिवाकर मरिचिन्ह पाई। बिगसे जुगल कमल ब्रजराई॥

यह सुनकर नन्दजी के हृदय में कैसे शान्ति हुई; जैसे नदी के जल में चाँदनी छा गई हो। पुत्ररूपी सूर्य की किरणें पाकर व्रजराज नन्दजी के दोनों नेत्ररूपी कमल खिल उठे।

जीवन प्रति धरि पुनि अनुरागा। पितु हिय घन उछाह कस जागा॥
बिजित सेन पटु सेनप पाई। जस उमगहि पुनि किए जुझाई॥

जीवन के प्रति पुनः अनुरक्ती धारण किये नन्दजी के हृदय में कैसे उत्साह उत्पन्न हो गया; जैसे विजित (शत्रु द्वारा जीत ली गई) सेना कुशल सेनापति पाकर पुनः लड़ने के लिये उमड़ पड़ती है।

दोहा- दृग अपलक संतत श्रवहि नेह सुवन मुख देखि।
मनहुँ प्रान मृत देह फिरि खैंचिसि चेतन रेखि॥२६८॥

पुत्र का मुख देखकर अपलक हुए उनके नेत्र निरन्तर स्नेह (अश्रु) बरसा रहे हैं; मानों मृत देह में प्राणों ने पुनः सञ्चरित होकर उस पर चेतनारूपी रेखा खींच दी हो।

चौ.- यह संबाद पंख बहु पागा। अस ब्यापा सब गाँउ बिभागा॥
जस तड़ाग जल पवन प्रसंगा। तटन्हि मध्य फिर भए तरंगा॥

बहुत से पङ्ख लगाए यह समाचार नन्दगाँव में सब ओर इस प्रकार व्याप्त हो गया, जैसे तालाब का जल वायु का संसर्ग पाकर तरङ्ग के रूप में एक तट से दूसरे तट के मध्य बहा करता है।

सुनतहि हरषि चले नर नारी। गहि गहि भेंट द्रब्य सुखकारी॥
नंद अजिर भइ भीर अपारा। सब हरषत इहिभाँति पुकारा॥
गोकुलराय बधाइ बधाई। बड़े भाग यह सुभ घरि आई॥

("नन्दजी के पुत्र हुआ") यह सुनते-ही गोपगोपियाँ सुखदायक भेंट सामग्री ले-लेकर प्रसन्नता से चले। नन्दरायजी के आँगन में अत्यधिक भीड़ मच गई और सबने हर्षित हो पुकारकर इस प्रकार कहा- हे गोकुलेश! बधाई हो, बधाई हो; बड़े ही भाग्य से यह शुभ क्षण आया है।

दीन्ह बधाइ सबन्हँ एहिंभाँती। हृदयँ प्रीति उन्ह कस न कहाती॥
पवन तरत जस महि अंचल कर। रज कन गनिति भाँति सब दुष्कर॥

इस प्रकार सभी ने नन्दजी को बधाई दी; उनके हृदय का प्रेम कैसे कहा नहीं जाता; जैसे वायु में तैरते हुए व भूतल पर स्थित धूल के कणों की गिनती कर पाना सब प्रकार से दुष्कर होता है।

नंदद्वार भइ अतिसय भीरा। मनहुँ जलधि उमगेउँ तजि तीरा॥
गोकुल अखिल न फूर समाना। लखि निज खेत जनम भगवाना॥

नन्दजी के द्वार पर बड़ी भारी भीड़ हो गई; मानों समुद्र अपनी मर्यादा त्यागकर उमड़ा हो। अपने क्षेत्र में भगवान का जन्म हुआ देखकर सम्पूर्ण गोकुल ही फूला नहीं समाया।

धरि उछाह भूषन दिसि चारी। झलमलात भइ अति सुखकारी॥
दुख दिनु छितिज परसि अब लागा। बढ़त भयउँ मृदु निसि सौभागा॥

उत्साहरूपी अलङ्कार धारण किये चारों दिशाएँ झिलमिलाती हुई अत्यन्त सुखदायक हो गईं। दु:खरूपी दिन अब पश्चिम के छितिज का स्पर्श करने लगा है और कोमल रात्रि का सौभाग्य बढ़ने लगा है।

नंद जासु सीतलता पाई। रोहिनि समुख गए हरषाई॥

जिसकी शीतलता पाकर हर्षित हुए नन्दरायजी रोहिणीजी के सम्मुख गए।

दोहा- मोद प्रबल आबेग हिय कछु न सूझ भौजाइ।
अबुहि कवन कर्तब्य मम देहुँ सबिधि समुझाइ॥२६९॥

हे भौजी! मेरे हृदय में आनन्द का प्रबल आवेग है; जिसके कारण मुझे कुछ भी सूझ नहीं रहा है। इस समय मेरा क्या कर्तव्य है, आप ही मुझे विधिपूर्वक समझा दीजिये?

चौ.- प्रथम बोलि कुल बूढ़न्ह भाई। कुलकृत करिअ सकल अति जाई॥
पूजिअ पुनि बर साज सजाई। गुर समेत कुल देवहि जाई॥

(तब रोहिणीजी ने कहा-) हे भाई! सर्वप्रथम तो आप शीघ्र जाईये और अपने कुल के वृद्धों को बुलवाकर अपने कुल के आचार विधिपूर्वक कीजिये। फिर उत्तम मङ्गल द्रव्य सजाकर गुरु के साथ अपने कुलदेवता की पूजा कीजिये।

किए हेतु द्विज जाचक तोषा। देहुँ उघारि आपने कोषा॥
पुनि गोकुल अस करहु उछाहू। बिबुधन्ह अपि जस सुना न काहू॥

ब्राह्मणों व याचकों को सन्तुष्ट करने के लिये अपने कोष का मुख खोल दीजिये। फिर गोकुल में एक ऐसा उत्सव आयोजित कीजिये, जैसा देवताओं ने भी कहीं न सुना हो।

पठए नंद तुरत सुनि अनुचर। सादर अमित बोलाने द्विजबर॥
जेहिं नाँदिमुख श्राध करावा। अन धन बस्तु दान बहु पावा॥

यह सुनते-ही नन्दजी ने तुरन्त सेवकों को भेजकर सम्मानपूर्वक बहुत से उत्तम ब्राह्मणों को बुलवा लिया; जिन्होंने नांदीमुख श्राद्ध करवाया और अन्न, धन व अनेक वस्तुओं का दान पाया।

मनि मानिक मुकुताजुत भारी। कामसुरभि सम बर गुनवारी॥
बहुरि करत द्विजगन सनमाना। दीन्ह सुतहि दिसि उन्ह कहँ दाना॥

फिर नन्दरायजी ने उन ब्राह्मणों का सम्मान करके उन्हें अपने पुत्र की ओर से मणि, माणिक्य और मोतियों से लदी हुई कामधेनु के समान उत्तम स्वभाववाली बहुत-सी गायें दान की।

दोहा- हरषे लहि मनकाम निज द्विजजन आसिस दीन्ह।
बहुरि जिवाँइ ब्रजाधिपति हरषि बिदा उन्ह कीन्ह॥२७०॥

अपनी मनोवाञ्छित वस्तु पाकर ब्राह्मणों ने प्रसन्न हो उन्हें आशीर्वाद दिया। फिर उन ब्रजाधीश ने उन्हें भोजन करवाकर हर्षपूर्वक विदा किया।

चौ.- अष्टनंद पुनि नंद बोलाएँ। उतसउ सुनत सकुल जे आए॥
बृषभानुहि कहि खबरि बोलावा। सकुल सगाँउ तेपि तहँ आवा॥

फिर नन्दरायजी ने आठों नन्दों को बुलवाया; जो उत्सव के विषय में सुनकर कुल सहित पधारे। उन्होंने वृषभानुजी को भी सूचना देकर बुलवा लिया और वे भी अपने कुल व गाँव सहित वहाँ पधारे।

नंद गेह सुत जनम उछाहू। अस नेउता गयऊ सब काहू॥
नंद गए पुनि प्रोहित पासा। दीन्ह निमंत्रनु केर प्रकासा॥

नन्दजी के घर पुत्र का जन्मोत्सव है, यही निमन्त्रण सब किसी को गया। फिर नन्दरायजी अपने कुलगरू महर्षि शाण्डिल्य के पास गए और उन्हें भी निमन्त्रणरूपी प्रसन्नता का प्रकाश दिया।

पाइ जाहिं साँडिल अस हरषे। हरषहिं पव जस सौरभ बरषै॥
आगिल दिनु सब अतिथि समाजा। नंद अतिथिगृह आइ बिराजा॥

जिसे पाकर वे महर्षि ऐसे प्रसन्न हुए, जैसे सुगन्ध की वर्षा पाकर वायु सुगन्ध से भर जाती है। अगले ही दिन सम्पूर्ण अतिथि समाज नन्दरायजी के अतिथिगृह में आकर विराजमान हो गया।

धर ध्रुअ अभि नित अरु सुखनंदा। महा सरब सँग परमानंदा॥
सपदि जुरै तहँ ए सब नंदा। निरखन जनम उछाह मुकुंदा॥

धरानन्द, ध्रुवानन्द, अभिनन्द, नित्यानन्द, सुखानन्द, महानन्द और सर्वानन्द के साथ परमानन्द आदि ये सभी नन्द शीघ्र नन्दरायजी के घर बालमुकुन्द का जन्म उत्सव देखने हेतू आ जुटे।

नंदहिं सख बृषभानु उदारा। सोभा लहँ तहँ केहि प्रकारा॥
जस भादव कर अगवनु पाई। गगन सोह जलधर समुदाई॥

नन्दरायजी के सखा उदारमना वृषभानुजी समाज सहित वहाँ कैसे शोभा प्राप्त करने लगे; जैसे भादौ माह का आगमन पाकर आकाश में जलयुक्त मेघों के समुदाय सुशोभित होते हैं।

बहु प्रकार करि उन्ह सेवकाई। नंद सबन्हँ कह सीस नवाँई॥

उन सबकी बहुत प्रकार से सेवा करके नन्दरायजी सिर नवाकर उनसे इस प्रकार कहने लगे-

दोहा- अस अवसर मम गृह प्रथम सो तैं कहिअ बुझाइ।
बन उतसउ अस कवनि बिधि जे सक जड़हि रिझाइ॥२७१॥

हे भाई! मेरे घर (पुत्र-जन्म का) ऐसा अवसर पहली बार आया है, अतः आप समझाकर कहिये कि वह उत्सव किस प्रकार बन पड़ेगा, जो (चेतन्य सहित) जड़ जगत को भी मोह ले।

चौ.- तब सुन्दर अवसर अनुमानी। कह बृषभानु सबन्हँ मत जानी॥
कान्हँ अहहिं सुत हम सब केरौ। तिन्ह उत्सव हित यह मत मेरौ॥

तब उचित अवसर को भाँपते हुए सभी का मत जानकर वृषभानुजी कहने लगे कि कन्हैया हम सबका भी पुत्र है, उससे सम्बन्धित इस उत्सव के लिये मेरा मत यह है कि

निज निज घरन्हि बुहारहिं जाई। सहित हाट बीथिन्हँ चित लाई॥

बिबिध रंग उन्ह पोति बहोरी। पुरवहि चौक भीति दुहुँ ओरी॥

हम जाकर चित्तपूर्वक बाजारों व गाँव की गलियों सहित अपने घरों की साफ-सफाई करें। फिर अनेक प्रकार के रङ्गों से उन्हें पोतकर, भित्तियों पर दोंनों ओर से चौक पुराएँ।

धुज पताक तोरन लहराई। सजहु अखिल गोकुल कहँ भाई॥
तदुप धेनुकुल सरि अन्हवाई। बिबिध बिभूषन देहुँ सजाई॥

फिर हे भाई! घरों पर तोरण, ध्वजा और पताकाएँ लहरा कर सपूर्ण गोकुल ग्राम को सजाओ। तदुपरान्त गोवंश को यमुना में नहलाकर, विविध प्रकार के आभूषणों से सजा दो।

सबिनय एक गाँउ बिच जाई। डोंडि पीटि अस देहिं जनाई॥
एहि प्रकार नाना मत कीन्हें। सबन्हि काज निज निज चित दीन्हे॥

कोई एक गाँव में जाकर ढोल पीटकर सबको विनयपूर्वक यही बात सुना दे। इस प्रकार अनेक मत करके, उन सब ने जाकर अपने-अपने काम में चित्त लगा दिया।

उद्घोषक चौबारन्ह ठारे। ढोल पीटि कह सबन्हि पुकारे॥
रोहिनि जसुदहि लल्लन्ह केरा। जनम उछाह नंद कर प्रेरा॥

उद्घोषक चौराहों पर खड़े होकर ढोल पीटकर सबको पुकारकर कहने लगे कि नन्दरायजी की प्रेरणा से उनके घर रोहिणीजी व यशोदाजी के पुत्रों का जन्म उत्सव है।

सो तुम कृत गति धरि अतुराई। गोकुल गोकुल सहित सजाई॥

इसलिये आप अपने काम में शीघ्रता लाकर गौवंश सहित सम्पूर्ण गोकुल को सजाने के पश्चात्

दोहा- **नंदभवन कल्ह अईहहुँ होब तहाँ चौरासि।**
सुनतहि कटि कसि नारि नर उतरे सुचि श्रमरासि॥२७२॥

कल नन्दरायजी के घर पधारियेगा; वहाँ सम्पूर्ण ग्रामवासियों के लिये सामूहिक भोज होगा। यह सुनते-ही स्त्री-पुरुष कमर कसकर श्रम के पवित्र सागर में उतर गये।

चौ.- **बहुरि सजग अहीर कछु जाई। घर घर एहिबिधि लाग सुनाई॥**
गोकुल पाएहुँ अज जुबराजा। सुख अवसर यह गोप समाजा॥

फिर कुछ सजग अहीर घर-घर जाकर इस प्रकार कहने लगे कि आज गोकुल ने युवराज पाया है। हम गोपों के लिये यह सुख का अवसर है।

निज निज गोधन सदन सजावौ। नाचि गाइ आनंदु मनावौ॥
अस अवसर पुनि फिरिहहिं नाहीं। करि बीतहुँ जे पृह हिय माहीं॥

तुम सब गायों और घरों को सजाओ और नाच-गाकर आनन्द मनाओ। ऐसा अवसर पुनः नहीं आवेगा, अतः जो आकाङ्क्षा तुम्हारे हृदय में है, उसे (भली-प्रकार) पूरी कर लो।

जे जहँ सुनत तहँहि हरषावहि। उत्सव साज सजावन धावहि॥
सजग जुबान उमगि तरुनाई। लाग बुहारन ग्रामहिं धाई॥

उनकी बात को जो जहाँ सुन पाता है वही पर प्रसन्न होकर जन्मोत्सव का साज-सजाने दौड़ पड़ता है। कुछ सजग युवा अपने यौवन की ऊर्जा से प्रेरित हो गाँव को बुहारने लगे।

झारहि पथ कोउ गहि साओने। कछु जल आनि लाग तेहिं धोने॥
कंकर कूड़ निबारत सूला। कीन्ह पंथ सब हित अनुकूला॥

कोई बड़ी-बड़ी झाडुएँ लेकर मार्ग को झाड़ रहा है और कुछ जल लाकर उसे धोने लगते हैं। उन्होंने कूड़े-कङ्कड़ और काँटों को हटाकर मार्ग को सभी के लिये सुगम बना दिया।

मलय सरिस मृदु मृतिका आने। पुनि पथ गड्ढन्ह लाग पुराने॥
चौपालन्हि कछु जाइ बुहारी। पोति चिह्न सुभ दए उचारी॥

वे चन्दन के समान कोमल मिट्टी लाकर मार्ग के गड्ढों को भरने लगे। कुछ युवाओं ने चौपालों को झाड़कर स्वच्छ किया, फिर पोतकर वहाँ माङ्गलिक चिह्न बना दिये।

जुबन्ह उमंग समरपनु पाई। एहिबिधि गोकुल लहि सुषमाई॥
परिछित कहहुँ जुबन्ह श्रम भारी। काज कवन जेहिं सक न सँवारी॥

युवाओं के उत्साह का समर्पण पाकर इस प्रकार गोकुल ने सुन्दरता प्राप्त की। हे परीक्षित! कहो तो ऐसा कौन-सा कार्य है, जिसे युवाओं का महान श्रम सँवार नहीं सकता।

तैसेउँ निज निज गृह सब नारी। लीपि पोति अरु लागि बुहारी॥
भीतिन्ह ऊपर बाहेर भीतर। चित्र उकेरे अगनित सुन्दर॥

उसी प्रकार स्त्रियाँ अपने-अपने घरों को बुहारने, लीपने और पोतने लगी। उन्होंने घर के भीतर और बाहर की ओर दीवारों पर अनेक सुन्दर चित्र बनाए।

भवनोपर बर धुजा पताका। बाँधि मनहुँ नभ अगनित राका॥
पुहुप अंबपातन्ह गहि भारा। बाँधे प्रतिपट बन्दनिबारा॥

भवनों पर सुन्दर ध्वजा और पताकाएँ बाँधी, जो ऐसे लगती थी, मानों आकाश में अनेक चन्द्रमा हों। फिर कमलों और आम के पत्तों के भार से उन्होंने प्रत्येक द्वार पर वन्दनवार बाँधे।

बदनु धरे मनि जोति महाना। कनक कलस श्रीफलजुत नाना॥
कस छबि धार ढार प्रति द्वारा। जस सरि बहति कौमुदिहि धारा॥

अपने मुख पर मणि की सघन ज्योति लिये हुए नारियल से युक्त अनेक स्वर्ण कलश प्रत्येक द्वार पर कैसे सुन्दरता की धारा बहा रहे हैं; जैसे नदी में चाँदनी की धारा बहती है।

घृत दीपक द्वारन्ह प्रति आसा। करहि दीपमालिका प्रकासा॥
स्वस्तिक हरदु हाथ कर छापा। प्रमुदित गोपिन्हँ कउलन्ह थापा॥

द्वार पर रखे घी के दीये सब ओर दीपामाला-सा प्रकाश कर रहे हैं। गोपियों ने बड़े ही आनन्द से द्वारों के दोनों ओर स्वस्तिकचिन्हों के साथ हल्दी भरे हाथों की छाप लगाई।

अष्टगंध कर दुइबिध तारा। आश्रय करि निज केर बयारा॥
त्रिबिध होत पुनि प्रबिसत नासा। करि लगि हृदयहि सान्ति प्रकासा॥

अष्टगन्ध की द्वि-आयामी रेखा, वायु को अपना आश्रय बनाकर त्रिविध हो गई और सूँघनेवाले की नाक में प्रविष्ट होते ही उसकी आत्मा में शान्ति का प्रकाश करने लगी।

इत अहीर गोधन अन्हवाई। बिबिध बिभूषन लाग धराई॥
मोरपिच्छ गावत मुद गाना। बाँधे चहु लगि तासु बिषाना॥

इधर अहीर अपनी गायों व बेलों को नहलाकर, अनेक प्रकार के आभूषण पहनाने लगे। उन्होंने आनन्द के गीत गाते हुए गायों के सींगों के चारों ओर लपेटकर सुन्दर मोरपङ्ख बाँधे।

दोहा- **कीन्हि मलय गहि चित्रमय उन्ह कइ पीठि बिसाल।**
कौड़ि घुघरिजुत कंठ पुनि बाँधिसि घूघ्घरमाल॥२७३॥

उन्होंने उन गायों की विशाल पीठ पर चन्दन से चित्र बनाए। फिर उनके कण्ठ में कौड़ियों और छोटी-छोटी घण्टियों से युक्त घूँघरमालाएँ पहनाईं।

चौ.- **एहिबिधि जनम सच्चिदानंदा। गोकुल कन कन ढार अनंदा॥**
मलय हरदु उबटन इत नाना। कीन्हेंहु नंद प्रथम असनाना॥

इस प्रकार सच्चिदानन्दघन भगवान श्रीकृष्ण का जन्म गोकुल के कण-कण में आनन्द की वर्षा करने लगा। इधर नन्दजी ने पहले चन्दन और हल्दी का उबटन लगाकर स्नान किया।

चंदन खौरि तदुप धरि भाला। पहिरेहुँ काँध पीत पट आला॥
नीलाम्बुज सौं सिर धरि पागा। सुभ्र मराल पंख जहँ लागा॥

तत्पश्चात् ललाट पर चन्दन का तिलक लगाकर, कन्धों पर अनोखा पीताम्बर धारण किया। सिर पर नीलकमल के-से रङ्गवाली पगड़ी धारण की, जिस पर श्वेतहंस का पङ्ख था।

नागदंत मुकुतन्हि हिय कंठी। करहि जे मयन माल छबि ठंठी॥
कुंडल श्रवन्ह भुजन्ह भुजबंधा। रजत कंद्र कटि छबिजुत बंधा॥

उन्होंने गले में गजमुक्ताओं की कण्ठी पहनी, जो कामदेव की माला की छवि को भी फीकी करती थी। फिर उन्होंने कानों में कुण्डल, भुजाओं में भुजबन्ध और ल, चाँदी का कन्दोरा बाँधा।

बसन पनुहि नव बोलि चढ़ाई। बेषु निरखि लग मुकुर उठाई॥
अगहुँअ पाछ बहुरि निज देखी। नंद कही यह बात बिसेषी॥

नये वस्त्र और जूतियाँ मँगाकर और पहनकर दर्पण उठाकर वे अपनी वेषभूषा देखने लगे। फिर स्वयं को आगे-पीछे सब ओर से देखकर नन्दरायजी यह विचित्र-सी बात कहने लगे-

दोहा- **नंद जरठ अस कहत सब पै मिथ्या उन्ह बात।**
मम बपु अब लौ उमँग नव जुबा सरिस उमगात॥२७४॥

"नन्द बूढ़ा हो गया है" ऐसा सब कोई कहते हैं, किन्तु उनकी यह बात झूठी है; क्योंकि मेरे शरीर में अब भी किसी नवयुवक के समान नवीन उत्साह उमड़ता रहता है।

चौ.- **यह सब धेनुन्ह सेव प्रतापा। सुत भा मोर मिटेउ संतापा॥**
गोरज सुरसरि निसि दिनु न्हाई। लए सुकृत निज चरम चढ़ाई॥

यह सब गौ-सेवा का ही प्रसाद है, जो मेरे घर पुत्र उत्पन्न हुआ और मेरा सारा सन्ताप मिट गया। मैंने गोरज की गङ्गा में प्रतिदिन नहाकर अपने पुण्यों को चरम पर पहुँचा दिया था;

सुत बपु धरि अज सतकृत सोई। उपजे मम जीवन सुख होई॥
एहिबिधि आपन भाग सिहाई। बैठे नंद सभा महुँ जाई॥

आज वे सत्कर्म ही पुत्र का शरीर धरकर, मेरे जीवन का सुख होकर उत्पन्न हुए हैं। इस प्रकार अपने भाग्य की सराहना करके नन्दजी जाकर अतिथियों की सभा में बैठ गये।

रहे तहाँ प्रथमहि बृषभानू। धरे बपुष दुति बालव भानू॥
नवहि नंद सभ राजत कैसे। नवग्रह सून्य बिराजत जैसे॥

वहाँ वृषभानुजी अपने शरीर में बालसूर्य की-सी कान्ति लिये पहले से ही उपस्थित थे। इस प्रकार नन्द सहित नवों नन्द उस सभा में कैसे विराजमान थे; जैसे आकाश में नवों ग्रह सुशोभित होते हैं।

नंद सबन्हँ बय गुन अनुरूपा। दीन्ह सुआसन परम अनूपा॥
हरषि पुरोहित श्रुति अनुहारा। श्राध नांदिमुख उन्ह कर सारा॥

नन्दजी ने सबको आयु व गुणों के अनुरूप सुन्दर और अनुपम आसन दिए। फिर कुल पुरोहित महर्षि शांडिल्यजी ने उनके हाथों वेदों के अनुसार नांदिमुख श्राद्ध करवाया।

सोरह मातृक पूजि बहोरी। नवग्रह सहित दोउ कर जोरी॥
सुरभि बंस अरु दिसा बिभागा। अतिथि सहित बन्दे अनुरागा॥

फिर नन्दजी ने दोनों हाथों जोड़कर नवग्रहों सहित सोलह मातृका का पूजन करके प्रेमपूर्वक अतिथियों सहित गायों और समस्त दिशाओं व स्थानों का पूजन किया।

दोहा- पट भूषन रतनादि अस दान देत बढ़ि जाइ।
किए सुकृत जस तीरथ बढ़ि नृप होत सवाइ॥२७५॥

हे राजन्! (नंदरायजी द्वारा) वस्त्र, आभूषण व रत्नादि द्रव्य दान किये जाने पर ठीक वैसे ही बढ़ जाते हैं, जैसे तीर्थों में सत्कर्म किये जाने पर वे बढ़कर सवाये हो जाते हैं।

चौ.- मनवाँछित महि महिसुर पाई। उन्हँ कहँ दीन्हि असीस बधाई॥
अगनित गाइनि उन्हँ सुख भारी। दीन्ह दरिद्रिन्ह श्रुति अनुहारी॥

दान में अपनी मनोवाञ्छित भूमि पाकर ब्राह्मणों ने उन्हें बधाई व आशीर्वाद दिया। फिर उन नंदरायजी ने अत्यंत सुख मानकर वेदोक्त रीति के अनुसार आभूषणों से अलंकृत अनेक गायें दरिद्रजनों को दान की।

जाचक सकल अघाने दाना। लटेउ न नंदहि कोष महाना॥
एहि प्रताप ब्रह्मर्पनु केरा। केतनउँ दीजिअ होहिं घनेरा॥

समस्त याचक दान परम परम सन्तुष्ट हो गये, फिर भी नन्दरायजी की महासम्पदा का कोष कम न हुआ। ब्राह्मणों को दान करने का यही प्रताप है कि कितना भी दान कर दीजिये, वह बढ़ता ही जायेगा।

गगन उपस्थित अचरज मारे। कौतुक लखहि बिबुध दृग फारे॥
प्रभु प्रताप पुनि अंतर हेरी। धन्य धन्य धुनि कीन्हि घनेरी॥

आकाश पर उपस्थित आश्चर्य के मारे देवता आँखे फाड़कर यह सब कौतुक देख रहे हैं। फिर मन-ही मन भगवान के प्रताप का स्मरण करके उन्होंने 'धन्य हो', 'धन्य हो' इस प्रकार की सघन ध्वनि की।

सो सवँ कोउँ रहेउ न दीना। दारिद भयउँ भूत हिय लीना॥
अंगुरि चारि सबन्हँ घृत माहीं। यह निर्धन अस सुनि पर नाहीं॥

उस समय कोई भी दरिद्र नहीं रहा और दरिद्रता इतिहास के गर्भ में विलिन हो गई। सबकी चारों अँगुलियाँ घी में थी और 'यह निर्धन है', ऐसा कहीं पर भी सुनाई नहीं पड़ता था।

दोहा- **रमारमन जिन्हँ बिभव कर नर तनु करइ सँभार।**
तासु कोष कर होइ किन असउ प्रताप अपार॥२७६॥

महालक्ष्मी के स्वामी भगवान श्रीहरि मनुष्य का शरीर धरकर स्वयं जिनके वैभव की देख-रेख कर रहे हों, उनके धनकोष का ऐसा महान प्रताप क्यों न होगा?

चौ.- **करत ऋचन्हि धुनि श्रवन रसाला। ब्रह्म बेद गहि चढ़े मराला॥**
हर तनु पहिरि अहिन्ह के माला। चढ़े नंदि कइ पीठि बिसाला॥

वेदों को लिये ऋचाओं की कर्णप्रिय ध्वनि करते हुए ब्रह्माजी अपने वाहन हंस पर चढ़े और शिवजी शरीर पर सर्पों की मालाएँ धारण किये अपने वाहन नन्दी की विशाल पीठ पर सवार हुए।

सुरपति गज ससि मृग चढ़ि आए। नारद सनक पयादेहिं धाए॥
अखिल जगत जे करहि प्रकासा। सो दिनकर भै अचल अकासा॥

देवराज इन्द्र ऐरावत पर और चन्द्रमा मृग पर सवार होकर आए, तो नारद व सनकादि मुनि पैदल ही (गोकुल की ओर) दौड़े। जो संसारभर को प्रकाशित करते हैं, वे भगवान सूर्य आकाश ही में स्थिर हो गये।

पुष्पक मध्य अतुल निधि छाई। चले धनद अतिसय अतुराए॥
करि जोगिनि समुदाइ भवानी। सोह नहारु सकल सुभ खानी॥

धनाध्यक्ष कुबेर पुष्पक विमान में अतुल्य सम्पदा भरकर बड़ी ही उतावली के साथ चले। योगिनियों के समूह को अपने साथ लिये समस्त शुभताओं की खान माता दुर्गा अपने वाहन सिंह पर सुशोभित हैं।

बीनापानि मराल सजाई। हरि जसु बरनत चलि हरषाई॥
बह्नि वात जम बरुन बिषमसर। षडमुख गनप चले करि अनुचर॥

वीणावादिनी माता सरस्वतीजी अपने हंश को सजाकर भगवान के सुन्दर यश का गायन करती हुई हर्षपूर्वक चलीं। अग्नि, वायु, यम, वरुण, कामदेव, देवसेनापति कार्तिकेयजी और गणेशजी अपने-अपने अनुचरों को साथ लेकर चले।

दोहा- तरनी ससि ससितनय कुज गुर सुर असुरन्हँ केर।
राहु केत सनि अए तहँ सुभता धरे घनेर॥२७७॥

सूर्य, चंद्र, बुध, मंगल, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतू इत्यादि ग्रह महान शुभता से सम्पन्न हो वहाँ उपस्थित हुए।

चौ.- एक एक करि गोकुल ऊपर। बिबुध समाज जुरेउँ अति सुन्दर॥
कह बिरंचि धरु सब नर देहा। तदुप चलिहिं हम ब्रजपति गेहा॥

एक-एक करके देवताओं का अत्यन्त सुन्दर समुदाय गोकुल के आकाश पर आ जुटा। तब ब्रह्माजी ने कहा कि सब कोई मनुष्य का शरीर धर लें; तदुपरान्त हम व्रजराज के घर चलेंगे।

गए भाँति एहि गोकुल माहीं। हमहिं कोउ पहिचानिब नाहीं॥
सुनत सकल गोपन्ह बपु लाई। हरषि मिले उतसव महुँ आई॥

इस प्रकार गोकुल में जाने पर हमें कोई भी पहचान नहीं सकेगा। उनकी बात सुनते-ही सभी ने ग्वालों का शरीर धारण कर लिया और प्रसन्नतापूर्वक वे उस उत्सव में जा मिले।

गाँउ चरत उन्ह देखेहुँ भारी। गोप उमंग परम सुखकारी॥
पुनि ग्रामहि छबि दृगन्ह जुड़ाई। गए सकल ब्रह्मानंदु पाई॥

गोकुल में विचरते समय उन्होंने ग्वाल समुदाय में व्याप्त परम सुखदायिनी उमंग के दर्शन किये और गाँव की सुन्दरता अपने नेत्रों में धारण करके उन सब देवताओं ने ब्रह्मानन्द पा लिया।

तियन्ह सदन सन चौक पुराए। जापर मनि सम दीप सुहाए॥
कदलि खंबजुत बन्दनिवारा। धुज पताक सुन्दर प्रति द्वारा॥

गोपियों ने अपने घरों के सामने स्वस्तिक चिन्ह बना रखे हैं, जिन पर मणियों जैसे चमकते हुए दीपक सुशोभित है। केले के खम्भे वन्दनवारयुक्त है और प्रत्येक द्वार पर सुन्दर ध्वजा व पताकाएँ बँधी है।

तोरन आल द्वार प्रति छाए। करि श्रम मनहुँ मनोज सजाए॥
भूषनजुत गौ सावक न्यारे। उझकहि फुदकहि गलि चौबारे॥

प्रत्येक द्वार पर विचित्र तोरण बँधे हुए हैं, मानों उन्हें स्वयं कामदेव ने श्रमपूर्वक सजाया हो। अलङ्कारों से युक्त गायों के चञ्चल बछड़े गलियों व चौराहों पर उछल-फुदक रहे हैं।

संख ढोल ढप अरु सहनाई। सुनि पर जहँ तहँ श्रव सुखदाई॥
हरदु दधिहि घट कछु लै आने। लाग परस्पर हरषि उड़ानें॥

जहाँ-तहाँ शङ्ख, ढोल, ढपली और सहनाई का सुखदायक स्वर सुनाई पड़ता है। कुछ ग्वाले हल्दी व दहीं के घड़े ले आये और हर्षित होकर एक-दूसरे पर उड़ाने लगे।

छन्द- मचि कीच अस दधि हरदि कइ मनु प्रीति सरि उमगत चली।
कर्पूर मृगमद मलय सौरभ वात सब दिसि भइ भली॥
नाचहि बिमोहित छद्मि मिरदँग गंधरब बाजहि घनी।

बिद्याधरिन्हँ सँग अपछरा नाचहि अनख जनु उन्ह ठनी॥

वहाँ दहीं और हल्दी का ऐसा कीचड़ मच गया; मानों प्रेम की नदी उमड़ते हुए चली हो। कर्पूर, कस्तूरी और चन्दन की सुगन्ध से वायु सब ओर सुगन्धित हो उठी। बिमुग्ध हुए गोपवेशधारी देवता नाच रहे हैं, तो गंधव उच्च श्वर में मृदङ्ग बजा रहे हैं। विद्याधरियों के साथ अप्सराएँ ऐसे नृत्य कर रही हैं; मानों उनमें स्पर्धा हो रही हो।

दोहा- **किन्नरि गावहि मंगल मधुर मनोहर राग।**
मनहुँ धरे तनु प्रगट अह गोकुल महुँ अनुराग॥२७८॥

किन्नरियाँ मन को हरनेवाले कोमल राग में मङ्गलगीत गा रही हैं; मानों स्वयं प्रेम ही शरीर धारण किये गोकुल में प्रत्यक्ष उपस्थित है।

चौ.- **बिबुध गोप जैसेहुँ हिय राखा। उतसव तैसेहुँ आनँद चाखा॥**
नंदहि द्वार कंबु घन बाजहि। भादौ केर जलद मनु गाजहि॥

देवताओं और ग्वालों ने अपने मन में जैसा चाहा था, उस उत्सव में वैसा ही आनन्द पाया। नन्दरायजी के द्वार पर शङ्ख की सघन ध्वनि हो रही है; मानों भादौ माह के मेघ गरज रहे हों।

ग्वालिन दधि अरु हरदि जुड़ाई। रोहिनि जसुदहिं रही लगाई॥
कोकिल कंठ बिभव कछु आनी। गावहि मधुर प्रभाति सुबानी॥

ग्वालिनें दहीं व हल्दी लाकर रोहिणीजी व यशोदाजी को लगा रही हैं और उनमें से कुछ ग्वालिनें अपनी वाणी में कोयल के कण्ठ का वैभव धारण किये मधुर प्रभातगीत गा रही है।

गोकुल जलधि प्रमोद तरंगा। उठि लगि भींजि त्रिपुर प्रत्यंगा॥
गोप ग्वाल किलकन्हि तिहिं नादा। जेहिं सोषेउँ सबभाँति बिषादा॥

गोकुलरूपी समुद्र से परम आनन्दरूपी तरङ्गें उठकर त्रिलोक के कण-कण को भिगोने लगी। गोप-गोपियों का कोलाहल ही उस समुद्र का शब्द है, जिसने सब प्रकार का विषाद हर लिया है।

बिरिद सबद मागधगन प्रेरे। खग प्रबासि उदधिहि तट केरे॥
उदित नृपति जहँ जग हित भानू। कस न राग बज अस कल्यानू॥

मागधों के द्वारा गाये गये विरुदावली के शब्द, उस समुद्र के तट पर प्रवास करनेवाले पक्षि हैं। हे राजन! जहाँ से संसार के हित के लिये सूर्य उदित हुआ है, उस स्थान पर कल्याण का ऐसा राग क्यों न बजेगा?

कीन्ह प्रमुद जे जनम उछाहा। तरत रबि निकर सिंधु अथाहा॥
बिबुधबृन्द सोइ मरिचिन्हँ पाई। तरकि सुराज गए हरषाई॥

प्रभु के जन्मोत्सव ने जो परम आनन्द उत्पन्न किया है, वह उस अथाह समुद्र में तैरती हुई सूर्य की किरणें हैं। देवता उन्हीं किरणों को पाकर अपने भावी हित का अनुमान करके हर्षित हो उठे।

तदुप चेत जब सुरगन पाई। दीन्ह नंद कहँ भेंट बधाई॥
नंद पाइ पुनि भेंट सो भारी। दीन्ह जाचकन्ह सुत सिरु वारी॥

तदुपरान्त जब देवों को चेतना आई, तब उन्होंने नन्दजी को अपनी ओर से भेंट व बधाई दी। वह महान सम्पदा स्वीकार करके फिर उसे नंदरायजी ने अपने पुत्र के सिर से उतारकर याचकों को दे दी।

जलद बरष जेतिक घनि धारा। सरितन्हि जेतिक उमगति बारा॥

जलयुक्त मेघ जितनी मोटी धाराएँ बरसाते हैं, नदियों में जितनी बाढ़ उमड़ती है,

दोहा- ताहि त तहँ कर अलप जन निज निधि सकहि खिसाइ।
बहुरि होइ किन ऐसेहुँ जहँ बस निधिपति आइ॥२७९॥

उसे तो वहाँ का साधारण मनुष्य भी अपनी सम्पदा से लज्जित कर सकता है और फिर जहाँ स्वयं लक्ष्मीपति भगवान आ बसे हों, वहाँ ऐसा होगा भी क्यों नहीं?

चौ.- नवहि नंद लखि अस उतसाहा। हृदयँ जुड़ानिसि प्रीति अगाहा॥
दधि अरु हरदि केरि घनि बाढ़ा। उरानंद कहुँ करति प्रगाढ़ा॥

गोकुल में व्याप्त इस उत्साह को देखकर नवों नन्दों ने अपने मन में प्रेम का महान अनुभव पाया। सब ओर व्याप्त दहीं और हल्दी की घनी बाढ़ हृदय के आनन्द को और अधिक बढ़ा रही है।

भाबि जिवन कर करि अनुमाना। बिबुध समाज परम सुख माना॥
नंदद्वार पर जाचक जेते। होत कुबेर निमिष महुँ तेते॥

अपने भावी जीवन का अनुमान करके देवताओं ने अत्यंत सुख माना। उस समय नन्दजी के द्वार पर जो भी याचक पहुँचते हैं, वे निमेष मात्र में अत्यन्त धनवान हो जाते हैं।

उन्ह जाचकन्ह सुसंपति देखी। उपजि सुरन्हँ हिय जरनि बिसेषी॥
जहँ तहँ गोप गोपि ब्रज केरे। नंदहि सिहात अचरज प्रेरे॥

उन याचकों की उत्तम सम्पदा देखकर देवताओं के हृदय में भी विशेष ईर्ष्या उत्पन्न हो गई। व्रज के गोप-गोपी जहाँ-तहाँ आश्चर्यचकित होकर नन्दजी की प्रशंसा कर रहे हैं।

यह उतसउ कोउ प्राकृत नाहीं। अवसि अहहि सुरगन एहि माहीं॥
चितवहुँ सब दिसि कस छबि छाई। मनहुँ सरित जल चर सितलाई॥

यह कोई साधारण उत्सव नहीं है, अवश्य ही इसमें देवता भी उपस्थित है। देखो तो! सभी दिशाओं में कैसे आनन्द व्याप्त हो रहा है; मानों नदी के जल में शीतलता विचरण कर रही है।

यह सिसु प्राकृत कहै न बनही। सब अस कहहिं प्रगट अरु मनहीं॥

यह बालक साधारण नहीं कहते बनता। सब कोई प्रत्यक्ष और मन में यही कह रहे हैं।

दोहा- कहत कोउ सुत नंद कर आतम कोउ महान।
उमगि परे जेहिं दरसन नभ सुर साजि बिमान॥२८०॥

कोई कहता है कि नन्द का पुत्र कोई महान आत्मा है, जिसके दर्शनों के लिये विमान सजाकर आकाश में देवता उमड़ पड़े हैं।

चौ.- ऐतनेहुँ ग्वाल कछुक तहँ आए। दधि अरु हरदि कुंभ भरि लाए॥

गावत नंद सुकीरति पावन। सभासदन्ह तेहिं लाग लगावन॥

इतने में कुछ ग्वाले वहाँ आए, जो अपने साथ दहीं व हल्दी के घड़े भर लाये थे। नन्दजी की सुन्दर कीर्ति का गान करते हुए, वे वहाँ उपस्थित सभासदों को दहीं और हल्दी लगाने लगे।

नाचि गाइ सब दै दै तारी। लगे उड़ावन दधि अति भारी॥
तिन्ह मुख गोरस सोहहि किमिहि। गिरि सिखरन्ह हिम छादित जिमिहि॥

वे सब नाच-गाकर और ताली बजा-बजाकर सभा में ही अत्यधिक दहीं उड़ाने लगे। गोरस से सने हुए उनके मुख कैसे शोभा दे रहे हैं; जैसे हिम से ढँके हुए पर्वत के शिखर हों।

करहि सुहागिन मंगलगाना। सुनि रोहिनि जसुदा सुख माना॥
हरद दूब अच्छत कर लेई। तिलक परसपर ग्वालिन देई॥

सुहागिन स्त्रियाँ मङ्गलगान कर रही है, जिसे सुनकर रोहिणीजी व यशोदाजी को अत्यन्त सुख हुआ। हल्दी, दूब और अक्षत लेकर, ग्वालिनें परस्पर एक-दूसरे को तिलक लगा रही है।

धरनि परत दधि कीच मचाई। रपटि ग्वाल लग स्वाँग रचाई॥
परत ग्वाल पुनि उठहि सँभारी। अपर ठहकि हँस ताहि पुकारी॥

भूमि पर गिरते ही दहीं ने कीचड़ मचा दिया, जिसमें फिसलकर ग्वाले स्वाँग रचाने लगे। गिरने पर ग्वाले पुनः सम्भलकर उठते हैं, तो दूसरे उन्हें पुकारते हुए ठहाका मारकर हँसते हैं।

रहे कोउ कोउ बपु अधिकाई। नाचहिं भलिबिधि चरन जवाँई॥
झूमि झटकि कोउ तिन्ह बरिआई। खीन बपुन्ह पर देत धकाई॥

कोई-कोई शरीर से बहुत मोटे थे, वे अच्छी तरह से पैर जमाकर नाच रहे थे। तो कोई उन्हें झूमते हुए झटककर बलपूर्वक धक्का देकर क्षीण शरीरवालों पर गिरा देते हैं।

दोहा- **उठत परत एहिंभाँति कोउ करहि तासु उपहास।**
तासु बपुष दधि आबरन ससि सम करहि प्रकास॥२९१॥

इस प्रकार उठते और गिरते हुए कोई उनका उपहास करते हैं। उस समय उनके शरीर पर लगे हुए दहीं का आवरण चन्द्रमा के समान उद्दीप्त होता है।

चौ.- **मुद आबेग प्रबल अस भयऊँ। जेहिं सवँतहि सुराज निरमयऊँ॥**
जब सुराज मरजाद लँघाई। प्राकृत गोपन्ह दीन्ह भँवाई॥

आनन्द का आवेग इतना प्रबल हो गया है कि जिसने समानता का उत्तम वातावरण निर्मित कर दिया। समता के उस वातावरण ने जब बढ़कर मर्यादा को लाँघते हुए साधारण गोपों को मस्त कर दिया,

तब ते नंदहि करि निज संगा। हठि नचात भै प्रीति तरंगा॥
पटह मृदंग ढोल अति बाजहिं। जरठ जुबा करि प्रमुदित नाचहि॥

तब प्रेम की तरंग में वे नंदरायजी को अपने साथ करके हठपूर्वक नचाने लगे। पटह, मृदङ्ग व ढोल की सघन ध्वनि हो रही है और वृद्ध ग्वाले युवकों को साथ लेकर बड़े ही आनन्द से नाच रहे हैं।

तब कोउ कह दिनु दुरलभ भाई। सक न ब्रह्म जिहि महिमा गाई॥
प्रति छिनु सींव अनंदु अपारा। सजतन करु तापर अधिकारा॥

तब किसी ने कहा- हे भाई! यह दिन दुर्लभ है, जिसकी महिमा स्वयं ब्रह्मा भी नहीं गा सकते। (इस अवधि के) प्रत्येक क्षण की सीमा अपार आनन्द से भरी हुई है; उस पर यत्नपूर्वक अधिकार कर लो।

बीते समउ फिर न पुनि भाई। सो प्रति छिनु हिय लेहुँ बसाई॥
सुनि भै छद्मिन्ह पुलकित गाता। नाचि लगे ग्वालन्हँ संघाता॥

हे भाई! बीत जाने के उपरान्त यह समय पुनः लौटकर नहीं आयेगा; इसलिये इसके प्रत्येक क्षण को अपने हृदय में बसा लो। यह सुनकर छद्मवेशधारी देवताओं के अङ्ग पुलकित हो गए और वे भी ग्वालों के साथ नाचने लगे।

छन्द- **संघात ग्वालन्हँ कपट बपु सुर नर्ति अति सोभा लई।**
बरषहि कलपतरु कुसुम तहँ दुंदुभि गगन अति घनि हई॥
इहिभाँति हरि कर जन्म उत्सउ दसहुँ दिसि ब्यापन लग्यो।
सब चर अचर जग भयउँ प्रमुदित कंस हिय बिप्लव जग्यो॥

कपट से ग्वालों का शरीर धारण किये हुए देवताओं ने ग्वालों के साथ नाचते हुए अत्यन्त शोभा प्राप्त की। कल्पवृक्ष उस स्थान पर अपने पुष्प बरसाने लगा और आकाश में दुन्दुभियाँ सघन ध्वनि से बज उठी। इस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण का जन्मोत्सव दसों-दिशाओं में व्याप्त होने लगा; जिससे सम्पूर्ण चराचर जगत अत्यन्त आनन्दित हो गया और कंस के हृदय में भयरूपी विप्लव उठने लगा।

दोहा- **एहिबिधि नाचत गावत सबन्हँ भई तहँ साँझ।**
गए बिलगि नर नारि तब न्हावन जमुनहिं माँझ॥२८२॥

इस प्रकार वहाँ नाचते-गाते हुए सभी को संध्या हो गई; तब स्त्री-पुरुष अलग-अलग होकर यमुना में स्नान के लिये गए।

मासपारायण नौवाँ विश्राम

चौ.- **गोप बपुष आपन दुति गोई। इत इंद्रादिक कीन्हि रसोई॥**
बहुरि न्हाइ नर नारि समाजा। नंद अजिर जब आइ बिराजा॥

इधर इन्द्रादि देवताओं ने अपने तेज को छिपाने के लिये गोपों का शरीर धारण कर लिया और भोज हेतू रसोई तैयार की। फिर जब नहाकर स्त्री-पुरुषों का समाज नन्दजी के आँगन में आ गया,

तब भइ तहँ बहुबिध जेवनारा। जविं लग गोप समाज अपारा॥

बिंजन रुचिर सहित रस नाना। देत वातहि सुबास महाना॥

तब वहाँ पर बहुत प्रकार से भोज हुआ और गोपों का अपार समाज भोजन करने लगा। स्वादिष्ट व्यञ्जनों के साथ अनेक प्रकार के पेय-पदार्थ वायु को अपनी तीव्र सुगन्ध देकर,

रस उमगावहि मुख महुँ कैसे। कूप पतालतोड़ जल जैसे॥
बिंजन कइ मधुमय रुचिराई। जीहँ तरनि भोजिन्हँ कइ पाई॥

वहाँ उपस्थित गोपों के मुख में किस प्रकार पानी उमगाने लगे; जैसे पाताल तोड़ कुएँ से जल उमड़ता है। व्यञ्जनों का अकथनीय स्वाद, खानेवालों की जिह्वारूपी नौका पाकर;

आतम उदधि तरंगन्हि संगा। खेलत भा अति पाइ उमंगा॥
नाउ परसपर पतिन्ह पुकारी। देति चिबल्लत तिय मृदु गारी॥

आत्मारूपी समुद्र की तरङ्गों के साथ अत्यन्त उत्साहित होकर खेलने लगा। वहाँ उपस्थित स्त्रियाँ उपहास करके, एक-दूसरे के पतियों का नाम ले-लेकर आपस में मधुर गालियाँ देने लगी।

आव अतिथि जे गोकुल माहीं। देत चतुर अगवान जिवाँही॥

उस समय जो अतिथि गोकुल में आता था, चतुर अगवान उसे भोजन करवा देते थे।

दोहा- **नंद अजिर भोजनोपर लगेउँ अगारौ एक।**
जहँ करतब देखरावन कौतुकि जुरे अनेक॥२८३॥

भोजन के उपरान्त नन्दजी के आँगन में एक अखाड़ा लगा, जहाँ अपने-अपने करतब दिखाने के लिये अनेक कौतुकी आ जुटे।

चौ.- **रहे जहाँ जुग अरजुन झारा। सिल्पि मंच तहँ बिरचेउँ न्यारा॥**
नंद सकल सुचंद ब्रजराई। बैठे कौतुक निरखन जाई॥

आँगन में जहाँ यमलार्जुन के वृक्ष थे, वहाँ पर शिल्पकारों ने एक अनोखा मञ्च बना दिया। जिस पर करतब देखने के लिये स्वयं नन्दजी, वृषभानु और समस्त नन्दों सहित जाकर बैठ गये।

बिबुध सकल सुबेषु धरि ग्वाला। बैठे निरखन कौतुकि ख्याला॥
भयउँ अरंभ जबहि आगारा। रहि उतसुकता सबन्हँ अपारा॥

कौतुकियों का प्रदर्शन देखने के लिये देवता भी ग्वालों का सुन्दर वेष धारण करके, उस सभा में जा बैठे। जब अखाड़ा आरम्भ हुआ, उस समय सभी के मन में अपार उत्सुकता थी।

जेहिं पोषे हित कौतुकि नाना। करतब साज बिचित्र जुड़ाना॥
बंदि नंद बिरिदावलि गाई। प्रथम जाहिं सुनि सभ हरषाई॥

जिसे बढ़ाने के लिये कलाबाजों ने करतब की विचित्र और अनेक वस्तुएँ जोड़ रखी थी। बन्दीजनों ने सर्वप्रथम नन्दजी की विरुदावली गाई जिसे सुनकर सारी सभा हर्षित हुई।

उठेउँ एक नट बीच समाजा। रहा बेषु जेहिं कर नटराजा॥
भ्रमि भ्रमि धरे त्रिसूल बिसाला। कीन्ह तेहिं ताँडउ बिकराला॥

फिर दर्शकों के बीच से एक नर्तक उठा, जिसने भगवान शिव के नटराज-स्वरूप का वेष ले रखा था। हाथ में विशाल त्रिशूल लिये, घूम-घूमकर उसने विकराल ताण्डव नृत्य किया।

तदुप मल्ल कछु ग्वाल बिभूषे। पटकि परसपर मारेसि घूँसे॥
बहुरि ग्वाल बिबिधायुध धारी। करहि परसपर नृप सम रारी॥

तदुपरान्त कुछ ग्वालों ने मल्लों का वेष धरकर लड़ते हुए एक-दूसरे को पटककर घूँसे मारे। फिर कुछ ग्वाले अनेक शस्त्र लेकर किसी राजा के समान परस्पर युद्ध करने लगे।

दोहा- **कछुक मौजि अपरन्ह कृत हँसि हित स्वाँग बसाइ।**
अभिनय करि धर सबन्हँ सन लखि सब हँसहि ठठाइ॥२८४॥

कुछ मौजी ग्वाले हास्य के लिये, दूसरे के द्वारा किये गये कामों को, स्वाँग के बहाने अभिनयपूर्वक सबके सामने प्रस्तुत करने लगे, जिसे देख सब ठहाका मारकर हँस रहे हैं।

चौ.- **फल बहुबिध मृदु काठ गड़ाए। कलाबाज कछु तहँ भरि लाए॥**
बेचे हित पुनि लाग पुकारी। इत सुनि उत श्रव स्यान निकारी॥

कुछ कलाबाज लकड़ी से बने बहुत प्रकार के फल टोकरियों में ले आए और बेचने के लिये पुकारने लगे। सयानों ने उनकी बात एक कान से सुनकर दूसरे से निकाल दी।

किन्तु सूध भ्रमबस बौराए। हठि उन्ह फलन्हि ग्रसन हित धाए॥
पुनि पुनि चाबहि दसन जमाई। किंतु सकेउ नहिं कोउ तिन्हँ खाई॥

किन्तु कुछ सीधेसादे गोप भ्रमवश, बौरा गए और हठपूर्वक फलों को खाने दौड़े। वे अच्छी तरह से दाँत जमाकर बार-बार उन्हें चबाते हैं, किन्तु कोई भी उन्हें खा नहीं पाया।

पुनि जब सूझि सिल्पि चतुराई। सबनि रहे रद अँगुरि दबाई॥
अपर निरखि कर तिन्ह उपहासा। बैठे बपुरे सकुचि निरासा॥

जब उन्हें शिल्पी की चतुराई का बोध हुआ, तो वे दाँतों तले अँगुली दबाकर रह गए। यह देख दूसरे गोप उनकी हँसी उड़ाने लगे, तब लज्जित हुए वे बेचारे निराश हो बैठ गए।

एक कीन्ह अस ब्याल तमासा। जातें भय ब्यापेहुँ सब आसा॥
फन करि चख चमकाइ कराला। फुंकर अस जस अधिपति ब्याला॥

एक कौतुकी ने सर्प का वेष धरकर ऐसा तमाशा किया कि सब ओर भय छा गया। फण चढ़ाकर और विकराल आँखें चमकाकर वह ऐसे फुँफकारने लगा जैसे स्वयं शेषनाग हो।

लपलपाइ रसना बहु बारा। बैठेउ बहुरि कुंडलाकारा॥
लखि भइ भीत सभा अति जबही। कौतुकि चार उठे तहँ तबही॥

बार-बार अपनी जीभ को लपलपाकर फिर वह कुण्डली मारकर बैठ गया। यह देखकर जब सारी सभा अत्यन्त भयभीत हो गई, तब वहाँ चार अन्य कौतुकी उठे और

दोहा- **नकुल बेषु आगार महुँ कूदे तिन्ह समुहाइ।**
कलइ खुलन भय हेरि हिय भजि छूटा फनिराइ॥२८५॥

नेवले का वेष धारण करके, वे अखाड़े में उसके सन्मुख कूद पड़े। तब अपना भेद खुल जाने के डर से वह सर्पराज भाग छूटा।

चौ.- **आवा सभ पुनि एक मदारी। कीस घालि सँग कौतुकि भारी॥**

सावधान करि सबन्हँ देखाई। बहु प्रकार तेहिं लाग नचाई॥

फिर सभा में एक मदारी आया जिसके साथ अत्यन्त मौजी बन्दर था। वह मदारी सभी को सावधान करके, सभा में उस बन्दर को बहुत प्रकार से नचाने लगा।

रीछ सघन कच आनेहुँ एका। करतब करि लग बहुरि अनेका॥
नंद निरखि सब कहँ हरषाई। कीन्हि भेंट मनिमाल सुहाई॥

फिर एक कलाबाज घने बालोंवाला एक रीछ ले आया और अनेक प्रकार के करतब दिखाने लगा। यह देख नन्दजी ने सभी कलाबाजों को मणियों की सुन्दर मालाएँ भेंट की।

दारुनारि कर मुदद तमासा। कोउ करि उपजानेउँ रस हासा॥
कोउ आपन गनि सुर सम जोधा। अपरन्ह असुर जानि करि क्रोधा॥

किसी ने कठपुतलियों का आनन्ददायक प्रदर्शन करके सभा में हास्य रस उत्पन्न किया, तो किसी ने स्वयं को देवताओं जैसा योद्धा मानकर और दूसरों को असुर समझकर क्रोध करके

तहँ देवासुर समर देखावा। निरखि बीर रस सबन्हौं पावा॥
बढ़त बात जब परी लराई। तब स्यानन्ह तिहि सुरह कराई॥

वहाँ देवताओं व असुरों के संग्राम का प्रदर्शन किया; जिससे सभी दर्शकों को वीर रस प्राप्त हुआ। बात बढ़ने पर जब वे सचमुच लड़ने लगे, तब (वहाँ उपस्थित) सयाने लोगों ने उनके बीच सुलह करा दी।

तदुप एक अनुकृत तहँ आवा। खग पसु गिरा सुसहज बनावा॥
सिखि बायस पिक गुबरु मराला। स्वान महिष करि केहरि ब्याला॥

तदुपरान्त एक नकलची ने वहाँ आकर बड़ी सहजता से पशु-पक्षियों की वाणी बनाकर सुनाई। जैसे मोर, कौआ, कोयल, उल्लू, हंस, कुत्ता, भैंसा, हाथी, सिंह और सर्प इत्यादि।

जेहिं सुनि दंग भए नरनारी। कवनि भाँति तेहिं गिरा सवारी॥

जिसे सुनकर सब स्त्री-पुरुष चकित हो सोचने लगे कि उसने यह ध्वनि कैसे उत्पन्न की?

दोहा– ऊँट बेषु एक कीन्ह पुनि तापर एक सवार।
कौतुक तें पहिलहि खसेउँ मर्‍यो करत चिक्कार॥२८६॥

एक कौतुकी ने ऊँट का वेष बनाया व दूसरा उस पर सवार हो गया। किन्तु कौतुक से पूर्व ही, "मैं तो मरा" यह चिल्लाता हुआ, वह ऊँट की पीठ से लुढ़ककर भूमि पर आ गिरा।

चौ.– जाचक जूह तदुप सो आवा। नंद तें बिपुल दान जिन्हँ पावा॥
उन्हँ महुँ एक शिकौ करि बोला। दुख किवार मोरे नँद खोला॥

तदुपरान्त याचकों का वह समूह उपस्थित हुआ, जिसने नंदरायजी से बहुत-सा दान पाया था। उनमें से एक याचक शिकायत करके कहने लगा कि नंदरायजी (आप) ने मेरे लिये दु:खों का किवाड़ खोल दिया है।

निधि अबेरि मैं तोर लुटाई। घर लै गयउ परम हरषाई॥
घर लघु ठौर न राखन केरा। लखि मम तिय करि कोप घनेरा॥

आपके द्वारा लुटाया धन बटोरकर मैं हर्षपूर्वक घर ले गया। मेरा घर छोटा है, जहाँ उसे रखने के लिये मुझे पर्याप्त स्थान नहीं मिला। यह देखकर मेरी स्त्री अत्यन्त कुपित होकर,

मूसर गहि मम पाछे धाई। बहुरि पीठि मम दइ धवँचाई॥
किउँ तुम दान दीन्ह अस भारी। जेहिं दसा मम दीन्ह बिगारी॥

मूसल लिये मेरे पीछे दौड़ी और उसे मेरी पीठ पर दे मारा। आपने इतना भारी दान क्यों दिया, जिसने मेरी दशा इस प्रकार बिगाड़ दी?

तुम्हहि करहु अब कछुक उपाऊँ। जासु सुआश्रय प्रतोष पाऊँ॥
एक कहइ रथु तैं मोहि दीन्हा। चलत जाहिं मैं पथ सन कीन्हा॥

अब आप कोई उपाय कीजिये; जिसका सुन्दर आश्रय पाकर मैं परम सन्तुष्ट हो सकूँ। एक ने कहा आपने दान में रथ दिया था, जिसे चलते समय मैंने मार्ग के सन्मुख किया।

पर मोहि मारग जनि कोउ सूझा। प्रति पथ तवहि दान धन बूझा॥

किन्तु मुझे चलने योग्य कोई मार्ग नहीं सूझा, प्रत्येक पथ आपके लुटाये धन से भरा है।

दोहा- रमहि रूप धन बेद कह तापर कस पग देहुँ।
तैं अब देहुँ बिमान मोहि जाइ सकौ निज गेहु॥२८७॥

वेद कहते हैं- धन लक्ष्मी का स्वरूप है, मैं उस पर पैर कैसे रखूँ? इसलिये अब आप मुझे विमान दीजिये, ताकि मैं अपने घर जा सकूँ।

चौ.- कहहिं एक धरि नारद बेषा। नंदराय उतसउ यह कैसा॥
तीनिहुँ लोक सबद जिन्हँ ब्यापा। छुब्ध भयउँ जग काज कलापा॥

नारदजी का वेष धरे एक गोप बोला- हे नन्दरायजी! यह उत्सव कैसा है, जिसकी ध्वनि तीनों लोकों में व्याप्त हो रही है और जिससे संसार के कार्य-कलाप क्षुब्ध हो गये हैं।

तजि श्रुतिपाठ झूँअ अज भूले। सिव समाधिगत नाचहि फूले॥
काल सुभाय भयउँ मृदु सूधा। नवग्रह भ्रमन पंथ पुनि रूधा॥

जिससे ब्रह्माजी वेदपाठ भूले झूम रहे हैं और शिवजी समाधि छोड़ आनन्द से नाच रहे हैं। उत्सव के कारण यम स्वभाव से कोमल व सरल हो गए और नौंग्रहों का मार्ग अवरुद्ध हो गया।

यह भल बहुत कीन्ह भगवाना। जे अहिपति कहँ दीन्ह न काना॥
धुनि यह श्रावन तासु परती गर। तब की दसा होति धरती कर॥

भगवान श्रीहरि ने यह बड़ा ही अच्छा किया कि शेषजी को कान नहीं दिये, यदि इस उत्सव की ध्वनि उनके कानों में पड़ती, तो (सोचो) पृथ्वी की दशा क्या होती?

नंद बिचार तनक हिय लावौ। नौबत मंद मंद बजुआवौ॥
छद्मि तदुप उतरेउँ आगारा। नंद सुजसु कहि लाग अपारा॥

हे नन्दजी! अपने मन में तनिक विचार कीजिये और नौवत धीरे-धीरे बजवाइये। तदुपरान्त छद्म वेषधारी देवता अखाड़े में उतरे और नन्दजी का अपार सुयश गाने लगे।

कह जोतिषि अस सकल बिभागा। पूरब सुकृत नंद कर जागा॥

वे बोले- ज्योतिषी सब ओर कह रहे हैं कि नन्दजी का पूर्वसंचित पुण्य उदित हुआ है।

दोहा- नीलकंज सम बपुष जिन्हँ अहहिं अकथ दुतिमान।
नंदात्मज सो अवसि केउ बिबुध प्रतापि महान॥२८८॥

नीलकमल के समान जिसका शरीर अकथनीय दीप्ति से सम्पन्न है, नन्दजी का वह पुत्र अवश्य ही कोई महाप्रतापी देवता है।

चौ.- तापस करहि तुम्हार बढ़ाई। तव सुत दरस लागि पर धाई॥
कहहु नंद अज को तिहुँलोका। उतसउ जाहिं न कीन्ह असोका॥

तपस्वी तुम्हारी प्रशंसा करते हैं और तुम्हारे पुत्र के दर्शनों के लिये दौड़ पड़ते हैं। हे नन्दजी! कहिये तो! तीनों-लोकों में आज ऐसा कौन है, जिसे इस उत्सव ने शोकमुक्त न कर दिया।

आज हृदयँ किन्ह मोद न पावा। सुख दधि को न अजिर कहु न्हावा॥
एहिबिधि नंद प्रसंसि बहोरी। बैठे सभा छद्मि कर जोरी॥

आज किसके मन ने आनन्द नहीं पाया? कहिये - ऐसा कौन-सा आँगन है जो सुखरूपी दहीं में न नहाया हो? इस प्रकार नन्दजी की प्रशंसा करके, हाथ जोड़कर वे छद्मी सभा में बैठ गए।

कबित करत नाना कबि आए। तेपि सुजसु तिन्ह लाग सुनाए॥
नंद सुजसु तुम्हार अस भारी। रहे सुरप जापर हिय हारी॥

फिर काव्यगान करते हुए अनेक कवि आए और वे भी नन्दजी का सुयश सुनाने लगे। हे नन्दरायजी आपका सुयश ऐसा महान है, जिस पर स्वयं इन्द्र भी हृदय हारकर रह गए।

बहुरि अपर सुर तउ निधि देखी। तव प्रति राखहि द्वेष बिसेषी॥
अमरावति सुख तेहिं न भावहि। बार बार इहँ आवन धावहि॥

साथ ही दूसरे देवता भी आपकी सम्पदा देखकर आपके प्रति विशेष द्वेष रखते हैं। उन्हें अपने नगर अमरावती का सुख नहीं सुहाता और वे यहाँ आने के लिये बार-बार दौड़ पड़ते हैं।

दोहा- लच्छि पूछ पुनि पुनि हरिहि कमलनयन महि जाहुँ।
नंद अजिर उतसउ सघन देखि चहौं दृग लाहु॥२८९॥

लक्ष्मीजी बार-बार श्रीहरि से पूछती है- हे कमलनयन, मैं पृथ्वी पर जाऊँ? वहाँ नन्दजी के आँगन में महान उत्सव हो रहा है, जिसे देखकर मैं नेत्र सार्थक करना चाहती हूँ।

चौ.- तब हरि कहइ रमहि समुझाई। इच्छा तव मम कवन बसाई॥
नंद देइ रहे रंकन्ह दाना। बहु प्रकार धन अन्न महाना॥

तब श्रीहरि लक्ष्मीजी को समझाकर कहते हैं कि तुम्हारी इच्छा है, तो फिर मेरा क्या वश? किन्तु नन्दरायजी भिखारियों को अनेक प्रकार से अन्न व धन आदि महान दान कर रहे हैं और

तहँ जब तोहिं निकट तें पाई। दै डारिहिं केउ द्विजहि भ्रमाई॥
तब जल भरन परिहि तिन्ह गेहा। चाकि हाँकि परिहहिं मृदु बैहाँ॥

वहाँ निकट पाकर भ्रमवश यदि उन्होंने तुम्हें किसी ब्राह्मण को दे डाला, तो तुम्हें उसके घर जल भरना पड़ेगा और अपनी कोमल भुजाओं से चक्की भी चलानी पड़ेगी।

जोहेसु जनि तब मोर सहाई। प्रथमहिं मैं तहि देउँ बुझाई॥
कहइ रमा गहि दीरघ स्वासा। पिय सुभाग अस कहँ मम पासा॥

तब तुम मुझसे सहायता की आशा न करना, मैं यह बात तुम्हें पहले ही समझा देता हूँ। तब लक्ष्मीजी दीर्घ श्वास लेकर कहती है कि हे नाथ! मेरे पास ऐसा सौभाग्य कहाँ?

नीर भरन पीसन अन काजा। ब्रज महुँ दुरलभ बिबुध समाजा॥
सुकृत भानु जिन्हँ भाग प्रकासहि। यह सुभाग उन्ह मिल बिनु आसहि॥

व्रज में जल भरने और चक्की पीसने का कार्य तो स्वयं देवों के लिये भी दुर्लभ है। पुण्यरूपी सूर्य जिनका भाग्य प्रकाशित कर देता है, यह सौभाग्य उन्हें बिना आशा किये ही मिल जाता है।

दोहा- **एहि प्रकार हर उमहि सन पुनि पुनि कह समुझाइ।**
सुत गनेस मुख नाग सम ताकहँ देहुँ दुराइ॥२९०॥

इसी प्रकार शिवजी पार्वतीजी को बार-बार समझाकर कहते हैं कि हमारे पुत्र गणेश का मुख हाथी के समान है, इसलिये उसे (शीघ्र ही कहीं) छिपा दो।

चौ.- **प्रिये नंदगृह उतसउ न्यारा। हय गय नंद लुटात अपारा॥**
सुत हमार कइ लखि तहँ सोभा। केउ द्विज के मनु भा जे लोभा॥

हे प्रिये! नन्दजी के घर अद्भुत उत्सव हो रहा है, जिसमें नन्दजी हाथी व अश्व लुटा रहे हैं। वहाँ जाने पर हमारे पुत्र की शोभा देखकर यदि किसी विप्र के मन में लालच आ गया और

नंद समुख तब जाचहि जाई। देइहिं तुरत बार बिनु लाई॥
सुनतहि उमा धाइ अतुराई। लीन्ह सुतहि तब केढ़ चढ़ाई॥

तब वह नन्दजी से जाकर माँगेगा और वे भी अविलम्ब हमारे पुत्र को उसे दे देंगे। उनका वचन सुनते ही पार्वतीजी उतावली से दौड़ी और पुत्र गणेश को उन्होंने गोदी में उठा लिया।

पुनि बृष चढ़ि सिव ब्रज मग लागे। उमा कहइ उन्ह अचरज पागे॥
पर उपदेस होत अति चातुर। नाथ आपु निज अनभल आतुर॥

फिर नन्दी पर सवार होकर शिवजी व्रज के मार्ग पर चल पड़े। (यह देखकर) पार्वतीजी ने चकित होकर कहा कि दूसरों को उपदेश देने में परम चतुर होकर भी स्वामी (आप) स्वयं अपना अहित करने के लिये आतुर हैं।

जात ब्रजहिं पुनि करि बृष साथा। लुटेहुँ तहँ त पुनि आव न हाथा॥
कंठ बाँधि अस पाहन भारा। कूदहिं पति किउँ जलधि अपारा॥

व्रज जा रहे हैं, वो भी नन्दी के साथ। यदि ये वहाँ लूट लिया गया, तो पुनः हाथ नहीं आयेगा। हे नाथ! गले में ऐसा भारी पत्थर बाँधकर आप अपार समुद्र में क्यों कूद रहे हैं?

मैं तपि अस जिन्हँ गातन्हँ छारा। मिलिहिं मोहि को लूटनिहारा॥
पुनि छलान तहँ परम सुभागा। आतम करिहि महा अनुरागा॥

तब उन्होंने कहा- मैं ऐसा तपस्वी हूँ, जिसके अङ्गों में भस्म है। भला मुझे कौन लूटेगा। फिर वहाँ छले जाना तो मेरा परम सौभाग्य होगा और आत्मा में महान प्रेम उत्पन्न करेगा।

एहिबिधि सभहि कबिन्हँ मुद दीन्हा। तदुप समापन ब्रजपति कीन्हा॥

इस प्रकार अखाड़े में कवियों ने आनन्द दिया। तत्पश्चात् नन्दजी ने समापन किया।

स.- गोकुल पाई प्रमोद पयोधिहुँ तीनहुँ लोक नहावन धाए।
नंद के कोष समानि रमा सब जाचक बिप्र महानिधि पाए॥
देव अदेव बिरंचि महेस सनारि सबाहन गोकुल आए।
जन्म उछाह प्रतारनिहार को अंचल सान्ति संदेस जुड़ाए॥

गोकुल में महान आनन्दरूपी समुद्र को पाकर तीनों लोक उसमें नहाने के लिये दौड़े। नन्दरायजी के कोष में स्वयं महालक्ष्मीजी समा गई। जिससे सभी याचकों और ब्राह्मणों ने महान सम्पत्ति पाई। शिवजी, ब्रह्माजी, देवता तथा असुर आदि अपनी स्त्रियों सहित अपने वाहनों पर चढ़कर गोकुल में आए। क्योंकि क्लेशों को हरनेवाले भगवान श्रीकृष्ण का जन्मोत्सव अपने आँचल में शान्ति का सन्देश लिये हुए आया था।

दोहा- कृष्न जनम मधुमय चरित सकल सुमंगल मूल।
जे सप्रेम कह सुनहिं तिन्ह होइ भाग अनुकूल॥२९१॥

भगवान श्रीकृष्ण के जन्मोत्सव का मनोहारी चरित्र समस्त मङ्गलों का मूल है। जो भी इसे प्रेम सहित कहते और सुनते हैं, भाग्य उनके अनुकूल हो जाता है।

चौ.- एहिबिधि मोद करत निसि बीती। उएहुँ भानु धरि दुति परतीती॥
मृदु प्रकास महि बिखरेउँ कैसे। प्रग्या बसहिं सुगुर हिय जैसे॥

इस प्रकार आनन्द में वह रात्रि बीत गई और विश्वासरूपी आभा लिये सूर्य उदित हुए। कोमल प्रकाश पृथ्वी पर कैसे बिखर गया; जैसे उत्तम गुरु के हृदय में प्रज्ञा बसती है।

जिमि मधु परस नींद कर पाई। पलकन्हि उमग सपुन फुलवाई॥
दृग सरोज सो प्रकास पाई। बिगसे तिमि निसि जगनि बिहाई॥

जैसे निद्रा के मधुमय स्पर्श से पलकों में स्वप्नरूपी फुलवारी उमड़ती है, ठीक वैसे ही उस प्रकाश से गोपों के नेत्ररूपी कमल रात्रिजागरण से उत्पन्न थकान त्यागकर, खिल गए।

बहुरि खगन्ह कलरव चपलाई। हरितिम सँग तरु लतिकन्हि छाई॥
ग्वाल बाल गोबृंद करि संगा। चले बिपिन मुख बिगत प्रसंगा॥

फिर पक्षियों के कलरव की चपलता, हरियाली के साथ वृक्षों की लताओं पर छा गई। ग्वालबाल गायों का समूह साथ लिये वन को चले। उनके मुख में जन्मोत्सव की बातें थी।

पनिहारिन्हि सिरु धरि नव माँटा। गुनगुनात चलि जमुनहिं घाटा॥
ग्वालिन टोपरि गहि गोसालहिं। अबरहिं गोमय चारउँ पालहिं॥

पनिहारिने सिर पर घड़े लिये गुनगनाती हुई यमुना के घाटों की ओर चली। ग्वालिनें बाँस की टोकरियाँ लेकर गौशाला में गई और बिखरा हुआ गोबर चारा इकट्ठा करने लगी।

जहँ तहँ बृद्ध बैठि चौपाला। चरचहिं नंद सुभाग बिसाला॥

जहाँ-तहाँ चौपालों पर बैठकर वृद्धजन नन्दजी के विशाल सौभाग्य की चर्चा कर रहे हैं

दोहा- बीथिन्हँ खेलइ बालक गोप निरत निज काज।
दृगन्हँ नवागत तरल छबि धरि ऊषा अति भ्राज॥२९२॥

बालक गलियों में खेल रहे हैं और गोप अपने-अपने कामों में रत हैं। प्रभात अपने नेत्रों में अभी-अभी जन्में भगवान श्रीकृष्ण की तरल सुन्दरता धरे अत्यन्त सुशोभित हो रहा है।

चौ.- नंदभवन अस प्रातहिं पाई। मीचुबसन्हँ अति रहेउ लोभाई॥
पलना निरमि सुचारु सुतारू। दीन्ह नंद कहँ आइ सकारू॥

नन्दभवन इस सुन्दर प्रभात से मृत्यु के वश हुओं को भी जीने के लिये अत्यधिक लुभा रहा है। सुतार ने अत्यन्त सुन्दर पलना बनाकर बहुत सवेरे ही आकर नन्दजी को दिया था।

बिबिध ख्याल झुनझुने जुड़ाई। सिसु रंजन हित दीन्ह झुलाई॥
जस चमेलि मृदु लतिकन्हि जाली। भरइ बितान सितलता आली॥

बालक के रञ्जन के लिये पालनें में अनेक खिलौने और झुनझुने लटका दिये गए। जैसे चमेली की कोमल लताओं की जालिका किसी मण्डप में अनोखी शीतलता भर देती है,

गजमुकतन्हि झालरि तस न्यारी। छाह करत लग अति मनहारी॥
जननि दुहुँ सिसुन्हँ गोद उठाई। चंदन उबटन लागि मलाई॥

वैसे ही पालने में बँधी गजमुक्ताओं की विचित्र झालर छाया करते हुए अत्यन्त मनोहर जान पड़ती है। माता दोनों बालकों को गोद में उठाकर उन्हें चन्दन का उबटन लगाने लगी।

बहुरि मृदुल धुनि मंगल गाई। सिसुन्ह नेह जल लगि अन्हवाई॥
मोर लला सुपात गुनखाना। करि चह जननि हाथ असनाना॥

फिर कोमल ध्वनि से मङ्गलगीत गाकर, वे उन्हें स्नेहरूपी जल से नहलाने लगी। मैय्या बोली- सुपात्र व गुणों की खान मेरे दोनों लल्ला अपनी मैय्या के हाथों स्नान करना चाहते हैं।

अस गावत जसुमति अरु रोहिनि। निरखहि अपलक छबि मनमोहिनि॥
बहुरि मृदुल कर आपन लाई। उन्ह मृदु गात मले चतुराई॥

ऐसा गाते हुए यशोदाजी और रोहिणीजी अपने बालकों की मनमोहिनी छबि को देख रही है। अपने कोमल हाथों से उन्होंने बड़ी ही सावधानी से बालकों के कोमल अङ्गों को मला।

लघु पद भुजन्हि मंद धरि माता। अधो उरध करि लागि सँघाता॥
तेन्ह तुचा अह अस मृदुताई। लघु परसहि लहँ अधिक ललाई॥

वे बालकों की छोटी-छोटी भुजाओं और चरणों को धीरे से पकड़कर व्यायाम कराते हुए ऊपर-नीचे करने लगी। उनकी त्वचा इतनी कोमल है कि हल्के स्पर्श से ही लाल हो उठती है।

मलत सजतन सिसुन्ह प्रति गाता। श्रवन फूँकि पुनि थपकिहुँ ताँता॥
तदुप पोंछि बपु जल उन्ह केरा। लपटानेहुँ मृदु बसन घनेरा॥

माताओं ने यत्नपूर्वक शिशुओं के प्रत्येक अङ्ग को मलते हुए, उनके कान फूँककर सिर थपका। तदुपरान्त उनके शरीर से जल पोछकर एक अत्यन्त कोमल वस्त्र लपेट दिया।

जननि जुगल पुनि गोद उठाई। लगि ममतामृत सुतन्ह पिबाई॥

बृद्ध गोपि एक गिरिजा नाऊँ। आइ तहाँ सिसु दरसन चाऊ॥

फिर माताओं ने दोनों बालकों को गोद में उठा लिया और उन्हें ममतारूपी अमृत पिलाने लगी। उसी समय गिरिजा नामक एक वृद्ध गोपी उन बालकों के दर्शन के चाव से आई।

देखि ललहि पुनि पुलकित देहीं। दीन्ह कायफलु चूरन तेहीं॥
पुनि कह एहि लेपहुँ सिसु ताँता। यह सीतारि भरहिं सिरु गाता॥

बालकों को देख पुलकित शरीर से उसनें माताओं को कायफल चूर्ण दिया और बोली- बालक के सिर के ऊपरी भाग पर इसका लेप करना; यह शीतहर होकर सिर को पुष्ट करता है।

हरषि जननि उन्ह मत आचारी। काजर रोपेहुँ सुत दृग क्यारी॥
बहुरि देखि उन्ह दृग अलसानें। जुगल अजिर पलनउँ पौढ़ानें॥

मैय्या ने उसके कहे अनुसार करके, पुत्र की नेत्रक्यारियों में काजल लगाया। फिर देखा कि बालकों के नेत्र अलसा रहे हैं, तब उन्होंने दोनों को आँगन के पालने में सुला दिया।

सोए सहज उभय सिसु कैसे। अस्ताचल रबि ढरकहि जैसे॥
आलस अमित श्रवहि उन्ह देहीं। मनु हल हाँकेउ दिनु भर तेहीं॥

दोनों बालक सहज ही किस प्रकार सो गए, जैसे सूर्य अस्ताचल की ओर खिसक जाता है। उनके शरीरों से बहुत-सा आलस्य बह रहा है, मानों उन दोनों ने दिनभर हल हाँका हो।

नींद मध्य गहि किन्ह कर सैना। कंपहि अवचट राजिवनैना॥
देखि जननि फूँकत सिसु काना। हृदयँ चिंत कर कीन्ह निदाना॥

निद्रा में यह किसका सङ्केत पाकर कमलनयन अचानक काँप उठते हैं, यह देखकर माता ने बालक के कान फूँकते हुए हृदय की चिन्ता का निदान किया।

भ्रुअ अरु अधर कबहुँ फरकाई। जनु कहि चह कछु सैन बुझाई॥
करबट लहि चह कबहुँ मनोहर। पै लघु बयस काज यह दुष्कर॥

वे दोनों बालक कभी भौहें और कभी अधर फड़काते हैं, जैसे सङ्केत से कुछ समझाना चाहते हों। मनोहर कृष्ण कभी करवट लेना चाहते हैं, किन्तु अल्पावस्था में उनके लिये यह दुष्कर था।

जननि नेह घन लता बिताना। रहइ जीव सिरु छत्र समाना॥
करनधार जग चिंत बिहाई। सोए जहँ सिसु तनु नरराई॥

हे परीक्षित! माता के स्नेह का सघन लतामण्डप प्राणी के सिर पर छत्र-सा रहता है, जहाँ संसार के कर्णधार भगवान समस्त चिन्ताएँ त्यागकर, बालक का शरीर लिये सोए हैं।

पितु पुलकित निरखहि तहँ आए। बिबुध लाग उन्ह भाग सिहाए॥
महाभागि अज नंद समाना। अमरन्ह सूझ न जग महुँ आना॥

नन्दरायजी वहाँ आकर पुलकित हो उन्हें देख रहे हैं और देवता उनकी बढ़ाई करने लगे। आज नन्दजी के समान महाभाग्यवान देवताओं को संसार में अन्य नहीं सूझ रहा।

दोहा- **तदुप नंद करि संग निज गोप प्रमुख दुइ चार।**
देन हेतु मथुरा चले नृप कहँ राजप्रभार॥२९३॥

तदुपरान्त दो-चार प्रमुख गोपों के साथ, नन्दजी कंस को राजकर देने हेतु मथुरा चले।

चौ.- पंथ सुमिरि सुत जनम उछाहा। पुलकहि नंद प्रमोद अगाहा॥
हृदयँ तनय छबि पग मग माहीं। कवनि भाँति मन चलि चह नाहीं॥

मार्ग में पुत्र के जन्मोत्सव का स्मरण करके, नन्दजी महान आनन्द से पुलकित हो जाते हैं। हृदय में पुत्र की छवि और पैर मार्ग पर हैं, किन्तु मन किसी भी प्रकार चलना नहीं चाहता।

तद्यपि निज करतब्य बिचारी। चले जात तें मन कहँ मारी॥
मथुरा माँझ कंस समुहाई। नंद राजकर दीन्हेउ जाई॥

किन्तु अपने कर्त्तव्य का विचार करके, वे मन को मारकर चले जा रहे हैं। मथुरा में पहुँचकर नन्दजी ने, राजा कंस के सन्मुख जाकर उसे राजकर अर्पित कर दिया।

पुत्र जनम कहि पुनि पग लागी। सुत हित नृप कइ आसिस माँगी॥
बदि आठमि निसि भा सुत ताहीं। जानि साचरज कह मन माहीं॥

पुत्रजन्म बताकर और चरणों लगकर उन्होंने राजा से पुत्र के लिये आशीष माँगा। कृष्णपक्ष में अष्टमी की रात्रि को उन्हें पुत्र हुआ है, यह जानकर कंस चकित हो मन ही मन कहने लगा-

कस सँजोग सोउ निसि नंदलाला। जनमेहुँ जेइ निसि भा मम काला॥
प्रगट मौन पै सब समुहाई। दीन्हि सुआसिस हाथ उठाई॥

यह कैसा संयोग है, जिस रात्रि को मेरा काल उत्पन्न हुआ था, नन्द का पुत्र भी उसी रात्रि को हुआ। किन्तु सबके सामने चुप रहते हुए, हाथ उठाकर उसने शिशु के लिये शुभाशीष दिया।

बहुरि लेन बसुद्यौ कुसलाई। गए नंद जब बिदा कराई॥
तब लगि तिन्ह हिय अचरज झाड़ी। संक सूल धरि भइ कछु गाढ़ी॥

फिर जब वसुदेवजी का कुशल समाचार जानने के लिये नन्दजी विदा लेकर चले गए, तब तक कंस के मन में आश्चर्य की झाड़ी बढ़कर सन्देहरूपी शूल से युक्त हो कुछ घनी हो गई।

सभय कहत तेहिं संसय मनही। सचिवन्हँ सन मत माँगेहुँ तिन्हही॥
तब चानूर कहइ सिरु नाई। सत्य संक तव निसिचरराई॥

भयभीत हुए कंस ने मन्त्रियों से अपने मन का संशय कहकर उनसे उनका मत पूछा। तब चाणूर ने सिर नवाकर कहा। हे असुरराज! आपकी शङ्का सत्य है।

जिन्हँ के हिय न तनक रहि आसा। तेइहि पाएहुँ तनय प्रकासा॥
पुनि भा प्रभु सोइ निसि सुत ताहीं। अरि तुम्हार उपजेहुँ निसि जाहीं॥

जिनके मन में थोड़ी भी आशा नहीं रही थी, उन्होंने ही पुत्ररूपी प्रकाश पा लिया। फिर हे प्रभु! उनका पुत्र भी उसी रात्रि में जन्मा है, जिस रात्रि में आपका शत्रु उत्पन्न हुआ था।

बहुरि संक अति पोषनिहारा। जनम उछाह सुतहिं तिन्ह न्यारा॥
सुनै आव तेहिं दिनु त्रैलोका। उलटि परे तहँ होन असोका॥

फिर उनके पुत्र के जन्म का अद्भुत उत्सव हमारे सन्देह को और अधिक पुष्ट करता है।
सुना है कि उस दिन तीनों लोक शोकरहित होने के लिये वहाँ उलट पड़े थे।

नृप यह तरक तथ्य सब कहहीं। नंदात्मजहि तोर रिपु अहहीं॥

हे राजन! यह सारे तर्क और तथ्य यही कहते हैं कि नन्द का पुत्र ही आपका शत्रु है।

दोहा- **अवसि कारगृहपति तें करि बसुद्यौ गुपुत मिताइ।**
निसि तम तनय दुराइ निज गोकुल दीन्ह पठाइ॥२९४॥

निश्चय ही वसुदेव ने कारागृहपालक से गुप्त मित्रता करके, रात्रि के अन्धकार में अपने पुत्र को छिपाकर गोकुल पहुँचा दिया होगा।

चौ.- **सुनतहि सूँघि गयउ तेहिं ब्याला। जीव परा जनु जम कर गाला॥**
भा असान्त तब कहइ रिसाई। केहि दीन्ह मोहि कका बनाई॥

यह सुनते-ही उसे साँप सूँघ गया, मानों प्राणी काल के गाल में जा फँसा हो। जब वह अशान्त हो उठा, तब क्रोधित होकर सभासदों से बोला- किसने मुझे मूर्ख बनाया है?

सठ सब मम बल जीअहिं सुख ते। मिआ मीठु बन आपन मुख ते॥
मैं समुझात रहेउ दिनुराता। पै सोइ ढाक केर त्रय पाता॥

तुम सब मूर्ख मेरे बल पर सुखपूर्वक जीते हो और अपनी प्रशंसा स्वयं करते हो। तुम सबको मैं दिन-रात समझाता रहा; किन्तु तुम पर मेरी बात का कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

बाजि बेचि सठ चरन पसारी। सुवत रहि गए आलसु भारी॥
पुनि अरि नाकहि तर तें तोरी। गा हरि सुख के निदरा मोरी॥

तुम सभी मूर्ख बहुत ही निश्चिंत होकर पैर फैलाए अत्यधिक आलस्यपूर्वक सोते रहे और मेरा शत्रु मेरी सुख की नींद हरकर तुम्हारी नाक के नीचे से चला गया।

उग्र बचन सुनि कंसहि केरे। गए सबनि भय असिबन घेरे॥
सक न सबद करि कोउ खल त्रासा। कहि कछु को बोलहि निज नासा॥

कंस के ऐसे कड़े वचन सुनते ही सभी सभासद् भयरूपी असिपत्र-वन में घिर गए। दुष्ट के भय से कोई भी शब्द नहीं कर सकता था। भला कुछ बोलकर अपनी मृत्यु कौन बुलावे।

कहइ बरिषि खल पुनि अंगारा। अरिहि दलिअ किमि करहु बिचारा॥
न त मम रोष अम्ल कठिनाई। देइ जिवन सब केर जराई॥

वह दुष्ट क्रोधरूपी अङ्गारे बरसाता हुआ फिर बोला कि अब शत्रु को कैसे मारा जाय; यह विचार करो। अन्यथा मेरे क्रोधरूपी अम्ल की कठोरता सबके जीवन को जला देगी।

दोहा- **बिष्नु मोर रिपु कपट करि गयऊ गोकुल माहिं।**
सपदि जतन करि हतहुँ तिन्ह न त जीअहि कोउ नाहिं॥२९५॥

मेरा शत्रु विष्णु कपट करके, गोकुल में जा पहुँचा है, इसलिये यत्न करके, तुरन्त ही उसे मार डालो। अन्यथा कोई भी जीवित नहीं बचेगा।

चौ.- **सुनत ससाहस उतुकच बोला। अहो अचंभ नाथ मनु डोला॥**
जे प्रभु अलप सयन मैं पावौं। गोकुल सहित अरिहि लै आवौं॥

यह सुनकर साहस करके, उत्कच बोला- अहो! स्वामी का मन डोल गया। जो यदि स्वामी का सङ्केत पाऊँ तो मैं शत्रु सहित सम्पूर्ण गोकुल को ही यहाँ ले आऊँ।

बहुरि मोर सम अगनित दासा। प्रभुहि भुजन्हि तर करहि निवासा॥
सिसु कारन अस बलि कर बिचलन। भयउँ मोर हिय अचरज कारन॥

फिर मेरे समान अनेक सेवक प्रभु की भुजाओं की छाया में बसते हैं। अतः एक अबोध बालक से आप जैसे योद्धा का विचलित होना, मेरे हृदय में आश्चर्य का कारण होता है।

सुनि सठ चढ़ा चनव कर झाड़ा। बलु बिस्वास भयउँ अति गाढ़ा॥
बहुरि अपर सुराज अस पाई। रहे तेहिं एहिंभाँति चढ़ाई॥

यह सुनकर वह मूर्ख जैसे चने के झाड़ पर चढ़ गया। अपने बल पर उसका विश्वास अधिक गहरा हो गया। उसे मूर्ख बनता देख अन्य सभासद भी उसे उत्साहित करने लगे।

असुर समूह निरखि बिकरारा। भई कंस हिय हरष अपारा॥
कह चानूर तासु रुख पाई। मम उर एक मत निसिचरराई॥

अपने विकराल असुर समूह को देखकर कंस के हृदय में अपार हर्ष हुआ। उसका रुख पाकर चाणूर फिर बोला- हे असुरराज! मेरे हृदय में शत्रु को मारने के लिये एक उपाय है।

बिगत मास महुँ मथुरा जेते। सिसु जनमे बधवावहुँ तेते॥
पुनि गोकुल पूतनहिं पठाई। सछल नंदसुत देहु मराई॥

पिछले माह मथुरा राज्य में जितने भी बालक उत्पन्न हुए हैं, उन सबको मरवा दीजिये। फिर पूतना को गोकुल भेजकर छल से नन्द के पुत्र को मरवा दीजिये।

अस करि सूल तोर हिय सरहीं। अलपु श्रमहि तें आपु निकरहीं॥
सुनि खल भा प्रसन्न अति भारी। बहुरि लीन्ह पूतना हँकारी॥

ऐसा करके जो काँटा आपके मन में खटक रहा है, वह थोड़े-से श्रम से स्वयं निकल जाएगा। यह सुनकर वह दुष्ट अत्यन्त प्रसन्न हो गया और उसने पूतना को अपने पास बुलवा लिया।

दोहा- **जिअत बिडम्बनि सिसुन्ह हित अदय अमित बलवंति।**
सुनतहि आतुर भइ समुख मनहुँ मीचु कइ पंग्ति॥२९६॥

बालकों के लिये जीवन्त विडम्बना, दयारहित और परम बलवती वह राक्षसी आदेश पाते ही आतुरता से कंश के सन्मुख आ गई, मानों साक्षात मृत्यु की पङ्क्ति ही हो।

चौ.- **कंस कीन्ह तिन्ह घनि सेवकाई। हृदयँ दुराग्रह लाग जनाई॥**
नंदहि सुत भा गोकुल माहीं। हतहुँ बेगि छल करि तुम ताहीं॥

कंस ने उसकी बहुत प्रकार से सेवा की और उसे अपना दुराग्रह बताने लगा कि गोकुल में नन्द के यहाँ एक पुत्र ने जन्म लिया है। उसे तुम शीघ्र ही छल से मार डालो।

सिसु न तें बिष्नु मोर अरि भारी। जाइ सचुप तेहिं देहुँ निबारी॥
इहइ सुअवसर तहाँ न कोई। तव पथ सूल होइ सक जोई॥

वह बालक नहीं अपितु मेरा परम शत्रु विष्णु है। तुम जाओ और उसे नष्ट कर दो। यही अवसर उत्तम है, इस समय वहाँ ऐसा कोई नहीं, जो तुम्हारे पथ का शूल हो सके।

सिसु तें डरपत आपन गाता। बृथ मलिन करि राखे भ्राता॥
तुम आपन दुस्चिंत बिहाई। सुनु मैं हिय जोइ जुगुति जुड़ाई॥

तब पूतना ने कहा- हे भाई! तुमने एक बालक से डरकर व्यर्थ ही में मुख मलिन कर लिया है। तुम अपनी दुश्चिंता त्यागकर, मेरी वह युक्ति सुनों! जो मैंने मन में सोच रखी है।

कालकूट माहुर कुच लाई। देउँ तेहिं पयपान कराई॥
देत ताहिं गुड़ देउँ नसाई। एहिंभाँति पुनि मिलुँ तोहिं आई॥

मैं अपने स्तनों में कालकूट नामक विष लगाकर उसे अपना दुग्ध पान करा दूँगी। इस प्रकार कपटपूर्वक उस बालक का वध करके, मैं पुनः तुमसे आ मिलूँगी।

देत कंस कहँ एहिबिधि धीरा। चलि नभ पथ सो असुरि गभीरा॥
मीचु बसाइ प्रगट कुच कारी। आइ उतरि जब गोकुल धारी॥

इस प्रकार कंस को धैर्य बँधाकर वह भयङ्कर राक्षसी आकाश मार्ग से (गोकुल की ओर) चली। स्तनों में साक्षात मृत्यु बसाए, जब वह आकर गोकुल की भूमि पर उतरी।

तब गोए बपु निज भयकारी। जुगुति एक तेहिं हृदय बिचारी॥
बिप्र नारि तनु करि सिंगारा। तुरत आइ सो जसुमति द्वारा॥

तब अपने भयानक शरीर को छिपानें के लिये, उसनें मन में एक युक्ति सोची और एक ब्राह्मणी का शरीर धरे, श्रृङ्गारित होकर वह तुरन्त ही यशोदाजी के द्वार पर आ पहुँची।

तासु तेज ससि पूरन पाई। गोपि तरंग उमगि समुहाई॥
कहइ परसपर यह को दारा। सुषमहिं बिभव अमित जेहिं धारा॥

उसके तेजरूपी चन्द्रमा को पूर्ण देख गोपीरूपी तरङ्गें उसके सन्मुख उमड़ पड़ी और परस्पर कहने लगी कि यह स्त्री कौन है, जिसने सुन्दरतारूपी अपार वैभव धर रखा है।

जसुमति सुत कइ दरसन आसा। सखि लग इहँ इन्ह कीन्ह प्रकासा॥
तब एक गइ जसुदा समुहाई। तिय अजान कइ खबरि सुनाई॥

एक ने कहा- लगता है, यह स्त्री यशोदाजी के लल्ला के दर्शन की आशा से यहाँ आई है। तब एक गोपी ने जाकर यशोदाजी को उस अपरिचित स्त्री का समाचार कह सुनाया।

सुनतहि तें रोहिनि सँग आई। अचरज कर जब मुख लखि पाई॥
मुख दुति आश्रय कीन्ह बिचारा। अवसि होब यह कोउ मुनिदारा॥

सुनते-ही वे रोहिणीजी के साथ आई और जैसे ही उन्होंने उसका मुख देखा, तो आश्चर्य करने लगी। उसके मुख का तेज देखकर उन्होंने सोचा यह अवश्य किसी मुनि की स्त्री है।

करि बिचार एहिंबिधि मनु माहीं। सिरु नाएहुँ पद पुलकि अथाहीं॥
पुनि मृदु बचन उभय सनमानी। कर गहि तिन्हँ भीतर लै आनी॥

मन में इस प्रकार विचार करते हुए, उन्होंने पुलकित शरीर से उसके चरणों में सिर नवाया। फिर कोमल-वचनों से उसका सम्मान करके वे दोनों माताएँ हाथ पकड़कर उसे घर के भीतर ले आई।

दोहा- देत कुसासन सुचि सुभग हरषि जोरि जुग पानि।
पूछेहुँ कारन आगवन परिचय सहित सुबानि॥२९७॥

(वहाँ) कुशा का पवित्र व सुन्दर आसन देते हुए हर्षपूर्वक अपने दोनों हाथ जोड़कर उन्होंने मधुरवाणी में उसके परिचय सहित उसके आने का कारण पूछा।

चौ.- जसुमति तनय बिबुध तव कोऊँ। कारन कवन उएहुं महि जोऊ॥
तासु दरस हित मैं इहँ आई। सुनहुँ मोर परिचय अब माई॥

तब पूतनारूपी ब्राह्मणी ने कहा- हे यशोदा! तुम्हारा पुत्र कोई देवता है, जो किसी कारणवश पृथ्वी पर जन्मा है। मैं उसी के दर्शन पानें यहाँ आई हूँ। हे बहन! अब मेरा परिचय सुनो।

मम पति तापस द्विज मथुरा के। बसइ सकल सिधि करतल जाकें॥
तेन्ह परखि मम पतिब्रत धरमा। सहित सील श्रुति सम्मत करमा॥

मेरे पति मथुरा के तपस्वी विप्र हैं, समस्त सिद्धियाँ जिनके वश में रहती है। उन्होंने मेरे शील और वेदोक्त कर्मों सहित मेरे पतिव्रतधर्म की परीक्षा लेते हुए,

दीन्हें हरषि मोहि बरु दोई। जिन्हँ प्रभाउँ मैं राखेउ गोई॥
प्रथम असीस दीन्ह पति मोहीं। कबहिं बचन मम मृषा न होहीं॥

प्रसन्न होकर मुझे दो वर दिए, जिनके प्रभाव को मैंने छिपा रखा है। मेरे पति ने मुझे पहला आशीर्वाद यह दिया कि मेरा वचन कभी भी झूठा नहीं पड़ेगा।

दूसर बरु उन्ह दीन्हेहुँ ऐसा। जे प्रलयहुँ नव संसृति जैसा॥
तब तें मम कुच पियूष बसहीं। गहे जाहिं पर मीचु न ग्रसहीं॥

उन्होंने दूसरा वर यह दिया कि जो प्रलयकाल में भी नवीन सृष्टि के सृजन जैसा है। उसके प्रभाव के कारण तभी से मेरे स्तनों में अमृत बसता है, जिसके पीनें पर मृत्यु नहीं व्यापती।

तातें सिसुहि प्रथम हिय लाई। चहुँ तिन्ह निज कुच पान कराई॥
तदुप देउँ तेहिं अस बरदाना। लहहिं सुजसु तिहुँलोक महाना॥

इसलिये मैं सर्वप्रथम तुम्हारे पुत्र को छाती से लगाकर स्तनपान कराना चाहती हूँ। तदुपरान्त उसे ऐसा वरदान दूँगी, जिससे वह तीनों लोकों में महान कीर्ति प्राप्त करेगा।

सुनतहिं जननि न फूरि समाई। परमातुर सुत कहँ तहँ लाई॥
सुत हित तरक बिचार बिहाई। उद्यत रहइ मातु सरलाई॥

यह सुनते-ही मैय्या अत्यधिक प्रसन्न हुई और अपने लल्ला को बड़ी ही उतावली से वहाँ ले आई। पुत्र के लिये समस्त तर्क व विचार त्यागकर माता की सरलता तत्पर रहती है।

कलपि तनय हित उमगि प्रमोदा। जननि दीन्ह तिन्ह द्विजतिय गोदा॥
भाबि मातु कहँ लखि सुखधामा। हरषि मनहिं मन कीन्ह प्रनामा॥

पुत्र के हित की कल्पना करके, मैया ने आनन्द से उमड़कर उसे ब्राह्मणी की गोद में दे दिया। तब सुखधाम प्रभु ने मन ही मन पूतना को भावी माता समझकर सहर्ष प्रणाम किया।

बिहँसे बहुरि जानि खलनासू। कपट सहित तिन्ह सकल सुपासू॥

फिर दुष्टनिकन्दन प्रभु कपटसहित उसके द्वारा किये गए प्रबन्ध को समझकर हँस दिये।

दोहा- जसुदा तव सुत किमि सुखद जिमि स्यालहि मृदु धूप।
नयन धन्य भै मोर अज हिय सुख लहेहुँ अनूप॥२९८॥ (क)

पूतना ने कहा- हे यशोदा! तुम्हारा पुत्र किस प्रकार सुखद जान पड़ता है, जैसे जाड़े की मृदुल धूप। आज मेरे नेत्र धन्य हो गये और हृदय को अनुपम सुख प्राप्त हुआ है।

तदुप लागि कुच प्यावन सिसु कहँ अंचल ढाँपि।
जदपि सुमिरि नभबानि हिय असुरि सभय अति काँपि॥२९८॥ (ख)

तत्पश्चात् पूतना बालमुकुन्द को आँचल में ढँककर स्तन पिलाने लगी। यद्यपि आकाशवाणी का स्मरण करके, वह राक्षसी भय से अत्यन्त काँप उठी।

चौ.- दीन जानि तब तिन्ह भगवाना। मुकुति देन निस्चय हिय ठाना॥
सादर प्रथम कीन्ह कुच पाना। पाछ पिबत भै हरि तिन्ह प्राना॥

तब भगवान ने दीन जानकर मन-ही मन उसे मुक्ति देने का निश्चय किया। अतः पहले तो उन्होंने पुत्रवत् आदर सहित उसका स्तन पिया, फिर उसके प्राणों को पीने लगे।

चलत प्रान अनुभव करि पाई। चिक्कत छदमिनि कह अकुलाई॥
सिसु यह सिसु न पिसाच महाना। मारिहि मोहि प्रगट मैं जाना॥

अपने प्राणों को निकलता हुआ अनुभव करके, व्याकुल हुई ब्राह्मणी ने चिल्लाकर कहा- यह शिशु शिशु नहीं, कोई घोर पिशाच है, जो मुझे मार डालेगा, यह मैं प्रत्यक्ष समझ चुकी हूँ।

अजहुँ जिअति जे एहि कर जावौं। गोकुल माँझ पुनि न मैं आवौं॥
कहत निबारि चहेहु तेहिं झटकी। असुफल भई स्वास गर अटकी॥

यदि आज मैं इसके हाथों जीवित जा सकी, तो पुनः गोकुल नहीं आऊँगी। ऐसा कहते हुए, झटककर उसनें बालक को हटाना चाहा, श्वास के कण्ठ में अटकनें से असफल रही।

तब तें भवन इत उत गति घोरा। धावत भइ अति किलकि कठोरा॥
जसुमति रोहिनि मरमु न जाना। रंग परेहुँ कस भंग महाना॥

तब अत्यन्त कठोर किलकारी मारकर वह भयङ्कर गति से भवन में इधर-उधर दौड़ने लगी। यशोदाजी व रोहिणीजी समझ नहीं पाई कि कैसे सारा आनन्द अचानक ही नष्ट हो गया?

इहाँ जरत भीषन पीरागी। राच्छसि सिसु समेत नभ भागी॥
चलत बपुष तेहिं भीषन धारा। मनहुँ कलंक भूधराकारा॥

इधर पीड़ा की भयङ्कर अग्नि में जलती हुई वह राक्षसी शिशु सहित आकाश की ओर भागी। चलते समय उसने विकट शरीर धर लिया, मानों पर्वत के आकार का कोई कलङ्क हो।

हतप्रभ बिकल जुगल महतारी। छूटि बिलाप करत अति भारी॥

हाहाकार तरंग कठोरा। ताड़त भइ गाँउहि चहुँओरा॥

हतप्रभ रह गई दोनों माताएँ व्याकुल होकर अत्यन्त भारी विलाप करते हुए, पीछे-पीछे दौड़ी। तब हाहाकार की कठोर तरङ्गें सम्पूर्ण गोकुल को चारों ओर से प्रताड़ित करने लगी।

दोहा- **परिछित जब प्रभु पिएहुँ तिन्ह सगरल प्रान निकारि।**
जातुधानि खसि धरनि परि नभ तें घन चिक्कारि॥२९९॥

हे परीक्षित! जब प्रभु ने विष सहित उसके प्राण भी निकालकर पी लिये, तब वह राक्षसी घोर चीत्कार करके, आकाश से पृथ्वी पर आ पड़ी।

चौ.- **खसेउँ महाबपु तिन्ह महि ज्योहीं। महि कस काँपि थर्र थर त्योहीं॥**
जस संघरष परम करि धीरा। लघु असंक तें कपहि गभीरा॥

उसका विशाल शरीर जैसे भूमि पर गिरा वैसे ही पृथ्वी कैसे थर-थर काँपने लगी; जैसे कठोर सङ्घर्ष करके, धैर्य फिर छोटी-सी आशङ्का से ही अत्यधिक काँप उठता है।

बपुष तासु षट् कोस बिसाला। बज्र सरिस दृढ़ अरु बिकराला॥
केस सघन जनु ब्याल समूहा। रंध्र नाक श्रुति लाग गिरि गुहा॥

उसका छः कोस का विशाल शरीर वज्र के समान कठोर और विकराल था। उसके घने केश जैसे सर्पों का समूह और नाक, कान के छिद्र पर्वत की गुफाओं के समान लगते थे।

तिन्ह कज्जल कय हरि रुच ऐसे। भाउ अमल कुमुखोपर जैसे॥
धरि मुख असित चिंत कइ झाई। उभय जननि खोजइ बिलखाई॥

उसकी काजल-सी काली देह पर मुकुन्द ऐसे सुशोभित थे; जैसे बुरे दिखनेवाले मुख पर निर्मल भाव। दोनों माताएँ मुख पर चिन्ता की काली छाया लिये बिलखती हुई खोज रही थी।

सुमिरि निसाचरि कइ कठिनाई। सुत गति उन्ह तें कल्पि न जाई॥
बिपिन बिपिन बिलपत अति भारी। खोजहिं चिंतातुर नर नारी॥

राक्षसी की कठिनता को स्मरण कर, वे शिशु की दशा की कल्पना भी नहीं कर पा रही थी। चिन्ता से व्याकुल गोकुल के स्त्री-पुरुष अत्यन्त बिलखते हुए शिशु को वन-वन खोज रहे थे।

जब उन्ह देखि असुरि बन माहीं। गए निकट हिय धीरज नाहीं॥
जानि किंन्तु जब बिपति महाना। धूरि धूसरित बिरहित प्राना॥

जब उन्होंने वन में राक्षसी को देखा तो वे उसके निकट गए, उनके मन धैर्य से रहित थे। किन्तु जब उन्होंने जाना कि वह महान विपत्ति प्राणरहित होकर धूल खा रही है

सिसु सकुसल देखेहुँ नरनारी। प्रमुदित भै सब चिंत बिसारी॥
फिरे प्रान दुहुँ जननिहि प्राना। देखि कुसल आपन सुखखाना॥

गोपगोपियों ने देखा कि बालक सकुशल है, तो वे समस्त चिन्ता त्यागकर, परम आनन्दित हो गए। सुख की खान अपने लल्ला को सकुशल देख दोनों माताओं के प्राण जी उठे।

दोहा- **सिसुहि उतारि महाबपु तें जननिहिं सौंपेउँ ग्वाल।**
लेत बलैया तें उमगि प्रमुदित चुँअ सिसु भाल॥३००॥ (क)

कुछ ग्वालों ने बालक को राक्षसी के शरीर से उतारकर यशोदाजी को सौंप दिया। ममता में उमड़कर माता बालक की बलैया लेकर बड़े आनन्द से उसका ललाट चूमने लगी।

फिरे प्रतारित गाँउ सब आतम सान्ति अथाय।
हरन घटनि भय सिसुहि इत करि लगि मातु उपाय॥३००॥ (ख)

सभी संत्रस्त स्त्रीपुरुष गाँव में लौट आए, उनकी आत्मा में अथाह शान्ति थी। इधर मैय्या यशोदा इस अनहोनी से उत्पन्न भय को दूर करने का उपाय करने लगी।

फूँकि सुतहि श्रुति सीस तें गौ कइ पूँछ उतारि।
उबटि धेनुरस धेनुरज पाछे दीन्ह न्हवारि॥३००॥ (ग)

बालक के कान फूँककर फिर उन्होंने उसके सिर से गाय की पूँछ उतारी। तत्पश्चात् गोरस और मिट्टी का उबटन लगाकर उन्होंने बालक को नहला दिया।

चौ.- **इहाँ नंद जब गोकुल आए। सुनि अचरज अरु चिंता छाए॥**
असुरि कीन्ह केहि कारनु घाई। ऐहि प्रस्न उन्ह गिरा उड़ाई॥

इधर जब नन्दजी गोकुल लौटे, तो इस घटना के विषय में सुनकर वे अचरज व चिन्ता में डूब गये। राक्षसी ने शिशु का अहित क्यों करना चाहा, इस प्रश्न ने उनकी वाणी हर ली।

बहुरि किए उतपात निदाना। करि ग्रह सान्ति दीन्ह अति दाना॥
तदुप गोप बहु नंद रजाई। बिपिन गए निसिचरि समुहाई॥

फिर उत्पात के निदान के लिये, उन्होंने ग्रहशान्ति करवाकर याचकों को बहुत-सा दान दिया। तदुपरान्त बहुत-से गोप नन्दरायजी की आज्ञा पाकर वन में राक्षसी के सन्मुख गए।

तहाँ खंडि उन्ह गुरता तासू। कीन्ह दाह कृत सकल सुपासू॥
उठत धूम अस करइ सुबासा। हर जे चित्तहिं कठिन निरासा॥

वहाँ उसके विशाल शरीर के टुकड़े करके, उन्होंने उचित प्रबन्ध से उसका दाह किया। चिता से उठता धुआँ, ऐसी सुगन्ध करने लगा जो चित्त की कठोर निराशा हर लेता था।

ताहिं नाक मग गहन उतारी। परिछित मुदित भए नर नारी॥
मुनि निसिचरि कृत पाप अगाहा। तब अस सौरभ कारनु काहा॥

हे परीक्षित! उस धुएँ को नाक से गहरा उताकर स्त्री पुरुष आनन्दित हो उठे। तब परीक्षित् ने पूछा- हे मुनि! राक्षसी का कर्म अगाध पापयुक्त था, तब ऐसी सुगन्ध क्यों हुई?

दोहा- **राजन जब हरि निसिचरिहि कीन्ह पयोधर पान।**
तबहिं तासु अघ बिनसेहु तनु भा मलय समान॥३०१॥ (क)

हे परीक्षित्! जब भगवान श्रीहरि ने उस राक्षसी का स्तनपान किया था उसी क्षण उसका महापाप नष्ट होकर उसका शरीर चन्दन के समान हो गया।

जदपि पूतना हरिहि प्रति आइ हृदयँ धरि खोरि।
तदपि दीन्ह प्रभु मातु पद तिन्ह सादर कर जोरि॥३०१॥ (ख)

यद्यपि पूतना भगवान के प्रति अपने हृदय में अहित की भावना लेकर आई थी। फिर भी भगवान ने हाथ जोड़कर सम्मान के साथ उसे अपनी माता का पद प्रदान किया।

चौ.- **राउ पूतनहिं आवत पाई। हरि पठवा बिमान अगुआई॥**
फिरा जान जब तेहिं संग करि। प्रभु अनुरागे तेहिं नयन भरि॥

हे परीक्षित! पूतना को आती हुई देखकर भगवान ने उसकी अगुआई में अपना विमान भेजा। जब विमान उसे लेकर लौटा, तब उसे देखकर प्रभु मन ही मन प्रेम में मग्न हो गये।

मातु मातु पुनि कहि उमगाने। चरन बंदि लग अस्तुति गाने॥
तब पूतना प्रभुहिं पहिचानी। महासीलता लागि बखानी॥

फिर माता! माता! कहकर आतुर हुए वे भगवान उसके चरणों की वन्दना करके, स्तुति करने लगे। तब पूतना भी उन्हें पहचानकर उनके महान शील का बखान करने लगी।

तबहि दृस्य अस लखि मन माहीं। रमा सोच कछु बूझहिं नाहीं॥
भइ अधीर तब पूछेहुँ नाथा। इन्ह अति हेठि कीन्हि तव साथा॥

तभी यह दृश्य देखकर लक्ष्मीजी विचार करनें लगी, किन्तु कुछ भी समझ न सकी। अधीर हो उठी, तब उन्होंने पूछा- हे नाथ! इस राक्षसी ने आपके साथ बड़ी नीचता की है,

तदपि कुकृत तुम तासु बिहाई। बाँवर सरिस कहहिं तेहिं माई॥
नृप बलवति केतनेहुँ हरि माया। जेहिं बिमोहि मायापति छाया॥

तब भी आप उसका कुकर्म भूलकर, पागलों जैसे 'माता' कह रहे हैं। हे परीक्षित! श्रीहरि की माया कितनी बलवती है, जिसने स्वयं उनकी छाया लक्ष्मी को भी मोह में डाल दिया।

हरि तब कहि लग सो इतिहासा। रमहि मोह जेहिं सपदि बिनासा॥

तब श्रीहरि वह चरित्र कहने लगे, जिसने तुरन्त ही लक्ष्मी के मोह को हर लिया।

दोहा- **भै प्रलाद मम प्रिय भगत बलि सुपौत भा जासु।**

भई पूतना तेहिं समउ अति प्रिय तनुजा तासु॥३०२॥

भगवान ने कहा- प्रह्लाद मेरे प्रिय भक्त हुए थे, जिनका सुपौत्र राजा बलि हुआ। उसी समय यह पूतना उन राजा बलि की अत्यन्त प्रिय पुत्री हुई थी।

चौ.- तब भा रतनमाल इन्ह नामा। हृदयँ परम भाउक गुनधामा॥
उन्ह दिनु बलि प्रभाउ अति हेरी। भई इन्द्र उर त्रास घनेरी॥

उस समय इनका नाम रत्नमाला था, जो मन से अत्यन्त भावुक और गुणवति थी। उन दिनों बलि के महान प्रभाव का स्मरण करके, देवराज इन्द्र के हृदय में अत्यन्त भय हुआ।

सो उन्ह नय मैं धरि अवतारा। बामन रूप गयउ बलि द्वारा॥
तब ए निरखि मोहि मखसाला। धरेउँ हृदय अस अभिमत आला॥

अतः उनकी प्रार्थना पर अवतार लेकर वामन रूप से मैं बलि के द्वार पर गया। तब इन्होंने (अपने पिता की) यज्ञशाला में मुझे देखकर अपने हृदय में यह विचित्र मनोरथ धारण किया कि

अस गुनवंत होहि जे ढोटा। पय पिबाउ तिन्हँ करि पट ओटा॥
इन्ह अस ममता मैं पहिचानी। ऐवमस्तु कहेऊ मृदु बानी॥

यदि (मेरा भी) पुत्र ऐसा गुणी हो, तो मैं उसे आँचल की ओट में लेकर अपना दूध पिलाऊँ। इनकी ऐसी ममता को पहचानकर मैंने कोमल वाणी से एवमस्तु कह दिया।

पै मम पठवत बलिहिं पताला। कहा सकोप ऐहि तेहिं काला॥
तनय करहि जे अस कुटिलाई। पयहिं देब बिष तेहिं पिबाई॥

किन्तु फिर मेरे द्वारा बलि को पाताल भेजे जाने पर इसने क्रुद्ध होकर इस प्रकार कहा कि यदि पुत्र ऐसी कुटिलता करे मैं उसे दूध में मिलाकर विष दे दूँ।

जब प्रतिसोध भाउ अस जाना। पुनि तथास्तु कहि मैं सुख माना॥
तातें करत सगर कुचपाना। करि पूरन जुग पृहा महाना॥

जब उसका ऐसा प्रतिशोधात्मक भाव जाना तब मैंने पुनः तथास्तु कहकर सुख माना। इसी कारण मैंने इसका विषयुक्त स्तनपान करके, इसकी दोनों महान इच्छाएँ पूर्ण कर दी।

दोहा- एहि कारन ए मातु मम मैं इन्ह सुत नादान।
अस कहि दीन्हा परम पद ताहिं हरषि भगवान॥३०३॥

इसी कारण ये मेरी माता हुई और मैं इनका अज्ञानी बालक हूँ। ऐसा कहकर हर्षित हुए भगवान ने पूतना को अपना परम पद दे दिया।

चौ.- निसिचरि ब्रज हतानि जेहिं भाँती। सुनि सो सकुचि कंस कइ छाती॥
उपजा अनत काल तव मूढ़ा। सुमिरि उकुति एहि सोचहुँ बूड़ा॥

पूतना का मरण जैसे हुआ था, उसे सुनते ही चिन्ता से कंश की छाती सिकुड़ गई। "रे मूढ़! तुम्हारा काल कहीं और जन्म ले चुका है।" इस उक्ति को स्मरण कर, वह चिन्ता में डूब गया।

भा नंदहि गृह हरि अवतारा। अस बिस्वास सघन जब धारा॥
तब तें असुरन्हँ सभा बोलाई। मरन पूतनहिं लाग सुनाई॥

जब उसे यह दृढ़ निश्चय हो गया कि नन्द ही के घर विष्णु का अवतार हुआ है, तो उसने मित्र असुरों की सभा बुलाई और उनसे पूतना के मारे जाने की बात कहने लगा।

जे प्रबला मायाविनि भारी। आपु मुई कस गोकुल धारी॥
मोहिं त लग यह बालक सोई। मम बध हित उपजेहुँ महि जोई॥

जो अत्यन्त बलवती और बड़ी ही मायाविनी थी, वह पूतना गोकुल की भूमि पर स्वयं कैसे मर गई? मुझे तो लगता है, यह बालक वही है जो मुझे मारने के लिये पृथ्वी पर जन्मा है।

सो इहँ तें कस गोकुल गयऊँ। ऐहि बिचार बार अति भयऊँ॥
अब त बधिहिं जे नंदहि बारा। होइहिं सो प्रिय सचिव हमारा॥

यहाँ से वह गोकुल कैसे पहुँच गया, इस बात पर विचार करने के लिये बहुत विलम्ब हो गया है। अब तो जो भी नन्द के पुत्र को मार डालेगा, वह मेरा प्रिय मन्त्री होगा।

अस सुनि आपन मूछ चढ़ाई। उठि उतुकच बोला गरुआई॥
राउ तुरत मैं गोकुल जैहौं। तोर अरिहिं गहि इहँ लै अैहौं॥

यह सुनते-ही अत्यन्त गर्व के साथ अपनी मूँछ को चढ़ाकर उत्कच उठा और बोला- हे राजन! मैं तुरन्त ही गोकुल में जाऊँगा और आपके शत्रु को पकड़कर यहाँ ले आऊँगा।

दोहा- **वातबपुष उद्भट असुर सहस करिन्ह सम बीर।**
चला रजायसु पाइ खल करत नाद गम्भीर॥३०४॥

वायव्य शरीरवाला वह उद्भट दैत्य करोड़ों हाथियों के समान बलवान था, जो दुष्ट कंस की आज्ञा पाकर भयङ्कर गर्जन करता हुआ गोकुल की ओर चला।

चौ.- **इत गोकुल नित बजहि बधाए। निरख चराचर अति हरषाए॥**
सुमिरि नंदसुत मुख सुखखाना। गोपि करइ पनघट अस गाना॥

इधर गोकुल में नित्य बधाईयाँ बज रही है, जिसे चराचर अत्यन्त हर्षित होकर देख रहे हैं। नन्द के पुत्र के सुखद मुख का स्मरण करके, गोपियाँ पनघट पर इस प्रकार गा रही है।

हिय मोर बसेहुँ नंदहि नंदन। मैं गहि चहुँ तेहिं ममतहि बंधन॥
मन मोहिनि सुन्दर मंद हँसी। चिक्कन कच गुच्छन्हि दृष्टि फँसी॥

नन्द का लल्ला मेरे हृदय में बस गया है, मैं उसे ममता के बन्धन में बाँधना चाहती हूँ। उसका सुन्दर और मन्द हास्य मनमोहक है। उसके चिकने केशों में मेरी दृष्टि उलझ गई है।

गर कंबु सरिस केहरि नख उर। मनसिज मद हरहि कपोल भँवर॥
कल परहिं न अंतर बिनु परसे। सत बार निरखि लोचन तरसे॥

शङ्ख-सा कण्ठ व छाती पर बघनखा शोभित है। कपोलों के भँवर कामदेव का मन हरनेवाले हैं। उसे स्पर्श किये बिना मन शान्त नहीं होता और उसे सौ बार देखकर भी नेत्र नहीं अघाते।

चित काज न भोजन पूजन में। तें बूड़ि चहत मनमोहन में॥
तिन्ह किलकन्हि भृंगन्हँ गुंजन में। छबि तासुहि बसि ब्रज कुंजन में॥

अब भोजन, कार्य व पूजा में चित्त नहीं लगता, वह तो मनमोहन में ही डूबा रहना चाहता है। भौरों की गुञ्जन में उसी की किलकारी व्याप्त है और व्रज कुञ्जों में भी उसी की छबि बसी है।

जे नंद जसोदहि प्रिय ललना। तेहिं चहुँ झुलाइ कंचन पलना॥

जो नन्दजी और यशोदाजी का प्रिय लल्ला है, उसे सोने के पालने में झुलाना चाहती हूँ।

दोहा- राँधत अन्न बिलोत दधि दूध दुहत ब्रजनारि।
नृपति इहइ बिधि परम मुद गुन गावहि सुखकारि॥३०५॥

हे राजन! दहीं बिलोते हुए, भोजन पकाते हुए और दूध दुहते हुए व्रज की स्त्रियाँ इसी प्रकार अत्यन्त आनन्दित होकर सुखकर्ता भगवान श्रीहरि के गुण गाती है।

चौ.- उतुकच जेहिं दिनु गोकुल धावा। जनम नखत तेहिं दिनु हरि आवा॥
तातें गोप समाज बोलाई। नंद हरषि उन्ह लाग जिवाँई॥

उत्कच जिस दिन गोकुल में आया था, उस दिन भगवान का जन्म-नक्षत्र भी पुनः आया था। इसलिये गोप समाज को बुलाकर नन्दरायजी हर्षित होकर उन्हें भोजन करवाने लगे।

उपरोहितहि मंत्र अनुहारा। ब्रजपति दीन्हेहुँ दान अपारा॥
जननी तब आपन मन भाए। पिअर बसन सुत कहँ पहिराए॥

कुलपुरोहित महर्षि शांडिल्य के अनुसार व्रजराज नन्दरायजी ने याचकों को बहुत-सा दान दिया। उस समय माता ने लल्ला को अपनी रुचि के अनुसार पीले वस्त्र पहनाये।

कनक बिभूषन सुभग धराई। जुगल कंज अलि रेख खिंचाई॥
मुख मृदु बिहँसनि छटा निहारी। प्रेम पयोधि बूड़ि महतारी॥

फिर सोने के सुन्दर आभूषण पहनाकर उन्होंने लल्ला के नेत्ररूपी कमलों में काजलरूपी भौरों की रेखा डाली। उनके मुख पर मन्द हास्य की छटा देख माता प्रेमरूपी समुद्र में डूब गई।

पय पिबाइ पुनि सोवत जानी। पलिका पौढ़ानेहुँ सउधानी॥
अर्द्ध निमेलित दृग प्रभु सोए। मृदुल सपुन जनु अलस सँजोए॥

दूध पिलानें के उपरान्त लल्ला को सोता जानकर मैया ने उसे सावधानीपूर्वक पालने में सुला दिया। प्रभु अधखुले नेत्रों से सोए हैं, मानों किसी कोमल स्वप्न ने आलस्य को सँजो रखा है।

दोहा- पुंढरीक इव अति मृदुल अलसाए उन्ह गात।
हृदयँ हरषि सुत ऊपर जननि अमिय बरषात॥३०६॥

नीलकमल के समान उनके अत्यन्त कोमल अङ्ग अलसाये हुए है और माता अपने हृदय में हर्षित होकर उन पर अपनी ममता का अमृत बरसा रही है।

चौ.- जननि तेहिं जब सोवत पाई। लगी काज आपन अतुराई॥
तेहिं छिनु कछुक गाँउ के नारी। बिबिध भेंट गहि तहाँ पधारी॥

जब माता ने उसे सोता हुआ देखा तब वे शीघ्रता से अपने कार्य में जा लगे। उस समय गाँव की कुछ स्त्रियाँ अनेक प्रकार की भेंट लेकर वहाँ पधारी।

एहि तें सुत कइ सुरति बिहाई। लगि जसुदा उन्ह कइ अगुआई॥

तेहिं अवसर उतुकच तहँ आवा। चढ़ि सकटोपर सरोष धावा॥

इसलिये माता अपने पुत्र की सुधि भूलकर उनकी अगवानी करने में लग गई। उसी समय कंस का भेजा हुआ दैत्य उत्कच वहाँ आया और एक छकड़े पर चढ़कर क्रुद्ध होकर दौड़ा।

जब हरि खल कहँ आवत देखा। जगे अधर धरि बिहँसनि रेखा॥
रहे सकट पर घट माखन के। खल प्रेरित चल बिनु बसहन के॥

हरि ने जब उस दुष्ट को आते देखा, तो अधरों पर हास्य की रेखा लिये वे जाग उठे। छकड़े पर माखन के घड़े रखे थे, जो दैत्य से प्रेरित होकर बिना बैलों के ही चल रहा था।

घरर घरर धुनि कोउ न जानी। चलत सकट तहँ जे उपजानी॥
जब भा मूढ़ प्रभुहि समुहाई। सिसु गनि उन्ह लखि लग गरुआई॥

उसके पहियों से आती घर्र-घर्र की ध्वनि को किसी ने नहीं सुना। जब वह महामूर्ख प्रभु के सन्मुख पहुँचा, तो बालक जानकर वह बड़े ही गर्व के साथ उन्हें देखने लगा

बहुरि सकट कहँ माय प्रतारी। चहेहु महाखल उन्ह पर पारी॥
पदाघात तिन्ह दारुन पाई। खसे चाँक मेदिनी डगाई॥

फिर उस महामूर्ख ने छकड़े को अपनी माया से उठाकर प्रभु पर गिराना चाहा। उसकी लात के भयङ्कर प्रहार से छकड़े के चाँक भूमि में धँस गये और पृथ्वी डगमगाने लगी।

छन्द- **डगमगि धरनि खल जतन सब निफरे निरखि हिय हारेहूँ।**
उद्धार हित तब तासु दयनिधि बिहँसि चरन पसारेहूँ॥
पुनि हनि बिषम इक लात निसिचर सहित छकरो नभ उस्यो।
कछु जाइ उरधत पुनि परेउ महि असुर सो तर दबि मस्यो॥

पृथ्वी डोलने लगी, किन्तु दुष्ट के सारे यत्न व्यर्थ गए। यह देखकर दैत्य मन में हार गया। तब उसके उद्धार के लिये दयानिधान भगवान ने पैर फैलाया और छकड़े को वेगपूर्वक एक लात मारी, जिससे छकड़ा दैत्य सहित आकाश की ओर उड़ गया। कुछ ऊपर जाकर वह औंधा होकर भूमि पर आ गिरा और वह राक्षस उसके नीचे दबकर मर गया।

दोहा- **छूटेहु ताकर वातबपु दिब्य देह नव पाइ।**
सत तुरगन्ह रथ चढ़ि गयउ परम धाम हरषाइ॥३०७॥

तब उसका वायु आधारित शरीर छूट गया और उसने दिव्य शरीर धारण कर लिया। फिर वह सौ घोड़ों के रथ में बैठकर हर्षित होकर भगवान के परम धाम चला गया।

चौ.- उलटत सकट सकल घट फूटे। निरखि सभय सब सर सम छूटे॥
नंद जसोदा लखि अकुलाए। पलनहि प्रति अति आतुर धाए॥

छकड़े के उलटते ही सारे घड़े फूट गये। यह देख गोपगोपियाँ बाण-से उस ओर छूटे। नन्दजी व यशोदाजी भी देखकर अकुला गए और बड़ी उतावली से पलने की ओर दौड़े।

जातहिं सुत कहँ गोद उठाई। तात मात लागे उर लाई॥
चकित ग्वाल सब करइ बिचारा। जनि भूकम्प न बिकट बयारा॥

निकट जाते ही लल्ला को गोद में लेकर माता-पिता उसे हृदय से लगाने लगे। उस समय चकित हुए ग्वाल सोचने लगे कि न तो पृथ्वी हिली और न ही प्रचण्ड वायु चली।

तो पुनि छकरा कस अजिर धरा। उझकत आपुहि उलटि महि परा॥
तब बालक कछु कहइ बुझाई। खेलि रहे जे सिसु निअराई॥

तो फिर आँगन मे खड़ा छकड़ा स्वयं ही उछलकर भूमि पर कैसे उलट पड़ा? तब कुछ बालक जो उस समय लल्ला के निकट खेल रहे थे, उन्हें समझाकर कहने लगे कि,

किलकत सिसु जब मारेसि लाता। उलटा सकट सोइ पदघाता॥
अस सुनि कीन्ह ग्वाल परिहासा। भा न तनक उन्ह कहँ बिस्वासा॥

किलकारते हुए जब लल्ला ने लात मारी, तभी उस प्रहार से यह छकड़ा औंधा हो गया। यह सुनकर ग्वाले परिहास करने लगे, उन्हें तनिक भी विश्वास नहीं हुआ।

अनसुनि करि सिसु सकुसल जानी। निज निज गृह गै सब सुखमानी॥

उन्हें अनसुना करके और बालक को सकुशल देख वे सुखपूर्वक अपने घर लौट गये।

दोहा- पै संसय भा जननि हिय सिसुहिं कुग्रह ब्योधान।
बिप्र सैन तब सान्ति करि दीन्ह जाचकन्ह दान॥३०८॥

किन्तु माता के मन में शङ्का हो गई कि लल्ला पर अवश्य किसी बुरे ग्रह की दृष्टि पड़ गई है। तब उन्होंने ब्राह्मणों के कहने पर ग्रहशान्ति करवाई और याचकों को दान दिये।

चौ.- एक दिनु जननि सुतहि अन्हवाई। भइ तैय्यार पलिक पौढ़ाई॥
तब कछु गोपि आइ उन्ह पासा। कह एक कन्हहि खेलावन आसा॥

एक दिन माता अपने पुत्र को नहलाकर पालने में सुलाने के लिये तैयार हुई। उसी समय कुछ गोपियाँ उनके पास आई उनमें से एक ने लल्ला को दुलारने की इच्छा से कहा कि,

जसुमति ललहिं प्रथम मोहि देहू। मम पाछे सुख यह तैं लेहू॥
जननी ललक बूझि हिय माहीं। हरषि उछंग दीन्ह सुत ताहीं॥

हे यशोदा! लल्ला को पहले मुझे दो, तुम मेरे बाद उसे दुलारने का सुख लेना। तब मैया ने मन में उसकी ललक समझकर, पुत्र को हर्षपूर्वक उसकी गोद में दे दिया।

पाइ गोद महुँ छबि सुकुमारा। ग्वालिन कह अस प्रीति अपारा॥
जसुदा चितहुँ सिसुहि मुख आभा। बाल बपुष जनु सरसिजनाभा॥

अपनी गोद में सुकुमार छबियुक्त लल्ला को पाकर वह गोपी अपार प्रेम में भरकर बोली- हे यशोदा! बालक के मुख की आभा तो देखो, मानों श्रीहरि ही बालरूप धरे हुए हों।

नव उछाहजुत प्रात ललाई। रहि एहि वदनकमलु इठलाई॥
किलकन्हि कइ प्रभाति मृदु गाई। यह जगात बिहगन्हि चपलाई॥

इसके मुखकमल पर प्रातःकाल की नवीन उत्साहयुक्त लालिमा इठला रही है और किलकारी के रूप में कोमल प्रभाती गाते हुए, यह बालक पक्षियों की चपलता को जगा रहा है।

पुंढरीक दुति सविंटि अपारा। इन्ह दृग मोचहि जनु उजिआरा॥
मैं जब तें लखि मूरति याहीं। हिय तब तें बस इहि छबि माहीं॥

नीलकमल की आभा समेटे हुए इसके नेत्र मानों प्रकाश बहा रहे हैं। मैंने जब से इसकी मुखरूपी मूर्ति देखी है, तभी से मेरा हृदय इसकी सुन्दरता में बसने लग गया है।

दोहा- डाँटि डपटि तिन्ह बार बहु देखेउँ काज लगाइ।
पै मम जतन बिपिन रुदन होत सुरति इन्ह पाइ॥३०९॥

मैंने अपने मन को बहुत प्रकार से डाँट-डपटकर काम में लगाकर देख लिया। किन्तु इसकी स्मृति होते ही मेरे सारे यत्न व्यर्थ हो जाते हैं।

चौ.- एहिबिधि सबनि सिसुहि हलराई। फिरि घर कछु सवँ तहहिं बिताई॥
सुत कहँ तदुप जननि हरषाई। पलिक सुवाइ लाग अस गाई॥

इस प्रकार शिशु को दुलारते हुए कुछ समय वहीं बिताकर, वे सब गोपियाँ अपने-अपने घरों को लौट गई। तदुपरान्त लल्ला को पालने में सुलाकर, हर्षित हुई मैया इस प्रकार गाने लगी।

तउ पर बार बार बलिहारी। झूलहुँ सुत झुलात महतारी॥
तुअ मम जिवन लता हित नीरा। तुमहि आतमहि बोध गभीरा॥

हे पुत्र! तुझ पर बार-बार बलिहारी है, तुम झूलो माता तुम्हें झुला रही है। तुम मेरी जीवनरूपी लता के लिये जलरूप हो। तुम ही आत्मा का गम्भीर बोध हो।

मम तियत्व कइ तुअ सरथकता। मम सनेह कइ तुअहि रुचिरता॥
तव आगवन मृदु परस पाई। मोर चेतना कस रसु छाई॥

तुम ही मेरे नारीत्व की सार्थकता हो और तुम ही मेरे स्नेह की मिठास हो। तुम्हारे आगमन का कोमल स्पर्श पाते ही मेरी चेतना किस प्रकार प्रेम से भर गई है,

पाबस केर प्रथम कन पाए। जस माधवि मृदु सौरभ छाए॥
तव सुठि हँसनि केर सुचि धारा। मोहि सितलता देत अपारा॥

जैसे वर्षाऋतु के जल की पहली बूँद को पाकर पृथ्वी मधुर सुगन्ध से भर जाती है। तुम्हारे छल रहित हास्य की पवित्र धारा मुझे अपार शीतलता देती है।

तही तात जीवन आधारा। मातहिं सुखनिधि घर संसारा॥
राय सोव हरि पलकन्हि ढारी। उठि अवचट कबु लग किलकारी॥

तुम ही पिता के जीवन का आधार और माता के लिये सुखसमुद्र-सा घर संसार हो। हे परीक्षित! श्रीहरि पलकें बन्द किये सोते हैं और कभी सहसा उठकर किलकारने लगते हैं।

फरकावहि अधरन्ह कइ क्यारी। बिहँसहि कबहुं निरखि महतारी॥
उलटे जब कर पदन्ह चलाई। रोइ लाग जब उधम मचाई॥

वे कभी तो क्यारीरूप अधरों को विचित्र प्रकार से बजाते हैं और कभी मैया को देखकर हँसते हैं। हाथ-पैर चलाकर, जब वे उलट गए और रोते हुए उत्पात मचानें लगे,

तब जननी हिय रस उलटाए। थपकि लागि पुनि एहिबिधि गाए॥
निदरा सखि तैं आतुर आई। मोर ललन तें करेहुँ मिताई॥

तब माता उन पर अपने हृदय का प्रेम उढ़ेलकर उन्हें थपथपाते हुए इस प्रकार गाने लगी। हे निद्रारूपिणी सखि! तुम उतावली से आओ और मेरे लल्ला से मित्रता कर लो।

अंचल सपुन सुमन मृदु जोरी। मम सुत दृग किन आवति दौरी॥
आलस औगुंठन सितलाहीं। सुत गातन्ह किन देति डसाही॥

अपने आँचल में कोमल स्वप्नरूपी पुष्प लेकर तुम मेरे पुत्र की आँखों में दौड़कर क्यों नहीं आती? तुम मेरे पुत्र के शरीर पर आलस्य का शीतल आवरण क्यों नहीं बिछा देती?

देखु बिकल मम सुत केहि भाँती। पुनि तुम दूर ठाढ़ि मुसुकाती॥
न्हाइ सखी तैं त्रिबिध समीरा। बेगि कन्हँ दृगन्ह उतरु गभीरा॥

देखो तो! मेरा लल्ला कैसा व्याकुल है और तुम हो कि दूर खड़ी मुस्कुरा रही हो। हे सखि! त्रिविध वायु में नहाकर, तुम शीघ्र ही मेरे कन्हैया के नेत्रों में गहरी उतर जाओ।

दोहा- **जननि सुआवहि कान्हँ कहँ गाइ पुचुकि एहिंभाँति।**
परिछित दृस्य सो कलपि मम आतम रस उमगाति॥३१०॥

इस प्रकार पुचकारती हुई मैय्या गाकर लल्ला को सुला रही है। हे परीक्षित! उस सुन्दर दृश्य की कल्पना करके, मेरी आत्मा प्रेमवश अधीर हुई जाती है।

चौ.- इत उतुकचहि मरनु सुनि पावा। कंस सभय हिय अति अकुलावा॥
पुनि तेहिं तृनावर्त कहँ प्रेरा। बलु बुझाइ अरि केर घनेरा॥

इधर जब उत्कच के मारे जाने का समाचार कंस ने सुना तो वह भय से अत्यन्त व्याकुल हो उठा। तब पुनः उसने अपने शत्रु का महान बल समझाकर तृणावर्त को भेजा।

बढ़ा सो कस गोकुल दिसि आतुर। छूट घन तें महि प्रति जस दादुर॥
जामिनिचर कहँ आवत जानी। जननिहि हरि माया भरमानी॥

तृणावर्त नामक वह दैत्य गोकुल की ओर कैसे उतावली से बढ़ा; जैसे मेघ से पृथ्वी की ओर बिजली छूटती है। तृणावर्त को आता जानकर श्रीहरि ने माया से माता को भ्रमित कर दिया।

तब तें लगी काज कछु भीतर। बढ़ि रहेहुँ इत असुर भयंकर॥
अंधड़ रूप धरे गति घोरा। घुरुघुरात धावइ चहुँ ओरा॥

तब वे भवन के भीतर जाकर किसी कार्य में लग गई। इधर वह भयङ्कर असुर अन्धड़ का रूप धरे प्रचण्ड वेग से घुरघुराकर दौड़ता हुआ गोकुल की ओर बढ़ रहा था।

चलहिं बाम अति बिषम समीरा। करत दसहुँ दिसि नाद गभीरा॥
महि नभ पूरे दारुन छारा। भा मलीन रबि तासु प्रसारा॥

प्रचण्ड वेगयुक्त वामवायु दशों दिशाओं में भयङ्कर ध्वनि करती हुई बह रही है। पृथ्वी और आकाश सघन धूल से भर गये, जिसके विस्तार में सूर्य का प्रकाश मन्द पड़ गया है।

जामिनिचर कर बेग प्रचंडा। गुर तरु धीर करत भा खंडा॥
गुर लघु अगनित बिटप उपारे। गृहन्ह छप्परन्ह माधवि पारे॥

उस समय उस दैत्य का प्रचण्ड वेग बड़े-बड़े वृक्षों के धैर्य को भी नष्ट करने लगा। उसने छोटे और बड़े बहुत से वृक्ष उखाड़कर घरों की छतों को उड़ाकर पृथ्वी पर पटक दिया।

गर्जि करइ खल नाद प्रचंडा। खसहि धरनि मनु पुच्छल खंडा॥
सिलाखंड गुर तरु अरु छारा। आपन गातन्हि सविंटि अपारा॥

वह दुष्ट गर्जना करके, भयङ्कर ध्वनि करने लगा। मानों पृथ्वी पर धूमकेतुओं के टुकड़े गिर रहे हो। अपने अङ्गों में शिलाखण्ड, बड़े-बड़े वृक्ष और अपार धूल समेटकर

करि भुजबल आपन भरपूरा। अवचट पैठेहु गाँउ भभूरा॥
रंग परेउ अस कठिन भंग जब। डरपे गोपि ग्वाल हिय अति तब॥

भुजाओं से अपार बल प्रकट करके, वह अन्धड़ अचानक ही गोकुल में जा घुसा। रङ्ग में जब ऐसा कठिन भङ्ग पड़ गया, तब गोपियाँ और ग्वाले मन-ही मन अत्यन्त भयभीत हो उठे।

हा बप्पा हा मातु पुकारी। भजि छूटे इत उत नरनारी॥
बिकल जननि सुत दिसि परि धाई। बाम वात पै पहुँचि न पाई॥

हा बप्पा! हा मैय्या! पुकारते हुए स्त्री-पुरुष इधर-उधर भाग छूटे। मैय्या भी व्याकुल होकर लल्ला की ओर दौड़ी, किन्तु वायु के प्रबल वेग के कारण वे उसके पास नहीं पहुँच पाई।

दुहूँ दंड अस ताँडउ भयऊँ। ऐतनहुँ असुर कान्हँ पहि गयऊ॥

वहाँ दो घड़ी तक यह ताण्डव होता रहा। इतने में ही तृणावर्त लल्ला के पास जा पहुँचा।

दोहा- **काढ़ि खोहिं तें बहुरि उन्हँ नभ लै गयउ उड़ाइ।**
जननि निरखि अनहोनि अस मुरुछित परि अकुलाइ॥३११॥ (क)

फिर पालने से उठाकर वह उन्हें आकाश में उड़ा ले गया, इस अनहोनी को देखकर मैय्या यशोदा व्याकुल होकर मूर्छित हो गई।

मासपारायण दसवाँ विश्राम

जब दस जोजन ऊपर नृपति गयउ अघखान।
बपुष भार तब बाढ़ि निज बिहँसत भै भगवान॥३११॥ (ख)

हे परीक्षित! जब वह पापी दैत्य उड़कर आकाश में दस योजन ऊपर जा पहुँचा। तब भगवान श्रीहरि अपने शरीर का भार बढ़ाकर हँसने लगे।

चौ.- **निसिचर भार सो न सहि पावा। पाइ महाश्रमु अति अकुलावा॥**
हेरि मरमु पुनि उन्ह भय पाई। तहहिं तें लग उन्ह धरनि गिराई॥

दैत्य उनका बढ़ा हुआ भार न सह सका और अत्यधिक श्रम के कारण अकुला उठा। शिशु के प्रभाव का स्मरण करके, भयभीत हुआ वह उसे वहीं से भूमि पर गिरानें लगा।

पै छिटकत सहजहि घनस्यामा। चढ़े काँध राच्छस कर बामा॥
कचड़बम्म गहि गर अघखानहि। सिल पर पारि हरे तिन्ह प्रानहि॥

किन्तु घनश्याम सहज ही छिटककर उसके बाएँ कन्धे पर जा चढ़े। फिर पूरी शक्ति से उस महापापी का कण्ठ पकड़कर उन्होंने उसे एक शिला पर पटक दिया और उसके प्राण हर लिये।

परा धरनि जस भा पबिपाता। मरतहि तासु बैठि सब वाता॥

सुगति दीन्ह पुनि गनि तेहिं दीना। दुति तिन्ह भइ हरि चरन बिलीना॥

तब वह भूमि पर ऐसा गिरा, जैसे वज्रपात हुआ हो। उसके मरते ही सारी वायु शान्त हो गई। फिर भगवान ने दीन जानकर उसे उत्तम गति दी और उसका तेज उनके चरणों में समा गया।

सुनत नाद धाए बहु ग्वाला। सिसुहि पास आए कछु काला॥
खेलत तेहिं खल निकट पाई। चकित लाग सब देव मनाई॥

उसके गिरने का शब्द सुनते ही बहुत-से ग्वाले दौड़े और कुछ ही समय में बालक के पास आ पहुँचे। फिर दैत्य के निकट उसे खेलता हुआ पाकर चकित हुए वे विधाता को मनानें लगे।

नंदराइ इत सुतहिं उठाई। हरषि दीन्ह जसुदा कहँ जाई॥
पुनि कह एहि अकेल तैं छारा। एहिबिच भा उतपात अपारा॥

इधर नन्दरायजी ने अपने पुत्र को उठाकर हर्षित होकर यशोदाजी को दे दिया और बोले तुमने लल्ला को अकेला ही छोड़ दिया था और इसी बीच यह अपार उत्पात हो गया।

सदासिवहि अब लेहुँ मनाई। राखेहु सुतहिं जेन्ह अस घाई॥
तब जसुमति कहेहु सकुचाहीं। ललाहिं अब अकेल तजुँ नाहीं॥

अब भगवान सदाशिव को धन्यवाद दो, जिन्होंने ऐसी विपत्ति में हमारे पुत्र की रक्षा की। तब यशोदाजी ने लज्जित होकर कहा कि अब मैं कान्हाँ को कभी भी अकेला नहीं छोड़ूँगी।

नृप अकसर बसुदेव पठाए। गरग महामुनि गोकुल आए॥
उन्ह आगवन सुनत ब्रजराई। समुख जाइ कीन्हेंसि अगुआई॥

हे परीक्षित! एक बार वसुदेवजी के भेजे हुए महर्षि गर्ग गोकुल में आए। उनका आना सुनकर व्रज के राजा नन्दरायजी ने उनके सन्मुख जाकर उनकी अगवानी की।

बसुद्यौ मोहि पठवा ब्रजराई। निज सुत नामकरन हिय लाई॥
नंद पूजि मुनि पद हरषाए। कह कर जोरि बचन मन भाए॥

मुनि ने कहा- हे व्रजेश! वसुदेव ने अपने पुत्र का नामकरण करने के लिये मुझे यहाँ भेजा है। तब नन्दजी ने मुनि के चरणों की पूजा की और हर्षित होकर ये मनभावन वचन कहे-

निज दय हाथ मोर सिरु धरहू। मोरे सुतहिं नामकृत करहू॥
मुनि सुनि कह गभीर मृदु बानी। प्रगट किए एहि कारज हानी॥

आप अपनी दया का हाथ मेरे सिर पर रखिए और मेरे पुत्र का भी नामकरण कीजिये। यह सुनकर मुनि ने कोमल व गम्भीर वाणी से कहा- इस कार्य को प्रकटरूप से करने में हानि है।

प्रबल सजग सिसु अरि अधिकाई। तातें करिअहिं काज दुराई॥
नंदराय सुनि बूझि बहोरी। सून गोठ सब सुबिधा जोरी॥

बालकों के बहुत से शत्रु सचेत व प्रबल हैं, अतः यह कार्य गुप्तरीति से किया जाना चाहिये। उनकी बात सुन-समझकर उन्होंने एक सूने गोष्ठ में नामकरण के लिये समुचित प्रबन्ध कर दिया।

पुनि मुनि कर जसुदा ब्रजराजा। सचुप कराइ लाग सब काजा॥
मुनि गनराजहि प्रथम मनाई। लग गुन रोहिनि सुतहिं बुझाई॥

फिर मुनि के हाथों नन्दरायजी व यशोदाजी गुप्तरूप से नामकरण का सम्पूर्ण कृत्य करवानें लगे। सर्वप्रथम गणेशजी को मनाकर वे मुनि रोहिणीजी के पुत्र के गुण समझाने लगे।

गरभाकरषन देअकि केरा। पूरब भयउँ माय कर प्रेरा॥
अमित कांति निज बपुष जुड़ाए। तब ए तोर गरभु महुँ आए॥

(उन्होंने कहा-) कुछ काल पूर्व योगमाया की प्रेरणा से देवकी के गर्भ का आकर्षण हुआ था। उस समय अपने शरीर में अपार तेज धारण करके, ये आपके गर्भ में आए थे।

एहिंभाँति इन्ह उतपति अहई। सो इन्ह जग संकरषन कहई॥
ए भगतन्ह दायक बिश्रामा। तातें प्रबुध कहइ इन्ह रामा॥

इनकी उत्पत्ति इस प्रकार हुई है, इसलिये संसार इन्हें संकर्षण कहेगा। ये भक्तों को शान्ति प्रदान करनेवाले हैं, इसीलिये प्रबुद्धजन इन्हें राम भी कहते हैं।

दोहा- **यह बालक अबिनासि अह पुनि सब जगत असेष।**
तातें श्रुति अरु जग अखिल कहि हहिं इन्ह कहँ सेष॥३१२॥ (क)

यह बालक अविनाशी और यह सम्पूर्ण संसार नश्वर है। इसी कारण श्रुतियाँ और सम्पूर्ण संसार इन्हें 'शेष' कहेंगे।

एहि गुन कारन अहहि इन्ह पुनि अनंत एक नाउँ।
निरखि अतुल बलधाम इन्ह सबनि कहिहिं बलदाउ॥३१२॥ (ख)

इनके इसी गुण के कारण इनका एक नाम अनन्त भी है और अतुल्य बल का धाम देखकर संसार इन्हें बलदाऊ भी कहेगा।

चौ.- **तदुप कन्हहि लखि कह मुनिराई। अब इन्ह नाउँ सुनिअ ब्रजराई॥**
अखिल बिस्व मोहक सुखधामा। सिसु यह नील उपल सम स्यामा॥

तत्पश्चात् कन्हैया को देखकर महर्षि गर्ग ने कहा कि हे व्रजराज! अब इनका नाम सुनिए। समस्त विश्व को मोह लेनेवाले और सुख के धाम ये नीलमणि के समान श्याम वर्णवाले हैं।

तातें यह जग कृष्न कहावहि। इन्हहि ध्याइ सब मुकुती पावहिं॥
ए अनादि निरगुन भगवंता। प्रगटे सगुन रूप हित संता॥

इसलिये ये संसार में कृष्ण कहलायेंगे और इन्हीं का ध्यान करके सब मुक्ति पावेंगे। ये अनादि और गुणरहित हैं, जो संतों के हित के लिये सगुणरूप में प्रकट हुए हैं।

मर्दे रावनु कुंभ प्रचंडा। ए सोइ राम प्रबल भुजदंडा॥
रबि ससि सक्र ब्रह्म हर काला। ए सब जिन्हँ आयसु प्रतिपाला॥

ये प्रबल भुजदण्डोंवाले वही श्रीराम हैं, जिन्होंने प्रचण्ड योद्धा रावण और कुम्भकर्ण को मारा था। सूर्य, चन्द्रमा, इन्द्र, यम, ब्रह्मा और शिवजी आदि जिनकी आज्ञा का पालन करते हैं,

सोइ परातपर प्रभु महि आई। भयउँ तोर सुत अज ब्रजराई॥
पूरब जनम कठिन तपु साधी। लीन्ह एहि तनु उन्ह तुम बाँधी॥

हे व्रजराज! वे परात्पर परब्रह्म ही पृथ्वी पर आकर आज आपके पुत्र हुए हैं। पूर्वजन्म में कठोर तपस्या करने के कारण तुमने इन्हें इस जन्म में प्राप्त किया है।

ए दोउ बालक दुरलभ ताता। जुग जुग बिगत उपज संघाता॥
करौं तोर केहि भाँति बड़ाई। भाग सैल तव मति मम राई॥

हे तात! ये दोनों बालक अत्यन्त दुर्लभ हैं, जो युगों-युगों पश्चात् एक साथ उत्पन्न होते हैं। मैं तुम्हारे भाग्य की सराहना कैसे करूँ; तुम्हारा भाग्य पर्वत और मेरी बुद्धि राई है।

रोहिनि सहित जसोमति नंदा। सुनि अस मानेहुँ परम अनंदा॥

यह सुनकर नन्दरायजी और यशोदाजी सहित रोहिणीजी ने परम आनन्द माना।

दोहा- **माँगि बिदा मुनि बहुरि गए मथुरा हिय हरषाइ।**
उन्ह मानस बिगसे अमित सुरति पुहुप समुदाइ॥३१३॥

फिर मुनि ने मन में हर्षित होकर उनसे विदा माँगी और मथुरा लौट गए। उनके मनरूपी सरोवर में स्मृतियों के अनगिनत कमल-समूह विकसित हो गए।

चौ.- **अकसर जननिहिं हाथ सुवाए। खेलि रहे हरि प्रमोद छाए॥**
कर अरु पगन्हि धरे चपलाई। अति उल्लास रहे किलकाई॥

एक बार मैया के द्वारा सुलाए गए श्रीकृष्ण पालने में अत्यन्त आनन्द से खेल रहे थे। उस समय वे हाथों और पैरों में चञ्चलता लिये अत्यन्त उल्लासपूर्वक किलकारी मार रहे थे।

मुकुल मनहुँ लहि वात प्रतारन। उमगि लाग जनु सौरभ झारन॥
पंच मास बय दृग सुखकारी। प्रति अँग उमगावहि छबि भारी॥

जैसे किसी पुष्प की कलिका वायु के झोंके से हिलकर सुगन्ध उत्पन्न कर रही हो। उनकी पञ्चमासी अवस्था नेत्रों को सुख देती थी और उनका प्रत्येक अङ्ग महान सुषमा बिखेर रहा था।

जननि निकट रहि अजिर बुहारी। सुनि सुत कइ मुदमय किलकारी॥
पुलकि हरषि अति आतुर आई। सुतहिं केलि लखि लगि दृग लाई॥

मैय्या निकट ही आँगन बुहार रही थी, अतः पुत्र की आनन्दपूरित किलकारी सुनते ही पुलकित होकर, वे बड़ी उतावली से आई और नेत्र लगाकर कन्हैया की बालक्रीड़ा देखने लगी।

हरि जननिहिं निज सनमुख देखी। अधर दई मृदु बिहँसनि रेखी॥
पुनि कर गहि अँगूठ पद केरा। मुखहुँ लीन्ह करि जतन घनेरा॥

बालकृष्ण ने मैय्या को सन्मुख देखकर अधरों पर मन्द मुस्कान की रेखा बिखेर दी। फिर बड़े यत्न से उन्होंने अपने पैर के अँगूठे को हाथों से पकड़कर मुख में ले लिया।

तेहिं सवँ प्रलय हृदयँ अनुमानी। भै सभीत सुर अरु मुनि ग्यानी॥
लखि प्रमुदित इत भइ महतारी। मनु फरि हिय बन सुपृहन्हि क्यारी॥

जिससे देवता व ज्ञानी मुनि प्रलय अनुमानकर, भयभीत हो उठे। पुत्र की क्रीड़ा देख मैय्या को महान आनन्द हुआ, मानों मनरूपी उपवन में सुन्दर आकाङ्क्षाओं की क्यारी फल गई हो।

दोहा- पलिक जतन करि भुजन्हि बल अरु जुग चरन चलाइ।
देखि सुतहिं उलटत जननि फूरि न मनहिं अमाइ॥३१४॥

फिर पालने में लेटे हुए पुत्र को यत्न करके, भुजाएँ और पैर चलाकर करवट लेते हुए देखा तो मैय्या अपने मन में फूली नहीं समाई।

चौ.- पुलक मेघ बरषत निअराई। लगे बपुष माधवी सिंचाई॥
चलि नयनन्ह तें प्रीति अपारा। अज प्रति उपजि मनहुँ नय धारा॥

पुलकरूपी मेघ निकट आकर उनकी शरीररूपी पृथ्वी को सींचने लगे और नेत्रों से अपार प्रेम उमड़ पड़ा, मानों अश्रुओं के रूप में विधाता के प्रति उनकी कृतज्ञता उमड़ पड़ी हो।

कह पति अरु रोहिनिहिं पुकारी। देखु दृस्य अह कस सुखकारी॥
किए आपु बल अज सुत मोरा। करबटेहुँ सम सरित झकोरा॥

उस समय नन्दजी और रोहिणीजी को पुकारकर वे कहने लगी- आकर देखों तो! कितना सुखद दृश्य है। मेरे लल्ला ने आज नदी की लहर के समान अपने बल पर, करवट ले ली।

कंत लखहुँ तउ लोयन तारा। पाएहुँ नव बिकास उजिआरा॥
भगिनी तव सुत सम सुत मेरा। पाइ गयउ बल बपुष घनेरा॥

हे स्वामी! तनिक देखो तो! तुम्हारे नेत्रों का तारक आज बढ़ने लगा है। हे रोहिणी बहन! तुम्हारे पुत्र के समान ही मेरा पुत्र भी अपने शरीर में बहुत-सा बल पा गया है।

बेगि आउँ जनि लाउब बारा। निरखु दृस्य सुख बाढ़निहारा॥
सुनतहि धाइ परे जुग कैसे। भानु किरन बढ़ महि दिसि जैसे॥

शीघ्र ही आओ, विलम्ब मत करो और नेत्रों के सुख को बढ़ानेवाले इस दृश्य को देखो। यह सुनते-ही वे दोनों किस प्रकार दौड़े; जैसे सूर्य की किरणें पृथ्वी की ओर बढ़ती है।

उलटनि निरखि बहुरि सुखधामहि। भै नँद रोहिनि पूरनकामहि॥

फिर सुखधाम कन्हैया का उलटना देखकर नन्दजी और रोहिणीजी भी पूर्णकाम हो गए।

दोहा- जननि सुतहि उर लाइ पुनि लागि पिबावन नेह।

सुर लखि सुमन बरषि हरषि गवने निज निज गेह॥३१५॥

तत्पश्चात् मैय्या ने अपने लल्ला को हृदय से लगा लिया और उसे दुग्धपान कराने लगी। यह देखकर देवताओं ने पुष्प बरसाए और हर्षित होकर अपने-अपने घर लौट गए।

चौ.- गहि पय जब घनस्याम अघाने। प्रमुदित गोद लाग किलकाने॥
दै दै चुटकि खेलावहि माता। जातें अति किलकत सुखदाता॥

जब श्याम दूध पीकर, अघा गये, तब आनन्दित हो वे मैय्या की गोद में किलकारनें लगे। मैय्या चुटकी बजा-बजाकर उन्हें दुलार रही हैं, जिससे श्रीकृष्ण और अधिक किलकारने लगे।

पय पीबत जुग चरन चलाई। फुँकरइ कबहुँ अधर फरकाई॥
सुनि जननिहिं रव पुनि उन्ह संगा। हूँ हूँ करि कह निजहिं उमंगा॥

दोनों पैरों को चलाते हुए, वे कभी होठों को बजाकर फुँकराने लगते हैं, तो कभी मैय्या का शब्द सुनकर उनके साथ-साथ हूँ-हूँ इस प्रकार शब्द करके, अपनी उमंग व्यक्त करते हैं और

कबहुँ धरे रव सरि कलनादा। हरि हरि लग पितु मुद मरजादा॥
रबि प्रकास उन्ह गातन्ह छाई। दमकि बिभव निज रहेहुँ बढ़ाई॥

कभी वाणी में नदी का कलनाद लिये, नन्दबाबा के आनन्द की मर्यादा को हरने लगते हैं। सूर्य का प्रकाश उनके अङ्गों पर छाकर दमकते हुए अपने वैभव को बढ़ा रहा था।

जननिहिं नाक हलति नकबेसर। कान्हँ पकरिबे बाढ़त लघु कर॥
पै पुनि पुनि कर इत उत जाई। उन्ह लघु बय जनु रहा जनाई॥

मैय्या की नाक में नथ हिल रही थी, जिसे पकड़ने के लिये कन्हैया ने अपना छोटा हाथ बढ़ाया। किन्तु बार-बार इधर-उधर जाता हाथ, उनकी अल्पावस्था व्यक्त कर रहा था।

कर धरि आतुर जननिहिं अंचल। मुखनि गहे चाबहि प्रभु चंचल॥

स्वभाव से ही चञ्चल (बालरूपधारी) वे प्रभु आतुरता से मैय्या का आँचल चबा रहे हैं

दोहा- जननि बलैया लेत इत अजिरहि खाट मँगाइ।
पुनि ललनहिं पौढ़ाइ तहँ गई पतिहि बैठाइ॥३१६॥

इधर उनकी बलैया लेते हुए मैय्या ने आँगन में ही एक खटिया मँगा ली और लल्ला को उस पर सुला दिया। फिर नन्दरायजी को वहाँ बैठाकर वे (घर के भीतर) चली गई।

चौ.- बैठे नंद सुवन के पासा। बतरावहि तिन्ह अति उल्लासा॥
निकट बिटप जमलार्जुन ऊपर। बैठे बिबिध बरन खग सुन्दर॥

नन्दरायजी अपने लल्ला के निकट बैठकर अत्यन्त उत्साह के साथ उससे बतिया रहे हैं। निकट ही खड़े अर्जुन के दोनों वृक्षों पर अनेक रङ्गों के सुन्दर पक्षि बैठे हुए हैं।

कलरव तासु कान्हँ रव संगा। पितु चेतनि सरि तरइ अभंगा॥
चपल तड़ित अरु जल कइ रेला। मेघ अजिर मानहुँ कर खेला॥

उनका कलरव कन्हैया की ध्वनि के साथ नन्दजी की चेतनारूपी नदी में निर्बाध गति से तैर रहा है, मानों चञ्चल बिजली व जल की धाराएँ मेघों के आँगन में साथ-साथ खेल रही हैं।

कबहुँ कान्हँ अति होत अधीरा। कबहुँ होत घन इव गम्भीरा॥
कबहिं हास मृदु अधरन्ह लाई। पितहि छाति हत चरन चलाई॥

कन्हैया कभी तो बहुत अधीर हो उठते हैं, तो कभी मेघ के समान गम्भीर हो जाते हैं और कभी अधरों पर मधुर हास्य लिये, पैर चलाते हुए नन्दबाबा की छाती पर मारते हैं।

अतिसय तासु चपलपनु देखी। उमगि नंद मुख आनँदु रेखी॥
जब रोए कन्हँ मचलनि ठानी। लाग मनाइ तात मृदुबानी॥

उनकी इस प्रकार की अत्यधिक चञ्चलता देखकर नन्दजी के मुख पर आनन्द की रेखा उभर आई इस बीच जब कन्हैया मचलकर रोने लगे, तब नन्दबाबा मधुरवाणी से उन्हें मनाने लगे।

बहुरि लाइ हिय राजिवनैनहि। तरु देखाइ लग खग करि सैनहि॥
देखु कान्हँ बिटपहि चकु छाई। तोहि खेलन हित रही बोलाई॥

फिर उन कमलनयन को छाती से लगाकर वे उन्हें सङ्केत से वृक्षों पर बैठे पक्षि दिखाने लगे व बोले- अरे कान्हा देखों तो! वृक्ष पर बैठी हुई चिड़ियारानी तुम्हें खेलने के लिये बुला रही है।

सुनु चकुबाइ बास तव मोटा। पुनि बय माँझ कान्हँ मम छोटा॥
निज करतब कर किए प्रकासा। आउँ सो तुम्हहि मोर सुत पासा॥

हे चिड़िया रानी सुनो! तुम्हारा निवास बहुत ऊँचा है और मेरा कान्हाँ अभी छोटा है। इसलिये अपने करतब दिखाने के लिये तुम स्वयं ही मेरे कन्हैया के पास आ जाओ।

अस कहि अन कन लए बोलाई। पुनि उन्ह दीन्ह अजिर बिखराई॥
देखत भा खग जमघट भारी। कान्हँ लाग उन्ह लखि किलकारी॥

ऐसा कहकर उन्होंने अन्न के कुछ दाने मँगाकर आँगन में बिखेर दिये और देखते-ही देखते वहाँ पक्षियों का भारी जमघट हो गया और कन्हैया उन्हें देखकर किलकारने लगे।

दोहा- उड़ि उड़ि खग कछु खटुलि चढ़े हरिहि मनहुँ तें जान।
अचरज हरष उएहुँ हिय पितु जब लखि उन्ह बान॥३१७॥

कुछ पक्षि उड़-उड़कर खटिया पर जा चढ़े, मानों वे कन्हैया से परिचित हों। जब नन्दजी ने पक्षियों के इस व्यवहार को देखा, तो उनके मन में आश्चर्य मिश्रित आनन्द हो आया।

चौ.- अज हर दुरलभ जोइ अनुरागा। भा सो नंद जसोदहि भागा॥
रही तेहिं सवँ तहँ कछु नारी। कहइ परसपर आनँदु भारी॥

जो प्रेम स्वयं ब्रह्माजी व शिवजी के लिये भी दुर्लभ है, वही यशोदा व नन्दजी का भाग्य बन गया। कुछ गोपियाँ वहीं खड़ी थी, जो बड़े आनन्द से परस्पर इस प्रकार कहने लगी-

सखि जसुदा अरु नंद बड़ाई। किए सहसमुख मति सकुचाई॥
जस लहरन्ह बारिधिहि प्रसारा। गनै न पाइ सकहि कोउँ पारा॥

हे सखि! यशोदाजी और नन्दजी की बढ़ाई करने में स्वयं शेषजी की बुद्धि भी सकुचाती है। जैसे समुद्र के विस्तार में तैरती लहरों को गिनकर, कोई उनका पार नहीं पा सकता।

बरषत जलकन जस न गनाई। तैसेइ इन्ह कर भाग बड़ाई॥

जोतिषि कह इन्ह कन्हँ सुर कोई। जे असाँच उन्ह कर बच होई॥

जैसे बरसते हुए जलकण गिने नहीं जा सकते, ठीक वैसे ही उनके भाग्य की बड़ाई है। ज्योतिषी कहते हैं कि इनका कन्हैया कोई देवता है, यदि उनका वचन असत्य भी हो,

तद्यपि अकथ प्रभाउ कन्हाई। देहि अवसि तिन्ह अमर बनाई॥
तिन्ह सुकेलि लघु सरि उमगाई। रहि कस चर अरु अचर सिंचाई॥

तो भी कन्हैया का अकथनीय प्रभाव उसे अवश्य ही अमर बना देगा। उसके सुन्दर बालचरित्रों की छोटी-सी नदी उमड़ते हुए चराचर जगत को कैसे सींच रही है;

त्रिबिध वात कर जस लघु झोंका। आतप नसि कर दिसिन्ह असोका॥
कोउ कह मम हिय कर अनुरागा। तजि स्वजनन्हँ इहही रह लागा॥

जैसे शीतल, मन्द और सुगन्धित वायु का छोटा-सा झोंका भी ताप हरकर दिशाओं को शीतल कर देता है। कोई कहती है- मेरे हृदय का प्रेम स्वजनों को छोड़ यहीं लगा रहता है।

नयन अघात न एहि मुख देखा। करहि नेह यह हृदय बिसेषा॥
कान्हहिं दरस मधुर सुचि चाहा। भई जात मम लोभ अगाहा॥

नेत्र इसका मुख देखकर अघाते नहीं। यह मेरे हृदय में विशेष स्नेह उत्पन्न करता है। अब मेरे हृदय में स्थित कन्हैया के दर्शन की मधुर एवं पवित्र इच्छा, गम्भीर लोभ हुई जाती है।

दोहा- **सखी अब त मम नयनन्ह परति नींद जनि रात।**
हिय न काज कछु दिवस भरि निरखे दृग न अघात॥३१८॥

हे सखि! अब तो रात्रि में भी मेरे नेत्रों को नींद नहीं आती और न मन किसी कार्य में लग पाता है। इसे दिनभर देखते रहनें के उपरान्त भी, मेरे ये नेत्र अघाते नहीं।

चौ.- **एक कहइ जसुमति तव ढोटा। सपदिहि होइ दाउ सँग मोटा॥**
ते गोकुल कर सुख आधारा। त्रिपुर दृगन्ह मुद रासि अपारा॥

कोई कहती है- हे यशोदा! तुम्हारा पुत्र शीघ्र ही दाऊ के साथ बड़ा हो जाय। वे दोनों गोकुल के सुख का आधार हैं और त्रिलोक के नेत्रों के लिये आनन्द की अपार राशि हैं।

काजारंभ होत सब केरा। लहि एहि बिहँसनि सुखद सबेरा॥
चिरजिवि होइ तनय जसुदा कर। कमलबिपिन सम बढ़हि निरंतर॥

इसके हास्यरूपी सुखदायक प्रभात को पाकर ही सबका कार्य आरम्भ हो पाता है। यशोदाजी का यह लल्ला दीर्घजीवी हो और कमलवन के समान निरन्तर बढ़ता रहे।

घटहि न सीतनिसा कोउ तासू। करइ दुखिन्ह हित सुखन्ह सुपासू॥
सुनि उन्ह गिरा सुतहि गहि गोदा। मुख चुम्बत भै नंद प्रमोदा॥

उसके लिये हिमरात्रिरूपी कोई सङ्कट न हो और वह दुःखियों के लिये सुखों का प्रबन्ध करे। उनकी वाणी सुनकर नन्दजी ने लल्ला को गोद में उठाया और आनन्द से उसका मुख चूमने लगे।

एक बार सुत कहँ अन्हवाई। रहि जसुदा पय पान कराई॥
तब तें सुत मुख नभ नरराई। उपजत उभय दसन ससि पाई॥

एक बार कन्हैया को नहलाकर यशोदाजी स्तनपान करा रही थी। हे परीक्षित! उस समय अपने पुत्र के मुखरूपी आकाश में दाँतरूपी दो चन्द्रमाओं को उदित होते देखकर

सिवहि मनाइ कहा मुद भारी। फरन लागि अब मनरथ डारी॥
बहुरि बाढ़ि अति जब जिग्यासा। करत भई तब अस अभिलाषा॥

शिवजी को मनाकर मैय्या ने बड़े आनन्द से कहा- मेरे मनोरथों की लता फलने लगी है। जब (भावी अवसरों के प्रति) जिज्ञासा बढ़ गई, तब वे यह अभिलाषा करने लगी-

कब मम तनय घुटुरुअन्हँ धावहि। कब मैय्या कहि मोहि बोलावहि॥
खेलत अजिर गात भरि धूरी। कब करिहहि पितु बाँछा पूरी॥

मेरा लल्ला कब घुटनों के बल दौड़ने लगेगा, कब मुझे मैय्या कहकर पुकारेगा और आँगन में खेलता हुआ कब अङ्गों में धूल लिये, पिता की आकाङ्क्षा पूरी करेगा।

कब धरि रसनहुँ बोल अमिअ सो। जाचिहि दधि मम पाहिं हठ लसो॥
बातहिं बात कबहुँ रिस खाई। मोहि करिहि सुखि किए लराई॥

अपनी जिह्वा पर अमृत के समान वाणी धरकर कब हठपूर्वक मुझसे दहीं माँगेगा और बातों-ही बातों में रूठकर मुझसे झगड़ा करते हुए कब मुझे सुखी करेगा।

दोहा- **होइहि कब मम सुत तरुन कबहि किए तिन्ह ब्याह।**
अजिर सुमंगल गावत सारउँ भव्य उछाह॥३१९॥

कब मेरा लल्ला तरुण होगा और कब उसका ब्याह करने के लिये मैं अपने आँगन में सुन्दर मङ्गल गीत गाते हुए भव्य उत्सव का आयोजन करूँगी।

चौ.- **बेगि बढ़त किन सुत सुखकारी। देखु बिकल इन्ह छबि महतारी॥**
सिव ससंक तब करइ बिचारा। बढ़े जे बामन जननि पुकारा॥

हे सुखदायक पुत्र! तू शीघ्र ही बड़ा क्यों नहीं होता? देखो तो! तुम्हारी मैय्या तुम्हें इन रूपों में देखने के लिये कितनी व्याकुल है। तभी शिवजी आशङ्कित हो सोचनें लगे, यदि मैय्या की पुकार सुनकर (वामन अवतार धारण करनेवाले) ये प्रभु (इसी समय) बड़े हो गए,

तब त दरस इन्ह सिसु छबि केरा। बूड़हि मम हित समउ अँधेरा॥
तातें अबहि नंदगृह जाई। लेउँ दृगन्ह कर लाहु जुड़ाई॥

तब तो इनके बालरूप का दर्शन मेरे लिये समय के अन्धकार में डूब ही जाएगा (असम्भव हो जाएगा)। इसलिये मैं इसी समय नन्दजी के घर जाकर नेत्रों का लाभ पा लेता हूँ।

सपदि धरे बपु प्राकृत साधू। चले हरष रामेस अगाधू॥
बहुरि आइ गोकुल प्रभु द्वारा। अलख निरंजन बचन उचारा॥

तब शीघ्र ही एक साधारण साधु का वेष धरकर भगवान रामेश्वर अगाध प्रसन्नता से चले। फिर गोकुल में स्वामी के द्वार पर आकर उन्होंने 'अलख निरञ्जन' यह वचन कहा।

जसुमति सुनि सुत कहँ पौढ़ाई। अरपे उन्ह मनि मानिक लाई॥
जेहिं निरखि कह हर कर जोरे। द्रब्य लालसा नैंकु न मोरे॥